सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से
कला संकाय (हिन्दी) में पी-एच.डी. उपाधि
हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

शोध-निर्देशक :
डॉ० अश्विनीकुमार शुक्ल
प्रवक्ता
हिन्दी विभाग
पं. जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

शोधकर्त्ता :
उमाकान्त अग्निहोत्री
एम०ए० (हिन्दी)
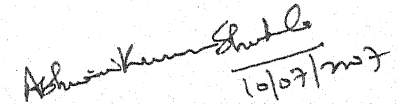
शोध-केन्द्र
पं. जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
पं. जवाहरलाल नेहरू
स्नातकोत्तर महाविद्यालय
बाँदा (उ०प्र०)

निवास :
जिला विद्यालय निरीक्षक कार्यालय के सामने
स्वराज्य कॉलोनी, बाँदा
दूरभाष : 9415171833

प्रमाण-पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि श्री उमाकान्त अग्निहोत्री ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी से हिन्दी विषय में पी-एच.डी. उपाधि हेतु 'सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता' नामक शोध-प्रबन्ध मेरे निर्देशन में शोध अध्यादेश 7 के अनुसार निर्धारित उपस्थिति देकर पूर्ण किया है। इन्हें विश्वविद्यालय के पत्रांक बु.वि.वि./प्रशा./शोध/2005/1952-54 दिनांक 01/02/2005 के आधार पर शोध उपाधि समिति की बैठक दिनांक 22/12/2004 के द्वारा विषय की स्वीकृति प्रदान की गई थी। श्री उमाकान्त अग्निहोत्री का प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध उच्चस्तरीय तथ्यों पर आधारित है तथा शोध के क्षेत्र में इस प्रबन्ध का मौलिक योगदान होगा। अतएव, मैं इसे मूल्यांकनार्थ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में प्रस्तुति हेतु प्रबलतम संस्तुति करता हूँ।

Ashwini Kumar Shukla
10/07/2007

(डॉ. अश्विनीकुमार शुक्ल)
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
पं. जवाहरलाल नेहरू स्नातकोत्तर
महाविद्यालय, बाँदा (उ०प्र०)

भूमिका

साहित्य की अनेकानेक विधाओं में काव्य विधा के प्रति मेरा अत्यधिक झुकाव बाल्यावस्था से ही रहा है। कविता कवि के लौकिक दर्शन तथा आध्यात्मिक चेतना से उत्पन्न भावनाओं और संवेदनाओं की शाब्दिक परिणति है। कविता पुरातन और नवीन संस्कृति के तारों को जोड़ने वाली साहित्य की एक चिरन्तन विधा है। विशुद्ध और विवेकशील अन्तःकरण से उपजी हुई कविता सभी के हृदय को पवित्र और निर्मल बनाती है। आधुनिककाल में कविता ने अनेक आयाम हासिल किए हैं। विशेषकर छायावाद के उपरान्त कविता में नए-नए आन्दोलनों ने हलचल मचा दी, जिससे कविता के स्वरूप के मूल्यांकन में नवीन उपकरणों का समावेश करना पड़ा। छायावादी कविता के बाद की कविता की प्रकृति एवं प्रवृत्ति का निर्धारण एक लम्बे समय तक सप्तकों पर आधारित रहा।

'तारसप्तक' से लेकर 'तीसरा सप्तक' के कवियों की कविताओं की प्रवृत्तियों के आधार पर युगों का नामकरण किया गया। 'चौथा सप्तक' की भूमिका भले ही उतनी महत्त्वपूर्ण न रही हो फिर भी इसके आधार पर एक युग के अवसान एवं दूसरे के आरम्भ की घोषणा तो जरूर ही होती है। अब तक काव्य में अधिकांश शोध आपातकाल तक की कविता पर अथवा स्थापित कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं को दृष्टिगत रखते हुए ही किए गये हैं। मैंने अत्याधुनिक सप्तकोत्तर कविता विशेषकर नवें दशक से लेकर आज तक की कविताओं में निहित भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता के स्वरूप का मूल्यांकन नये धरातल पर नये ढंग से करने की आवश्यकता को तीव्रता के साथ महसूस किया। यह शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिनके शीर्षक और प्रारूप इस प्रकार हैं-

प्रथम अध्याय- "सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि" में कविता को पारिभाषित करने का प्रयास करते हुए कविता के संक्षिप्त प्रवृत्त्यात्मक इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में छायावादोत्तर कविता का स्वरूपगत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा छायावादोत्तर कविता के क्रमशः चारो सप्तकों के साथ सम्बन्धों को विश्लेषित करते हुए कविता की प्रकृति के निर्धारण में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कारिक परिवर्तनों को वहन करती हुई कविता के नए रूप को प्रस्तुत करने की कोशिश भी इस अध्याय में की गई है।

द्वितीय अध्याय - "कविता की भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता" में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुए सप्तकों से पहले की कविता में और सप्तकीय कविता में भावनात्मकता और संवेदनशीलता को तलाशने की कोशिश की गई है। इसी अध्याय में

भूमिका

साहित्य की अनेकानेक विधाओं में काव्य विधा के प्रति मेरा अत्यधिक झुकाव बाल्यावस्था से ही रहा है। कविता कवि के लौकिक दर्शन तथा आध्यात्मिक चेतना से उत्पन्न भावनाओं और संवेदनाओं की शाब्दिक परिणति है। कविता पुरातन और नवीन संस्कृति के तारों को जोड़ने वाली साहित्य की एक चिरन्तन विधा है। विशुद्ध और विवेकशील अन्तःकरण से उपजी हुई कविता सभी के हृदय को पवित्र और निर्मल बनाती है। आधुनिककाल में कविता ने अनेक आयाम हासिल किए हैं। विशेषकर छायावाद के उपरान्त कविता में नए-नए आन्दोलनों ने हलचल मचा दी, जिससे कविता के स्वरूप के मूल्यांकन में नवीन उपकरणों का समावेश करना पड़ा। छायावादी कविता के बाद की कविता की प्रकृति एवं प्रवृत्ति का निर्धारण एक लम्बे समय तक सप्तकों पर आधारित रहा।

'तारसप्तक' से लेकर 'तीसरा सप्तक' के कवियों की कविताओं की प्रवृत्तियों के आधार पर युगों का नामकरण किया गया। 'चौथा सप्तक' की भूमिका भले ही उतनी महत्त्वपूर्ण न रही हो फिर भी इसके आधार पर एक युग के अवसान एवं दूसरे के आरम्भ की घोषणा तो जरूर ही होती है। अब तक काव्य में अधिकांश शोध आपातकाल तक की कविता पर अथवा स्थापित कवियों की प्रतिनिधि रचनाओं को दृष्टिगत रखते हुए ही किए गये हैं। मैंने अत्याधुनिक सप्तकोत्तर कविता विशेषकर नवें दशक से लेकर आज तक की कविताओं में निहित भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता के स्वरूप का मूल्यांकन नये धरातल पर नये ढंग से करने की आवश्यकता को तीव्रता के साथ महसूस किया। यह शोध प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त किया गया है, जिनके शीर्षक और प्रारूप इस प्रकार हैं-

प्रथम अध्याय- ''सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि'' में कविता को परिभाषित करने का प्रयास करते हुए कविता के संक्षिप्त प्रवृत्त्यात्मक इतिहास को प्रस्तुत किया गया है। इसी अध्याय में छायावादोत्तर कविता का स्वरूपगत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है तथा छायावादोत्तर कविता के क्रमशः चारो सप्तकों के साथ सम्बन्धों को विश्लेषित करते हुए कविता की प्रकृति के निर्धारण में सप्तकों की भूमिका पर प्रकाश डाला गया है। राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कारिक परिवर्तनों को वहन करती हुई कविता के नए रूप को प्रस्तुत करने की कोशिश भी इस अध्याय में की गई है।
द्वितीय अध्याय - ''कविता की भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता'' में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण करते हुए सप्तकों से पहले की कविता में और सप्तकीय कविता में भावनात्मकता और संवेदनशीलता को तलाशने की कोशिश की गई है। इसी अध्याय में

भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों को पारिभाषित करने का प्रयास भी किया गया है। सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनों ही दृष्टिकोणों से सप्तकीय कविता और सप्तकों से पूर्व की कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता को एक विकास प्रक्रिया के रूप में दिखाने का प्रयास भी किया गया है।

तृतीय अध्याय - ''सप्तकोत्तर कविता की विकास यात्रा'' में सप्तकों के बाद की कविता का युग सर्वेक्षण करते हुए उसे पाँच सोपानों में विभक्त किया गया है। ये पाँचो सोपान सन् 1980 से लेकर सन् 2005 तक की कविता को पाँच-पाँच वर्ष के अन्तर से बाँट करके बनाए गये हैं। तीसरे उपशीर्षक 'सप्तकोत्तर कविता की प्रवृत्तियाँ' में प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, सामाजिकता, भक्ति, अध्यात्म, दर्शन, इतिहास, संस्कृति, राष्ट्रीयता, आधुनिकता, बौद्धिकता, सम्प्रेषणीयता, मानवीयता, नवगीत व गजल लेखन, राजनीति, भाषा, शिल्प, बाजारीकरण, भूमण्डलीकरण, असहज यथार्थबोध, सूचना तकनीक, वैज्ञानिकता, साहित्यिक खेमेबाजी इत्यादि प्रवृत्तियों के आधार पर सप्तकोत्तर कविता का मूल्यांकन करने की कोशिश की गयी है।

चतुर्थ अध्याय - ''सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता'' में सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता के व्यष्टिगत, समष्टिगत, मनोवैज्ञानिक, सौन्दर्यबोधक, राष्ट्रवादी, मानववादी, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, बौद्धिक, आधुनिक, काल्पनिक, प्रेमबोधक इत्यादि रूपों को ढूँढ़ने और उनके दार्शनिक महत्त्व को स्थापित करने की कोशिश की गई है। भावनात्मकता के इन सभी रूपों को प्राचीन और आधुनिक चिन्तन के साथ जोड़ने की कोशिश प्रस्तुत अध्याय में की गई है। साथ ही विचार तत्त्व और रसात्मकता की अनुभूति भी सर्वत्र देखने को मिलती है।

पंचम अध्याय - ''सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशीलता'' में सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशीलता के प्रकृतिजन्य, स्वाभाविक, परिवेशगत, यथार्थपरक, समाजपरक, दृष्टिपरक, विषमतापरक, न्यायपरक, कृत्रिमतायुक्त, व्यंग्यपरक, लौकिक, अलौकिक तथा सर्जनात्मक रूपों का विश्लेषण एवं विवेचन किया गया है। सप्तकोत्तर कविता में कवियों की बौद्धिकता एवं सजग दृष्टि से परिपूर्ण संवेदना उनकी कविताओं के फलक को और भी अधिक व्यापकता और सम्प्रेषणीयता प्रदान करती है। इस अध्याय में इन्हीं के आधार पर कविता की व्यापक संवेदनशीलता का अध्ययन किया गया है।

षष्ठ अध्याय - ''सप्तकोत्तर कविताओं के आलोक में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में साम्य और वैषम्य'' में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का व्युत्पत्तिपरक विश्लेषण करने के पश्चात् सप्तकोत्तर कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता में वैचारिक, व्यावहारिक तथा

संरचनामूलक स्तरों पर साम्य और वैषम्य स्थापित करने का प्रयास किया गया है। इस अध्याय में विचार, व्यवहार की व्याख्या करते हुए कविता के संरचनात्मक तत्त्वों (भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, उपमान,मिथक, फन्तासी) को नवीन ढंग से भावनात्मकता और संवेदनशीलता के स्तर पर खोजने का प्रयास किया गया है। भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों का विश्लेषण करने के उपरान्त वैचारिक, व्यावहारिक व संरचनामूलक बिन्दुओं में कविताओं के तेवर के आधार पर समानता और विभिन्नता को स्पष्ट करने की कोशिश की गई है।

सप्तम अध्याय - "उपसंहार" में समस्त शोध का निष्कर्ष प्रस्तुत किया गया है। यहाँ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शोधकार्य की सार्थकता तथा आज के समसामयिक सन्दर्भ में सप्तकोत्तर कविता के भावनात्मक व संवेदनशील बिन्दुओं का मूल्यांकन पहले की कविता के साथ तुलनात्मक दृष्टि से किया गया है। इस अध्याय में सप्तकोत्तर कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता का रूप अधिक स्पष्टता और निखार के साथ सामने आता है।

इस शोध-प्रबन्ध को प्रस्तुत रूप प्रदान करने में मेरा निर्देशन किया-हिन्दी के सुप्रसिद्ध समीक्षक निबन्धकार, चिन्तक, अन्वेषी, समालोचक एवं बहु आयामी प्रतिभा के धनी डॉ० अश्विनीकुमार शुक्ल (प्रवक्ता, हिन्दी विभाग, पं० जवाहर लाल नेहरू स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बाँदा) ने, जिनके गुरुत्व और वात्सल्य का स्मरण करते ही मुझे तुलसी की 'हठि-हठि अधम उधारे' उक्ति याद आ जाती है। अपनी गुरुमाता श्रीमती रेखा शुक्ला और बहन आकाँक्षा शुक्ला को प्रणाम करता हूँ जिनके स्नेह में मुझे सदैव अपनेपन की सुगन्ध मिलती रही है।

मुझे संस्कारित करके इस योग्य बनाने वाले मेरे पूज्य नाना स्व० श्री बद्रीप्रसाद पाण्डेय, माँ स्व० श्रीमती गायत्री अग्निहोत्री,पिता श्री राजकिशोर अग्निहोत्री और अनू दीदी के चरणों में मैं अपने श्रद्धासुमन अर्पित करता हूँ।

मैं अपने पितातुल्य विद्वान, साहित्यकार व चिकित्सक डॉ० भास्करदत्त मिश्र, इं० आदित्य स्वरूप पाण्डेय, डॉ० दिनेश कुमार मिश्र और श्री कैप्टन सूर्यप्रकाश के प्रति श्रद्धावनत हूँ जिन्होंने मुझे आत्मिक बल तथा वैचारिक दृढ़ता प्रदान की। बड़े भाई ब्रजेश और अनुज रमाकान्त ने कठिन परिस्थितियों में ढाढ़स बँधाते हुए मुझे संबल प्रदान किया है।अतएव, इनके प्रति मैं हार्दिक आभार व्यक्त करता हूँ।

मैं अपने गुरुओं डॉ० नंदलाल शुक्ल, डॉ० रामगोपाल गुप्त, डॉ० वेदप्रकाश द्विवेदी, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', डॉ० (श्रीमती) मनोरमा अग्रवाल, डॉ० ज्ञानप्रकाश तिवारी,

डॉ० देवलाल मौर्य, डॉ० (श्रीमती) सुमन सिंह और डॉ० गयाप्रसाद 'सनेही' के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ जिन्होंने समसामयिक निर्देशनों एवं अपने अमूल्य सुझावों से मेरी लेखनी को गतिमान बनाये रखा।

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु शोध-सामग्री उपलब्ध कराने वाले नागरी प्रचारक पुस्तकालय बाँदा, राजकीय जिला पुस्तकालय बाँदा, इण्डियन प्रेस लखनऊ, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद तथा बुन्देलखण्ड प्रकाशन बाँदा का मैं विशेष आभारी हूँ जिनके सहयोग से मुझे इस शोधकार्य को पूर्ण करने में सफलता मिली।

इस अवसर पर मैं अपने साहित्यिक मित्रों, राहुल, कृष्णदत्त, विवेक, प्रभात, कुंजबिहारी, कृष्णमुरारी, नीरज, अरविन्द और अन्य सभी सुहृदजनों का आभारी हूँ जिन्होंने निरन्तर मेरा उत्साहवर्द्धन किया और मेरे मानसिक श्रम का परिहरण किया।

मैं उन सभी महापुरूषों, कवियों और ग्रंथकारों का आभारी हूँ, जिनकी रचनाओं व विचारों को मैंनें इस शोध-प्रबन्ध का आधार बनाया है।

यद्यपि इस शोध-प्रबन्ध में मैंने सप्तकों के बाद की समग्र कविता को समेटने का प्रयास किया है तथापि त्रुटिवश रह गये कतिपय कवियों व उनकी रचनाओं के प्रति मैं हृदय से क्षमाप्रार्थी हूँ।

अंत में मैं इस शोध प्रबन्ध के मुद्रक एवं श्री प्रिन्टर्स के स्वामी श्री श्रीकांत शुक्ल एवं अफजाल अली के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ जिनके सहयोग तथा अथक परिश्रम से इस शोध को ग्रन्थाकार रूप प्रदान किया जा सका है।

उमाकान्त अग्निहोत्री

दिनांक : 10/07/2007

(उमाकान्त अग्निहोत्री)
शोधकर्त्ता

अनुक्रमणिका

प्रथम अध्याय

द्वितीय अध्याय

तृतीय अध्याय

प्रथम अध्याय

सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि

1

सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि

कविता क्या है?

विद्वानों ने गद्य एवं पद्य को पारिभाषित करते हुए यह स्पष्ट किया है कि गद्य मस्तिष्क की वस्तु है और कविता हृदय की। भावनात्मक एवम् सम्वेदनशील हृदय से कविता का प्रादुर्भाव होता है। वाल्मीकि के विषय में प्रसिद्ध है कि एक बार उन्होंने एक शिकारी द्वारा क्रौंच पक्षियों के जोड़े में से एक को मारे जाते हुए देखा तो उस घटना से क्षुब्ध होकर उनके मुख से शिकारी के प्रति शाप के रूप में प्रथम श्लोक प्रस्फुटित हुआ-

''मा निषाद् प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वती समाः।

यत् क्रौंच मिथुनात् एकं अवधिकाम मोहितम्।।''

इन्हीं कारुणिक पंक्तियों से कविता का प्रथमोन्मेष हुआ। कविवर सुमित्रानंदन पन्त का संवेदनशील हृदय निश्चय ही इसी प्रसंग को लक्ष्य करके इन मार्मिक पंक्तियों को लिखने के लिए बाध्य हुआ होगा-

''वियोगी होगा पहला कवि, आह से उपजा होगा गान।

उमड़कर आँखों से चुपचाप, बही होगी कविता अनजान।।''

कविता भावों को उदात्त बनाकर कवि एवं पाठक दोनों के हृदय में आनन्द की भावना जगाती है। मानव वृत्तियाँ इतनी चंचल होती हैं कि सदैव नियमों का उल्लंघन करना चाहती हैं फिर भी काव्य-विधा के द्वारा इन वृत्तियों का नियन्त्रण एवं संचालन सहज ही किया जा सकता है। प्रकृति के रम्य क्रोड में मानव ने जब आँखें खोलीं तो वह उसके अप्रतिम सौन्दर्य से अभिभूत हो बाल सूर्य की स्वर्ण- रश्मियों, मृगशावकों की क्रीड़ाओं, निर्झरों के मधुर संगीत, संधिकालीन दृश्यों तथा विधु की ज्योत्स्ना में स्नात निशा की छवि को अपनी वाणी में ढालने लगा। वाणी का यही साकार रूप आगे चलकर कविता या काव्य नाम से अभिहित हुआ। कविता कवि हृदय का स्वतः-स्फूर्त स्रोत है जो घनीभूत होता हुआ शान्त क्षणों में सहसा प्रस्फुटित हो जाता है।

संस्कृत वैयाकरणों ने 'कवि' शब्द के साथ 'ण्यत' प्रत्यय के योग से 'काव्य' शब्द की सिद्धि की है जिसका अर्थ है कवि कौशल या कविता। कुन्तक ने कवि-कर्म को 'काव्य' की संज्ञा दी है। प्राचीन आचार्यों द्वारा प्रदत्त काव्य की परिभाषाओं पर विचार करते समय सर्वप्रथम भरतमुनि का नाम आता है। भरतमुनि रसमयी सुखबोध्य, मृदुललित पदावली को काव्य कहते हैं। भरतमुनि ने निस्सन्देह

ऐसी पदावली को महत्त्व दिया है, जो रसमयी (भावपूर्ण) हो और लालित्य (कलापूर्ण) तथा मार्दव-युक्त हो। स्पष्ट है कि भरतमुनि काव्य में भाव पक्ष और कला पक्ष दोनों को समान स्थान देने के पक्षपाती थे। भामह शब्द और अर्थ के सामंजस्य से पूर्ण उक्ति को ही काव्य मानते हैं तो दण्डी अभिलषित अर्थ को व्यक्त करने वाली पदावली को काव्य मानते हैं। वामन ने गुणों तथा अलंकारों से भूषित शब्द और अर्थ के लिए काव्य शब्द का प्रयोग किया है। वस्तुतः वामन रीति सिद्धान्त के प्रतिपादक होने के कारण अलंकारों का पल्ला छोड़ने में पूर्णतः सफल नहीं हो पाये। इसीलिए,वे काव्य को अलंकार के कारण ही ग्राह्य बतलाते हैं। इनके बाद कुन्तक ने वक्रोक्ति को ही काव्य रचना का मूल बताया। कट्टर ध्वनिवादी आचार्य मम्मट ने वस्तुतः भामह, दण्डी और वामन के विचारों को संकलित भर कर दिया है। मम्मट ने दोषरहित तथा गुणयुक्त शब्द और अर्थ के सामंजस्य को काव्य बतलाया है उसमें अलंकार हों या नहीं। अलंकारवादियों द्वारा इस परिभाषा का प्रबल विरोध किया गया। जयदेव ने तो यहाँ तक कह दिया कि जो लोग अलंकाररहित शब्दार्थ को काव्य मानते हैं, वे अग्नि को भी उष्णतारहित क्यों नही मान लेते।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कविता पर विचार करते हुए भावपक्ष को प्रधानता दी है। उनके अनुसार "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञान दशा कहलाती है, उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रस दशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्दविधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञानयोग के समकक्ष कहते हैं।"[1]

पाश्चात्य विद्वानों में मिल्टन ने भरतमुनि के सुखबोध्य शब्द के लिए 'सिम्पल' शब्द दिया है तो कारलायल ने कविता में 'संगीतमयता' को प्रमुख तत्त्व बताते हुए उसे 'Musical Thought' कहा है। कॉलरिज, कीट्स, वर्ड्सवर्थ, मैथ्यू आर्नल्ड, हड़सन आदि विद्वानों ने प्रायः अभिव्यक्ति पक्ष को ही अधिक महत्त्व दिया है।

अतः हृदय की स्वतन्त्र भावभूमि से उत्पन्न होने वाली प्रवृत्तियाँ जब बुद्धि के विशिष्ट स्तरों से संयुक्त होती हैं तो कविता का उद्भव होता है। उस कविता से पाठक को भी तदनुभूति होनी चाहिए।

यह तो रही कविता की बात। सप्तकोत्तर कविता के बारे में कुछ कहने से पूर्व यह जरूरी हैं कि कविता के अतीत में झाँका जाए। कड़ियों को जोड़ने के लिए यह जरूरी हो जाता है कि आदिकाल से लेकर सप्तकों तक की (मोटे तौर पर 1980 ई० तक की) कविता का संक्षिप्त प्रवृत्त्यात्मक इतिहास

जाना जाए जिससे सप्तकों के बाद की कविता की पृष्ठभूमि को निर्धारित करने में सुगमता होगी।

(क) कविता का संक्षिप्त प्रवृत्त्यात्मक इतिहास

सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि को जानने के लिए हमें हिंदी काव्य के आदिकाल से लेकर सप्तकों तक का विहंगावलोकन करना होगा। विद्वानों ने 633 ई० के सरहपा (आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार 690 वि०सं० में) सिद्ध को हिन्दी भाषा का प्रथम कवि माना है, यद्यपि इनकी कोई प्रामाणिक पुस्तक प्राप्त नहीं हुई है। इस मत का समर्थन राहुल सांकृत्यायन, ग्रियर्सन, शिवसिंह 'सरोज', चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी और डॉ० रामकुमार वर्मा आदि कर चुके हैं। प्रारम्भिक ग्रंथ जैनाचार्य देवसेन द्वारा 933 ई० में रचित 'श्रावकाचार' माना गया है। इसके पूर्व की रचनाएँ सरहपा (सरहपाद) शैली की मुक्तक रचनाएँ ही हैं।

रामचन्द्र शुक्ल ने आदिकाल (वीरगाथाकाल) की कालावधि सम्वत् 1050 से 1375 ई० तक मानी है। आदिकालीन रासो ग्रन्थ ही हिन्दी कविता के प्रारम्भिक प्रामाणिक काल का प्रतिनिधित्व करते हैं। अपभ्रंश भाषा में रचित काव्य साहित्य पर प्रकाश डालें तो जैन आचार्य स्वयम्भू के 'पउमचरिउ', 'रट्ठणेमी चरिउ' तथा 'स्वयम्भूछन्द' प्रसिद्ध हैं। पुष्पदन्तकृत 'जसहरचरिउ', धनपालकृत 'भविसयत कहा', अब्दुल रहमानकृत 'सन्देश रासक' आदि ग्रन्थ धर्म-भावना एवं मार्मिक अभिव्यक्तियों के साथ-साथ विशिष्ट संयोजन से पूर्ण हैं। 'भविसयतकहा' ग्रन्थ में मानव हृदय की अत्यन्त मार्मिक अभिव्यक्ति हुई है। 'सन्देशरासक' ग्रन्थ में नायिका के वियोग वर्णन को प्रमुखता से दर्शाया गया है। 'श्रावकाचार' में ग्रहस्थाश्रम पर विस्तृत विचार व्यक्त किए गए हैं। रोड़ा कृत 'राउरवेल' में प्रेम के सात्त्विक रूप को दिखाया गया है। यह शिलांकित कृति मुम्बई के प्रिंस आफ वेल्स संग्रहालय में सुरक्षित है। इस कृति में नख-शिख सौन्दर्य चरम सीमा पर पहुँचा हुआ दिखाई पड़ता है। 'भरतेश्वर बाहुबली' के रचयिता शालिभद्र सूरि ने भरतेश्वर व बाहुबली राजाओं की वीरता का सुन्दर वर्णन किया है। वीरता के साथ ही मोक्ष एवं विरक्ति के भावों को भी कवि ने बड़े मनोयोग से प्रतिपादित किया है। सरहपा को चर्यापाद के रचयिता शबरपा ने अपना गुरु स्वीकार किया है। नाथों में साहित्य की गुरुवन्दना को महत्त्व दिया गया है। नाथों में साहित्य की रचना करने वाले कई नाथ हुए जिनमें गोरखनाथ के कुछ ग्रन्थ उपलब्ध हैं। ज्ञान महिमा, प्राण साधना, इन्द्रिय निग्रह, वैराग्य, साधना आदि इनकी रचनाओं के प्रमुख विषय हैं।

डॉ० नगेन्द्र के अनुसार 'खुमाण रासो', ढोला मारूरादहा', परमाल रासो, 'पृथ्वीराज रासो', 'जयचन्द प्रकाश', बीसलदेव रासो', 'जयमयंक जसचंद्रिका', 'बसन्त विलास' और खुसरो की पहेलियाँ

इत्यादि आरंभिक हिंदी कविता के प्रमुख परिचायक हैं। दलपति विजय द्वारा रचित 'खुमाण रासो में राजाओं की प्रशंसा, वीरता, नायिका भेद व ऋतुवर्णन प्रस्तुत किया गया हैं। 'ढोला मारूरादहा' ग्रन्थ में ढोला नामक राजकुमार और मारवणी नामक राजकुमारी के प्रेम से सम्बन्धित कथा नारी हृदय की मार्मिक व्यंजना के साथ-साथ विरह एवं शृंगार रस की अविरल धारा से ओत-प्रोत है। 'बसन्त विलास' नामक ग्रन्थ आदिकालीन ग्रंथों में अद्वितीय सरस साहित्यिक कृति है। इसके रचयिता का नाम अज्ञात है। 'आल्हखण्ड' के नाम से प्रसिद्ध लोक-गेय काव्य 'परमाल रासो' जगनिक द्वारा रचा गया। वीर रस की प्रधानता वाला यह काव्य मानवीय भावनाओं एवं संवेदनाओं की सतह को स्पर्श करता हुआ सा जान पड़ता है। 'बीसलदेव रासो' में भोज परमार की पुत्री राजमती और अजमेर के चौहान बीसलदेव तृतीय के विवाह, वियोग और पुनर्मिलन का मार्मिक वर्णन नरपत नाल्ह ने किया है। इसमें मिलन बिछोह को बारहमासा एवं ऋतुवर्णनों के अतिरिक्त नारी सतीत्व के वर्णनों से सरस एवं सजीव बना दिया गया है।

हिन्दी का प्रथम महाकाव्य कहलाने वाले वीर रस पूर्ण ग्रन्थ 'पृथ्वीराज रासो' के रचयिता चन्दवरदायी का जन्म 1168 ई० में माना जाता है। 'पृथ्वीराज रासो' में पृथ्वीराज चौहान की वीरता का जीवन्त एवं अद्‌भुत चित्र उकेरा गया है। शृंगार एवं वीर रस का समन्वय कवि ने मानवीय संवेदनाओं एवं भावनाओं की परख के साथ किया है। विद्यापति विरचित 'कीर्तिलता' नामक अवहट्‌ट ग्रन्थ में महराजा कीर्ति सिंह की दानशीलता, वीरता तथा राजनीति का सुन्दर वर्णन किया गया है। प्रेम विषयक काव्य 'कीर्तिपताका' के अतिरिक्त मैथिल भाषा में रचित 'विद्यापति पदावली (945 पद)' शृंगार, भक्ति, संगीतानुकूलता व कोमलकान्त पदावली से परिपूर्ण रचना है।

आदिकालीन काव्य की प्रमुख विशेषताओं में काव्य एवं कथानक रूढ़ियों के विकास के साथ ही नखशिखवर्णन, विरह के विभिन्न रूप, विरहिणी नायिका द्वारा प्रियतम के पास संदेश भेजना, शुक-शुकी संवाद,दैवी शक्तियों का सहयोगी भाव, स्वकीया और परकीया प्रेम, प्रकृति वर्णन, नारी की गरिमा, डिंगल-पिंगल भाषा का प्रयोग जैसी प्रवृत्तियाँ उल्लेखनीय हैं। इन काव्य ग्रंथों में वस्तु परिगणात्मक शैली को बखूबी अपनाया गया है।

आदिकालीन प्रवृत्तियों पर प्रकाश डालते हुए डॉ० बहादुर सिंह ने लिखा है- "आदिकालीन साहित्य में तलवारों की चमचमाहट, घोड़ों की हिनहिनाहट, नगाड़ों की गड़गड़ाहट तथा चारण भाटों की कलम की लिखावट के साथ-साथ वीर और शृंगार रस में सराबोर वीर आत्माएँ एवं वीरांगनायें अहिंसा, भक्ति एवं हठयोग के साए में शान्तिलाभ करते हुए अमीर खुसरो की पहेलियों का जवाब

खोजने में लगी हुई हैं।"[2]

यद्यपि अरबों के आक्रमण का सिलसिला आदिकाल से ही शुरू हो गया था, किंतु, उन्होंने प्रारम्भ में लूटमार तक ही अपने इस अभियान को सीमित रखा। आगे मुहम्मद गौरी ने 12वीं सदी के अन्त में अनेक आक्रमण किए और 1192 ई0 को तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज चौहान को हराकर भारतीय इतिहास के साथ-साथ हिन्दी कविता में भी युगीन परिवर्तन की नींव रखी। चौहदवीं विक्रमी शताब्दी की समाप्ति होते-होते सम्पूर्ण भारत में मुस्लिम आधिपत्य स्थापित हो चुका था जिससे हिन्दुओं का राजनीतिक, सामाजिक एवं धार्मिक ढांचा बुरी तरह चरमरा गया फिर भी हिन्दू कवियों ने आदिकालीन ईश्वरीय भावधारा से युक्त साहित्य में भक्ति की लहर दौड़ाए रखी। भक्तिकालीन काव्य ने काफी अंश तक भारतीय संस्कृति और रीतियों-नीतियों की रक्षा की। सवंत 1375 से संवत 1700 के मध्य लिखा गया साहित्य विभिन्न विचारधाराओं एवं मान्यताओं वाले भक्त कवियों तथा सन्तों के द्वारा रचा गया। भक्तिकाल की दो शाखाएँ निर्गुण और सगुण नाम से जानी गई। निर्गुण भक्ति की सन्त काव्य एवं प्रेमाख्यानक काव्य परम्पराएँ प्रचलित हुई जबकि सगुण भक्ति की रामकाव्य तथा कृष्णकाव्य की धाराएँ प्रचलित हुई। सगुण भक्ति में जहाँ भगवदनुग्रह का भरोसा होता है वहीं निर्गुण भक्ति में आत्मविश्वास का बल है।

सन्तकाव्यधारा के कवियों में कबीर व इनके गुरू रामानन्द का नाम सर्वप्रथम आता है। इनके अतिरिक्त अनन्तदास, पीपा, धन्ना, सैन, दादू, नानक, रैदास, सुन्दरदास और मलूकदास इत्यादि कवि उल्लेखनीय हैं। कबीर के यूँ तो अनेक ग्रन्थों का नाम आधुनिक विद्वानों ने दिया है, किन्तु उनकी संदिग्धता एवं प्रमाणिकता पर प्रश्नचिह्न लगने के कारण एक मात्र संग्रह 'बीजक' की वाणी को ही मान्यता मिल सकी है। धर्मदास की रचनाओं में आध्यात्मिकता के साथ-साथ विरह-भाव दिखाई देता है तो रैदास ने अपनी वाणी में सामाजिक रूढ़ियों, वाह्य आडम्बर आदि का खण्डन किया है। जम्भनाथ की रचनाओं में ओंकार जप, निरंजन उपासना, पंचपुरुष, अनन्य भक्ति अजपा-जप, सोऽहं जप, गगन मण्डल आदि का बारम्बार उल्लेख मिलता है। हरडे वाणी के रचनाकार दादूदयाल के विचारों एवं वाणी से सम्बन्धित 'ब्रह्म सम्प्रदाय' की स्थापना हुई।

प्रेमाख्यानक परम्परा या सूफी काव्य परम्परा का सूत्रपात सूफी कवियों द्वारा हुआ। सूफी मत का आरम्भ 1200 ई0 के आस-पास माना जाता है। भारत में आने वाले अधिकांश सूफी सन्त इस्लाम धर्म के प्रचारक थे। भारतीय सूफी सन्तों ने भी फारसी एवं इस्लाम का भारतीय साहित्य में आधिपत्य स्थापित करने का असफल, किन्तु, गुणकारी प्रयास किया। सूफी विचारधारा ने जहाँ एक ओर भारतीय

संस्कृति और सभ्यता पर अपना प्रभाव डाला, वहीं दूसरी ओर वेदान्त के प्रभाव को लेकर सूफी मत ने अपना विकास किया। प्रेमाख्यान का 'आख्यान' शब्द 'कथा' शब्द का पर्याय है। आख्यानों का स्वरूप स्वभावतः वर्णनात्मक हुआ करता है और उसमें आई हुई कथा को इतिवृत्तात्मक रूप दे दिया जाता है। इस परम्परा का प्रथम ग्रन्थ मुल्ला दाउद कृत चन्दायन है जिसका रचना काल सन् 1379 ई० है। इसमें वीर नरक एवं गोबरगढ़ के राजा सहदेव की पुत्री चन्दा की प्रेम कथा भारतीय अप्रभंश तथा फारसी मसनवी काव्य परम्पराओं में सुन्दर सामंजस्यपूर्ण ढंग से चित्रित व वर्णित की गई है।

कुतुबनकृत मृगावती, ईश्वरदासकृत 'सत्यवतीकथा, असाइतकृत 'हंसावली', लखमसेनकृत 'पदमावती कथा' आदि काव्यग्रन्थों में लगभग सभी रूढ़ियों के सफल प्रयोग के साथ-साथ फारसी एवं भारतीय काव्य परम्पराओं का सुन्दर सामंजस्य हुआ है।

प्रेमाख्यानक काव्य ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काव्य मलिक मुहम्मद जायसी द्वारा रचित 'पद्मावत' है,जिसका रचनाकाल सन् 1540 ई० है। इसमें सिंहलद्वीप की राजकुमारी 'पद्मावती' और चित्तौड़गढ़ के राजा रत्नसेन की प्रेमकथा का सुन्दर वर्णन है। काफी कठिनाइयों के पश्चात् रत्नसेन व पद्मावती का विवाह होता है साथ ही उसके साथियों को भी एक-एक पद्मनी मिलती है। पद्मावत में लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की व्यंजना को दर्शाया गया है। इसमें जायसी ने ज्योतिष, हठयोग तथा शतरंज आदि का अच्छा ज्ञान दिखलाया है। उपरोक्त काव्य ग्रन्थों के अतिरिक्त उस्मानकृत 'चित्रावली' मंझनकृत 'मधुमालती' तथा नन्ददासकृत 'रूपमंजरी' प्रेमाख्यानक काव्य हैं।

सगुण भक्तिधारा की रामभक्ति शाखा की शुरूआत वाल्मीकिकृत आदिकाव्य 'रामायण' से होती है। यही रामायण की रामभक्ति परम्परा दक्षिणी आलवार सन्तों से वैष्णव भक्तों के माध्यम से भक्तिकालीन कवियों तक रस ग्रहण करती हुई पहुँची। अवतारी राम को अपना उपास्य देव स्वीकार करके रामानुजाचार्य ने विशिष्टताद्वैत सिद्धान्त की स्थापना की। इनका कहना था कि भगवान की शरण में कैंकर्य भाव से प्रस्तुत होकर ही जीवात्मा अपना कल्याण कर सकती है। द्वैतवाद के प्रवर्तक मध्वाचार्य के सिद्धान्त के अनुसार भगवान विष्णु आठ गुणों से उपेत और सर्वोच्च तत्त्व हैं। मुक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन इन्होंने अमला भक्ति को बताया है। रूद्र सम्प्रदाय की स्थापना करने वाले श्री विष्णुस्वामी के अनुसार ईश्वर अपनी आह्लादिनी शक्ति के द्वारा अश्लिष्ट हैं। माया उन्ही नृसिंह के अधीन रहती है। भेदाभेद या द्वैताद्वैतवाद के प्रवर्तक श्री निम्बार्काचार्य के मत के अनुसार जीव अवस्था भेद से ब्रह्म के साथ भिन्न भी है,अभिन्न भी है। भक्ति ही मुक्ति का साधन है। शुद्धाद्वैतवाद के संस्थापक वल्लभाचार्य ब्रह्म को माया से सर्वथा अलिप्त अर्थात शुद्ध बताते हैं। भगवत्प्राप्ति का

साधन भक्ति तथा भगवान का अनुग्रह (पोषण) ही भक्ति का सम्बल है। इसीलिए उनके मत को 'पुष्टिमार्ग' कहा जाता है। वल्लभाचार्य द्वारा विरचित सैद्धांतिक ग्रन्थ हैं- अणुभाष्य, सुबोधिकी टीका, तत्त्वदीप निबन्ध, शृंगार रस मण्डन, विद्वान्मण्डन आदि। वल्लभ के पुत्र गोसाईं विट्ठलनाथ ने अपने पिता के चार शिष्यों-सूरदास, परमानन्ददास, कुम्भनदास और कृष्णदास तथा अपने चार शिष्यों- छीत स्वामी, गोविन्द स्वामी, नन्ददास और चतुर्भुजदास को मिलाकर 1365 ई0 में अष्टछाप की स्थापना की।

हिन्दी भक्तिकालीन राम भक्ति परम्परा का प्रारम्भ रामानन्द से माना जाता है। इन्होंने रामावत सम्प्रदाय की स्थापना कर भक्ति का द्वार सभी के लिए खोल दिया।

राम भक्ति काव्य के सर्वाधिक चर्चित एवं सशक्त कवि हुए हैं गोस्वामी तुलसीदास। तुलसीदास के पिता आत्मा राम दूबे व माता हुलसी थीं। इनकी पत्नी रत्नावली को इनका आध्यात्मिक गुरु बतलाया जाता है।

इनके द्वारा विरचित छोटे-बड़े बारह ग्रन्थों का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है। दोहावली, कवित्त रामायण, गीतावली, श्रीरामचरितमानस, रामाज्ञा प्रश्नावली और विनय पत्रिका बड़े ग्रन्थ हैं तथा रामलला नहछू, पार्वती मंगल, जानकी मंगल, बरवै रामायण, वैराग्य संदीपनी और कृष्ण गीतावली छोटे ग्रन्थ हैं। 'शिव सिंह सरोज' में दस ग्रन्थों के और भी नाम गिनाए गए हैं- राम सतसई, संकटमोचन, हनुमद् बाहुक, रामशलाका, छन्दावली, छप्पय रामायण, रोला रामायण, झूलना रामायण और कुण्डलिया रामायण।

तुलसी की उपरोक्त रचनाएँ सीधी, सरल, सहज-साध्य एवं भाव-वैविध्य से परिपूर्ण हैं। एक तरफ जहाँ उन्होंने जन-मानस की विश्वासमयी रागात्मक वृत्तियों को नाथपन्थियों के दुष्प्रभाव से बचाकर रामभक्ति के माध्यम से पुनः उनका पल्लवन एवं पोषण किया वहीं उन्होंने अपने लोक संग्रह की भावना से अभिप्रेरित काव्य ग्रन्थों में राजनीतिक, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवनादर्शों का अद्भुत समन्वय करके विघटित हिन्दू समाज को केन्द्रित करने का अद्वितीय कार्य भी किया। श्रीरामचरितमानस में राम और शिव दोनों को एक दूसरे का भक्त बताकर शैव तथा वैष्णव सम्प्रदायों को एक समान धरातल पर लाने का स्तुत्य कार्य किया। श्रीरामचरितमानस प्रबन्ध काव्य की समस्त रीतियों का अनुपालक और हिन्दी की ऐसी व्यापक व प्रभावपूर्ण रचना है, जो आज भी हिन्दी तथा इतर भाषाओं में बहुत दूर तक मानवीय संवेदनाओं को ढोने की सामर्थ्य रखती है। उन्होंने विनय पत्रिका, कवितावली, दोहावली, आदि में ऐसी कविता भी रची जो भक्ति की आत्मपरक अभिव्यक्ति

है तथा उनकी कवित्व शक्ति की उत्कृष्टता की परिचायक है।

तुलसीदास के काव्य लेखन प्रारम्भ करते समय उनके समक्ष आदिकाल के वीरगाथात्मक ग्रन्थ और प्रेम काव्य तथा सन्त काव्य के मुस्लिम प्रभाव से प्रभावित धार्मिक ग्रन्थ थे। चारणकाल में काव्य की अस्थिर परिभाषा के कारण उसमें साहित्यिक सौन्दर्य कम था। प्रेमकाव्य की दोहा-चौपाई पद्धति में शैली का सौन्दर्य अधिक था तो भावों का कम। सन्त साहित्य में तो एकमात्र एकेश्वरवाद और गुरु वन्दना प्रमुख रही। उसमें साहित्य निर्माण की कम, धर्म प्रचार की भावना अधिक थी। कृष्ण काव्य के आदर्श तब अपूर्ण थे। इस तरह से तुलसी के समय में साहित्य साधारण कोटि का था। उन्होंने मात्र अपनी प्रतिभा से ही उसे अनुपमेय बना दिया। ब्रह्म के सत्य रूप की अभिव्यक्ति और प्रवृत्ति को लेकर गोस्वामी जी की भक्ति पद्धति चली है। उनका मार्ग ब्रह्म का सत्स्वरूप पकड़कर, धर्म की नाना भूमियों पर से होता हुआ जाता है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनके समन्वय भाव को इस प्रकार से समझाया है- ''भारत वर्ष का लोकनायक वही हो सकता है जो समन्वय करने का अपार धैर्य लेकर आया हो। भारतीय जनता में नाना प्रकार की परस्पर विरोधनी संस्कृतियाँ, साधनाएँ जातियाँ, आचार-विचार और पद्धतियाँ प्रचलित हैं। तुलसीदास स्वयं नाना प्रकार के सामाजिक स्तरों में रह चुके थे। .... उनका सारा काव्य समन्वय की विराट् चेष्टा है। उसमें केवल लोक और शास्त्र का ही समन्वय नहीं है- गार्हस्थ और वैराग्य का, भक्ति और ज्ञान का, भाषा और संस्कृति का, निर्गुण और सगुण का, पुराण और काव्य का, भावावेग और अनासक्त चिन्तन का समन्वय 'श्रीरामचरितमानस' के आदि से अन्त तक दो छोरों पर जाने वाली पराकोटियों को मिलाने का प्रयत्न है।''[3]

भक्तिकाल के अन्य रामभक्त कवियों में नाभादास, प्राणचन्द चौहान, लालदास, माधवदास, कपूरचन्द त्रिखा, हृदयराम और नरहरि बारहट का उल्लेख मिलता है। नाभादासकृत 'भक्तमाल' में भक्तों के परिचय में जिस समास शैली का परिचय दिया है, वह उनके गाम्भीर्य की ही काव्य परिणति है। प्राणचन्दकृत 'रामायण नाटक' दोहा-चौपाई शैली, वर्णनात्मकता एवं संवादात्मक शैलियों का भण्डार है। माधवदास चारण के 'रामरासो' ग्रन्थ की विशेषता है- रामकथा के सम्पूर्ण विस्तार में न जाकर कवि द्वारा मुख्य घटनाओं, जीवन-प्रसंगों और चारित्रिक विशेषताओं का संक्षिप्त निरूपण।

मध्यकालीन सगुण भक्ति के आराध्य देवताओं में भगवान श्रीकृष्ण का स्थान सर्वोपरि है। कृष्ण भारतीय पुराण, इतिहास और कविता में सर्वाधिक वर्णित भी हुए हैं। सगुणोपासक कृष्णभक्त कवियों के अनुसार कृष्ण वैदिककालीन देवता हैं जिनका विकास महाभारत काल में सर्वाधिक हुआ है। महाभारत के अतिरिक्त 'भागवत पुराण' 'हरिवंश पुराण' 'विष्णु पुराण' पद्म पुराण और ब्रह्मवैवर्त्त

पुराणों में श्रीकृष्ण को योगेश्वर, सच्चिदानन्द, अच्युत, अविनाशी, स्वजातीय-विजातीय-स्वगत-भेद-शून्य आदि कहा गया है। भक्तों के आराध्य होने के साथ-साथ वे भक्तवत्सल भी हैं। हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों में विद्यापति का विशिष्ट स्थान है। उनकी अवहट्ट की रचनाएँ कीर्तिलता और कीर्तिपताका थीं तथा मैथिली में 'पदावली' की रचना की जिसमें बंगला प्रभाव विद्यमान है। पदावली में मुख्य रूप से भक्ति और शृंगार का समन्वय मिलता है। कृष्णभक्ति शाखा के प्रवर्त्तक वल्लभाचार्य के पुत्र विट्ठलनाथ द्वारा स्थापित अष्टछाप के आठ भक्त सामान्य मानव से उच्च्व स्थान रखते हैं और इनके ग्रन्थों का लीला की दृष्टि से बड़ा महत्त्व है।

हिन्दी साहित्य में कृष्ण भक्ति की अबाध धारा को प्रवाहित करने वाले भक्त कवि सूरदास का जन्म कुछ विद्वान दिल्ली के निकट ब्रज की ओर सीधी गाँव में मानते हैं तो कुछ सोरों (एटा) में। इनका जन्मकाल सन् 1478 ई0 बतलाया जाता है। बल्लभाचार्य के परमप्रिय शिष्य सूरदास के काव्यों का मुख्य विषय कृष्ण भक्ति है। उनके सूरसागर,सूरसारावली तथा साहित्य लहरी तीन ग्रन्थ प्रामाणिक माने जाते हैं। 'सूरसागर' की रचना भागवत की पद्धति में द्वादश स्कन्धों में हुई है। जिसमें राधाकृष्ण की अनेक लीलाओं का वर्णन अन्तरात्मा की गहन अनुभूति के साथ किया गया है। श्री कृष्ण के शैशवावस्था एवं किशोरावस्था के लोकरंजक रूपों का चित्रण सूर ने बड़ी ही वाग्विदधतापूर्ण पद्धति में किया है। बाल भाव और वात्सल्य से सने मातृहृदय के प्रेम भावों का सशक्त चित्रण करते हुए सूरदास अपनी गुरुता को प्रमाणित करते हैं। प्रवासजनित वियोग के संदर्भ में भ्रमरगीत-प्रसंग का गोपी उद्धव संवाद तो सूर की काव्य कला का उत्कृष्ट निदर्शन है। इस तरह से सूरदास के काव्यों में प्रकृति सौन्दर्य, जीवन के विविध पक्षों, बाल चरित्र के विविध प्रसंगों, क्रीड़ाओं, गोचारण, रास आदि का वर्णन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। सूर की ब्रजभाषा में चित्रात्मकता, आलंकारिता भावनात्मकता, सजीवता, प्रतीकात्मकता तथा बिम्बात्मकता पूर्ण रूप से विद्यमान हैं। वर्ण-मैत्री और संगीतात्मकता सूर की ब्रजभाषा के अलंकरण हैं। भ्रमरगीत में गोपियों की उक्तियाँ केवल ऐन्द्रिक सुख को ही व्यक्त नहीं करतीं, वरन् वे उनके हृदय की पवित्रता, निश्छलता, अनन्यता और उदारता का भी परिचय देती हैं। सूर का काव्य माधुर्यपूर्ण होने पर भी तन्मयता का प्राप्तव्य स्रोत था, इसमें कोई संदेह नहीं।

सूर आदि अष्टछाप के कवियों के अतिरिक्त हितहरिवंश, गदाधरभट्ट, हरिदास, हरिराम व्यास, ध्रुवदास आदि विविध कृष्णोपासक सम्प्रदायों के अनुयायी एवं मीरा, नरोत्तम दास और रसखान आदि सम्प्रदायों की परिधि के बाहर के कवियों ने इसी युग में कृष्ण-काव्य की श्री वृद्धि की। इन कृष्ण प्रेमियों ने वात्सल्य, शृंगार और भक्ति का ऐसा सरस वर्णन किया है कि आज भी इनकी कविता बासी

नहीं हुई और इन्हीं के प्रभाव से आगामी काव्य-युग में ब्रजभाषा ने देश भर में काव्यभाषा का स्थान ग्रहण कर लिया। इन्हीं से प्रेरित हो रहीम, गंग, नरहरि बंदीजन, केशवदास, लालचन्द आदि तत्कालीन राज्याश्रय प्राप्त कवियों ने ब्रजभाषा ग्रन्थों का प्रणयन कर हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाया।

हिन्दी काव्य साहित्य का उत्तर मध्य काल (सन् 1643 से सन् 1843 ई० तक) जिसे शृंगारकाल, अलंकृतकाल, रीतिकाल इत्यादि नामों से जाना जाता है, जिसमें सामान्यतः शृंगारपरक लक्षण-ग्रन्थों की रचना हुई। विद्वानों ने इस काल को पृथक-पृथक नाम दिए, किन्तु, अंततः आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का 'रीतिकाल' नाम ही सर्वाधिक प्रचलित हुआ क्योंकि प्रायः प्रत्येक कवि द्वारा इसमें शृंगार को न्यूनाधिक रूप से ग्रहण किया गया जो कि एक प्रकार की विशेष 'रीति' (पद्धति) ही है। इस काल में मुगलों का वैभवपूर्ण शासन, उसका चरमोत्कर्ष, उत्तरोत्तर ह्रास और पतन; इन सभी राजनीतिक परिस्थितियों का कविता में भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। इस युग में देश की सांस्कृतिक एवं धार्मिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। मन्दिरों में भी ऐश्वर्य और विलास की लीला होने लगी थी। शिक्षालयों में धार्मिक कट्टरता एवं काम-कला की चर्चाएँ आम बात हो गयी थीं। इन सभी प्रवृत्तियों का तत्कालीन कविता पर भी पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जहाँ भक्तिकालीन कविता में राधा-कृष्ण के मर्यादित प्रेम और सौन्दर्य का सहज निरूपण हुआ वहीं इस काल में राधा-कृष्ण शृंगारिक कविता के आलम्बन मात्र हो गये। उन्हें विभिन्न नायक-नायिकाओं के रूप में चित्रित किया जाने लगा। भक्ति काव्यों में कविता गौण तथा भक्तिप्रधान थी जबकि रीतिकाल में कविता प्रधान तथा भक्ति गौण हो गयी।

रीति कालीन कविता एवं कवियों को तीन वर्गों में विभाजित किया जा सकता है-

(क) रीतिबद्ध कविता (ख) रीतिसिद्ध कविता और (ग) रीतिमुक्त कविता।

(क) रीतिबद्ध काव्य एवं कवि -

रीतिकालीन परिपाटी के लक्षण ग्रन्थकार केशवदास, चिन्तामणि त्रिपाठी, भूषण, मतिराम, जसवन्त सिंह, भिखारीदास, पद्माकर, देव, बेनी, प्रवीन आदि हैं।

(ख) रीतिसिद्ध काव्य एवं कवि -

लाक्षणिक न होकर प्रसंगानुकूल काव्य के विविध अंगों को प्रस्तुत करने वाली कविता रीतिसिद्ध कहलाई। इसके कवि हैं - मतिराम, पद्माकर, रसलीन, बेनी, प्रवीन एवं बिहारी।

(ग) रीतिमुक्त काव्य एवं कवि -

रीति परम्परा के साहित्यिक बन्धनों एवं रूढ़ियों से मुक्त स्वच्छन्द कविता रीतिमुक्त कविता

कहलाती है। इस धारा के कवि घनानन्द, आलम, बोधा, रसखान, ठाकुर, द्विजदेव आदि हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रीतिकालीन कविता का प्रवर्तक चिन्तामणि त्रिपाठी को मानते हैं। चिन्तामणि ने 'कविकुल कल्पतरु' की रचना की, जिसमें भावों का सामंजस्य बड़ा सुन्दर हुआ है। ये भूषण, मतिराम और जटाशंकर के बड़े भाई थे। केशवदास की कविप्रिया ओर रसिकप्रिया उनके रस और अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थ हैं। केशव की कविता बड़ी दुर्बोध है। इनकी कविता में चमत्कार की इतिश्री भी है और उच्चकोटि का साहित्य भी। कठिनता और दुरूहता केशव की कविता को सबसे पृथक करती हैं। रामचन्द्रिका महाकाव्य रामकाव्य परम्परा को आगे बढ़ाती हुई छन्दयुक्त वाग्वैदग्ध्यपूर्ण एवं नीतियुक्त रचना है। बिहारी की सतसई मुक्तक शैली में 713 दोहों से युक्त रचना रीतिकालीन कविता की अद्वितीय धरोहर है। इसमें अलंकारों एवं रस-व्यंजना के साथ-साथ अर्थ की रमणीयता पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध है। चिन्तामणि एवं मतिराम के भाई भूषण की शिवराजभूषण, शिवा बावनी और छत्रसाल दशक उपलब्ध हैं। ये वीररसपरक हिन्दू आदर्शवादी ब्रजकाव्य हैं। राष्ट्रप्रेम और राष्ट्रीयता का स्रोत यदि रीतिकालीन कविता में कहीं दिखाई देता है तो वह कवि भूषण की ही कविता में है। मतिराम के 'रसराज' काव्य में लौकिकता और सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के साथ-साथ फड़कते भाव भी प्राप्त होते हैं।

रीतिबद्ध कविता में कलापक्ष को ही विशेष महत्त्व मिला है जबकि रीतिसिद्ध कविता में भाव पक्ष और कलापक्ष दोनों समान रूप से अपने पूर्ण वैभव के साथ विद्यमान हैं। रीतिमुक्त कविता में जैसी प्रेम की विषमता मिलती है वैसी रीतिबद्ध कविता में नहीं। घनानन्द और आलम की कविताएँ भावनात्मकता को पर्त्त-दर-पर्त्त उघाड़कर पाठक को अनोखे भाव लोक में पहुँचाने की क्षमता रखती हैं। रीतिकालीन कविता में नायक-नायिका भेद, शृंगार-रस में संयोग-वियोग पक्षों का बढ़-चढ़कर वर्णन हुआ है। इस काल की कविता में सर्वांग विवेचना, प्रकृति के अन्तर्गत सामान्य रूप से काव्य-लक्षण, काव्य हेतु, काव्य-प्रयोजन, काव्य भेद, शब्द शक्ति, काव्य की आत्मा, काव्यगुण, काव्य दोष, काव्यरीति, अलंकार, छन्द आदि का निरूपण किया गया है।

रस को ध्वनि के प्रभुत्व से मुक्ति प्रदान करने वाली रीतिकालीन कविता में भले ही सूर और तुलसी का-सा वैविध्य और पन्त का सा-सूक्ष्म संयोजन न मिला हो, परन्तु प्रचुर प्रतीकों एवं उपमानों के रंग-बिरंगे पुष्प समूहों से अलंकृत यह कविता आज भी शृंगार और माधुर्य के अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत करती है।

19वीं शताब्दी अपने आप में मानवीय इतिहास से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण शताब्दी रही है। इस

युग में धर्म और विज्ञान की वह भिड़न्त हुई जिससे शताब्दियों से धार्मिकता का आँचल ओढ़ सोया संसार जाग उठा। भारतीय जनमानस में एक प्रकार की नवीन चेतना का जन्म 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के बाद हुआ। इन परिस्थितियों ने भारतीय साहित्य को भी अपने प्रभाव में लिया। यह नया युग प्रारम्भ करने का श्रेय भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (जन्म सन् 1850, मृत्यु 1884 ई०) को जाता है, जिनके कृतित्व, व्यक्तित्व एवं नेतृत्व के कारण सन् 1868 ई० में उन्हीं के द्वारा सम्पादित मासिक पत्रिका 'कविवचन सुधा' के आधार पर भारतेन्दु युग का सूत्रपात हुआ। यह युग 'सरस्वती' पत्रिका के प्रकाशन वर्ष 1900 ई० तक अपने अस्तित्व को बनाए रहा। इस काल में साहित्यिक चेतना मध्यकालीन रचना प्रवृत्तियों तक ही सीमित न रहकर नवीन दिशाओं की ओर उन्मुख होने लगी। भारतेन्दुयुगीन कवियों का काव्य-फलक अत्यन्त विस्तृत है। इस काल की कविताओं में राष्ट्रीयता, सामाजिक चेतना, भक्ति भावना, शृंगारिकता, प्रकृति चित्रण, हास्य-व्यंग्य, रीति निरूपण, समस्यापूर्ति, नवीनता आदि प्रवृत्तियाँ प्रमुख रूप से पाई जाती हैं।

भारतेन्दु प्राचीन और नवीन के संधिस्थल हैं। उनके समय से ही हिन्दी कविता अचानक एक ऐसा गहरा मोड़ लेती है कि शृंगार-काव्य को छोड़कर अन्य विषयों से सम्बन्धित कविता प्राचीन हिन्दी कविता से रूप और रंग दोनों में सर्वथा बदली हुई दिखायी पड़ती है। भारतेन्दु के काव्य में भारतीय समाज, संस्कृति एवं राजनीति का चित्रण सुन्दर ढंग से हुआ है। इन्होंने राष्ट्रभक्तिपूर्ण रचनाओं के साथ-साथ अंग्रेजी सत्ता का भी गुणगान किया। यथा-

परममोक्ष फल राजपद, परसत जीवन मांहि।
वृष्न देवता राजसुत पद परसहु चित मांहि।।[4]

आधुनिक युग में जन-जागरण की विश्वव्यापी चेतना के प्रभाव से राष्ट्र-भावना युक्त मानव-प्रेम हिन्दी साहित्य में सर्वप्रथम भारतेन्दु काल में देखने को मिला। इनके प्रेम व शृंगार के वर्णनों में अत्यधिक संयत भाव दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु मण्डल के प्रमुख कवि हैं–जगमोहन सिंह, राधाचरण गोस्वामी, राधाकृष्ण दास, प्रतापनारायण मिश्र, मन्नालाल द्विज, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', लक्ष्मी प्रसाद आदि। इस युग के काव्य शिल्प पर बदलते हुए परिवेश का भी प्रभाव पड़ा। फलस्वरूप इस युग की कविताओं में काव्य रूप, भाषिक चेतना, अलंकरण प्रवृत्ति और छन्द विधान की दृष्टि से प्रयोगधर्मिता को स्पष्टतः लक्षित किया जा सकता है।

भारतेन्दु युग के पश्चात भारतीय राजनीति एवं समाज में जिस गति से परिवर्तन हुआ, उतनी ही गति से साहित्य भी करवट बदलने लगा। अब साहित्यिक युग में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी

ने काव्य धारा को 'सरस्वती' पत्रिका का सम्पादन करके नया रूप दिया और तेजी से बदलती परिस्थितियों को साहित्य का आधार बनाया। हिन्दी की राष्ट्रीय कविता, जो भारतेन्दु युग में अंकुरित व पल्लवित हुई थी, अब पूर्ण विकसित होकर लहलहा उठी। भारतेन्दु युग से आगे द्विवेदी युगीन कविता में मानवीय दृष्टिकोण का विकास हुआ। भक्तिकाल में निर्गुण ब्रह्म या उसके सगुण रूप राम, कृष्ण तथा रीतिकाल में रसिक या विलासी राजा तथा नायक-नायिका ही काव्य के विषय थे, परन्तु अब के काव्य विषय जन-सामान्य से लिये जाने लगे। श्रीधर पाठक, रामनरेश त्रिपाठी, मैथिलीशरण गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध', मुकुटधार पाण्डेय इत्यादि कवियों ने द्विवेदी युग में खड़ी बोली को आधार बनाकर सशक्त काव्य रचना का विस्तृत धरातल निर्मित किया।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म 9 मई सन् 1864 ई० में तथा मृत्यु 1938 ई० में हुई। स्वभाव से ही व्यवस्थाप्रिय द्विवेदी जी की कविता में देशभक्ति, समाज सुधार तथा उपदेशात्मकता का चित्रण सुन्दर ढंग से हुआ है। नवीनता के पक्षधर श्रीधर पाठक की रचनाओं में ब्रज तथा खड़ी बोली का मिश्रित प्रयोग हुआ है। प्रकृति सुषमा का एक उदाहरण दृष्टव्य है-

प्रकृति यहाँ एकान्त बैठि निज रूप सँवारति।
पल पल पलटति भेस छनिक छबि छिन-छिन धारति।
विमल अम्बुसर मुकरन महँ मुख बिम्ब निहारति।
अपनी छवि पै मोहि आप ही तन मन वारति।[5]

मैथिलीशरण गुप्त द्वारा रचित 'साकेत' एवं 'भारत-भारती' तथा हरिऔध द्वारा रचित 'प्रियप्रवास' खड़ी बोली के अत्यधिक लोकप्रिय महाकाव्यों की रचना ने उर्मिला, राधा, कृष्ण आदि के आदर्श चरित्रों के माध्यम से तथा देश के गौरव का गान प्रस्तुत करके हिन्दी कविता के पक्ष को अधिक उज्ज्वल बनाया। भारत-भारती में गुप्त जी ने देश की स्थिति-अतीत और वर्तमान संस्कृति की प्रगाढ़ लालिमा का पूर्ण भाव-प्रवणता से वर्णन किया है। यथा -

भूलोक का गौरव, प्रकृति का पुण्य लीला-स्थल कहाँ?
फैला मनोहर गिरि हिमालय और गंगाजल जहाँ।
सम्पूर्ण देशों से अधिक किस देश का उत्कर्ष है?
उसका कि जो ऋषि भूमि है, वह कौन? भारत वर्ष है।[6]

द्विवेदी युगीन कविता में काव्य के विभिन्न रूपों के अतिरिक्त नारी का आदर्श रूप, स्वदेश प्रेम, कुरीति निवारण, मानवतावाद, बुद्धिवाद, राष्ट्रीयता, नव-निर्माण एवं आस्था का समावेश समान

रूप से हुआ है। इस युग की कविता में राजनैतिक शोषण, धर्माडम्बर, लकीर की फकीरी, विदेशीयता का अंधानुकरण, फैशन-परस्ती पर तीखे व्यंग्य भी किए गए हैं। खड़ी बोली इस युग में अपने पूर्ण वैभव शिखर पर देदीप्यमान हो उठी।

हिन्दी साहित्य में सन् 1914 से गुप्त जी एवं मुकुटधर पाण्डेय की कविताओं में स्वच्छन्द प्रकृति का समावेश हो चुका था। 1916 ई० में निराला की 'जुही की कली' तथा सन् 1918 में 'प्रसाद द्वारा रचित झरना व पन्त की नवीन शैली में रची गई कविताएँ छायावादी काव्यधारा का प्रारम्भ करने वाली एवं उसके रूप को सँवारने वाली मानी जाती हैं। सन् 1935 में छायावादी काव्य चेतना को मूर्तिवान करने वाली कृति 'कामायनी' का प्रकाशन हुआ। सन् 1936 में रचित पन्त के 'युगान्त' और सन् 1938 में रचित निराला की अनामिका में अनेक ऐसी रचनाएँ संकलित हैं जो छायावादी संसार से आगे बढ़कर एक नये ठोस यथार्थ के निकट आने का प्रयास कर रही थीं। इसलिए सन् 1918 से सन् 1938 के बीच के काव्य को हिन्दी साहित्य में छायावाद के नाम से जाना जाता है।

इस युग के प्रारम्भ में भारत की वृद्ध गरदन पर अंग्रेजी साम्राज्यवाद का जूआ रखा हुआ था। सन् 1919 में जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड, 1920 में असहयोग आन्दोलन, 1922 का चौरी-चौरा काण्ड, 1928 का बारदोली सत्याग्रह, 1930 का नमक कानून, 1931 में राजगुरु, सुखदेव व भगत सिंह को फाँसी आदि घटनाओं से संघर्ष कर रहा समाज एवं कवि सरस बसन्त के गीत कैसे गा सकता था। इन सब परिस्थितियों ने उसकी वेगवान चेतना को मथ डाला। द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता, उपदेशात्मकता एवं भाषायी नियमबद्धता ने इस कवियों को बेचैन कर दिया था। ऊपर से पश्चिम-दिशा से आने वाली स्वच्छन्द हवा भी इन्हें बेकल किए बैठी थी।

पं० रामचन्द्र शुक्ल ने छायावादी कविता को दो वर्गों में विभक्त किया है। पहले में वह महादेवी की कविताओं को रखते हैं तो दूसरे में पंत, प्रसाद, निराला आदि की प्रतीक पद्धति या चित्रभाषा शैलीपूर्ण कविताओं को। छायावाद के प्रवर्त्तक कवि जयशंकर प्रसाद (सन् 1889-1937) की प्रथम कविता सन् 1906 की जुलाई माह में 17 वर्ष की आयु में भारतेन्दु पत्रिका में प्रकाशित हुई थी। इसी प्रकार इन्दु में भी इनकी कविताएँ छपती रहीं। 'कानन कुसुम' (1929 ई०) इनका खड़ी बोली की कविताओं का प्रथम संग्रह है। अन्य काव्य हैं- लहर, आँसू, कामायनी (महाकाव्य), झरना, चित्राधार, प्रेमपथिक, शोकोच्छ्वास, करुणालय आदि। कामायनी प्रसाद का अन्तिम महाकाव्य है। इस महाकाव्य में बुद्धिवाद के विरोध में हृदय तत्त्व की प्रतिष्ठा करते हुए कवि ने शैव दर्शन के आनन्दवाद को प्राप्तव्य बनाया है। इनके काव्यों में प्रकृतिप्रेम, अतीत गौरव तथा ईश्वरोन्मुख प्रेम के साथ-साथ प्रेम

पीड़ा का भी अपूर्व चित्रण हुआ है। मनु को इन्होंने समरसता के आनन्द की प्राप्ति में तत्पर दिखाया है, तो आनन्द सर्ग में रामराज्य की परिकल्पना भी की है –

शापित न यहाँ है कोई

तापित पापी न यहाँ है

जीवन वसुधा समतल है,

समरस है जो कि जहाँ है।[7]

छायावादी कविता परम्परा को आगे बढ़ाने वाले दूसरे कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला (सन् 1897–1962 ई०) है। निराला अग्निपथ पर चलने वाले अपराजेय कलमधर सेनानी थे। अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, राम की शक्ति पूजा, बादलराग उनकी प्रमुख काव्य रचनाएँ है। भाषा और संवेदना दोनों स्तरों पर ही निराला की कविता प्रौढ़ कही जा सकती है। इनकी कविता में प्रकृति के कोमल एवं कठोर दोनों रूप जीवन की कटु अनुभूति की भाँति घुले हुए-से जान पड़ते हैं। इस कविता में प्रकृति का मानवीकरण द्रष्टव्य है –

मेघमय आसमान से उतर रही है, वह संध्या सुन्दरी परी-सी।

धीरे-धीरे-धीरे/तिमिरांचल में नहीं कहीं चंचलता का आभास

मधुर-मधुर हैं दोनों उसके अधर

किन्तु जरा गम्भीर नहीं है/उसके हास बिलास

डूबा रवि अस्तांचल/संध्या के दृग छल-छल।[8]

प्रकृति के सुकुमार चितेरे कवि पन्त का जन्म सन् 1900 में कुमायूँ के कौसानी गाँव मे हुआ था। कोमल संवेदनाओं के अन्तःकरण में प्रकृति की अज्ञात सत्ता का वृहद चित्र संजोने वाले पन्त ने वृहत्तर स्वच्छन्द भाव धारा को अधिक समृद्ध बनाते हुए मुक्त छन्दों का भी समावेश अपनी कविताओं में किया है। इनकी काव्य कृतियों में उच्छवास, ग्रन्थि, वीणा, पल्लव, गुंजन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्ण किरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा, अमिता, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद आदि प्रमुख हैं। इनमें एक प्रकार की नवीन विकासशीलता का संकेत मिलता है।

रहस्यचेतना एवं दुःखद वेदना की कवयित्री महादेवी वर्मा का जन्म 1907 ई० में फरुखाबाद में तथा मृत्यु 1987 ई० में हुई। इनके प्रकाशित काव्य ग्रन्थों में निहार, रश्मि, नीरजा, सांध्यगीत, दीपशिखा आदि प्रमुख हैं। प्रथम चार ग्रन्थों का संकलन 'यामा' नाम से 1940 ई० में प्रकाशित हुआ। विरह की साधना में विराट सत्ता एवं आत्मसत्ता की अद्वैतात्मक स्थिति पर कवयित्री का पूर्ण विश्वास

है। महादेवी का काव्य गीतात्मक दृष्टि से भी समृद्ध है। लाक्षणिकता, माधुर्यभाव एवं मार्मिकता से परिपूर्ण 'वर्षा सुन्दरी के प्रति कविता', इनकी विशद काव्यदृष्टि की परिचायक है।

डॉ० रामकुमार वर्मा (सन् 1905 -1990) मूलतः सौन्दर्योपासक कवि हैं। अज्ञात प्रियतम के संकेत, विरहानुभूति, लौकिक प्रेमानुभूति की अभिव्यक्ति आपके काव्य का आधार रही है।

छायावादी कविता में उदात्त एवं विस्तृत अहंभाव 'मै' शैली में व्यक्त हुआ है। सामाजिकता के स्थान पर आत्माभिव्यक्ति (वैयक्तिकता) आ गई तो मानवतावाद, पुरातनता का विरोध, विरहाधिक्य, नारी का श्रद्धामय रूप, काल्पनिकता और भावुकता आदि प्रवृत्तियाँ भी छायावादी कविता का मूल विषय रहीं। इस युग की कविताओं का प्राण प्रेम एवं सौंदर्य भावना है। खड़ी बोली कविता का कलेवर छायावाद में उतरकर कोमलता के साँचे में ढल गया।

छायावादी कविता में उच्च्य भावुकता विद्यमान है। लाक्षणिक भाषा के माध्यम से सूक्ष्म अभिव्यक्ति हुई है। इस युग के अन्त में छन्द के बन्धनों को तोड़कर मुक्त छन्दों में भी रचनाएँ होने लगीं।

प्रगतिवादी कविता का सैद्धांतिक पक्ष मार्क्सवादी दर्शन और वैज्ञानिक धारणाओं से प्रभावित है। यह धारा भाग्य, ईश्वर, नियति आदि पर जरा भी विश्वास नहीं करती। इस काल की कविताओं में यथार्थ का आग्रह, रूमानियत और कोमलता आदि भाव विद्यमान हैं। संघर्ष की प्रेरणा प्रदान करने के साथ ही मानवीय आदर्शों की स्थापना का प्रयास भी इस धारा की कविता समाज सापेक्ष होकर करती है। प्रगतिवादी कविता ने कलावादी अथवा रूपवादी विचारधारा के स्थान पर वस्तुगत एवं यथार्थ धारा को प्रतिष्ठित किया। इस प्रकार वैचारिक क्रान्ति का स्वर प्रगतिवाद में बिल्कुल नए रूप में सामने आया।

प्रयोगवादी कवि की संवेदना बड़ी तीव्र एवं यथार्थ बोध से युक्त है। युद्ध, शान्ति, साम्यवाद के साथ ही अन्य समस्याओं पर भी इस धारा की कविताओं में समाधान प्रस्तुत किया गया है। प्रयोगवादी कविता में जीवन एवं समाज की कटुताओं, जीवन-संघर्षो तथा अर्थहीन व्यवस्थाओं पर करारा प्रहार किया गया है। वेदना, निराशा, अनास्था, घुटन, पराजय आदि के स्वर प्रयोगवादी कविता की प्रमुख प्रवृत्तियाँ हैं।

'प्रतीक' पत्रिका और 'दूसरा सप्तक' के प्रकाशन के बाद प्रयोगवाद का अवसान तथा 'नयी कविता' का पादुर्भाव हुआ। इस धारा की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके कवियों ने प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद दोनों की अतिवादी प्रवृत्तियों को छोड़कर अन्य प्रवृत्तियों में समन्वय स्थापित

करने का सफल प्रयास किया है। नयी कविता उपरोक्त दोनों काव्य धाराओं का सहज विकास है। रघुवीर सहाय तथा भवानीप्रसाद मिश्र की कविताएँ मानवीय, सामाजिक, बहिर्मुखी, स्वच्छ तथा प्रभावोत्पादक हैं। अन्य सभी नयी कविता के कवियों ने सामाजिक चेतना और विकास के साथ-साथ विक्षोभ, निराशा, पीड़ा, असंतोष आदि भावों को कविता का विषय बनाया है। साठ के दशक से लेकर आपातकाल तक की कविता ने दर्जनों रूप बदले इसलिए,उसमें नवीन प्रवृत्तियाँ भी दिखलाई पड़ती हैं।

समकालीन कविता सामाजिक चेतना, विभिन्न विचारधाराओं, तथा चिन्तन सरणियों से प्रभावित है। समकालीन कविता, गाँधी, अरविन्द, मार्क्स, फ्रायड आदि चिन्तकों की विचारधाराओं का सतत् विश्लेषण व प्रचार करती हुई प्राचीन परम्परा व संस्कृति के प्रति उन्मुख है।

सप्तकोत्तर कविता के उभार में आजादी के बाद के समाज और राजनीति के विषम हालात की अहम भूमिका रही है। नए कवियों ने अपना ध्यान विचारधारा के बजाय वस्तु स्थितियों की द्वंद्वात्मकता और अंतःप्रक्रिया पर रखा। यह समय खास तौर पर मनुष्य को उसकी मनुष्यता से वंचित करने वाली ताकतों की व्यापक सक्रियता का समय है। इसलिए इस कविता में इन ताकतों की साजिश का, इनके स्वेच्छाचार, छल-छद्म तथा अन्याय और उत्पीड़न के शिकार आम आदमी के रंज और असमंजस का खुलासा और विरोध है। सप्तकों तक की कविता आत्म-संघर्ष और आत्मालोचन की कविता है।

समग्रतः हिन्दी कविता की सामाजिकता, वैयक्तिकता, मध्ययुगीनता, आधुनिकता, स्वाधीनता, राष्ट्रीयता, मानवीयता, प्राचीन परम्परा एवं संस्कृति की ओर उन्मुखता और वैज्ञानिकता इत्यादि प्रवृत्तियाँ आदिकाल से लेकर आज तक निरन्तर अपने आपको विकसित करती रही हैं तथा नये समाज के निर्माण में अपना योगदान प्रदान करती रही हैं। सप्तकों की कविता विशेष रूप से सप्तकोत्तर कविता को आधार प्रदान करती है। सप्तकों के साथ-साथ कविता के दूसरे ग्रंथों और काव्यों का प्रभाव भी किस रूप में पड़ा है, इन सब चीजों का विस्तृत अध्ययन हम आगे के उपशीर्षकों में करेंगे।

(ख) छायावादोत्तर कविता का स्वरूपगत अध्ययन

छायावाद के अन्त में साहित्यिक और साहित्येतर आन्दोलनों का दीर्घकालिक क्रम शुरू हुआ जिसने हिन्दी कविता को एक नवीन साँचे में ढाला। छायावादोत्तर कविता की प्रवृत्तियाँ अनेक पाश्चात्य आन्दोलनों, विश्वयुद्ध तथा चिंतन धाराओं से प्रभावित हुईं। इस पर मार्क्स की वस्तुवादी दृष्टि,फ्रायड

की मनोविश्लेषणवादी दृष्टि,बर्गसॉं के चेतनावाद, विलियम जेम्स के चेतना प्रवाह और आइन्सटीन के सापेक्षवाद का व्यापक असर पड़ा। इस बीच का इतिहास कई धाराओं तथा वादों से होकर गुजरा है। आधुनिक कालीन नवीन गद्य विधाओं की विकसित बौद्धिकता का प्रभाव कविता पर विशेष रूप से पड़ा। सन् 1918 की रूसी क्रान्ति का प्रभाव रूस के अतिरिक्त यूरोपीय साहित्य में भी पड़ा जिसके फलस्वरूप अंग्रेजी साहित्य में सन् 1930 के पश्चात् मार्क्सवादी विचारधारा का समावेश हुआ। अब वहाँ का कवि भी अपने काव्य में पूँजीवाद, शोषण आदि के विरूद्ध श्रमिकों को विद्रोह के लिए प्रेरित करने लगा। अंग्रेजी सत्ता के अत्याचारों और पूँजीपतियों के शोषण से दुर्दशाग्रस्त भारतीय समाज एवं कवि वाणी भी इससे अपरिचित न रह सके। सन् 1925 में कुछ भारतीय तरूणों ने साम्यवादी दल की स्थापना करके उसके मार्क्सवादी सिद्धान्तों का प्रचार आरम्भ कर दिया। इन्हीं दिनों डॉ० मुल्कराज आनन्द, सज्जाद, भवानी भट्टाचार्य, जे०सी० घोष, एम० सिन्हा, आदि नवोदित लेखकों ने लन्दन में सन् 1935 में 'भारतीय प्रगतिशील लेखक संघ' नामक संस्था की स्थापना की। जिसका प्रथम अधिवेशन सन् 1936 में प्रेमचन्द्र की अध्यक्षता में लखनऊ में हुआ। इस प्रकार सन् 1936 के आते-आते प्रकृति का आलम्बन लेकर विरह के गीत गाने वाली छायावादी कविता की सिर पर लाल झण्डा बँध गया और पीठ पर सवार हो बैठा साम्यवादी लाल तारा-हँसिया हथौड़ा।

कृतियों के आधार पर छायावादोत्तर कविता का वर्गीकरण करने पर डॉ० नगेन्द्र ने पांच-छह काव्य धाराओं का उल्लेख किया है जिन्हे राष्ट्रीय-सांस्कृतिक कविता,क्रमागत छायावादी काव्यधारा या उत्तर छायावाद, वैयक्तिक गीति काव्य, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नयी कविता कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त नकेनवाद, परिणतिवाद, प्रतीकवाद, प्रतिबिम्बवाद, अस्तित्ववाद, स्थित्यानुरूपतावाद, अतिशय यथार्थवाद इत्यादि वादों का एकदम मेला-सा लग गया।

राष्ट्रीय सांस्कृतिक धारा भारतेन्दु काल से प्रारम्भ होकर छायावाद काल के पश्चात् समकालीन परिस्थितियों तथा काव्य प्रवृत्तियों से प्रभावित होकर और भी उदार और वैविध्यपूर्ण हो गयी। प्रस्तुत अवधि में प्रकाशित काव्य कृतियों में 'कुरूक्षेत्र', 'जयभारत', 'नकुल', 'उन्मुक्त' 'रश्मिरथी' 'विक्रमादित्य' आदि उल्लेखनीय हैं। राष्ट्रीयता का यह नया स्वर दिनकर की कविताओं में अधिक मिलता है। क्रमागत छायावादी काव्यधारा छायावाद में उत्कर्ष रूप पाने के पश्चात् भी कुछ काल तक अपनी परम्परा का निर्वाह करती हुई-सी दिखाई पड़ती है। उत्तर छायावाद में निराला तथा पन्त की कविताएँ विशेष रूप से आती हैं। निराला की लोकोन्मुख शक्ति के दर्शन 'कुकुरमुत्ता', 'गर्म पकौड़ी', 'प्रेम संगीत', 'रानी और कानी', 'खजोहरा, 'मास्को' डायलाग्स' और 'नये पत्ते की अधिकांश कविताओं

में होते हैं। इन कविताओं की भाषा लोक की है, मुहावरे लोक के हैं, शैली लोक की है। इनमें संवादात्मक एवं लोक कथ्यात्मक शैलियों का प्रयोग हुआ है। इनके गीतों में प्रार्थना-परकता भी है और प्रेम की संवेदना भी। सन् 1936 में 'युगान्त' की घोषणा कर पन्त ने 1939 ई0 में 'युग वाणी' और 1940 में 'ग्राम्या' के माध्यम से मार्क्सवाद के भौतिक दर्शन और जनजीवन के सत्यों का खुलासा किया। निराला ने जन जीवन की संवेदना और अनुभवों को स्वीकारा तो पन्त ने संवेदन के साथ मार्क्सवादी दर्शन को चिंतन के स्तर पर स्वीकारा। महादेवी ने अपनी संवेदनाओं को भिन्न-भिन्न अभिजात प्रतीकों और रूपकों से व्यक्त किया है। पन्त, मार्क्स के भौतिकवाद से सन्तुष्ट न होकर भी उसे आवश्यक मानते हैं। व्यक्तिवादी गीति कविता का विषय प्रेम और सौन्दर्य तथा तज्जन्य उल्लास व विषाद की अनुभूति होने के कारण इनमें उत्तेजना और आत्मसम्पृक्ति मिलती है। इस धारा की कविताओं में छायावादी गीति परम्परा का निर्वाह करते हुए भी छायावादी कविता जैसी रहस्यात्मकता, आदर्शवादिता और संकोच की प्रवृत्ति नही हैं। गीति कवियों की संवेदना व्यक्तिवादी है, किन्तु वे स्वयं को जिस माध्यम -भाषा, बिम्ब, परिवेश, प्रकृति आदि के द्वारा व्यक्त करना चाहते हैं वह मसृण प्रतीत होता है। इस धारा में बच्चन, नरेन्द्र शर्मा, अंचल, भगवती चरण, गोपाल सिंह नेपाली व शम्भूनाथ सिंह इत्यादि कवियों की कविताएँ आती हैं।

भारतीय समाज में जगती हुई उग्र जन-चेतना, रूस में स्थापित समाजवाद तथा पश्चिमी राष्ट्रों में प्रचारित कम्युनिज्म के सिद्धान्तों से उभर रहे प्रभाव के फलस्वरूप भारत में 1935 ई0 के आस-पास साम्यवादी आन्दोलन का प्रारम्भ हुआ। 1935 ई0 में पेरिस में एम0 फार्स्टर के सभापतित्व में गठित 'प्रोग्रेसिव राइटर्स एसोसियेशन' नामक अंतरराष्ट्रीय संस्था के गठन तथा सन् 1936 में लखनऊ में प्रेमचन्द की अध्यक्षता में हुए 'प्रगतिशील लेखक संघ' के प्रथम अधिवेशन ने भारतीय साहित्य में प्रगतिवाद की नींव डाली। छायावादी कविता की प्रवृत्तियाँ स्वयं को नई समस्याओं और परिस्थितियों के अनुरूप समायोजित न कर सकीं, यह भी छायावाद के अवसान व प्रगतिवाद के जन्म का प्रमुख कारण बना। अधिकांश कवि एवं आलोचक पंत जी को प्रगतिवाद का प्रवर्तक समझते हैं। उनके इस तर्क की पुष्टि पंत की युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या जैसी रचनाएँ करती हैं।

प्रगतिवादी कवियों में केदारनाथ अग्रवाल, रामविलास शर्मा, नागार्जुन, रांगेय राघव, शिवमंगल सिंह 'सुमन', त्रिलोचन, नरेन्द्र शर्मा आदि का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन कवियों के अतिरिक्त अज्ञेय, भारत भूषण, अग्रवाल, भवानी प्रसाद मिश्र, नरेश मेहता, शमशेर, बहादुर सिंह धर्मवीर भारती आदि प्रयोगवादी कवियों की कुछ कविताएँ प्रगतिवाद के अन्तर्गत लिखी गई हैं।

प्रगतिवादी कविता में सामाजिक यथार्थ का अंकन, तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति असन्तोष, शोषित जनता की करूण दशा का चित्रण, स्वस्थ प्रेमाभिव्यक्ति, राजनीति, साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के प्रति विद्रोह भावना तथा वर्गहीन समाज की स्थापना का स्वर इत्यादि प्रवृत्तियाँ जगह-जगह देखने को मिलती हैं।

प्रगतिवादी कविता में युग-युग से शोषित और दमित नारी को उत्थान का संदेश दिया गया है। नरेन्द्र शर्मा ने नारी का अभिनन्दन इस प्रकार से किया है-

तुम नहीं हो भोग की वस्तु मुझको, अस्तु तुमसे,

भीख मधु की माँगता मन भी नहीं, अलि ज्यों कुसुम से।

चाटुकारी से रिझाना-हुई अवहेलना तुम्हारी, सुनो-नारी।

करूं अभिनन्दन तुम्हारा, मौन अब बिन कहे तुमसे।[9]

यह कविता मूर्तिपूजा, उपासना, अवतार वाद, धार्मिक रूढ़ियों, वेदों और उपनिषदों के विरूद्ध वैचारिक क्रान्ति पैदा करके समाज और मानव जीवन का विकास करने का लक्ष्य लेकर प्रगति करना चाहती है-

रोटी तुमको राम न देगा

वेद तुम्हारा काम न देगा

जो रोटी के लिए लड़ेगा

वह रोटी को आज वरेगा।[10]

जीवन का पथ जब धर्म के कारण भ्रष्ट होता है तो सामान्य मनुष्य सहज जीवन जीने से वंचित रह जाता है। प्रगतिशील कवि इसका कारण भगवान को मानता है जिसने सृष्टि करते-करते अपने स्वरूप का विकृत पक्ष इस रूप में दिखाया कि क्षुधित मानव जूठे पत्तल चाटने को श्वान की भाँति विवश हो गया-

लपक चाटते जूठे पत्ते जिस दिन मैंने देखा नर को

उस दिन सोचा क्यों न लगा दूं आग आज इस दुनिया भरको

यह भी सोचा क्यों न टेंटुआ घोटा जाय स्वयं जगतपति का

जिसने अपने ही स्वरूप को रूप दिया इस घृणित विकृति का।[11]

स्पष्ट है कि प्रगतिवादी कविता में धर्म के प्रति परम्परावादी दृष्टिकोण का विरोध हुआ और उसमें वस्तुवादी चेतना के अनुसार परिवर्तन का स्वर प्रखर होता है। प्रगतिशील कविता का

सौन्दर्य-बोध भाग्यवादी, निराशावादी, नियतिवादी न होकर कर्मण्यतावादी, सक्रियचेतनावादी व्यावहारिक, विकासोन्मुख जीवन-दृष्टि है। साम्यवादी व्यवस्था का दिल खोलकर गुणगान करने वाली यह कविता रूस को मानवता का रक्षक और शोषितों का सहारा निरूपित करती है-

चौथा खण्ड सोवियत जिसका झलमल लाल सितारा,

जहाँ डूबती मानवता को, मिलने लगा किनारा।

वहाँ हरा होता सदियों का, रेगिस्तान हमारा,

वहाँ सूख जाता दुखियों की आँखों का जल खारा।[12]

प्रगतिवादी काव्य में भावगत अनुभूति के स्थान पर वैचारिक संवेदना का बौद्धिक संस्पर्श अपनी ओजस्विता से मुखरित हुआ है। कवि सर्वहारा वर्ग के समर्थन में पीड़ित, पद-दलित जनता की संवेदना से प्रेरित होकर सामाजिक जीवन में परिवर्तन और विकास की दृष्टि से क्रान्ति को समाधान मानता है। वह देश के अधःपतन का मूल कारण छोटे से लेकर बड़े तक सभी, में व्याप्त शोषण की प्रवृत्ति को मानता है। सामूहिक जीवन को दृष्टि में रखकर मेहनत करने वाला सर्वहारा वर्ग शोषकों और उनके संस्कारों को समाप्त कर मानवता का उद्धार करने में सक्षम है-

मैं कलेजा शोषकों का फाड़ता हूँ

सूद खोरों को

मिलों के मालिकों को

भूमि के हड़पे धरणी धरों को

मैं प्रलय के साम्यवादी आक्रमण से मारता हूँ

और उनके अपहरण की

दिग्विजयनी सभ्यता को

सर्वहारा की नवोदित सभ्यता से जीतता हूँ।[13]

प्रगतिशील काव्य वस्तु अपनी वैचारिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण रही है, पर उसका कलापक्ष लगभग उपेक्षित-सा रहा। प्रगतिवादी धरातल पर पहुँचकर हिन्दी कविता को महसूस होने लगा कि वह अब रस, अलंकार संगीत और तुकान्त पदावली की भूखी नहीं है। अब उसके अन्तसः में थके, भूखे, बेसहारा किसान और मजदूर की वाणी को जन-जन तक पहुँचाने की मंगल कामना हिलोरें ले रही है। प्रगतिवादी काव्य की विषयवस्तु, रूप विधान, भाषा,शैली आदि समस्त क्षेत्रों में सरलता की आग्रही होने के साथ ही आडम्बर पूर्ण भाषा की विरोधी है। भाषा जन साधारण की संवेदना को

सुग्राह्य रूप में व्यक्त कर सके ऐसी भाषा का समर्थन प्रगतिशील कविता में हुआ है-

ओ धनी कमल के आँख खोल

अब वर्तमान बन, सत्य बोल

इस दुनिया की भाषा में कुछ

घर की कह, समझें घर बोल,

उनके जीवन की गाँठ खोल।[14]

प्रगतिवादी कविता की भाषा उर्दूमिश्रित, अंग्रेजी बाहुल्य होने के साथ ही संस्कृतनिष्ठ स्वरूप लेकर भी प्रवाहित हुई। नीचे की पंक्तियों में प्रचलित अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग द्रष्टव्य है-

पार्लेमेन्ट के प्रतिनिधियों से आदर लो सत्कार लो

मिनिस्टरों से शेक हैंड लो, जनता से जयकार लो

दायें बाँये खड़े हजारों आफिसरों से प्यार लो।[15]

प्रगतिशील कविता में वर्णन, विवेचन, भावभिव्यंजन, प्रभंजन तथा व्यंग्य शैलियाँ प्रमुख रूप से व्यवहृत हुई हैं, पर व्यंग्यात्मक शैली सर्वाधिक विवेचनीय तथा महत्त्वपूर्ण है।

व्यंग्य शैली का प्रारम्भ निराला के परवर्ती काव्यों में हो चुका था और उसी का अनुसरण करके दिनकर, केदार, रामविलाश शर्मा, नवीन, सुमन और नागार्जुन आदि प्रगतिशील कवियों ने व्यंग्य और प्रभंजनात्मक शैली को अपना लिया। नागार्जुन की सभी रचनाओं में व्यंग्य शैली का ही प्रयोग हुआ है। 'प्रेत का बयान' 'दुखरन झा' और युगधारा में संकलित 'तालाब की मछलियाँ' इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कविताएँ हैं।

प्रगतिवादी रचनाओं में अधिकांश मुक्तक और फुटकल कविताओं के संग्रह ही मिलते हैं। प्रबन्ध काव्यों की संख्या अत्यल्प है। महाकाव्य एक दीर्घकालीन जीवन-दृष्टि को अपने में समाये रहता है, लेकिन आधुनिक जीवन में ऐसा कुछ महान या वृहद् जीवन का रूप ही नहीं मिलता। लम्बी कविताएँ प्रगतिवादी शिल्प की मौलिक उपलब्धि कही जा सकती हैं। ये कविताएँ छन्दविहीन तथा रूप विधान की सीमा से मुक्त दीर्घ रचनाएँ होती हैं। नरेश मेहता की 'समय देवता', नागार्जुन की 'मछलियाँ' तथा मुक्तिबोध की सभी कविताएँ इस कोटि की कही जा सकती हैं। लोकगीतों के आधार पर रची गई कविताओं में डॉ० रामविलाश शर्मा की 'पालकी' कविता उत्कृष्ट रचना है।

इस अवधि की कविता में शिल्प के प्रति उदासीनता अवश्य मिलती है परन्तु उसमें शिल्प का आश्रय पूर्णरूपेण नहीं छूट सका है। प्रगतिवादी कविता में उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा के अतिरिक्त प्रतीकों,

उपमानों और बिम्बों का निर्वाह भी हुआ है। मुक्तिबोध की इन पंक्तियों में गहन अनुभूति को उपमान रूप में प्रयुक्त किया गया है -

मैं एक थमा हुआ मात्र आवेग

रूका हुआ एक जबरदस्त कार्यक्रम,

मैं एक स्थगित हुआ मैं अगला अध्याय,

अनिवार्य

आगे ढकेली गई प्रतीक्षित

महत्त्वपूर्ण तिथि।[16]

आधुनिक काल में छन्द, अलंकार आदि काव्य शास्त्रीय दृष्टियों का विरोध होने के कारण छन्द का बन्धन शिथिल पड़ते-पड़ते लगभग टूटकर गिर-सा पड़ा। फलस्वरूप प्रगतिशील कविता में नए छन्दों और लोकगीतों का सृजन आरम्भ हुआ। प्रायः इन कविताओं में छन्द-बन्ध के प्रति विमुखता दिखाई देती है-

जो अबन्ध है उसे छन्द के प्रति कैसी अनुरक्ति।[17]

छन्दों का विरोध अपनी भावव्यंजना और नई संवेदना की दृष्टि से सबने किया है फिर भी लय, नादात्मकता और संगीत तत्त्वों से इंकार नहीं कर सके और इन कवियों ने लोकगीतों की धुनों पर नये छन्दों की सर्जना की। प्रगतिशील कविता की एक और विशेषता है विराट बिम्बों का प्रयोग। शमशेर की 'अमन का राग' और नरेश मेहता की 'समय देवता' आदि कविताएँ बिम्बों के विराट स्वरूप का चित्रण अद्वितीय ढंग से करती हैं।

छायावादी शिल्प और परवर्ती छायावादियों से भिन्न हो उनकी कला सम्बन्धी मान्यताएँ सम्पन्न अवश्य हुई हैं, किन्तु पूर्णरूपेण सामाजिक यथार्थ से परिप्लावित ध्येय होने के कारण प्रगतिवादी कविता में कलापक्ष किसी भी हालत में उभर नहीं सका। हाँ, इतना अवश्य है कि प्रगतिवाद ने कविता के स्वरूप को जितना बदला उतना अन्य किसी काल अथवा वाद ने नहीं।

सन् 1939 ई० में द्वितीय विश्व युद्ध के प्रारम्भ तथा 1940 ई० के आस-पास राष्ट्रीय जीवन में संघर्ष, दमन, गतिरोध, भ्रष्टाचार, महँगाई इत्यादि की समस्याओं ने मध्य वर्ग की नींव डाली। इसके अतिरिक्त आइन्स्टीन के सापेक्षवाद, डार्विन के विकासवाद तथा फ्रायड के मनोविश्लेषणवादी सिद्धान्तों ने तत्कालीन कविता पर गहरा प्रभाव डाला। विकासवाद के सिद्धान्त ने यह सत्य उद्घाटित किया कि मनुष्य ब्रह्म का अंश न होकर पशु का ही विकसित रूप है। अतः मानवीय चेतना निरन्तर विकसित

हो रही है। मनोविश्लेषणवाद के सिद्धान्त के अनुसार मानव मन के तीन आयाम होते हैं-चेतन, उपचेतन और अवचेतन। इनमें चेतन व उपचेतन ही प्रधान हैं। चेतन मन वाह्य प्रभावों को उपचेतन तक पहुँचाता है। उपचेतन उन अनुभवों का संचयन अथवा अनुकूल परिस्थिति पाकर प्रकट कर देता है। उपचेतन ही मन का संचालन करता है न कि चेतन मन। इस सिद्धान्त के प्रकाश में आने पर मानव के स्वभाव और सहज व्यक्तित्व में विघटन होने लगा। फलस्वरूप जहाँ प्रगतिवादी कवि ने ईश्वरीय सत्ता पर प्रहार किए वहीं नए कवि ने उसे पूर्णतः नकार दिया।

उपरोक्त प्रवृत्तियों से प्रभावित सन् 1943 के बाद की कविता को प्रयोगवादी कविता कहा गया। सन् 1943 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तार सप्तक' में संकलित सातों कवियों गजानन माधव 'मुक्तिबोध', नेमिचन्द्र जैन, भारतभूषण अग्रवाल, प्रभाकर माचवे, गिरजा कुमार माथुर, रामविलाश शर्मा तथा सच्चिदानन्द हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' की कविताएँ पूर्णतः प्रयोगवादी हैं। सन् 1947 में प्रकाशित 'प्रतीक' पत्रिका तथा सन् 1951 में प्रकाशित 'दूसरा सप्तक' ने प्रयोगवाद को मान्यता दे दी। कवियों के वक्तव्यों एवं 'तार सप्तक' की भूमिका में 'प्रयोग' शब्द के बार-बार उल्लेख के आधार पर इस काव्यधारा का 'प्रयोगवाद' नाम पड़ा। अज्ञेय ने यद्यपि 'दूसरा सप्तक' की भूमिका में इसका प्रतिवाद करते हुए लिखा है- "प्रयोग का कोई वाद नहीं है। हम वादी नहीं रहे, न ही हैं। न प्रयोग अपने आपमें इष्ट या साध्य है। ठीक इसी तरह कविता का भी वाद नहीं है। कविता भी अपने आपमें इष्ट या साध्य नहीं है। अतः हमें प्रयोगवादी कहना उतना ही सार्थक या निरर्थक है जितना हमें कवितावादी कहना। ....तो प्रयोग अपने आप में इष्ट नहीं है, वह साधन है और दोहरा साधन है। ....प्रयोग निरन्तर होते आए हैं। और प्रयोगों के द्वारा ही कविता या कोई भी कला, कोई भी रचनात्मक कार्य आगे बढ़ सका है।"[18] इसके विरूद्ध बिहार के नरेश, नलिन विलोचन शर्मा और केसरी कुमार ने प्रयोग को ही अपने काव्य का साध्य माना है।

प्रयोगवादी कविता पश्चिमी वादों से प्रभावित अवश्य हुई है, किन्तु, उसने अपने देश की परिस्थितियों से मुँह नहीं मोड़ा। व्यक्तिवादी विद्रोह का स्वर प्रायः सभी कविताओं में परिलक्षित होता है। प्रयोगवादी कविताओं में सन् 1979 में ज्ञानपीठ पुरस्कार से सम्मानित अज्ञेय की रचना 'कितनी नावों में कितनी बार' तथा मुक्ति-बोध की रचना 'चाँद का मुँह टेढ़ा है' प्रसिद्ध हैं। मुक्तिबोध ने तारसप्तक की अपनी कविताओं को अपना पथ ढूँढ़ने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति कहा है। इनकी बहुत-सी कविताओं में नवीन परिस्थितियों से पैदा हुई मनः स्थितियों का प्रभावशाली ढंग से चित्रण हुआ है। माचवे की कविताओं में मुक्त छन्द, नवीन उपमान और नवीन बिम्ब योजना दिखाई देती

है। नेमीचन्द्र जैन की कविताओं में व्यष्टि और समष्टि के अन्तर्विरोध के बावजूद नवीन परिस्थितियों से उत्पन्न मनः स्थितियों का प्रभावशाली चित्रण हुआ है। मशीनों की गड़गड़ाहट, रेल के इंजन की सीटी, लाउडस्पीकर की चीत्कार, रिक्शों के भोंपू की आवाज आदि के प्रति प्रयोगवादी कविता में संवेदनशीलता मिलती है। जीवन में संघर्षो को झेलते हुए कर्मों से जूझते रहने का संदेश भी इन कविताओं में सर्वत्र मिलता है। रामविलाश शर्मा और गजानन माधव मुक्तिबोध क्रिया एवं विचार दोनों से समाजवादी हैं तो शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता और नेमिचन्द जैन जैसे कवि संस्कारों से व्यक्तिवादी और विचारों से समाजवादी हैं। विघटनशील सामाजिक मूल्यों के घेरे में संस्कारित प्रयोगवादी कविता किसी व्यापक जीवन दर्शन को नहीं अपना सकी, फलतः निराशा, कुंठा, उच्छृंखलता, विवशता तथा अवसाद का रूप उनमें प्रायः देखने को मिलता है।

प्रयोगवादी कविता में यौनाचारों और कुंठाओं का अनावृत रूप रोमानी चेतना एवं वासना से सम्पृक्त है-

प्रात धूप की जलतारी ओढ़नी लपेटे

अभी-अभी जागी

खुमार से भरी

नितान्त कुमारी घाटी

इस कामातुर मेघ-धूम के

औचक आलिंगन में पिसकर

रतिश्रांता-सी मलिन हो गई

थका हुआ बादल

पश्चिम के श्याम निरावृत शिखरों पर

शीतल कपोल धर

क्षण भर गहरी नींद सो गया।[19]

'तारसप्तक' के प्रायः सभी कवि कलाकार के अहं के प्रति निष्ठावान थे। अहं की आत्यन्तिकता के साथ ही इनकी कविताओं में सामाजिक प्रहारों से आहत अहं को उठाने की भावना विद्यमान है। यथा-

शायद कल

टूटी वैशाखी पर चलकर

फिर मेरा खोया प्यार वापस लौट आए।

प्रकाश स्तम्भों से टकराकर

शायद कल

फिर मेरी अन्धी आस्था कोई गीत गाए

शायद कल किसी के कंधों पर चढ़कर

फिर मेरा बौना अहं विवश हाथ फैलाए।[20]

प्रयोगवादी कविता व्यक्ति के अन्तर्मन की वृत्तियों के वस्तुपरक विश्लेषण के साथ ही आस्थावान जीवन के स्वस्थ रूप को पूरी संवेदना और भावुकता के साथ दर्शाती है। वह नवीनता की पक्षधर है। हिन्दी साहित्य में मानव मन को बिना किसी आदर्शवादिता या आवरण के उसके सामीप्य-बोध से चित्रित करना प्रयोगवादी कविता की एक विशेष उपलब्धि है। प्रयोगवादी कविता का स्वरूप वस्तुपक्ष से अधिक शिल्पपक्ष में स्पष्ट हुआ है। प्रयोगवादी कविता में शिल्प के माध्यम से रागात्मक प्रवृत्ति का संस्कार हुआ है। अज्ञेय ने संयमित व सर्जनात्मक कला को नूतन आयामों के प्रस्तुतीकरण के लिए आवश्यक बताया है।

जीवन का विरूप पक्ष और तत्सम्बन्धी संवेदना ही प्रयोगवादी कवि की प्रेरणा है। छायावादी सौन्दर्य अवधारणा को परे हटाती तथा नव विकसिंत भाव बोध को अपनाकर गतिशील अज्ञेय की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

क्रौंच बैठा हो कभी वल्मीक पर

तो मत समझ

वह अनुष्टुप बांचता है संँगिनी के स्मरण के

जान ले वह दीमकों की टोह में है।

कवि जनोचित न हो, चाहे यही सच्चा साक्ष्य है।[21]

प्रयोगवादी कविता में कहीं बिम्बवादी दृष्टि उभरी है तो कहीं प्रभाववादी चित्र विधान का रूप। कहीं युगीन परिवेश से गृहण किए गए अप्रस्तुतों और उपमान योजना का विधान मिलता है तो कही मनोविश्लेषणात्मक प्रतीकों का विधान। प्रयोगवादी कविता में प्राचीन शैलियों और उपमानों को नव्यता प्रदान करने की प्रवृत्ति सर्वत्र दीख पड़ती है। अज्ञेय ने यांत्रिक और वैज्ञानिक युग में पारम्परिक आलंकारिक रूप विधान का विरोध इस प्रकार से किया है-

अगर मैं तुमको

ललाती सांझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता

X X X X

नही कारण कि मेरा हृदय उथला या कि सूना है

या कि मेरा प्यार मैला है।

बल्कि केवल यही कि

ये उपमान मैले हो गए हैं

देवता इन प्रतीकों को कर गए हैं कूच।

कभी वासन अधिक

घिसने से मुलम्मा छूट जाता है।[22]

वैज्ञानिक युग में यन्त्रों और उद्योगों से पूर्णरूपेण प्रभावित मानव जीवन का सफल और संवेदनशील चित्रण भारत भूषण अग्रवाल की इस कविता में नए अप्रस्तुतों के माध्यम से कुछ इस प्रकार से हुआ है-

कैमरे के लैंस-सी हैं आँखे बुझी हुई

बिगड़े कम्बख्त लाऊडस्पीकर से

जिनके मुख निश्शब्द खुले हैं।

X X X X

दाँतेदार पहिए-सा दिल घूमा जाता है

X X X X

टाइपराइटर की 'की' की तरह

सबके पैर बारी-बारी से उठते हैं।[23]

मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से आक्रान्त प्रयोगवादी कविता में स्वप्न सम्बन्धी और यौनगत कामपरक प्रतीकों का समावेश हुआ है 'मछली' 'कुकरमुत्ता' और 'अश्वत्थ' प्रयोगवादी चेतना के अहं लीन आत्मस्थ व्यक्तिवाद के परिचायक हैं। सत्यान्वेषी कवि मुक्तिबोध स्वयं को 'स्वप्न म्रष्टा' 'मीन' कहकर पुकारते हैं-

मैं महाशोधक महाशय सत्य जल का मीन हूँ मैं,

सत्य का मैं ईश औ'मैं स्वप्न का हूँ परम म्रष्टा।[24]

प्रयोगवादी कवि की चेतना मध्यवर्गीय जीवन से सम्बद्ध है। वह पुराने संस्कारों और वर्तमान जीवन शैली से क्षुब्ध होकर मोहभंग की स्थिति तक पहुँच जाती है -

तू उड़ा सम्पाति का अभिमान लेकर

सूर्य छूने का नया अभियान लेकर

तेजमय रवि व्यास जब आया निकटतर

पंख झुलसे गिर पड़ा हत प्राण होकर।[25]

प्रयोगवादी कवियों की भावनात्मक और वैचारिक अनुभूति नाना प्रकार के बिम्बों के माध्यम से उभरकर सामने आयी है। इनकी कविताओं में चित्रात्मकता एवं रंगीन दृश्यांकन का नूतन आकर्षण विद्यमान है। अभिव्यंजनात्मक परिष्कृति और कल्पना का मनोहर रूप भवानी प्रसाद मिश्र की बिम्ब योजना में दृष्टिगोचर होता है -

बूँद टपकी एक नभ से

किसी ने झुककर झरोखे से

कि जैसे हँस दिया हो,

हँस रही-सी आँख ने जैसे

किसी को कस दिया हो।[26]

छायावाद में गूढ़ तथा रहस्यात्मक हो चली भाषा शैली को सरल तथा परिनिष्ठित करने के प्रयास में प्रगतिवादी कवियों ने उसे गद्यमय, सीधा तथा संकीर्ण बना दिया, जिसके परिणामस्वरूप प्रयोगवादी कवियों को पुनः भाषागत एवं शैलीगत संस्कारों की आवश्यकता महसूस होने लगी। प्रयोगवादी कवि उस भाषा को जो जीवन से असंपृक्त हो, अपने लिए अनावश्यक मानते हैं। वह भावानुकूल तथा सृजनात्मक भाषा के प्रति निष्ठावान है। प्रयोगवादी कविताओं में संस्कृतनिष्ठ, लौकिक शब्दावली तथा अंग्रेजी, उर्दू फारसी इत्यादि भाषाओं का प्रयोग दिखाई देता है। प्रयोगवादी कवियों ने सानेट की शैली में ढेरों चतुर्दशपदीय (14 पंक्ति वाली) कविताएँ लिखी हैं। इस शैली के कवियों में प्रभाकर माचवे का नाम उल्लेखनीय है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि प्रयोगवादी काव्य अपनी नवीन चेतना का निरन्तर सक्रिय विकास करता रहा है। प्रयोगवादी कवि ने प्रतीक, बिम्ब उपमान और अलंकार के प्राचीन और परम्परा बोध को त्यागकर अपनी संवेदना और युगीन दृष्टि के अनुकूल रूप विधान को विकसित किया है। प्रयोगवादी कविता की उपलब्धि शिल्प को कविता के मूल स्वर के साथ सम्बद्ध करके प्रस्तुत करने में है।

आर्थिक, राजनीतिक व धार्मिक परिस्थितियों को सामान्य मनुष्य व्यक्तिगत पीड़ा के रूप में झेलता है, जबकि कवि इन विषमताओं को पूरे समाज के हृदय में प्रविष्ट होकर हर रूप में महसूस करता है और सदैव नवीन प्रवृत्तियों को विकसित करता रहता है। सन् 1943 में प्रकाशित 'तारसप्तक' से 'दूसरे सप्तक' (सन् 1951) तक की कविताएँ प्रयोगवाद के अन्तर्गत रखी गई, जबकि 1951 से लेकर सन् 1959 में प्रकाशित 'तीसरा सप्तक' तक की कविताएँ 'नयी कविता' के अन्तर्गत रखी गई। स्पष्ट है कि प्रयोगवादी कवियों में से अधिकांश कवि 'नयी कविता' के लिए भी लिख रहे थे। "नयी कविता का नाम शायद सन् 1953 ई० में 'नये पत्ते' में प्रकाशित रेडियो-परिसंवाद में पहले-पहल अज्ञेय द्वारा दिया गया था।"[27] अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'प्रतीक' तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी द्वारा एवं वाद में लक्ष्मीकान्त वर्मा द्वारा सम्पादित 'नये पत्ते' पत्रिकाओं को 'नयी कविता' के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

नयी कविता में मनोविश्लेषणवादी दृष्टि और अस्तित्ववादी विचारधारा का गहरा प्रभाव परिलक्षित होता है। विश्वयुद्धों की विभीषिका एवं संत्रास से उत्पन्न अस्तित्ववाद की दो शाखाएँ हैं- जर्मनी और फ्रांस की आस्तिक और नास्तिक शाखा। नास्तिक शाखा के दार्शनिक ज्यों पाल सार्त्र मानते हैं कि समस्त विश्व में मानवीय अस्तित्व ही सर्वप्रथम प्रादुर्भूत चेतना है। इस संसार में ईश्वरीय सत्ता का कुछ भी अंश नहीं है। सारा संसार मानवीय अस्तित्व से ही सार्थक या निरर्थक सिद्ध होता है। सार्त्र की दृष्टि में अचेतन का कोई अस्तित्व नहीं होता और मानव अचेतन का क्रीड़ा कन्दुक कभी नहीं हो सकता। अस्तित्ववाद अपनी मान्यताओं में बौद्ध दर्शन के अधिक समीप जान पड़ता है। बुद्ध-दर्शन यदि प्राचीन उदार जीवन दृष्टि है तो अस्तित्ववाद आधुनिक युग की बुद्धिगत चेतना है।

प्राचीन कविता से लेकर 'नयी कविता' तक की यात्रा में कविता में प्रमुख अन्तर संवेदना का ही है। डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी ने विवेक तथा तर्क को आवेगमयता और उच्छ्वास के स्थान पर प्राथमिकता दी है - "प्राचीन कविता और आधुनिक कविता का अन्तर मूलतः संवेदना का ही अन्तर है। संवेदना का रूप बदल गया है। आवेग तथा उच्छ्वास की जगह पर विवेक तथा तर्क को पहला स्थान मिला है, किन्तु बुद्धि तथा वैज्ञानिक तर्क को सृजन की भूमि पर आवश्यक माना गया है।"[28] रस सिद्धान्त से सम्बन्धित इस कौशल के प्रति नवीन कवियों का विरोध है। 'नयी कविता' का कवि रस सिद्ध कवि कहलाने की अपेक्षा 'वाक् शिल्पी' कहलाना अधिक समीचीन समझता है।

'नई कविता' प्रयोगवाद का विकसित रूप ही है, जो कि समकालीन प्रवृत्तियों को समाहित कर एक नवीन काव्यधारा के नाम से अभिहित हुई है। नई कविता के कवियों के नाम नीचे क्रमशः दिए

जा रहे हैं -

मुक्तिबोध, नेमिचन्द्र जैन, प्रभाकर माचवे, रामविलास शर्मा, अज्ञेय, भारतभूषण अग्रवाल और गिरिजाकुमार माथुर। भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती।

प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, मदन वात्स्यायन, केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजयदेव नारायण साही और सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

जगदीश गुप्त, लक्ष्मीकांत वर्मा, बालकृष्ण राव, अजित कुमार, दुष्यन्त कुमार, श्रीकान्त वर्मा, शम्भूनाथ सिंह, सिद्धनाथ कुमार, विपिन अग्रवाल, राजीव सक्सेना और राजेन्द्र यादव आदि।

उपरोक्त कवियों की सन् 50 से 60 के बीच की रचनाएँ 'नयी कविता' के अन्तर्गत आती हैं। इनकी कविताओं में काव्य के प्रति एक सुस्थिर दृष्टिकोण का विकास हुआ है। पूर्ण रूप से वादमुक्त स्वतन्त्र काव्यधारा होना 'नयी कविता' की प्रथम विशेषता है। समस्त सामाजिक क्रिया व्यापारों का यथार्थ चित्रण नयी कविता में पूर्ण वैचारिक तीव्रता के साथ हुआ है। 'नयी कविता' इन कवियों की संवेदना, सस्वर चिन्तन और शिल्प समसामयिकता का परिणाम है।

नई कविता की प्रवृत्तियों में अस्तित्ववाद, प्रकृति चित्रण, विषय विधान की सूक्ष्मता का आग्रह, नगरीय एवं ग्रामीण परिस्थितियों का सूक्ष्म चित्रण, मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि आदि मुख्य रूप से विवेचनीय हैं। इनके अतिरिक्त उपमान, प्रतीक और विम्बों के नवीनतम प्रयोग भी दृष्टव्य हैं। मुक्त छन्दों के साथ-साथ गीत-प्रगीतों का भी प्रयोग इन कवियों ने पर्याप्त मात्रा में किया है।

'नयी कविता' में प्रकृति को आलम्बन, मानवीकरण, उद्दीपन, अलंकार, उपदेश और प्रतीक रूपों में चित्रित किया गया है। सार्त्र ने अपने प्रत्येक क्रियाकलाप एवं उसकी परिणति के लिए मनुष्य को स्वयं उत्तरदायी माना है। अस्तित्ववाद न भगवान को मानता है न किसी मानवीय सम्बन्ध और मूल्यों को। नास्तिक व्यक्ति के लिए सम्पूर्ण विश्व नितान्त अपरचित और पराया है। यह पीड़ाबोध उसे निरन्तर मृत्यु संत्रास की ओर ले जाता है -

देखता हूँ कहाँ क्या है नहीं कुछ भी तो नहीं।
चार दीवारें घिरी हैं, जो पारदर्शी हैं
एक छत है जो गहरे नीले समुन्दर-सी है,
बन्द अँधियारी गुफाओं से अनगिनत कमरे
यह है वीरान इमारत जो मेरे घर-सी है।

....

इसी महल में जनम कैद मिली है मुझको

बन्द कमरों के सफर के हैं दिन हजार अभी।

तोड़ शीशे की ये दीवारें कहाँ जाऊँगा ?

मुझको बाहर का पता है, कहीं कुछ भी तो नहीं।[29]

अस्तित्ववादी कवि का समस्त संसार को संस्कारित करने का प्रयत्न प्रतिकूल परिवेश के कारण किसी भी प्रकार से सफल नहीं हो पाता और वह व्यग्र हो उठता है -

जब-जब सिर उठाया

अपनी चौखट से टकराया

मस्तक पर लगी चोट

मन में उठी कचोट

अपनी ही भूल पर मैं

बार-बार पछताया।

'शीश झुका आओ' बोलीं

भीतर की दीवारें

दोनों ने ही मुझे छोटा करना चाहा।[30]

वेदना और दुःख उसकी मूल संवेदना है। इनसे मुक्त होने का अन्तिम विकल्प वह मृत्यु को ही मानता है। इस मृत्यु को साक्षात्कार एवं आत्म विकास की उच्च्व दशा के रूप में वह स्वीकार करता है। धर्मवीर भारती के 'अंधा युग' और कुँवर नारायण के 'आत्मजयी' में अस्तित्ववादी संवेदना और समग्र चेतना का सफल चित्रण हुआ है।

यान्त्रिक युग में अपने संस्कारों तथा विशिष्टता को खो चुका मनुष्य मोहवश अपने आप को ही नहीं पहचान पा रहा है -

आज की दुनिया में विवशता/भूख/मृत्यु

सब सजाने के बाद ही

पहचानी जा सकती हैं

बिना आकर्षण के दुकानें टूट जाती हैं।

शायद कल उनकी समाधियाँ नहीं बनेंगी

जो मरने के पूर्व कफन और फूलों का

प्रबन्ध नहीं कर लेंगे।

ओच्छी नहीं है दुनियाँ

मैं फिर कहता हूँ

महज उसका

सौन्दर्य बोध बढ़ गया है।[31]

धर्मवीर भारती की इस कविता में लघुमानव अर्थात् सामान्य मानव की अदम्य शक्ति व जीवन की चिर सार्थकता दृष्टव्य है –

मैं रथ का टूटा हुआ पहिया हूँ लेकिन मुझे फेंको मत

क्या जाने कब इस दुरूह चक्रव्यूह में,

अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ

कोई दुस्साहसी अभिमन्यु घिर जाए।[32]

नयी कविता में अधिकतर उपमानों का ऐसा प्रयोग हुआ है कि उसमें प्रस्तुत विषय की उपेक्षा कर अप्रस्तुत के चयन पर बल दिया गया है। प्रकृति संबंधी शुद्ध, संश्लिष्ट और भावात्मक उपमानों का नए ढंग से प्रयोग नई कविता में किया गया है। प्रतीकों और बिंबों का विपुल प्रयोग 'अंधा युग' और 'कनुप्रिया' में देखने को मिलता है। व्यंग्यार्थ प्रधान 'नयी कविता' के चित्र आज के मानव की साधारणता एवं क्षुद्रता के कारण लघु एवं सामान्य हैं। भाव व्यंजना और बौद्धिकता के सामंजस्य से पूर्ण उपरोक्त कविता की बिम्ब योजना अपूर्व बन पड़ी है।

नयी कविता शिल्प को मात्र वाह्य अन्विति नहीं मानती, बल्कि उसे व्यक्ति-सत्य से संयोजित करने का प्रयास भी करती है। उसकी भाषा में सरलता और स्पष्टता के साथ-साथ नए और अधिक अर्थ प्रकट करने की सामर्थ्य है।

सन् 1960 के पश्चात् की काव्यधारा तेजी से बढ़ रही महँगाई, भुखमरी और सन् 62 के भारत-चीन युद्ध से प्रभावित होकर कई अलग-अलग खेमों में विभक्त होकर विविध नामों से पुकारी गई, यथा – "सनातन सूर्योदयी कविता, अन्यथावादी कविता, सीमांतक कविता, युयुत्सुवादी कविता, अस्वीकृत कविता, अकविता, सकविता, अभिनव कविता, अधुनातन कविता, नूतन कविता, नाटकीय कविता, ऐंटी कविता, निर्दिशायामी कविता, लिंग्वादल मोतवादी कविता, एब्सर्ड कविता, गीत कविता, नव प्रगतिवादी कविता, सांप्रतिक कविता, बीट कविता, ठोस कविता, विद्रोही कविता, क्षुत्कार कविता,

समाहारात्मक कविता, कबीरपंथी कविता, उत्कविता, विकविता, बोध कविता, द्वीपांतर कविता, अति कविता, टटकी कविता, ताजी कविता, प्रतिबद्ध कविता, अगली कविता, शुद्ध कविता, नंगी कविता, स्वस्थ कविता, सही कविता, प्राप्त कविता, सहज कविता, नवगीत, अगीत और ऐंटी गीत आदि।''[33]

नई कविता के बाद इनमें से अधिकांश धारणाएँ अल्पकाल में ही सीमित नारों के साथ ही समय के गर्त्त में समा गई, जबकि अकविता, साठोत्तरी कविता और नवगीत एक सीमा तक अपना नाम तथा अस्तित्व बचाने में सफल रहीं।

साठोत्तरी कविता सन् 69 में प्रकाशित 'उन्मेष' पत्रिका के माध्यम से प्रकाश में आयी। तत्पश्चात सलिल गुप्त ने स्वयं को मिलाकर छह कवियों का संकलन निकाला जिसके कवि हैं – सुरेश, सलिल, बैजनाथ गुप्त, जीवन शुक्ल, ललित शुक्ल, सलिल गुप्त और चन्द्रेश गुप्त। साठोत्तरी कविता समाजवादी राष्ट्रीयता पर बल देने वाली घुटन एवं संघर्ष से उत्पन्न मानवतावादी कविता है।

आधुनिक मानव का विकृत स्वरूप एवं निरन्तर अस्थिर हो रहा चरित्र साठोत्तरी कविता की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसमें कवि दृष्टि साहित्य पर कम समाज पर अधिक केन्द्रित हुई है। नई पीढ़ी के समान ही इस कविता में समग्र दिशा बोध का अभाव है। मोटे तौर पर 'तीसरा सप्तक' के प्रकाशन वर्ष 1959 के बाद की कविता को साठोत्तरी कविता कह दिया जाता है।

नई कविता के समय से ही अपना प्रभाव जमाने वाली नवगीत काव्य धारा का नाम फरवरी 1958 में फरीदपुर से प्रकाशित 'गीतांभिनी' पत्रिका में सर्वप्रथम आया। नवगीत रचनाकारों का एक संकलन सन् 64 में ओमप्रभाकरके संपादन में प्रकाशित हुआ। ये रचनाकार हैं- निराला, अज्ञेय, जानकी बल्लभ शास्त्री, त्रिलोचन, गिरिजा कुमार माथुर, नरेश मेहता, ठाकुर प्रसाद सिंह, धर्मवीर भारती, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, केदारनाथ सिंह, उमाकान्त मालवीय ओमप्रभाकर, जगदीश गुप्त, जुगमन्दिर तायल, देवेन्द्र कुमार, नवीन, नरेश सक्सेना, नीलम सिंह, रमेश कुन्तल मेघ, रवीन्द्र भ्रमर, राजीव सक्सेना, रामदरश मिश्र, रामविलाश शर्मा, वीरेन्द्र मिश्र, शम्भूनाथ सिंह, श्यामसुन्दर घोष, श्रीकान्त जोशी और सोमठाकुर आदि। डॉ० ओ३म प्रकाश अवस्थी ने नवगीतकारों की प्रवृत्तियों के बारे में लिखा है – ''नवगीतकार की अपनी आस्था है और उस आस्था को वह पलायनवादी बनकर नहीं एक तटस्थ दर्शक बनकर भोगता है। आधुनिक युग के सौन्दर्य को एक नए ढंग से ग्रहण करता है। गीतकार में एक आन्तरिक फैशन होता है। इसलिए बदलते परिवेश को जब सारा समूह संस्कृति का विघटन करने लगता है तो उस फैशनवादी सभ्यता में भी वह अपने लिए कुछ न कुछ आस्था के लिए पा ही लेता है।''[34]

वस्तुतः नवगीत नई कविता का ही छंदबद्ध रूप है जो नई कथ्यात्मक दृष्टि से अभिसिंचित है और जिसका प्रवाह साठोत्तरी युग में दिखाई पड़ने लगता है। प्रवृत्यात्मक दृष्टि से इस कविता में सरसता व भावात्मकता की प्रधानता है।

साठोत्तरी कविता के पश्चात् समकालीन कविता तथा सप्तकोत्तर कविता का समय आता है। डॉ० नगेन्द्र ने समकालीन कविता सन् 1975 के बाद की कविता को कहा है जबकि सप्तकोत्तर कविता सन् 1979 में प्रकाशित 'चौथा सप्तक' के बाद की कविता है। समाकालीन कविता ने नयी कविता की सघन बिंबात्मकता के विरोध में सपाटबयानी को अपनाया। फिर सपाटबयानी खत्म हुई और कविता ने बिंबात्मकता और रूपकीकरण का आश्रय लिया।

सप्तकोत्तर कविता मुख्यतः सन् 80 से अब तक की कविता है जो तकनीक के विस्तार और भूमण्डलीकरण के प्रभाव से युक्त है। सप्तकोत्तर कविता में पुरानी लीक को छोड़कर नयी लीक में चलने की विकलता है। इनके सरोकार, संवेदना और मुहावरे में कुछ न कुछ ऐसा है, जो पहली बार है, अनकिया और अनछुआ है। ये मनुष्य के रंज, असमंजस, असुरक्षा और विकल्पहीनता की बिल्कुल नयी तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इनमें हमारे विषम समय और समाज की अंतर्विरोधपूर्ण सोच की नयी पहचान और समझ है। सप्तकों के बाद नवीन बिम्बों, उपमानों तथा प्रतीकों का प्रयोग भी हुआ है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि छायावादोत्तर कविता का विषय क्षेत्र काफी व्यापक रहा है तथा काव्य के वस्तुगत स्वरूप में पर्याप्त नवीनता दृष्टिगत होती है। आलोच्य युग का कवि अलौकिक या आध्यात्मिक चरित्रों की अपेक्षा जीवन एवं समाज के यथार्थ चरित्रों तथा उनके क्रिया-कलापों को विशेष महत्त्व प्रदान करता है। मिथक, बिम्ब इत्यादि का प्रयोग नवीन धरातल पर युगीन संदर्भों में ही किया गया है। छायावादोत्तर कविता बोलचाल की कसौटी पर भी खरी उतरती है। यह वह बिन्दु है जहाँ इस युग की कविता पूर्ववर्ती काव्यधाराओं से अलग खड़ी दिखाई देती है।

(ग) छायावादोत्तर कविता एवं सप्तकों में सम्बन्ध

सन् 1935 से छायावादोत्तर युग पहले प्रगतिशील और फिर प्रगतिवाद नाम धारण कर आगे बढ़ा। सन् 43 में अज्ञेय द्वारा सम्पादित 'तारसप्तक' के समय से ही प्रगतिवाद के अवसान तथा प्रयोगवाद के प्रारम्भ होने की अवधि मानी जाती है। प्रयोगवाद के विकास में 'तार सप्तक' का अद्वितीय योगदान रहा है। 1951 में 'दूसरा सप्तक' और 1959 में 'तीसरा सप्तक' प्रकाशित हुआ। 1951 से 'नयी कविता' और 1960 से 'साठोत्तरी कविता' का नाम लेकर विकसित होने वाली

कविताओं को इन सप्तकों ने एक नवीन राह में मोड़ा। सन् 1975 से समकालीन कविता का दौर शुरू हुआ जिसे 1979 में प्रकाशित 'चौथा सप्तक' ने सुदृढ़ किया। इस प्रकार सन् 1943 से लेकर 1980 तक और इससे भी आगे की कविता अपने पीछे इन चारो सप्तकों के प्रभाव से सतत् प्रभावित होती रही है। प्रगतिवाद से प्रारम्भ हुई कविता की वैज्ञानिक दृष्टि सप्तकों के साथ-साथ चलते हुए निरन्तर विशद और व्यापक होती चली गयी। 'तार सप्तक' 'दूसरा सप्तक' 'तीसरा सप्तक' तथा 'चौथा सप्तक' के कवि इनके प्रकाशन काल में ही पर्याप्त ख्यातिलब्ध हो चुके थे और इनकी कविताओं को समकालीन हिन्दी साहित्य की कविता का प्रतिनिधित्व करने का श्रेय भी दिया जाता है।

छायावादोत्तर कविता और चारों सप्तकों में सम्बन्धों की चर्चा पृथक-पृथक निम्नवत प्रस्तुत है-

(अ) छायावादोत्तर कविता और 'तारसप्तक' में सम्बन्ध

'तारसप्तक' सात युवा अन्वेषी कवियों की कविताओं का संकलन है। इनकी कवितओं में भावनात्मक जटिलता के साथ-साथ गहन संवेदनशीलता भी दृष्टिगत होती है। प्रायः इन सभी की कविताओं में एक नवीन स्वर विकसित करने की ललक दिखायी पड़ती है। मुक्तिबोध अपनी कविता 'अशक्त' में इसी स्वीकारोक्ति को दोहराते हैं-

जब कि शंकाकुल तृषित मन खोजता

बाहरी मरू में अमल जल स्रोत है,

क्यों न विद्रोही बनें ये प्राण जो

सतत अन्वेषी सदा प्रद्योत हैं।[35]

इस संग्रह में संक्रान्तिकालीन युगीन संघर्ष के रूप में प्रयोग का प्रारम्भिक रूप दिखायी देता है। प्राचीनता और नवीनता का संघर्ष, व्यक्ति सत्य और समष्टि सत्य का संघर्ष तथा शिल्पादि में आमूल परिवर्तन परिलक्षित होता है।

प्रगतिवादी कविता का प्रौढ़ स्वरूप 'तार सप्तक' की कविताओं में स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। परवर्ती काव्य प्रगति में 'तार सप्तक' की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इन कवियों ने अपनी उलझी हुई संवेदनाओं को आम आदमी तक पहुँचाने का प्रयत्न अपनी कविताओं में किया है।

किसानों के श्रम पर भूस्वामियों का वर्ग निरन्तर भोग विलास करता आया है। आर्थिक असमानता और सम्पत्ति के अनुचित बँटवारे को लेकर सत्ताधारियों के धन संग्रह का विरोध प्रगतिवादी कवि इस प्रकार करता है-

सबके लिए समर्पण सब कुछ

अपना अहं पुरातन नूतन

जीवन के दिन रात प्रहर क्षण

आलिंगन, आकर्षण, चुम्बन,

सामूहिक अष्टांग समर्पण

अपनी अपनी भिन्न इकाई का

अब कोई मूल्य न दर्शन।[36]

'तार सप्तक' के कवि भी ऐसी सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते हैं जिसमें तिल-तिल करके जोड़ा गया धन पूँजीपतियों, के लगान, कर्ज-किश्त इत्यादि में चला जाता है :-

बहुत कुछ जायेगा लगान

कुछ जायेगी कर्ज-किश्त

बाकी रह जायेगी

झोपड़ियों की उन भूखी अँतड़ियों के लिए सूखी

एक बेर रोटी.......।

क्या यह नीति खोटी नहीं ?

गेहूँ मोती-से दाने जो पसीने से

उगाये, अरे बदे हों उसी के भाग

आँसू के दाने सिर्फ।

सींचे वही खून जो लगाये वह सीने से।[37]

परजीवी सुख भोगी, पूँजीपति, मजदूर वर्ग की मेहनत से बने धर्मशाला, विद्यालय, होटल, मन्दिर, सिनेमा आदि उपकरणों पर एकाधिकार बना लेता है-

घाट, धर्मशालें अदालतें

विद्यालय, वेश्यालय सारे

होटल दफ्तर, बूचड़ खाने

मन्दिर, मस्जिद, हाट सिनेमा

श्रमजीवी की उस हड्डी को

सभ्य आदमी के समाज ने

टेढ़ी करके मोड़ दिया है।[38]

मुक्तिबोध ने 'तार सप्तक' में पूँजीवाद के वैभव को घृणित तथा सामूहिक क्रान्ति की ज्वाला में ध्वंस करने योग्य बताया है-

इतना काव्य, इतने शब्द, इतने छन्द

जितना ढोंग, जितना भोग है निर्बन्ध;

इतना गूढ़, इतना गाढ़, सुन्दर जाल

केवल एक जलता सत्य देने टाल।

छोड़ो हाय, केवल घृणा औ' दुर्गन्ध

तेरी रेशमी वह शब्द संस्कृति अन्ध

देती क्रोध मुझको, खूब जलता क्रोध

तेरे रक्त में भी सत्य का अवरोध

तेरे रक्त से भी घृणा आती तीव्र

X X X X X

तू है मरण, तू है रिक्त, तू है व्यर्थ

तेरा ध्वंस केवल एक तेरा अर्थ।[39]

प्रगतिवादी कवि रूसी क्रान्ति से अपने जीवन विधान के प्रति जागरूक चेतना का संकेत अपनी कविता में देने से नहीं चूकता है-

कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाए

एक हिलोर इधर से आए, एक हिलोर उधर से आए,

X X X X X X X

नाश और सत्यानाशों का धुआँ धार जग में छा जाए,

बरसे आग जलद जल जाए, भस्म भूधर हो जाए।[40]

तार सप्तकीय कवि भी रूसी क्रान्तिकारी चेतना पर मुग्ध हो नाजीवाद का विनाश एवं नए रूस के सृजन का पक्षधर बन जाता है-

ओ जल्लाद। कहाँ है अब तेरा टिड्डी-दल ?

तू होगा बर्बाद

जहाँ कल छोड़ गया था तू जलते मजदूरों के घर।

जलता था जो कल रूसी घर

वहीं बनेगा एक नया घर

पहले से भी मनहर सुन्दर

लेकिन आज,

गिरेगा तुझ पर बनकर गाज,

रूसी इंकलाब का धन

स्तालिन का फौलादी धन

जलता था कल रूसी घर,

आज वहाँ पर जलता है फासिस्ट और नाजी बर्बर।[41]

छायावादोत्तर कविताओं में सभी कलाकारों ने प्रायः छन्द बन्धन के प्रति अपनी विरक्ति दिखाई है-

जो अबन्ध है उसे छन्द के प्रति कैसी अनुरति।[42]

प्रयोगवादी कवियों ने भी मुक्त छन्दों को उचित विरामादि से सरलता व सुस्पष्टता प्रदान करने की कोशिश की है-

आज हैं केसर रंग रंगे वन

रंजित शाम भी फागुन की खिली पीली कली-सी

केसर के वसनों में छिपा तन/सोने की छाँह-सा

बोलती आँखों में

पहिले वसन्त के फूल का रंग है

गोरे कपोलों पे हौले से आ जाती

पहिले ही पहिले के

रंगीन चुम्बन की-सी ललाई।[43]

'तार सप्तक' का कवि मानव जीवन को असार, अपदस्थ और हीन बनाने वाली छायावादी संकीर्ण भाव भूमि और तदनुरूपी परिनिष्ठत भाषा को त्यागने का आग्रह करता है-

कवि तोड़ो अपना शब्द जाल, जो आज खोखला शून्य हुआ

यह है अपने पुरखों की वैभव भोगमयी कलुषित वाणी

मदमत्त विलासिनी। त्याग इसे बनना है तुझको तो अगुआ।[44]

प्रयोगवादी कविता में अनुभूति मूलक विवृत्ति के प्रति कवि का मानसिक अन्तर्द्वन्द्व समष्टि

चेतना का संघर्ष बनकर उसकी विवशता को प्रकट करता है-

मै निरा विलायती स्पंज हूँ

मेरे प्राण रिक्त और छिद्रमय, उनमें कहाँ है रस,

उनमें कहाँ है स्रोत।

मैं तो मात्र बाहर के जीवन को सोखकर फिर उगल देता हूँ

X X X X X X X X

तप और साधना से कोसों दूर

अपनी बनावट से मजबूर

मैं मशीन युग का हूँ मात्र एक छोटा यंत्र

योग नहीं हो तो उपयोग भले मेरा हो।[45]

नूतन सर्जना और भावाभिव्यक्ति के क्रम में छायावादोत्तर कविता में प्रगतिवाद से आगे प्रयोगवाद तक में उपमान योजना वैज्ञानिक और यान्त्रिक (औद्योगिक) जीवन के प्रभाव की गहराई को दर्शाती है। उपरोक्त पंक्तियों के अतिरिक्त आँखें कैमरे के लेन्स, मुख लाउडस्पीकर, पैर टाइपराइटर की, हृदय, साइंस, मेगनेट जैसे उपमानों से सजाए गए -

बहुत बड़ा व्यंग्य है

और सत्यों की चुम्बकीय शक्ति

वह मेगनेट

हाँ, वह अनंग है।.............[46]

सुमित्रानन्दन पन्त की प्रगतिवादी कविता 'चन्द्रलोक' में प्रथम बार और लक्ष्मीकांत वर्मा के काव्य संग्रह 'तीसरा पक्ष' में संकलित कविताओं में अन्तरराष्ट्रीयता का स्वर मुखरित हुआ है। 'तार सप्तक' का कवि भी इस प्रकार की मंगल कामनाओं को अपनी कविता में प्रकट करने में पीछे नहीं है-

आयी है दुनिया अब सूक्ष्म के किनारों तक,

उठने लगी है मन्द आज यवनिका विराट्

दिखने लगे हैं कुछ झिलमिल अनन्त लोक,

होने लगा है दिव्य का अबूझ आभास।

मन पर से परदों का कुहरा हटा जाता है-

अब तक थी भूमिका, इतिहास अब आता है।[47]

तार सप्तक की कविता छायावाद के पश्चात की नव प्रवृत्तियों यथा- जिज्ञासावृत्ति, वैज्ञानिक दृष्टि, आत्म चेतना, प्रभावोत्पादकता, नमोन्मेष, नवरोमान, यथार्थ दृष्टि, अन्तरराष्ट्रीय उन्मुखता, परिवेश के प्रति गहरी जागरूकता और अन्तः-वाह्य संघर्ष आदि का सतत संवहन करती हुई देश-काल की सीमाओं से परे अपनी उत्कृष्टता को प्रमाणित करती है।

(आ) छायावादोत्तर कविता और 'दूसरा सप्तक' में सम्बन्ध

अज्ञेय ने 'दूसरा सप्तक' में भी सात ऐसे नये युवा कवियों की रचनाएँ प्रस्तुत की हैं, जो किसी स्वतंत्र कविता-संग्रह के लिए नहीं बल्कि स्फुट कविताओं के द्वारा ही हिन्दी कविता के मंच पर आसीन हो चुके थे। ये सात कवि है- भवानी प्रसाद मिश्र, शकुन्त माथुर, हरिनारायण व्यास, शमशेर बहादुर सिंह, नरेश मेहता, रघुवीर सहाय और धर्मवीर भारती। 'दूसरा सप्तक' की कविताएँ प्रयोगवाद तथा नयी कविता की विभाजक रेखा की भाँति व्यवहृत होती हैं। इन कविताओं में जहाँ एक ओर प्रयोगवाद अपनी पूर्णता को प्राप्त करता है तो दूसरी ओर नयी कविता के बिगुल को भी फूँका गया है। छायावादी भाषा की बारीकियों तथा क्लिष्टता का विरोध 'दूसरा सप्तक' की कविताओं में स्पष्ट तथा सरल शब्दों में अनुभूति चित्रण के माध्यम से हुआ है। कविता आम आदमी की भाषा बनाने पर डॉ० धर्मवीर भारती का वक्तव्य भी द्रष्टव्य है- ''भाषा भाव की पूर्ण अनुगामिनी रहनी चाहिए, बस। न तो पत्थर का ढोंका बन कर कविता के गले में लटक जाये और न रेशम का जाल बन कर उसकी पाँखों में उलझ जाये।''[48]

फ्रायड के मनोविश्लेषणवाद का प्रभाव प्रयोगवाद से लेकर नयी कविता तक सर्वत्र किसी न किसी रूप में दिखायी पड़ता है। फ्रायड ने मानव मन की उपचेतन सत्ता को यौन कुंठा के निरूपण में सर्जनात्मक उपलब्धि की प्रेरणादायिनी सत्ता भी माना है। अपने अनुकूल परिवेश में यह सत्ता मानव मन का स्वस्थ विकास करती है और प्रतिकूल परिस्थितियों में मृत्यु की प्रवृत्ति धारण कर विनाशक भी बन जाती है। भोगमय रतिक्रीड़ा और वासनामय अश्लीलता का जितना ओजस्वी, ऐन्द्रिय और सटीक चित्रण कुंठा-दर्शन के अन्तर्गत हुआ है; उतना अन्यत्र कहीं नहीं-

पूर्णमासी रात-भर

पीती रही सुधा

अंक में शशि के सिमटकर

धोती रही श्यामल बदन

सुध बुध बिसार

दिन सरीखी श्वेत चादर ढाँक

उस सुनहली सेज पर

तारकों का जाल था जिस पर बना

पूर्णिमा की सुख-भरी थी रात।[49]

मनोविश्लेषणवाद से प्रभावित प्रबल कुंठा का निदर्शन कराने वाली अतियथार्थवादी दृष्टि अज्ञेय की इन पंक्तियों में प्रतिबिम्बित होती है-

चेतना है चाँदनी सित

झूठ वह आकाश का निरवधि गहन विस्तार-

शिशिर की राका-निशा की शान्ति है निस्सार।

दूर वह सब शान्ति, वह सित भव्यता, वह

शून्य के अवलेप का प्रस्तार-

निकट-तर-धँसती हुई छत, आड़ में निर्वेद

मूत्र सिंचित मृत्तिका के वृत्त में

तीन टाँगों पर खड़ा नत-ग्रीव

धैर्यधन गदहा।[50]

फ्रायड के पश्चात जुंग और एडलर ने काम और अहं सम्बन्धी व्याख्याएँ दीं। जुंग ने तो अहं को ही व्यक्ति का विधायक तत्त्व माना है। काम और अहं दोनों मानव मन की सहज वृत्तियाँ हैं, जो कि साहित्य और कला में भी अपनी पैठ बनाती रहती हैं। अज्ञेय ने 'तार सप्तक' में अपने अहं को स्वीकार करते हुए लिखा है- ''अन्य मानवों की भाँति अहं मुझमें भी मुखर है और आत्माभिव्यक्ति का महत्त्व मेरे लिए किसी से कम नहीं हैं, पर क्या आत्माभिव्यक्ति अपने आप में सम्पूर्ण है?''[51]

नरेश मेहता की 'अहं कविता' इस परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत है-

विश्व के इस रेत वन पर

मैं अहं का मेघ हूँ

उन दिशा की दासियों के संगमरमर के करों में,

जय वस्त्र मेरा है थमा।

कौन हो तुम?

चाहते किसके पलक असगुन?

क्या नहीं तुम देखते

आज मेरे अहं कन्धों पर गगन बैठा हुआ।

अहं पर ये अश्रु किसके?[52]

इनमें अहं की अन्तर्वाह्य चेतना यथार्थ रूप में दिखाई देती है। कवि व्यक्ति-सत्य और आत्माभिव्यक्ति को अहं के रूप में पाना चाहते हैं। मुक्तिबोध की 'नूतन अहं' कविता में-

अहं भाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में

जैसे घूरे पर उट्ठा है

धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।[53]

और 'आत्म संवाद' कविता में

सफल हूँ (पथ भ्रष्ट हूँ) अविजेय हूँ (आधीन हूँ मैं)

हृदय में घुन-सा लगा रहता

(पाप यह दारुण जगा रहता)

मैं महाशोधक महाशय सत्य-जल का मीन हूँ मैं

सत्य का मैं ईश औ' मैं स्वप्न का हूँ परम स्रष्टा।[54]

मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से आक्रान्त छायावादोत्तर कविता में प्रकृतिपरक प्रतीकों का प्रयोग कम और यौनगत कामपरक, पौराणिक, दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग अधिक हुआ है। प्रकृति परक काम सम्बन्धी प्रतीकों के लिए भारत भूषण अग्रवाल की कविताएँ तथा स्वप्न सम्बन्धी प्रतीकों के लिए अज्ञेय की कविता 'चार का गजर' प्रसिद्ध है। अज्ञेय की 'आँगन के पार द्वार' 'असाध्य वीणा' एवं अरी ओ करूणा प्रभामय' कविताएँ दार्शनिक प्रतीकों के सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। 'दूज का चाँद' उनकी अद्वैत दृष्टि की परिचायक है-

मेरे छोटे घर कुटीर का दिया

तुम्हारे मन्दिर के विस्तृत आँगन में

सहमा-सा रख दिया गया।[55]

स्वप्न प्रतीकों का चित्रण 'दूसरा सप्तक' में शमशेर बहादुर सिंह ने इस प्रकार से किया है-

मकई से लाल गेहुँए तलुए

मालिश से चिकने हैं।..........

सूखी-भूरी झाड़ियों में व्यस्त

चलती फिरती पिण्डलियाँ !.......

(मोटी डालें जाँघों से न अड़ें।)

सूरज को आईना जैसे नदियाँ है

इन मर्दाना रानों की चमक

'उन' को खूब पसन्द।.................[56]

अन्तरराष्ट्रीय भावना की दृष्टि से छायावादोत्तर कविता और सप्तकों का विशेष महत्त्व है। राष्ट्रों की विस्तारवादी साम्राज्यवादी शक्तियों की हिंसक प्रवृत्तियों की आलोचना करते समय कवि-दृष्टि अन्तरराष्ट्रीयता की ओर उन्मुख दिखायी देती है-

हम जैसे अगणित मनुजों का

जग में हाल एक-सा है

शोषण, पीड़न यही सभी की

यही असह्य दुर्दशा है।[57]

''गिरिजा कुमार माथुर की 'एशिया का जागरण' शीर्षक कविता इसी राजनीतिक चेतना एवं अन्तरराष्ट्रीय की भावना को सँजोये हुए है। 'पहिए' तथा 'पूरब किरन' कविताओं में भी विश्वबन्धुत्व एवं समानता की भावना को वाणी प्रदान की गई है।''[58] नरेश मेहता की 'समय देवता', हरिनारायण व्यास की 'नेहरू जी के प्रति' तथा भवानी प्रसाद मिश्र की 'प्रलय' कविताएं' 'दूसरा सप्तक' से अन्तरराष्ट्रीयता का स्वर मुखर करने वाली कविताएँ हैं -

इस दुःखी संसार में जितना

बने हम सुख लुटा दें,

बन सके तो निष्कपट मृदुहास के,

दो कन जुटा दें।[59]

छायावादोत्तर कविताओं में प्रगतिवाद से निरन्तर मुक्तछन्द में लिखी गयी कविताओं की संख्या में वृद्धि होती रही है। मुक्तछंद के अतिरिक्त अंग्रेजी छंद सानेट तथा उर्दू के गजल, रुबाई, शेर आदि का नव्य प्रयोग भी कुछ कवियों ने किया है। शमशेर बहादुर सिंह ने 'कुछ और कविताएँ, संग्रह में मुक्तछन्द के साथ-साथ गजल, शेर, रुबाईयों आदि का प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ-

जहाँ में अब तो जितने रोज

अपना जीना होना है,

तुम्हारी चोटें होनी हैं –

हमारा सीना होना है।[60]

शमशेर के अतिरिक्त दुष्यन्त कुमार, रघुवीर सहाय आदि कवियों ने भी कवि या शायर का परम्परागत ढंग से नाम न देकर भावपूर्ण गजल लिखे हैं। रघुवीर सहाय की एक गजल 'दूसरा सप्तक' से उद्धृत है –

खोल दो अब द्वार प्रेयसि, प्रात का

मुक्त हो बन्दी अभागिन रात का।

जानता हूँ किसलिए बिखरा तिमिर

क्योंकि खिलता था हृदय जलजात का।

तप्त है ज्वर से उजाले का बदन

उष्ण है स्पर्श तेरे गात का।[61]

परम्परागत लोकगीतों पर भी रामविलाश शर्मा, भवानी प्रसाद मिश्र, नागार्जुन, धर्मवीर, शमशेर, त्रिलोचन, सर्वेश्वर दयाल, केदार नाथ सिंह आदि कवियों ने विशेष ध्यान आकृष्ट किया है। भवानी प्रसाद मिश्र, और शमशेर की कविताओं के एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

बादल आये आसमान में धरती फूली री,

अरी सुहागिन, भरी मांग में भूली-भूली री,

बिजली चमकी भाग सखी री, दादुर बोले री,

अन्ध प्राण ही बही, उड़े पंछी अनमोले री।[62]

और

निंदिया सतावें मोहें सँझही से सजनी।

सँझही से सजनी।

प्रेम-बतकही

तनक हू न भावे

सँझही से सजनी।

निंदिया सतावे मोहें।[63]

प्रगतिवादी कवियों ने ही नहीं अपितु प्रयोगवादी और सप्तकीय कवियों ने भी भाषा की

अर्थवत्ता तथा स्पष्ट सृजन पर विशेष जोर दिया है। सप्तकीय कवियों ने तो भाषा के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने का बीड़ा ही उठा लिया। शब्दों के नव निर्माण तथा संस्कार करने वाली महेन्द्र भटनागर की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

मेरी वासनायें

हिमालय से प्रवाहित

वेगगा भागीरथी की

शुभ धारों की तरह।[64]

भाषा की सहजता और सरलता भवानी प्रसाद मिश्र की कविताओं में देखने को मिलती है-

यह गीत, सख्त सरदर्द भुलायेगा;

यह गीत पिया को पास बुलायेगा।

जी पहले कुछ दिन शर्म लगी मुझको

पर पीछे-पीछे अक्ल जगी मुझको;

जी, लोगों ने तो बेच दिए ईमान।

जी, आप न हों सुनकर ज्यादा हैरान।

मैं सोच-समझकर आखिर

अपने गीत बेचता हूँ;

जी हाँ हुजूर, मैं गीत बेचता हूँ।[65]

प्रयोगवादी प्रवृत्तियों निराशा, विवशता, दर्द, घुटन, विषाद आदि के साथ-साथ प्रगतिवादी प्रवृत्तियों जन-जन की मुक्ति, आशा का भाव, एकता, मानव व्यक्तित्व पर अडिग आस्था आदि का समन्वित रूप इन पंक्तियों में भरा पड़ा है-

दैन्य दानव! क्रूर स्थिति! कंगाल बुद्धि!

मजूर घर भर! एक जनता का अमर वर।

एकता का स्वर! अन्यथा स्वातन्त्र्य इति।[66]

'दूसरा सप्तक' की कविताओं में प्रगतिवादी-प्रयोगवादी कविताओं का प्रौढ़ रूप नए कलेवर में विद्यमान है। सहज अभिव्यक्ति, सर्वदेशीयता, प्राकृतिक उपादानों की झलक, स्वस्थ चिन्तन और नवयुग का आह्वान आदि काव्य प्रवृत्तियाँ इसे छायावादोत्तर कविता में एक विशिष्ट स्थान दिलाती हैं।

(इ) छायावादोत्तर कविता और 'तीसरा सप्तक' में सम्बन्ध

अज्ञेय ने सप्तकों की परम्परा में तीसरा कदम सन् 1959 में 'तीसरा सप्तक' के सम्पादन के साथ उठाया। 1954 में जगदीश गुप्त तथा रामस्वरूप चतुर्वेदी के सम्पादन में प्रकाशित 'नई कविता' पत्रिका के बाद की कविता 'नई कविता' नाम से अभिहित हुई जिसके विकास एवं परिवर्द्धन का अधिकांश श्रेय अज्ञेय को ही मिला है। 'तीसरा सप्तक' के साथ-साथ 'दूसरा सप्तक' के कवि और 'नयी कविता' पत्रिका के कवियों की नित्य नवीनीकरण की प्रवृत्ति से युक्त कविताएँ 'नयी कविता' के अन्तर्गत आती हैं।

'तीसरा सप्तक' के कवि क्रमशः प्रयागनारायण त्रिपाठी, कीर्ति चौधरी, 'मदन वात्स्यायन', केदारनाथ सिंह, कुँवर नारायण, विजय देव नारायण साही तथा सर्वेश्वर दयाल सक्सेना हैं। 'तीसरा सप्तक' के कवियों की कविताओं में अज्ञेय जी ने कवि के उचित उद्‌देश्य की प्राप्ति के प्रयत्न पर तथा सत्यता के अन्वेषण पर अधिक बल दिया है। प्रगतिवाद की वस्तु-केन्द्रित दृष्टि तथा प्रयोगवाद की शिल्प केन्द्रित दृष्टि, इन दोनों की अर्थवत्ता तथा आवश्यकता को 'तीसरा सप्तक' के कवियों ने स्वीकार किया है। अतः यह कहा जा सकता है कि ये कविताएँ प्रगतिवादी व प्रयोगवादी दोनों प्रवृत्तियों को अपने में समेटे हुए भी अपनी अलग विशेताएँ प्रकट करती हैं। इन कवियों ने रस की सत्ता को यथेष्ट रूप में स्वीकार करते हुए भी विभावन व्यापार आदि काव्यगत रूढ़ियों के परिपालन का विरोध किया है। इनकी कविता युगीन संवेदना को उभारती है। कुँवर नारायण ने तीसरा सप्तक में वक्तव्य दिया है कि " कविता मेरे लिए कोई भावुकता की हाय-हाय न होकर यथार्थ के प्रति एक प्रौढ़ प्रतिक्रिया की मार्मिक अभिव्यक्ति है।"[67]

'तीसरा सप्तक' की कविताओं में अस्तित्ववादी सापेक्षता का प्रभाव है। तीव्र और अन्तर्मुखी आत्मचिंतन के फलस्वरूप कविता भय, आत्मपीड़ा और अनिश्चय की स्थिति को प्रकट किए बिना नहीं रहती -

क्योकि मुझ में पिंडवासी
है कहीं कोई अकेली-सी उदासी
जो कि ऐहिक सिलसिलों से दूर
कुछ सम्बन्ध रखती उन परायी पंक्तियों से!
और जिसकी गाँठ भर मैं बाँधता हूँ
किसी विधि के

विविध छन्दों के कलावों से।[68]

अस्तित्ववादी कवि परतन्त्रता को अपनी स्वतन्त्र चेतना और व्यक्तित्व के प्रतिकूल समझता है-

इस प्रौढ़ परिष्कृत सभ्य सुसंस्कृत

जलसे में सम्भव है क्या?

फिर कहता हूँ, दुनिया के मेले में केवल बच्चा हूँ।[69]

इन कवियों का क्षणवादी काल, सत्य के सूक्ष्म तत्त्व का उद्घाटन करता है। सत्य हर काल में चिरन्तन है और मानवीय ज्ञान, सत्यान्वेषण करते हुए उसका बोध विभिन्न स्तरों पर करता है। वैज्ञानिक अनुसंधानों ने विराट चेतना और काल के दार्शनिक रूप को मानव चेतना से परे न होकर मानवीय ज्ञान सत्ता की परिधि में ही साबित किया तो कवि को नवीन अनुभूति हुई-

उमड़ता ही रहेगा उत्तप्त ताजा लहू

धरती से अजस्र अशेष, आती ही रहेगी धार,

यातना के बीच मेरा गर्व देता है चुनौती-

कोन छीजेगा प्रथमः

रिसती समय की रेत, या अनुभूति का यह क्षुब्ध पारावार?[70]

काल मानवीय चेतना के उपकूल ग्राह्य है। काल सम्बन्धी इसी निजता और अनुभूति सत्य की पूर्वाग्रह से मुक्त चेतना का चित्रण यहाँ दर्शनीय है-

मुझमें विराट हुआ खण्डित : यह सच भी हो

तो रहे!

खण्डित हैं जो, वह विराट है!

मैं तो सम्पूर्ण हूँ अखण्ड हूँ।[71]

'तीसरा सप्तक' का कवि वैयक्तिक चेतना के साथ ही समष्टि चेतना को भी उतना ही आवश्यक मानता है। 'दूसरा सप्तक' के कवि नरेश कुमार मेहता की कविता 'समय देवता' तथा 'तीसरा सप्तक' की कवयित्री कीर्ति चौधरी की कविता 'दायित्व भार' में अपने व्यक्तित्व के प्रति अटूट निष्ठा का भाव देखने को मिलता है-

पर मेरे मन में अमित चाह!

दिखती है मुझको स्पष्ट राह :

कुछ देर भले ही लग जाये

दिन ढले चाँद भी उग आये

मैं कर्मशील,

मैं जागरूक,

दायित्व संभाले बैठा हूँ-

जब होगा तो मुझ से होगा

इस आशा में।[72]

छायावादोत्तर कविता मानव जीवन तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति भी निष्ठावान है-

हिम्मत न हारो!

कंटको के बीच मन-पाटल खिलेगा एक दिन,

हिम्मत न हारो!

X X X X X

निरन्तर राह पर चलते रहोगे तो

तुम्हारा लक्ष्य तुमसे आ मिलेगा एक दिन,

हिम्मत न हारो।[73]

छायावादोत्तर कविता में ऐन्द्रिय बिम्ब और मानस बिम्ब काव्यगत भावों की संवेदनशीलता को प्रखर एवं मूर्त्त रूप में प्रकट करते हैं। ऐन्द्रिय बिम्बों में दृश्य संवेद्य बिम्ब, स्पर्श संवेद्य बिम्ब, श्रवण संवेद्य बिम्ब, सहज एंव अलंकृत वस्तु-बिम्ब, कृषि, सांस्कृतिक, प्रणय सम्बन्धी बिम्ब तथा मानस बिम्ब के अन्तर्गत भाव, विचार, यांत्रिक, गणितीय बिम्ब आदि आते है। सर्वेश्वर की 'प्लेटफार्म', मदन वात्स्यायन की 'शुक्रतारा' कवितायें नवीन यांत्रिक बिम्बों को प्रस्तुत करती हैं-

इंजन के हेड लाइट-सा; शोरगुल के बीच

सूरज निकल गया।

गार्ड की रोशनी-सा पीछे -पीछे गुमसुम अब

शुक्रतारा जा रहा।[74]

कवि अज्ञेय की 'कलगी बाजरे की' कविता की बिम्ब योजना सर्वाधिक नवीन उपमानों पर आधारित है-

अगर मैं तुमको

ललाती साँझ के नभ की अकेली तारिका

अब नहीं कहता, या शरद् के भोर की नीहार-न्हाई कुँई

टटकी कली चम्पे की

वगैरह तो।[75]

लोकगीतों की लय पर भी कविता लिखने का शौक इन कवियों में काफी मात्रा में पाया जाता है। रामविलाश शर्मा, त्रिलोचन, नागार्जुन; सुमन, भवानी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती की कविताएँ लयात्मकता लिए हुए हैं। 'तीसरा सप्तक' के भी कुछ कवियों जैसे-मदन वात्स्यायन और केदारनाथ सिंह की कविताओं में भी इसी गुण को देखा जा सकता है-

धान उगेंगे कि प्रान उगेंगे

उगेंगे हमारे खेत में,

आना जी बादल जरूर।

चन्दा को बाँधेंगे कच्ची कलगियों

सूरज को सूखी रेत में

आना जी बादल जरूर।[76]

और

गोरी मोरी गेहुँअन साँप महुर धर रे, गोरी मोरी गेहुँवन साँप।

फागुन चैत गुलाबी महीने, दोगा पर आई जैसी चाँद।

X X X X X X X

अधर-परस-आकुल मन मेरा आँगन घर न बुझाय,

निशि नहीं नींद, न जाग दिवस में, गोरी मोरी गेहुँवन साँप।[77]

''तीसरा सप्तक' के कवियों की भाषा भी पूर्ववर्ती कवियों की भाँति भावानुगामिनी या विचारानुवर्तिनी खड़ी बोली ही रही है। क्रमशः गद्यमयता बढ़ने के कारण परिष्कारस्वरूप लय-तुक-ताल की ओर परवर्ती कविता उन्मुख हो गयी।

'तीसरा सप्तक' नयी कविता की सहगामी प्रवृत्तियों के साथ-साथ छायावादोत्तर कविता का नूतन संस्कार करने वाली विशेषताओं को समेटे हुए है। मानवतावादी दृष्टिकोण, बोधगम्यता, वाग्वैदिग्ध्य, कवि कर्म की गम्भीरता, भाषा संस्कार और छन्द मुक्तता जैसी प्रवृत्तियाँ इस सप्तक की

कविताओं में यत्र-तत्र विद्यमान हैं।

(ई) छायावादोत्तर कविता और 'चौथा सप्तक' में सम्बन्ध

'तीसरा सप्तक' के बाद 20 वर्ष लम्बी अवधि के पश्चात् सन् 1979 में अज्ञेय के ही सम्पादन में 'चौथा सप्तक' प्रकाशित हुआ। इस अवधि तक कवियों की एक लम्बी जमात खड़ी हो चुकी थी। इन कवियों में से वयस की दृष्टि से काफी अन्तर वाले जिन सात प्रमुख कवियों को इस सप्तक में स्थान दिया गया वे हैं- अवधेश कुमार, राजकुमार कुम्भज, स्वदेश भारती, नन्द किशोर आचार्य, सुमन राजे, श्रीराम वर्मा और राजेन्द्र किशोर। 'तीसरा सप्तक' का दौर 'नयी कविता' का दौर था। उसके बाद 1969 से साठोत्तरी कविता और 1975 से समकालीन कविता आदि काव्य प्रवृत्तियाँ भी काफी मुखर रूप में सामने आयीं। इनके ठीक पहले विभिन्न छुटपुट दौरों के साथ 1965 में अकविता प्रवृत्ति भी इस आन्दोलन में आयी। इन्ही काव्य-प्रवृत्तियों का कुछ संगठित, कुछ पृथक, कुछ विकसित स्वर 'चौथा सप्तक' की कविताओं में प्रस्फुटित हुआ।

अज्ञेय ने 'चौथा सप्तक' की भूमिका में स्पष्ट किया है कि आज की कविता में मुखरित प्रवृत्तियों का बीजवपन प्रगतिवादी और प्रयोगवादी कविता में ही हो चुका था। वक्तव्य की प्रधानता के साथ ही कविता में छाए हुए 'मैं' को उन्होंने कविता का प्रधान दोष बतलाया है–"आज की कविता बहुत बोलती है, जबकि कविता का काम बोलना है ही नहीं।"[78]

'चौथा सप्तक' की कविताओं में स्वायत्तता तथा विराटत्व को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है। इनके अतिरिक्त नारी चेतना, मनोविश्लेषणवाद अस्तित्ववाद, बौद्धिक सजगता, क्रान्तिकारी चेतना, संवेदना, मुक्ति एवं नवयुग की चाह, व्यक्तित्व पर आस्था आदि प्रवृत्तियों का भी सफल निरूपण हुआ है।

वस्तुवादी जीवन दृष्टि तथा ईश्वर विरोधी भावना का जो प्रभाव सुमन की 'विश्वास बढ़ता ही गया', नवीन की 'घूँट हलाहल', जूठे-पत्त्ते और केदारनाथ अग्रवाल की 'पुकार' आदि प्रगतिशील कविताओं में दिखायी पड़ता है वही प्रभाव 'चौथा सप्तक' में नन्दकिशोर आचार्य की 'यदि मान भी लूँ', 'मैं नहीं चाहता', 'बाँसुरीः मोरपाँख' आदि में भी देखने को मिलता है-

नहीं, मैं नहीं चाहता

तुम्हारी मुहर ललाट पर लगा कर

अपनी जमानत देना

और न ढाल ही

बनाना चाहता हूँ तुम्हें

किसी संकट या मृत्यु के विरूद्ध[79]

और

तुम तो पिता हो न?

सच-सच कहो

कैसा लगता है तुम्हें

जब यीशु का रक्त

बूँद-बूँद टपकता है

और तुम्हारा चेहरा और हाथ

अपने ही बेटे के खून से

भीग जाते हैं?[80]

बौद्धिकता और संवेदना का समन्वय प्रगतिवाद से ही कवियों की मुख्य प्रवृत्ति रही है। 'चौथा सप्तक' में अवधेश कुमार की 'लड़ाई' और 'खिलौनों में घटित' कविताएँ इस परिप्रेक्ष्य द्रष्टव्य हैं-

अपना सिर काटा,

एक थाली में सजा कर रख आया उसे

अपने एक पड़ोसी के दरवाजे पर : कागज की

एक पुर्जी लिख कर

'लो निबटो इससे।'[81]

और

एक असल चरम विवशता है। जानिये। उसकी पथरायी आँखों में।

उसके चेहरे पर से, बाजुओं और घुटनों पर से

अभी-अभी मौत की एक घटना, उठ कर चली गयी है।[82]

छायावादोत्तर कवि ने नारी चेतना के स्वरों को प्रसारित करते हुए उसे जड़ता, शोषण एवं परवशता से मुक्त होने की प्रेरणा प्रदान की है। प्रगतिवादी कवि महेन्द्र भटनागर ने भी नारी के परिवर्तन को प्रकट करते हुए नारी से कहा है-

तुम नहीं कोई

पुरुष की जर खरीदी चीज हो,

तुम नहीं

आत्म-विहीना सेविका,

मस्तिष्क हीना सेविका,

गुड़िया हृदय-हीना,

नहीं हो तुम

वही युग-युग पुरानी

पैर की जूती किसी की।[83]

आज की नारी पुरुष प्रधान समाज की नियति के विरोध में आक्रोशित भाव सुमन राजे की इस कविता में दृष्टव्य है-

आखिर नारी होकर, नारी होने को कब तक सहूँ

आप ही न्याय करें हुजूर

जब समय का आक्रोश

धारदार चाकू की नोक की तरह औरत के जिस्म में

उतारा जाता हो।[84]

प्रेम की लौलिक एवं स्वतन्त्र अभिव्यक्ति का पारम्परिक रूप भी 'चौथा सप्तक' की कविताओं में नूतन ढंग से प्रकट हुआ है। अभिव्यक्ति का यह ढंग कहीं-कहीं पर सीमा से पार भी चला गया है-

लोर कान की

मेरी जितनी गोरी

उतनी साँवर है सच, उतनी

छाती की मंजरी तुम्हारी।[85]

और

फूली हुई लता पर

ठिठका हुआ भँवरा

गूँज पर गूँज पर गूँज

लहरें :[86]

प्रणय एवं प्रेम की मांसल अभिव्यक्ति के उदाहरण के तौर पर 'दूसरा सप्तक' की इस कविता

को देखा जा सकता है-

तुम्हारे स्पर्श की बादल धुली कचनार गरमाई

तुम्हारे वक्ष की जादू भरी मदहोश गरमाई

तुम्हारी चितवनों में नरगिसों की पाँत शरमाई

किसी भी मोल पर मैं आज अपने को लुटा सकता।[87]

कुंठाग्रस्त मनः स्थिति का उरेहण प्रयोगवादी कवियों की कविताओं में प्रायः अनुभूतिमूलक विकृति के रूप में हुआ है जबकि नयी कविता के बाद यह बौद्धिकता का आश्रय लिए हुए है-

मैं छूता हूँ तुम्हारा गात, हर अंग-प्रत्यंग

कौन रहा होगा वह संगतराश !

और लो/तुम्हारा बदन अचानक सिहरता है

और तुम जैसे अंगड़ाई लेती हुई

प्रतिमा से बाहर निकल आती हो।[88]

'चौथा सप्तक' के कवियों का बिम्ब विधान, प्रतीक विधान एवं प्रकृति चित्रण चित्रात्मक एवं बहुरंगी है। कल्पना, सरलता, सादगी और अभिव्यंजना परिष्कृति इन पंक्तियों में प्रस्फुटित होती है-

उषा

माँग में ईंगुर भर

पियरी पहन

पैरों में आलता रच

गोद में सूरज का बाल लाल ले

रोशनी का अरघ देती है।[89]

प्रकृति का शुद्ध रूप और तदनुरूप सरल बिम्ब का रूप विधान दूसरे सप्तक के सभी कवियों में दृष्टिगत होता है-

पहली असाढ़ की सन्ध्या में नीलांजन बादल बरस गए

फट गया गगन में नील मेघ

पय की गगरी ज्यों फूट गई

बौछार ज्योति की बरस गई

झर गई बेलसे किरन जुही।[90]

अहं का भाव 'चौथा सप्तक' की कई कविताओं में अपने अस्तित्व को फैलाता और संकुचित करता हुआ अपने सातत्य का बोध कराता है-

कि मैं अपने आप को बदल लूँगा, अतीत

को बदल दूँगा, भविष्य का सारा नक्शा बदल डालूँगा।

कि मैं रंगो की रंगतें और उनका क्रम बदल दूँगा

आवाज की शख्सियत को बदल डालूँगा।[91]

और

मैं कृतज्ञ हूँ उन सभी का

दिन मास, ऋतुओं और वर्षों का,

जिन्होंने मेरे अहम् को बार-बार तोड़ा। डुबोया

बहुत गहरे-[92]

अतः यह कहा जा सकता है कि उपरोक्त काव्य प्रवृत्तियाँ तथा उदाहरण छायावादोत्तर काल के प्रारम्भ से लेकर 'चौथा सप्तक' तक की लम्बी अवधि में सहिष्णुता, सपाटबयानी, प्रकृति की अन्तश्चेतना लयात्मकता इत्यादि का सम्यक् परिष्कार होता चला आया है। 'चौथा सप्तक' की कविता में यह नित्यता, वादमुक्त चिन्तन, और सार्वभौमिकता इन सातों कवियों के विवेक का प्रतिफलन है।

(घ) कविता की प्रकृति के निर्धारण में सप्तकों की भूमिका

'तार सप्तक' से लेकर 'चौथा सप्तक' तक हिन्दी कविता कई रोचक मोड़ों और इतिहासों से होकर गुजरी है। इस 37-38 वर्ष लम्बी यात्रा में इनके सम्पादक अज्ञेय की भूमिका निःसन्देह अनूठी है। भारत की एक मिली-जुली संस्कृति भारतेन्दु युग में ही जन्म ले चुकी थी। इस युग के कवियों ने खड़ी बोली को जन भाषा के रूप में स्थापित करने का स्तुत्य प्रयास किया। इस दिशा में द्विवेदी युग और छायावाद युग के कवियों ने जो कदम उठाए उनसे खड़ी बोली साहित्यिक भाषा के रूप में पूर्णरूपेण विराजमान और सर्वग्राह्य हो गयी। भाषा का स्वरूप स्थिर होने से कविता की प्रकृति का निर्धारण करना भी अधिक सहज हो गया। छायावाद युग में ही छन्द मुक्त कविता ने भी अपने पर पसारे और छन्द के बन्धनों से मुक्त होते ही कविता में नवीन चेतना का प्रादुर्भाव हुआ। प्रगतिवादी कविता इसी नवचेतना से प्रेरित होकर सामाजिक एवं साहित्यिक विषमताओं के उन्मूलन में प्रवृत्त हो गयी। जन-मुक्ति के लिए तीव्र आकांक्षा और बौद्धिक उन्मेष लिए हुए कविता में प्रगतिशीलता आयी। फलस्वरूप द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, वर्ग-संघर्ष, सामाज़िक यथार्थ-बोध, स्वदेश प्रेम, मानवतावाद आदि

कई रूपों में सामने आ रहे थे। सन् 1940-41 तक त्रिलोचन, नागार्जुन, मुक्तिबोध, सुमन, भवानी प्रसाद मिश्र, भारत भूषण अग्रवाल आदि ने कविता में प्रवाह और गति को पैदा कर दिया था। 'तार सप्तक' के तथा कुछ अन्य कवि अपनी रचनाओं में एक नवीन अभिव्यक्ति एवं खास किस्म की शैली को निर्मित कर रहे थे। डॉ० रामविलाश शर्मा ने लिखा है - ''सन् 43-44 में पंत, नरेन्द्र, केदार, शमशेर कविता की जिस धारा के प्रतिनिधि हैं, 'तार सप्तक' उसमें प्रवाह की एक लहर है, नदी का स्थिर द्वीप नहीं।''[93]

'तार सप्तक' जैसा कोई प्रतिनिधि संकलन उस समय तक नहीं छपा था, जो आस्था-अनास्था, समता-विषमता, अहं भाव, आशा-निराशा, प्रकृति के मुखर रूप व्यंग्य-विद्रूपता, इत्यादि प्रवृत्तियों को नये प्रायोगिक सांचे में ढाल कर प्रस्तुत कर सके। समग्रता की दृष्टि से यह संकलन कविता के क्षेत्र में बहुआयामी यथार्थ का प्रतिपादक है। अज्ञेय को छोड़कर बाकी छहो कवियों ने प्रगतिशीलता के प्रभाव को दर्शाया है और 'तार सप्तक' ने प्रगतिवादी काव्य प्रवृत्तियों को बिल्कुल नई दिशा में पदार्पण करवाया। तत्कालीन सामाजिक यथार्थ, अहं, कुण्ठा तथा मध्यवर्गीय अन्तर्द्वन्द्व का सफलता पूर्वक चित्रण 'तार सप्तक' में हुआ है। प्रतीकों को सत्यान्वेषण का माध्यम बनाते हुए बिम्बों द्वारा युगानुरूप नवीनता लाने का प्रयास सातों कवियों ने बड़ी ही कुशलता से किया है।

प्रयोगवादी कविता की अतिरिक्त बुद्धिवादिता, वैचित्र्यप्रियता और सामाजिक उत्तरदायित्व के प्रति उदासीनता जैसी प्रवृत्तियों के कारण इसे आलोचकों का शिकार होना पड़ा। 'तार सप्तक' के प्रकाशन के बाद परस्पर संगुफित और मिली-जुली काव्य परम्पराओं को 'नयी कविता' ने 'दूसरा सप्तक' के माध्यम से सुलझाने का प्रयास किया। इस संकलन की कविताओं में स्थूल, मांसल एवं वासना- युक्त प्रेम, युगीन परिवेश के प्रति घुटन एवं निराशा तथा उससे उत्पन्न पीड़ा का चित्रण है। 'दूसरा सप्तक' की भूमिका कविता की प्रकृति के निर्धारण में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रही है। इसमें नई शैली की जागरूकता, जीवन के सामीप्य बोध से गृहीत वस्तु चयन, कथ्य और कथन की सरलता, मनोविश्लेषणवाद, अस्तित्ववाद, स्वरूपवाद, आशावादी स्वर, अहं-चेतना, मध्यवर्गीय दृष्टि के साथ-साथ लोकपरक तथा वस्तुनिष्ठ दृष्टि का उभार बिल्कुल ही नए ढंग से हुआ है, जो आज भी ग्राह्य है। धर्मवीर भारती ने 'कविता की मौत' में कविता की प्राचीनता का अन्त और नूतनता का प्रारम्भ घोषित किया है। अज्ञेय का यह कथन उल्लेखीय है- ''दूसरा सप्तक नये हिन्दी काव्य को निश्चित रूप से एक कदम आगे ले जाता है और कृतित्व की दृष्टि से लगभग सूने आज के हिन्दी क्षेत्र में आशा की नयी लौ जगाता है।''[94]

'तीसरा सप्तक' की कविताओं में एक नयी शिल्प दृष्टि तथा पूर्वाग्रह मुक्ति दीख पड़ती है। तत्कालीन 'नयी कविता' के भव्य प्रासाद निर्माण में इस सप्तक का ही पूरा हाथ रहा है। इस सप्तक के कवियों ने मतवाद को दूर करने की तथा आन्तरिक चेतना को अपनाने की कोशिश की। संयत एवं ईमानदारी से पूर्ण जीवन दृष्टि इनकी कविताओं में विद्यमान है। उपमान योजना, अलंकार योजना, बिम्ब योजना और कल्पना विधान नितान्त अधुनातन है। भविष्य के प्रति नूतन आशावादी जागृति इन कविताओं का मुख्य ध्येय रहा है।

'चौथा सप्तक' के प्रकाशन के समय तक भारतीय राजनीति और साहित्य, दोनों अपने प्रौढ़ स्वरूप को प्राप्त कर चुके थे। इनका परोक्ष प्रभाव कविता में भी पड़ा। भारतीय राजनीति की बढ़ती खेमेबाजी की तरह कविता के खेमों में भी आंशिक सुगबुगाहट अवश्य पैदा होती रही है परन्तु अब तक कविता मतवादी चिन्तन और कट्टरवादिता से पूर्णतः मुक्त हो चुकी थी। 'चौथा सप्तक' की कविताएँ समकालीन कविता एवं मुक्त समाज के स्वरों तथा अनुभूतियों का स्वतन्त्र चित्रण करती हैं। इन कविताओं ने स्वस्थ मानसिकता, गहन वैचारिकता और संवेदना की सरणि को पुष्टता प्रदान करते हुए अब तक प्रवाहमान बनाए रखा है। यद्यपि समीक्षकों द्वारा 'चौथा सप्तक' को नकार दिया गया क्योंकि इसकी कविताएँ तत्कालीन भाव-बोध का समग्र चित्रण नहीं कर सकीं और इसलिए वास्तविक प्रतिनिधित्व नहीं कर पाईं।

चारो सप्तकों की कविताओं में विभिन्न काव्य-प्रवृत्तियों ने एक लम्बा सफर तय किया और कविता को उन्नत किया। इन्ही की परिणति आज की कविता में गहरी राजनीतिक समझ, सही विचारधारा, पारदर्शिता, कवि कर्म का सफल निर्वहन, निजी प्रसंगों का भी सच्चा चित्रण, तेजी से बदलती दुनिया के अक्स उतारने की कोशिश और दृढ़ आशावादिता जैसी प्रवृत्तियों के रूप में हुई है।

संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकों की लोकप्रियता ने कविता के प्रति उत्पन्न उदासीनता को दूर कर उसे जन-जन के लिए ग्राह्य और लोककल्याणकारी बनाने का मार्ग प्रशस्त किया। वस्तुतः सन् 1943 से लेकर 1979 ई० तक की हिंदी कविता की प्रकृति में अनेक परिवर्तन हुए हैं। दर्जनों रूपों और प्रयोगों के कारण प्रवृत्तियों पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा है। प्रयोग कथ्य और शैली दोनों ही स्तरों पर बराबर होते रहे हैं और कविता में बराबर निखार आता गया है। मजे की बात यह है कि कविता भावनात्मकता और संवेदनशीलता को केन्द्र में स्थापित करती हुई चली तो है, किन्तु सामाजिकता के उद्देश्य को पूर्ण करने के बजाय अहं की तुष्टि अधिक करती है। भौतिकता की मार कविता पर भी पड़ी है। राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक, धार्मिक और सांस्कारिक बदलावों को वहन करती हुई कविता

एक नये रूप में दिखाई पड़ती है। छन्दमुक्त के साथ-साथ छंदबद्ध कविता के दर्शन हमें सप्तकों के अन्दर-बाहर कुछ इस रूप में होते हैं जैसे कि वेगवती नदी के उद्दाम प्रवाह को उसके ऊँचे व सशक्त कूल बाँधे रहने में सक्षम रहते हों।

संदर्भ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि; कविता क्या है, पृष्ठ 97
2. डॉ० बहादुर सिंह : हिन्दी साहित्य का विकास, पृष्ठ 3
3. आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी : हिंदी साहित्य, पृष्ठ 232-235
4. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : भारतेन्दु ग्रन्थावली, पृष्ठ 702
5. प्रेमनारायण टण्डन : हिंदी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास, पृष्ठ 303
6. मैथिलीशरण गुप्त : भारत भारती, पृष्ठ 4
7. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; आनन्द सर्ग, पृ० 118
8. डॉ० शम्भूनाथ सिंह : आधुनिक कविता की यात्रा, पृष्ठ 15
9. नरेन्द्र शर्मा : मिट्टी और फूल, पृष्ठ 83
10. केदारनाथ अग्रवाल : लोक और अलोक; 'पुकार' (कविता), पृष्ठ 47
11. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' : हम विषपायी जन्म के; 'जूठे पत्ते,' पृष्ठ 493
12. नरेन्द्र शर्मा : हंसमाला; 'चेतावनी की कविता,' पृष्ठ 40
13. केदार नाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते है; 'मोरचे पर,' पृष्ठ 77-78
14. डॉ० रामविलाश शर्मा : तार सप्तक; 'अपने कवि से,' पृष्ठ 88-89
15. नागार्जुन : सतंरगे पंखों वाली, पृ० 97
16. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है; 'चम्बल की घाटी में,' पृ० 232
17. नरेन्द्र शर्मा : रक्त चन्दन; पृष्ठ 67
18. अज्ञेय : दूसरा सप्तक की भूमिका, पृष्ठ 6-8
19. धर्मवीर भारती : घाटी के बादल; 'विविधा' में प्रकाशित
20. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - विविधा
21. अज्ञेय : माहीवाला, पृ० 64
22. अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर; 'कलगी बाजरे की,' पृष्ठ 57
23. भारत भूषण अग्रवाल : ओ अप्रस्तुत मन, पृष्ठ 56-60
24. मुक्तिबोध : नदी के द्वीप; आत्म संवाद, पृष्ठ 69
25. गिरजा कुमार माथुर : धूप के धान; 'देवलोक की यात्रा,' पृ० 71
26. भवानी प्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'बूँद टपकी एक नभ से,' पृष्ठ 16

27. डॉ0 बैजनाथ सिंहल : नयी कविता का इतिहास, पृष्ठ 10

28. डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी : अज्ञेय और आधुनिक रचना की समस्याएँ, पृ0 2

29. शम्भूनाथ सिंह : बन्द कमरों का मुसाफिर, पृ0 76

30. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : बाँस का पुल, पृष्ठ 29

31. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : काठ की घंटिया;'सौन्दर्य बोध', पृ0 410

32. धर्मवीर भारती : सात गीत वर्ष, पृष्ठ 92

33. डॉ0 हरवंश लाल शर्मा : हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (प्र0 सम्पादक) भाग-14, पृष्ठ 159

34. डॉ0 ओऽमप्रकाश अवस्थी : नवनीत, पृ0 64

35. मुक्तिबोध : तार सप्तक;'अशक्त', पृष्ठ सं0 30

36. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नही रंग बोलते है;'सबके लिए', पृ0 68

37. प्रभाकर माचवे : तार सप्तक;'गेहूँ की सोच', पृ0 120

38. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं;'कानपुर', पृ0 71-72

39. गजानन माधव 'मुक्तिबोध': तार सप्तक;'पूँजीवादी समाज के प्रति', पृ0 35

40. बालकृष्ण शर्मा 'नवीन': हम विषपायी जनम के;'विप्लवगायन', पृ0 429

41. रामविलाश शर्मा : तार सप्तक;'जल्लाद की मौत', पृष्ठ 203-204

42. नरेन्द्र शर्मा : रक्त चन्दन, पृष्ठ 67

43. गिरिजा कुमार माथुरः तार सप्तक;'आज हैं केसर रंग रंगे वन', पृ0 147

44. भारत भूषण अग्रवाल : तार सप्तक;'अपने कवि से', पृष्ठ 85

45. भारत भूषण अग्रवाल : ओ अप्रस्तुतमन, पृ0 59-60

46. मुक्तिबोध : चाँद का मुँह टेढ़ा है;'मुझे नहीं मालूम', पृ0 85

47. गिरिजा कुमार माथुर : तार सप्तक;'पृथ्वीगीत', पृष्ठ 178

48. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; वक्तव्य, पृष्ठ 160

49. शकुन्त माथुर : दूसरा सप्तक;'पूर्णमासी रात भर', पृष्ठ 51

50. अज्ञेय : तार सप्तक;'शिशिर की राका निशा', पृष्ठ 229

51. अज्ञेय : तार सप्तक; वक्तव्य, पृष्ठ 222

52. नरेश कुमार मेहता : दूसरासप्तक ;'अहं,' पृष्ठ 113

53. मुक्तिबोध : तार सप्तक;'नूतन अहं,' पृष्ठ 33

54. मुक्तिबोध : तार सप्तक; अत्म संवाद, पृष्ठ संख्या 40

55. अज्ञेय : आंगन के पार द्वार; 'दूज का चाँद', पृष्ठ 72

56. शमशेर बहादुर सिंह : दूसरा सप्तक; 'शरीर स्वप्न', पृष्ठ 92

57. जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द : भूमि की अनुभूति; 'भूमि श्रमिक की पत्नी', पृष्ठ 37

58. डॉ0 कौशलनाथ उपाध्याय : छायावादोत्तर हिन्दी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप, पृ0 126

59. भवानी प्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'प्रलय', पृष्ठ 33

60. शमशेर बहादुर सिंह : कुछ और कविताएँ; 'गजल', पृष्ठ 30

61. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; 'गजल', पृष्ठ 144

62. भवानी प्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'मंगल वर्षा,' पृष्ठ 29

63. शमशेर बहादुर सिह : कुछ और कविताएँ; गीत, पृष्ठ 81

64. महेन्द्र भटनागर : संतरण; 'स्वीकार लो', पृष्ठ 43

65. भवानी प्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'गीत फरोश,' पृष्ठ 36-37

66. शमशेर बहादुर सिंह : दूसरा सप्तक; 'बात बोलेगी', पृ0 90

67. कुँवर नारायण : तीसरा सप्तक; वक्तव्य, पृष्ठ 163

68. कुँवर नारायण : तीसरा सप्तक; 'ये पंक्तियाँ मेरे निकट', पृष्ठ 166

69. अजित कुमार : अकेले कण्ठ की पुकार; 'मेले में', पृष्ठ 23

70. विजय देव नारायण साही : तीसरा सप्तक; 'विष कन्या के नाम', पृ0 218

71. भारत भूषण अग्रवाल : अनुपस्थित लोग; 'खण्ड हूँ विराट का', पृष्ठ 14

72. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'दायित्व भार', पृष्ठ 52

73. महेन्द्र भटनागर : जिजीविषा; 'हिम्मत न हारो,' पृष्ठ 1

74. मदन वात्स्यायन : तीसरा सप्तक; 'शुक्रतारा,' पृष्ठ 95

75. अज्ञेय : हरी घास पर क्षण भर; 'कलगी बाजरे की', पृष्ठ 57

76. केदारनाथ सिंह : तीसरा सप्तक; 'धानों का गीत,' पृ0 140

77. मदन वात्स्यायन : तीसरा सप्तक; 'दो विहाग', पृ0 102

78. स0ही0वा0 'अज्ञेय' : चौथा सप्तक; भूमिका, पृष्ठ 14

79. नन्दकिशोर आचार्य : चौथा सप्तक; 'मैं नहीं चाहता', पृ0 154

80. नन्द किशोर आचार्य : चौथा सप्तक; 'यदि मान भी लूँ,' पृ0 152

81. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक;'लड़ाई,' पृष्ठ 32

82. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक;'खिलौनों में घटित', पृ0 35

83. महेन्द्र भटनागर : चयनिका;'नई-नारी,' पृ0 147-48

84. सुमन राजे : चौथा सप्तक;'जवाब देही,' पृष्ठ 218

85. श्रीराम वर्मा : चौथा सप्तक;'देह का गीत,' पृष्ठ 231

86. श्रीराम वर्मा : चौथा सप्तक;'चुम्बनान्त,' पृष्ठ 255

87. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; 'फिरोजी होंठ', पृष्ठ 165

88. नन्द किशोर आचार्य : चौथा सप्तक;'मैं गुफा में हूँ,' पृ0 150

89. सुमन राजे : चौथा सप्तक;'भोर', पृ0 213

90. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक;'वर्षा के बाद', पृ0 75

91. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक;'अपनी कमर', पृ0 46

92. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक;'कृतज्ञता', पृ0 135

93. डॉ0 राम विलाश शर्मा : नयी कविता और अस्तित्ववाद, पृ0 17

94. अज्ञेय : दूसरा सप्तक; भूमिका पृ0 12

द्वितीय अध्याय

कविता की भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता

2

कविता की भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता

भावनात्मकता और संवेदनशीलता किसी भी कविता के दो अनिवार्य तत्त्व माने जाते हैं। कविता में काव्यशास्त्रियों ने कला पक्ष से भी अधिक महत्त्व भाव पक्ष को दिया है। भावना, विचार अनुभूति व दृश्य के साथ संयुक्त होकर कविता का निर्माण करती है। सच्ची कविता (या साहित्य) की रचना तभी होती है, जब भाव हृदय की संकुचित सीमा में सीमित न रहकर बाहर आने को छटपटा उठते हैं। भावों की मर्मस्पर्शी अनुभूति ही संवेदनशीलता के नाम से जानी जाती है। कविता भावनात्मकता व संवेदना के कारण ही समाज की व्यापक अनुभूतियों को प्रेरित करने व स्पर्श करने की क्षमता रखती है। कल्पना प्रधान साहित्य में भावनाओं के विराट् रूप देखने को मिलते हैं। संवेदलशील व भावनात्मक होने के कारण ही कविता सर्वदेशीय व सर्वलोकप्रिय होती है।

भावनात्मकता और संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण तथा सप्तकों व उनसे पूर्व की कविता में भावनात्मकता और संवेदनशीलता की छान-बीन करने का प्रयास हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे-

अ. भावनात्मकता का सैद्धान्तिक विश्लेषण

आ. संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण

इ. भावनात्मकता : सप्तकों से पूर्व और सप्तकीय कविता में

ई. संवेदनशीलता : सप्तकों से पूर्व और सप्तकीय कविता में

अ. भावनात्मकता का सैद्धान्तिक विश्लेषण

सुख और दुःख से सम्पृक्त मानव हृदय की विशिष्ट अनुभूतियों को भाव कहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इसी को मनोविकार कहा है। उनके अनुसार- ''नाना विषयों के बोध का विधान होने पर ही उनसे सम्बन्ध रखने वाली इच्छा की अनेकरूपता के अनुसार अनुभूति के भिन्न-भिन्न योग संगठित होते हैं जो भाव या मनोविकार कहलाते हैं।''[1] मन का कोई विशेष विकार या वृत्ति प्रकट करने वाली मुख या अंगों की आकृति या चेष्टा भी भाव कहलाती है। इसके अतिरिक्त प्रेम, मुहब्बत के लिए भी भाव शब्द का प्रयोग किया जाता है।

भाव या मनोविकार भी कई प्रकार के होते हैं। कुछ प्रधान भाव होते हैं जो जाग्रत हो परिपक्व होकर रसोत्पत्ति करते हैं साथ ही कई छोटे-छोटे और भी भाव उत्पन्न होते हैं जो प्रधान

भाव की अनुभूति तो तीव्रता देते हुए रसानुभव काल में आते-जाते रहते हैं। प्रधान भावों को स्थायी भाव कहा जाता है जबकि स्थायी भावों का सहयोग करने वाले भाव संचारी भाव या व्यभिचारी भाव कहलाते हैं। स्थायी भाव 11 व संचारी भाव 33 माने गये हैं। एकादश रसों के एकादश स्थायी भाव हैं- रति, हास, शोक, उत्साह, क्रोध, भय, जुगुप्सा, विस्मय, शम (शान्ति) या निर्वेद (वैराग्य), स्नेह और भक्ति विषयक रति। रति का भाव परिपक्व होकर श्रृंगार रस उत्पन्न करता है। हास (हँसी) का भाव परिपक्व होकर हास्य रस का निर्माण करता है। इसी प्रकार शोक भाव से करुण रस, जुगुप्सा (घृणा) भाव से वीभत्स रस, विस्मय भाव से अद्‌भुत रस, निर्वेद (वैराग्य) भाव से वत्सल रस और प्रभु की अनुरक्ति के भाव से भक्ति रस बनते हैं।

स्थायी भावों व उनके साथ उत्पन्न होने वाले संचारी भावों का विवरण इस प्रकार है-

रस	स्थायी भाव	संचारी भाव
श्रृंगार	रति (प्रेम)	प्रायः सभी
हास्य	हास (हँसी)	हर्ष, चपलता, आलस्य
करुण	शोक	मोह, विषाद, दैन्य, जड़ता, उन्माद, व्याधि, ग्लानि, निर्वेद,चिन्ता
वीर	उत्साह	गर्व, हर्ष धृति, उग्रता
रौद्र	क्रोध	गर्व, चपलता, उग्रता, अमर्ष
भयानक	भय	त्रास, आवेग, दैन्य, शंका, चिन्ता, अपस्मार
वीभत्स	जुगुप्सा	आवेग, मोह, व्याधि
आश्चर्य	विस्मय	वितर्क, आवेग, जड़ता, मोह, हर्ष
शान्त	शम (शान्ति) या निर्वेद (वैराग्य)	धृति, गति, हर्ष, चिन्ता
वात्सल्य	वात्सल्य या स्नेह	हर्ष आदि
भक्ति	भक्ति विषयक रति	हर्ष आदि

देव ने संचारियों के वर्गीकरण में परम्परा से भेद प्रदर्शित किया है। उन्होंने संचारियों के दो भेद किए हैं- 1. तन संचारी और 2. मन संचारी अर्थात शारीरिक और आन्तरिक संचारी भाव। तन संचारियों में साहित्य-शास्त्र के सात्विक भाव रखे हैं और मन-संचारियों में साधारण संचारी भाव।

अभीष्ट सिद्धि प्राप्ति से उत्पन्न मन की प्रसन्नता का भाव हर्ष नामक संचारी भाव है। अपनी श्रेष्ठता की भावना के कारण दूसरे की अवज्ञा का भाव गर्व नामक संचारी भाव है। उत्कण्ठा या कार्य -सिद्धि में विलम्ब की असह्यता का भाव उत्सुकता नामक संचारी भाव है। स्थिर होकर न बैठने का भाव चपलता संचारी भाव है। मद्यप की-सी चेष्टा का भाव मद नामक संचारी भाव है। पागलों की -सी चेष्टाएँ करने का भाव उन्माद संचारी भाव है। लज्जित होने का भाव व्रीड़ा संचारी भाव है। हर्ष, भय आदि उत्पन्न भावों को लज्जा आदि के कारण छिपाने की चेष्टा करने का भाव अवहित्थ संचारी भाव है। सपना देखने का भाव स्वप्न नाम्रक संचारी भाव है। नींद आ जाने का भाव निंद्रा संचारी भाव है। अक्रस्मात जाग उठने का भाव विबोध संचारी भाव है। थकावट का भाव श्रम संचारी भाव है। काम करने की इच्छा न होने का भाव आलस्य संचारी भाव है। मिरगी के रोग की-सी अवस्था का भाव अपस्पार संचारी भाव है। शारीरिक अशक्ति से उत्पन्न भाव ग्लानि संचारी भाव है। कर्मेन्द्रियों की असमर्थता का भाव जड़ता संचारी भाव है। ज्ञानेन्द्रियों की असमर्थता का भाव मोह संचारी भाव है। मृत्यु अथवा मृत्यु के पूर्व का भाव ही मरण संचारी भाव है। अपने को हीन समझने का भाव दैन्य संचारी भाव है। अपने प्रति और सांसारिक वस्तुओं के प्रति विरक्ति का भाव निर्वेद संचारी भाव है। अज्ञात अनिष्ट की आशंका का भाव शंका संचारी भाव है। आकस्मिक कारणों से चौंककर डरने का भाव त्रास संचारी भाव है। घबड़ाहट का भाव आवेग संचारी भाव है। काम बिगड़ जाने, उपाय न दीखने आदि से उत्पन्न अनुताप विषाद नामक संचारी भाव है। चिन्तित होने का भाव चिन्ता संचारी भाव है। पहले अनुभव की हुई वस्तुओं की याद आने का भाव स्मृति संचारी भाव है। तर्क-वितर्क करने का भाव वितर्क संचारी भाव है। धैर्य अर्थात् मानसिक उपद्रवों की शान्ति का भाव धृति संचारी भाव है। सन्देह के बाद विचार द्वारा निश्चित निर्णय पर पहुँचने का भाव मति संचारी भाव है। दूसरे के द्वारा की गई अवज्ञा से उत्पन्न असहनशीलता का भाव अमर्ष संचारी भाव है। दूसरे के उत्कर्ष को देख-सुनकर उद्धततापूर्वक उसकी निन्दा करने का भाव असूया संचारी भाव है। अपराध आदि के कारण उत्पन्न चण्डता का भाव उग्रता संचारी भाव है।

भाव शब्द बहुत व्यापक है। उसमें भाव (स्थायी और संचारी भाव) के साथ विभाव (आलम्बन और उद्दीपन) भी आ जाते हैं। भाव जिस किसी के प्रति होंगे वही आलम्बन होगा और आलम्वन की उक्तियाँ, चेष्टाएँ आदि उद्दीपन कहलाती हैं। भावना शब्द संकुचित अर्थ में भाव शब्द का पर्याय है।

अनुभव और स्मृति से मन में उत्पन्न होने वाला कोई विचार, ध्यांन या उद्देश्य भावना

कहलाता है। मन की कल्पना, ख्यालों, विचारों, कामना, चाह, चिन्ता-फिक्र, चिन्तन-ध्यान इत्यादि को भी भावनात्मकता कहते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भावना को उपासना के समकक्ष मानते हैं। उनके अनुसार-"जो वस्तु हमसे अलग है, हमसे दूर प्रतीत होती है उसकी मूर्ति मन में लाकर उसके सामीप्य का अनुभव करना ही उपासना है। साहित्य वाले इसी को भावना कहते हैं और आजकल के लोग कल्पना।"[2]

भाव कविता के प्रवर्त्तक होते हैं। कवि में जैसा भाव उत्पन्न होगा वह वैसी ही कविता की रचना करेगा। क्रौंच वध को देखकर आदिकवि वाल्मीकि के हृदय में करूणा का भाव उत्पन्न हुआ और उनके मुख से अनायास ही प्रथम श्लोक प्रस्फुटित हुआ। वाल्मीकि से लेकर आज तक पृथ्वी पर निरन्तर जीवन की विसंगतियों से भावनात्मकता प्रभावित और परिवर्द्धित होती रही है। देव, घनानन्द जैसे कवियों की भावुकता व कोमल भावनाओं का सुन्दर चित्रण उनकी मर्मस्पर्शी कविताओं में दिखायी पड़ता है। कवि हो या कोई कलाकार,उसकी कला उतनी ही श्रेष्ठ होगी जितनी अधिक भावनात्मकता उसमें विद्यमान होगी। कलाकार या कवि अपनी रचना में अपने भावों और अपनी कल्पना को साकार करने के प्रयत्न में उसमें नवीन रंग भरता है। मूर्ति सुन्दर और मनमोहक होने के लिए मूर्तिकार की भावनाओं का सुन्दर होना आवश्यक है। नेमिचन्द्र जैन के अनुसार "मेरा विश्वास है कि कला का अन्तिम मोल-तोल कलाकार के व्यक्तित्व के सहारे ही किया जा सकता है, इसलिए कवि के भावना-जगत की अनेकानेक विविधताओं में से एकसूत्रता यदि सम्भव हो तो पाठक के लिए सुलभ कर सकना ही इस वक्तव्य की सार्थकता हो सकती है।"[3]

कवि हृदय कोमल भावों के अधीन रहने वाला भावुक (सेन्टिमेन्टल) हृदय होता है। कविता और पाठक के बीच भावनात्मकता स्थापित होती है तो फिर वहाँ कवि नहीं रहता। पाठक की उस दशा की अनुभूति मात्र से ही कवि आह्लादित हो उठता है। प्रभाकर माचवे के अनुसार-"गहरी भावनाएँ गहरे विचार की कोख से जनमती हैं।"[4]

भावनात्मकता मानव जीवन का आधार है। भावना तो मानव हृदय में अच्छी-बुरी हर प्रकार की उत्पन्न होती है, किन्तु भावनात्मक या भावनात्मकता शब्दों का प्रयोग प्रायः हृदय की विशुद्ध अनुभूति के लिए होता है। यह भावनात्मकता ही प्रेम-मुहब्बत का भाव है। इसी प्रकार से गोस्वामी तुलसीदास जी ने श्रीरामचरितमानस में लिखा है- *"जिन्ह कें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति देखी तिन्ह तैसी।"*[5] विभिन्न प्रकार के भावनात्मक पहुलओं पर प्रायः चर्चायें होती रहती हैं।मानव जीवन में अपनी अहम् भूमिका के कारण भावनात्मकता का सूक्ष्मतम विश्लेषण होना अनिवार्य है। कुछ शब्द

अपनी गुरुता एवं सर्वव्यापकता के कारण शब्दातीत होते हैं तथापि कवि, लेखक आदि अपनी प्रतिभानुसार यथासंभव विवेचन करके उन्हें आम आदमी की जिन्दगी का महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाते हैं। ऐसा ही शब्दातीत शब्द भावनात्मकता है। वाणी भावनात्मकता का प्रतिनिधित्व करती है। आचार्य शुक्ल ने काव्यानुशीलन को भाव योग कहा है। उन्होंने भावों के प्रवर्त्तन के लिए भावना को अपेक्षित बताया है। हिन्दी कविता में ही नहीं संस्कृत वाङ्मय व यूरोपीय साहित्य में भी भावनात्मकता को बहुत प्रधानता दी गयी है। कविता को भाव ही उच्च कोटि की कविता बनाते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है- ''कविता ही हृदय को प्रकृत दशा में लाती है और जगत के बीच क्रमशः उसका अधिकाधिक प्रसार करती हुई उसे मनुष्यत्व की उच्च भूमि पर ले जाती है। भाव योग की सबसे उच्च कक्षा पर पहुँचे हुए मनुष्य का जगत् के साथ पूर्ण तादात्म्य हो जाता है, उसकी अलग भाव-सत्ता नहीं रह जाती उसका हृदय विश्व हृदय हो जाता है। उसकी अश्रुधारा में जगत् की अश्रुधारा का, उसके हास-विलास में आनन्द नृत्य का, उसके गर्जन-तर्जन में जगत् के गर्जन-तर्जन का आभास मिलता है।''[6]

हमारे सुख-दुःख ही प्रेम, हास्य, क्रोध, उत्साह, घृणा, करुणा और भय इत्यादि भावों के रूप में प्रकट होते हैं। भावनाएँ भी अनेक रूपों में पल्लवित और प्रस्फुटित होती हैं। इन सभी मनोविकारों को भाव तो कहा जाएगा परन्तु भावनात्मकता नहीं क्योंकि भावनात्मकता हृदय में गाम्भीर्ययुक्त भाव ही आएँगे। हास्य, क्रोध भय आदि मनोविकार भावना से जुड़े तो हैं किन्तु भावनात्मकता से अधिक संश्लिष्ट नहीं जान पड़ते। भावनायुक्त होने या वियुक्त होने की दशा का नाम भावनात्मकता है। भावनात्मकता मूर्त्त और अमूर्त्त दोनों तरह की हो सकती है। किसी व्यक्ति में जितनी तत्पर कल्पना शक्ति होगी उसमें भावनात्मकता उतनी ही तीव्र और प्रचुर होगी। कविता हृदय में भाव जागृत करती है और उसे प्रस्तुत वस्तु या तथ्य की मार्मिक भावना में लीन कर देती है। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है कि-

नास्ति बुद्धिर्युक्तस्य न चायुक्तस्य भावना।
न च धावतः शान्तिः अशान्तस्य कुतो सुखम्।।[7]

(अर्थात् योग साधन रहित पुरूष के अन्तःकरण में निष्काम कर्मयुक्त बुद्धि नहीं होती उस अयुक्त के अन्तःकरण में भाव भी नहीं होता। भावनारहित पुरूष को शान्ति कहाँ और अशान्त पुरूष को सुख कहाँ। योग क्रिया करने से कुछ दिखायी पड़ने पर ही भाव बनता है।)

श्रीरामचरितमानस में लिखा है-

जाने बिनु न होई परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती।।[8]

भावना बिना शान्ति नहीं मिलती और शान्तिरहित पुरुष को सुख अर्थात् शाश्वत सनातन की प्राप्ति नहीं होती। योगयुक्त भावना में विषयों का चिन्तन नहीं होता, क्योंकि विषयों के चिन्तन से आसक्ति होती है। अन्तर्मन में कामना जाग्रत होती है। अगर कामनाओं की पूर्ति न हुई तो क्रोध, अविवेक, स्मृतिभ्रम और स्मृतिभ्रम से बुद्धि भी नष्ट हो जाती है, क्योंकि बुद्धि स्तर पर ही भावना बनती है, जबकि योगयुक्त बुद्धि हो। अगर योगयुक्त बुद्धि है तो कामनाएँ आएँगी भावनाएँ नहीं-

साधन करिय विचारहीन मन।

शुद्ध होय नहीं तैसे।।[9]

शुद्ध और योगयुक्त भावना में सदैव निर्मलता और प्रसन्नता होती है क्योंकि प्रसन्नता से ही सारे कार्य बनते है तथा दुःख, व्याधि नष्ट होते हैं। भगवान कृष्ण ने अर्जुन से गीता के द्वितीय अध्याय में कहा है-

प्रसादे सर्व दुःखानां हानिरस्योपजायते।

प्रसन्नचेतशः ह्याशुः बुद्धिपर्यवतिष्ठते।।[10]

(अर्थात पूर्णयोगयुक्त भगवत्ता से संयुक्त होने पर संपूर्ण दुःखों का अभाव हो जाता है। संसार का अभाव हो जाता है और उस प्रसन्नचित्त वाले पुरुष की बुद्धि शीघ्र ही स्थिर हो जाती है।)

भावना (मेरे तेरे से) बँधी नहीं होती है। भावना भीतर का सहज भाव है। भावना स्वयं की स्फुरणा है, जिसको हम अपने स्वार्थ के लिए भावना कहते हैं, श्रीकृष्ण उसे भावना नहीं मानते हैं। भावना उठती ही उस व्यक्ति में है जो अपने से संयुक्त है, यानि योग को उपलब्ध हो चुका है।

ईश्वर की भक्ति की भावना का उदय होने पर भक्त के दैन्य रूप का चित्रण गोस्वामीजी ने विनय पत्रिका में बड़े ही सरल ढंग से किया है-

राम सो बड़ो है कौन, मोसों कौन छोटो।

राम सो खरो है, कौन मोसों कौन खोटो।।[11]

रसानुकूल विचारों की उत्पत्ति या रस की पूर्ति में भावों का महत्त्व पद्माकर द्वारा रचित 'जगद्विनोद' ग्रन्थ में इस प्रकार बताया गया है-

रस अनुकूल विचार जो, उर उपजत हैं आय।

थाई भाव बखानहीं, तिनही को कविराय।।

है सब भावन में सिरे, टरति न कोटि उपाव।

है परिपूरन होत रस तेई थाई भाव।।[12]

जिस प्रकार काव्य की आत्मा रस को माना गया है उसी प्रकार रस की आत्मा भाव को माना गया है। इतना ही नहीं रसवत् और प्रेयस अलंकारों द्वारा रस और भाव के अस्तित्व को स्वीकारते हैं। रस और भाव दोनों का आश्रय लेकर अलंकार की व्युत्पत्ति होती है। ध्वन्यालोक में लिखा गया है-

रसभावादितात्पर्यमाश्रित्य विनिवेशनम्।

अलङ्.कृतीनां सर्वासामलङ्गारत्व साधनम्।।[13]

रस तथा भावों के उत्कर्ष से काव्य गुणों में वृद्धि होती है जबकि इनके अपकर्ष के कारण काव्य में दोष बढ़ते हैं। काव्य में मुख्यता अनुभूति या भाव पक्ष को दी जाती है। पाश्चात्य काव्यशास्त्रियों में से किसी ने कल्पना को प्रधानता दी है तो किसी ने भाव को जबकि कुछ ने दोनों का समन्वय किया है। "शेक्सपीयर (Shakespeare) ने 'कल्पना' को प्रधानता देते हुए लिखा है- कवि की कल्पना अज्ञात वस्तुओं को रूप देती है। उसकी लेखनी वायवी नगण्य तथा अस्तित्त्वशून्य पदार्थों को भी मूर्त्त बनाकर नाम और धाम प्रदान करती है-

'The poet's eye in a fine frenzy rolling,

Doth glance from heaven to earth, from earth to heaven,

And as imagination bodies forth

The forms of things unknown; the poets pen

Turns them to shapes and gives to airy nothings

a local habitation and a name.'[13.1]

वर्ड्सवर्थ (Words Worth) ने 'भाव को प्रधानता देते हुए लिखा है कि काव्य शान्ति के समय में स्मरण किये हुए प्रबल मनोवेगों का स्वच्छन्द प्रवाह है- *'Poetry is the spontaneous over flow of powerful feelings. It takes its origin from emotion recollected in tranquility'.*[13.2]

हड्सन इन सब दृष्टियों का समन्वय-सा करते हैं। उनका कथन है कि कविता, कल्पना और मनोवेगों द्वारा जीवन की व्याख्या करती है- *'Poetry is interpretation of life through imagination and emotion- Irtroduction to the study of poetry, (Page 62)"*[14]

आशय यह है कि पाश्चात्य दृष्टि में भी कविता भाव और भावना से ही उद्भूत होती है।

आधुनिक हिन्दी लेखकों में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी तथा आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के लेखों में कविता में भाव तथा रस सम्बन्धी धारणाओं पर जोर दिया गया है। शुक्लजी के अनुसार- ''कविता ही मनुष्य के हृदय को स्वार्थ-सम्बन्धों के संकुचित मण्डल से उठाकर लोक-सामान्य भावभूमि पर ले जाती है।.....इस भूमि पर पहुँचते हुए मनुष्य को कुछ काल के लिए अपना पता नहीं रहता। वह अपनी सत्ता को लोक सत्ता में लीन किए रहता है।....... इस अनुभूति योग के अभ्यास से हमारे मनोविकारों का परिष्कार तथा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा और निर्वाह होता है।''[15] शुक्ल जी चमत्कार युक्त और शुद्ध काव्य उसे कहते हैं जो भाव प्रेरित तथा सरस हो। उनकी दृष्टि में- ''किसी उक्ति की तह में उसके प्रवर्तक के रूप यदि कोई भाव या मार्मिक अन्तर्वृत्ति छिपी है तो चाहे वैचित्र्य हो या न हो काव्य की सरसता बराबर पाई जाएगी।.......... ऐसी उक्ति जिसे सुनते ही मन किसी भाव या मार्मिक भावना (जैसे प्रस्तुत वस्तु का सौन्दर्य आदि) में लीन न होकर एकबारगी कथन के अनूठे ढंग, वर्ण विन्यास या पद प्रयोग की विशेषता, दूर की सूझ, कवि की चातुरी या निपुणता इत्यादि का विचार करने लगे वह काव्य नहीं, सूक्ति है।''[16]

भावनात्मकता की उपर्युक्त विशेषताओं और परिभाषाओं के आधार पर भावनात्मकता के निम्नलिखित भेद किए जा सकते हैं-

(क) व्यष्टिगत भावनात्मकता
(ख) समष्टिगत भावनात्मकता
(ग) मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता
(घ) सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता
(ङ) राष्ट्रवादी भावनात्मकता
(च) मानववादी भावनात्मकता
(छ) सैद्धान्तिक भावनात्मकता
(ज) दार्शनिक भावनात्मकता
(झ) ऐतिहासिक भावनात्मकता
(ढ) बौद्धिक भावनात्मकता
(ट) आधुनिक भावनात्मकता
(ठ) काल्पनिक भावनात्मकता
(ड) प्रेमबोधक भावनात्मकता

(क) व्यष्टिगत भावनात्मकता

किसी व्यक्ति विशेष अथवा स्वयं से सम्बन्ध रखने वाली विशिष्ट अनुभूति को व्यष्टिगत भावनात्मकता कहते हैं।

किसी सहृदय व्यक्ति के मन में भावनाएँ उत्पन्न होकर उसकी रसानुभूति को प्रबलता प्रदान करती हैं। किसी व्यक्ति में अपनी पृथक मानसिकता के अनुसार ही पृथक भावानुभूति भी होती है उसका पृथक चिन्तन होता है। स्वयं की सुखात्मक अथवा दुःखात्मक अनुभूतियों का चिंतन कवि को

उद्वेलित करता है और वह काव्य-सर्जन की ओर उन्मुख हो जाता है। सूक्ष्म और निजी भावनाओं को व्यष्टिगत भावनात्मकता के अन्तर्गत मान्यता प्रदान की गई है।

(ख) समष्टिगत भावनात्मकता

चराचर जगत से जुड़ी अनुभूति को समष्टिगत भावनात्मकता कहते हैं।

हृदय जब सम्पूर्ण विश्व के कल्याण की कामना करके प्रफुल्लित होता और एक ही सीमारहित राष्ट्र की कल्पना करता है तो उसमें सारे जगत् के प्रति करूणा और प्रेम का भाव सन्निहित होता है। वह संसार के प्रत्येक प्राणी के सुख-दुख को अपना सुख-दुख समझता है। व्यष्टिगत या विच्छिन्न भावनात्मकता की अपेक्षा समष्टिगत भावनात्मकता में अधिक व्यापकता रहती है।

(ग) मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता

मानवीय स्वभाव के कारण उत्पन्न होने वाली अनुभूति को मनौवैज्ञानिक भावनात्मकता कहते हैं। मनुष्य का मन परिस्थितियों के अनुरूप विभिन्न प्रकार के भावों को भी उत्पन्न करता है। मानवीय स्वभाव की विचित्रता से बहुतेरे भाव क्षण-प्रतिक्षण मस्तिष्क की संरचना के आधार पर उत्पन्न होते हैं। ऐसी भावनाएँ मनोविज्ञान पर आधारित होती हैं। कभी-कभी आलम्बन व आश्रय का व्यक्तित्व एक-सा हो जाता है, ऐसी स्थिति को भाव-तादात्म्य (Empathy) कहते हैं। ए०ई० मेण्डर के अनुसार- *"Empathy cannotes the state of the reader or spectator who has lost for a while his personal self-consciousness and is identifying himself with some character in the story or screen."*[17]

(अर्थात् भाव तादात्म्य या तदनुभूति पाठक या दर्शक की वह मानसिक दशा है जिसमें कि वह थोड़ी देर के लिए अपनी वैयक्तिक आत्मचेतना को भूलकर नाटक या सिनेमा के किसी पात्र के साथ अपना तादात्म्य कर लेता है।)

(घ) सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता

किसी के सौन्दर्य और प्राकृतिक दृश्यों एवं अवयवों को देखकर उत्पन्न होने वाली अनुभूति को सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता कहते हैं। राम या कृष्ण की शोभा, शील और सौन्दर्य आदि गुणों का सुन्दर वर्णन सुनकर किसी भी पाठक या श्रोता के मन में सुन्दर भाव चित्रों का उपस्थित होना अनिवार्य है। यही स्थिति सीता या राधा की सुन्दरता का वर्णन होने पर भी उत्पन्न होती है। सौन्दर्य एक व्यापक शब्द है जिसकी परिभाषा व्यक्ति-प्रति-व्यक्ति बदल सकती है। इसीलिए, एक व्यक्ति का सौंदर्यबोध दूसरे से अलग हो सकता है। इसी आधार पर सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता का दायरा भी

अत्यंत विस्तृत है।

(ङ) राष्ट्रवादी भावनात्मकता

राष्ट्र-प्रेम और राष्ट्रीय-चिन्तन से सम्बन्धित अनुभूति को राष्ट्रवादी भावनात्मकता कहते हैं। राष्ट्र पर उपस्थित संकटकाल में जन सामान्य के अन्तःकरण में देशभक्ति का भाव जाग्रत होता है और उसमे अपने राष्ट्र के गौरव व सम्मान की रक्षा हेतु गर्व, उग्रता, अमर्ष, चिन्ता, हर्ष, चपलता इत्यादि संचारी भावों का स्फुरण होता है। सम्पूर्ण राष्ट्रवासियों की एकता व प्रेम ही उस समय उस कवि या लेखक का लक्ष्य होता है। अपने इतिहास, संस्कृति और परम्पराओं पर विश्वास एवं आस्था राष्ट्रवादी भावनात्मकता को अनेक आयाम प्रदान करते हैं।

(च) मानववादी भावनात्मकता

मनुष्यत्व की अनुभूति ही मानववादी भावनात्मकता कहलाती है। इसमें मानव मात्र के कल्याण की भावना निहित है। मनुष्य ईश्वर की श्रेष्ठतम कृति है। इस विश्व को अपनी इच्छानुसार नियंत्रित करने की इच्छा से ईश्वर ने मनुष्य को उत्पन्न किया। मनुष्य को उसने बहुत से नैतिक एवं चारित्रिक गुण भी प्रदान किए जिनसे सभ्यता का समुचित विकास हो सके। इन्ही मानवीय, नैतिक व चारित्रिक गुणों की अनुभूति जब मनुष्य स्वयं करता है और मानव जीवन के मूल्य को समझता है तो उसकी यह समग्र अनुभूति मानववादी भावनात्मकता कहलाती है। अन्य मनुष्यों की पीड़ा, वेदना, कष्टों और दयनीय दशा को समझकर किसी व्यक्ति के मन में जिन भावनाओं का सृजन होता है वही मिलकर मानववादी भावनात्मकता निर्मित करती हैं।

(छ) सैद्धान्तिक भावनात्मकता

व्यावहारिकता से भिन्न सिद्धान्त-सम्बन्धी अनुभूति को सैद्धान्तिक भावनात्मकता कहते हैं। इसमें बुद्धिवाद की प्रमुखता रहती है। बुद्धिजीवियों के विभिन्न सिद्धान्तों पर गहन विचार करने पर मन में विभिन्न भावों के केन्द्र बिन्दुओं के सहारे विचार इकट्ठे होने लगते हैं। सैद्धान्तिक भावनात्मकता व्यक्ति आश्रित होती है। विभिन्न साहित्यिकों के भाव रस सम्बन्धी सिद्धान्तों के अध्ययन से उत्पन्न अनुभूति को सैद्धान्तिक भावनात्मकता कहते हैं। सैद्धान्तिक भावनात्मकता कल्पना, ज्ञान, विज्ञान, कला, सृजन और जीवन से संबंधित होती है। यही भावनात्मकता दर्शन का निर्माण करती है। इसी के वशीभूत होकर अनेक व्यक्ति समाज और संसार के बारे में सोचते तो हैं, किंतु व्यवहार में वे कुछ कर नहीं पाते हैं।

(ज) दार्शनिक भावनात्मकता

वैचारिकता (विचारधारा सम्बन्धी) या तत्त्वज्ञान से उत्पन्न होने वाली विवेकशील अनुभूति को दार्शनिक भावनात्मकता कहते हैं। इस प्रकार की भावनात्मकता किसी दार्शनिक व्यक्ति या साहित्यकार में ही पायी जाती है, साधारण प्रकृति के लोगों में नहीं क्योंकि साधारण लोगों की अपेक्षा दार्शनिक में भावनाओं स्मृतियों और अभिलाषाओं का अधिक मेल रहता है। सांस्कृतिक और पौराणिक ज्ञान से भी दर्शन, संस्कार और धर्म के स्तर पर सृजित होता है जो जीवन-शैली को नियंत्रित करने लगता है। भावनात्मकता का यह रूप सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही रूपों में मिलता है।

(झ) ऐतिहासिक भावनात्मकता

जो अनुभूति ऐतिहासिक तथ्यों या घटनाओं के अध्ययन से हो उसे ऐतिहासिक भावनात्मकता कहते हैं। इस प्रकार की भावनात्मकता में भावों का आलम्बन इतिहास को बनाया जाता है। जैसे- हरिऔध का प्रिय प्रवास या मैथिलीशरण गुप्त का साकेत पढ़ने पर पाठक के मन में पुरातन काल की संस्कृति की भव्यता का भाव उद्भूत होता है। 'यशोधरा' काव्य में सिद्धार्थ के गृहत्याग से दुःखी उनकी पत्नी यशोधरा के सुख-दुःख की अनुभूति पाठक की भावनाओं को अतीत के झरोखे में झाँकने पर विवश कर देती है। "हिंदूपन की अंतिम झलक दिखाने वाले थानेश्वर, कन्नौज, दिल्ली, पानीपत आदि स्थान उनके गंभीर भावों के आलंबन हैं, जिनमें ऐतिहासिक भावनात्मकता है।"[18] इतिहाससम्मत अनेक घटनाओं और पात्रों से प्रतीकात्मक बिम्बों का भी निर्माण होता है जो समकालीनता में अतीत के दर्शन कराने लगते हैं।

(ढ) बौद्धिक भावनात्मकता

किसी विषयवस्तु पर बुद्धिपूर्ण विचार करने से उत्पन्न अनुभूति या भावों को बौद्धिक भावनात्मकता कहते हैं। इस स्थिति में भावनाएँ नियन्त्रित होकर अपने क्रिया-व्यापार सम्पादित करती हैं। बाबू गुलाबराय के अनुसार "अच्छी कविता में प्रायः भावनाओं का ही मनोराज्य रहता है लेकिन उनमें स्वप्न की अपेक्षा बुद्धि का नियन्त्रण कुछ अधिक होता है।"[19] बौद्धिकता के अधिक्य से भावनाशून्यता की स्थिति भी निर्मित होने लगती है जिससे जीवन में शुष्कता बढ़ जाती है। वस्तुतः सैद्धातिक भावनात्मकता के प्रारम्भिक चरण के रूप में भी बौद्धिक भावनात्मकता को देखा जा सकता है।

(ट) आधुनिक भावनात्मकता

आधुनिक सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव से उत्पन्न होने वाली नवीन अनुभूति को आधुनिक

भावनात्मकता कहते हैं। इस वैज्ञानिक और आर्थिक युग में मानव हृदय भावनाओं और यथार्थ अनुभूति से विमुख हो गया है। पश्चिमी संस्कृति के दुष्प्रभाव से भारतीय जन-मानस में एक शुष्क सहानुभूति का माहौल बन गया है। हृदय मैला होने से भाव अविकसित और अपरिपक्व रह जाते हैं। फलतः सर्वसाधन सम्पन्न मनुष्य भी भीड़ में एकाकी-सा हो गया है। विज्ञान और तकनीक के अभूतपूर्व विकास और औद्योगीकरण इत्यादि ने मानव-जीवन में जिस कृत्रिमता का समावेश किया है, उसके चलते अनेक यंत्रणाएँ और कुंठाएँ आधुनिक भावनात्मकता के नकारात्मक पहलू का निर्माण करती हैं।

(ठ) काल्पनिक भावनात्मकता

कल्पना जगत् में विचरण करते हुए मन में उठने वाली अनुभूति की लहरों को काल्पनिक भावनात्मकता कहते हैं। पाश्चात्य काव्यशास्त्री काव्य में कल्पना को बहुत महत्त्व देते हैं। कल्पना भाव को पुष्ट करती है। काल्पनिक भावनात्मकता कवि की भावुकता और कथा-वार्त्ताओं में सुनी बातों के ज्ञान से उत्पन्न होती है। भक्त कवियों के द्वारा काल्पनिक भावनात्मकता का बड़ा ही सुन्दर चित्रण जगह-जगह हुआ है। वस्तुतः काव्य में काल्पनिक भावनात्मकता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। बिना कल्पना के काव्य में सरसता का लगभग अभाव-सा हो जाता है। कल्पना का यथार्थ से संयोग होने पर एक नई प्रकार की भावभूमि का निर्माण होता है जो स्वप्न और यथार्थ के बीच सेतु का कार्य करती है।

(ङ) प्रेमबोधक भावनात्मकता

किसी अतिशय प्रिय व्यक्ति से विछोह के बाद मिलन से अथवा प्रेमियों के प्रेमालाप को देखने से होने वाली अनुभूति प्रेमबोधक अनुभूति कहलाती है। रस और भावों से युक्त काव्य को ही भारतीय काव्यशास्त्रियों ने श्रेष्ठ काव्य माना है। प्रेम इस संसार को बाँधे रहने का आधार है। इसके अनेक रूप हैं। प्रेम की अनुभूति से ही रसराज शृंगार उत्पन्न होता है। रति शब्द से दो प्रेमी हृदयों के मिलन का भाव प्रकट होता है। प्रेम व्यापार में करुणा का होना भी उतना ही स्वाभाविक है जितना कि शृंगार का होना मेघदूत में यक्ष का यक्षिणी के विरह में मेघ द्वारा संदेश भेजना भी उसके प्रेम की अतिशयता को व्यक्त करता है। सच तो यह है कि प्रेम दो ही व्यक्तियों के बीच की बात नहीं है अपितु,परिवार, समाज, राष्ट्र, विश्व और सकल ब्रह्मांड को ऐक्यता प्रदान करने का साधन है। प्रेमानुभूति मानव जाति तक ही सीमित नहीं है, मानवेतर प्राणियों तक में भी इसका संचार होता है और इसीलिए मानवेतर प्राणियों, जड़ पदार्थों तथा प्रकृति के अन्य अवयवों का मानवीकरण करके

अनेक बिंब निर्मित किए जाते हैं जो प्रेमबोधक भावनात्मकता को चित्रित करते हैं।

भावनात्मकता के इन सभी रूपों में सूक्ष्म और गहन दृष्टि से ऐक्य स्थापित करने का प्रयास किया जाय तो इनका स्वरूप कुछ ऐसा ही है जैसा कि ब्रह्माण्ड के अन्तस् में परस्पर गुंफित आकाश-गंगाओं का चिरन्तन महाजाल। यह महाजाल ही स्रष्टि के आदि में बुना जाकर अन्त में परिपक्व होने पर उत्तम कविता का विधान करता है।

आ. संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण

संवेग अर्थात् संवेदन वह शारीरिक व्यापार या प्रतिक्रिया है जो किसी विशिष्ट पदार्थ के सम्पर्क में आने या विशेष स्थिति में पहुँचने से उत्पन्न होती है। मानसिक अनुभूति या बोध अथवा किसी को कष्ट में देखकर मन में उत्पन्न होने वाला दुःख या सहानुभूति संवेदना है। इसी प्रकार दूसरों की अनुभूति से प्रभावित होने वाला व्यक्ति संवेदनशील कहलाता है। ऐसे भाव जो मर्मस्पर्शी हों, संवेदनशीलता उत्पन्न करते हैं। सहानुभूतिपूर्ण भावनात्मकता या संवेदना प्रकट करने का भाव भी संवेदनशीलता ही है।

बदलती हुई वास्तविकता कवि के मन पर प्रत्यक्ष प्रभाव द्वारा ऐन्द्रिक बिम्ब विधान करती है और बिम्ब संवेदना उत्पन्न करते हैं। कवि की गहरी अन्तर्दृष्टि जीवन तथा परिवेश के आर-पार देखकर संश्लिष्ट भाव योजना करती है। डॉ० केदारनाथ सिंह बिंब निर्माण के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विर्वैयक्तिक संवेदना को मानते हैं। उनके अनुसार- "बिम्ब कहाँ से आते हैं? कवि की सच्ची और गहरी अनुभूतियों से। अनुभूतियों के भी दो मुख्य क्षेत्र होते हैं : जीवन तथा परिवेश। और गहरे जाने पर इन दोनों के भी दो उपभेद किये जा सकते हैं। जीवन के अन्तर्गत कवि का एकान्त आन्तरिक जीवन और वाह्य सामाजिक सम्बन्ध, दोनों ही आते हैं। इसी प्रकार परिवेश भी दो भागों में विभक्त होता हैः देश तथा काल। कवि की अनुभूतियों का सम्बन्ध इन सब के साथ होता है और उस की कल्पना शक्ति इन सब के जटिल सम्बन्धों के भीतर से बिम्ब के बारीक सूत्रों को एकत्र करती है। ....तात्पर्य यह कि संवेग आत्मपरक होता है और अनुभूति अपेक्षाकृत वस्तुपरक। कविता का जन्म प्रायः अनुभूति के तीव्रतम क्षणों में होता है, जो एक प्रकार की निर्वैयक्तिक अवस्था है।"[20] कीट्स के द्वारा भावनात्मक अनिश्चयता की स्थिति को 'नकारात्मक सामर्थ्य' की संज्ञा दी गयी है, किन्तु, केदारनाथ सिंह ने इसके लिए वाह्य यथार्थ के प्रति अपने व्यक्तित्व को अत्यधिक संवेदनशील बनाने की आवश्यकता पर जोर दिया है।

संवेदनशीलता की स्थिति में विशुद्ध अनुभूति की निर्वैयक्तिक मनोदशा होती है। इस अवस्था

में व्यक्ति का चेतन विवेक और मर्यादाबोध दोनों ही जाग्रत रहते हैं। किसी संवेदनशील व्यक्ति में ही स्मृति का संचयन और संरक्षण सम्भव हैं। बिम्ब संगठित होकर कवि के भीतर एक केन्द्रीभूत संवेदना उत्पन्न करते हैं। यह केन्द्रीभूत संवेदना आदिकवि वाल्मीकि और कालिदास से होते हुए मध्ययुग व छायावाद में सर्वाधिक होती गयी। बाद की कविता में संवेदना बौद्धिक स्तर पर अधिक विकसित हुई है। आज का कवि अमूर्त्त भावों की अपेक्षा ऐन्द्रिय अनुभवों को अधिक विश्वसनीय समझता है और ऐन्द्रिय अनुभूति बिम्ब के रूप में ही होती है। श्रेष्ठ कविता में वर्ण, स्पर्श, नाद और गन्ध सम्बन्धी अनुभूतियों का समूह पाया जाता है। ये अनुभूतियाँ पहले किसी न किसी संवेदना के स्तर पर ग्राह्य होती हैं।

संवेदन के द्वारा वस्तु का प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इस अनुभव की प्रामाणिकता दिखायी देने वाली वस्तु तथा देखने वाले के तात्कालिक सम्बन्ध की यथार्थता पर निर्भर करती है। डॉ० केदारनाथ सिंह ने संवेदन से ज्ञान तक पहुँचने का कारण विकास की एक सुस्पष्ट शृंखला का होना बताया है। उनके अनुसार ''प्रायः सभी विचारक इस बात पर सहमत हैं कि संवेदना से ज्ञान तक पहुँचने की यह प्रक्रिया मानव मन की उस विशिष्ट कार्य-प्रणाली का परिणाम है जिसे 'अमूर्त्तन' कहते हैं।''[21] कविता एक प्रकार की संवेदनात्मक सत्ता है जो शब्दों के द्वारा रूपायित होती है। अतः उसे विशुद्ध संवेदनात्मक धरातल पर ही ग्रहण किया जा सकता है। [illegible] । कवि अमूर्त्तन पद्धति के द्वारा रचनात्मक वस्तु की धुँधली व अस्पष्ट संवेदना को कविता में आवयविक सम्पूर्णता प्रदान करता है।

आज की मूल संवेदना की दिशा और सौन्दर्य बोध के निर्धारण में आज की आर्थिक, राजनैतिक व सामाजिक घटनाओं ने अचेतन रूप से काम किया है। यन्त्रों के विकास के साथ-साथ मनुष्य का सूक्ष्म संवेदन-तन्त्र भी विकसित और परिष्कृत हुआ है। भारतेन्दु की 'नील देवी' (नाटक) निराला की 'राम की शक्ति पूजा' और प्रसाद की 'कामायनी' इत्यादि कृतियाँ उनकी मौलिक निर्माण क्षमता और नयी संवेदनशीलता की परिचायक हैं। स्वच्छन्दतावादी कविता में संवेदनशीलता का सतर्क और नव्य प्रयोग हुआ है। नया कवि भावों की जटिलता और अन्तरावलम्बन को नवीन संवेदना के स्तर पर व्यक्त करता है। नैतिक अनास्था, विक्षोभ, प्रश्नाकुलता, टूटन और निरुद्देश्य जीवन-संघर्ष जैसी जीवन की आन्तरिक वास्तविक परिस्थितियों से उत्पन्न संवेदनशीलता आधुनिक जीवन की ही प्रतिकृति है। सप्तकीय कवियों ने विज्ञान युग के विराट् ऐतिहासिक परिवर्तन की प्रक्रिया को मात्र अपनी वैयक्तिक चेतना के स्तर पर ग्रहण किया था जो बहुत कुछ फ्रॉयड के सिद्धान्त पर आधारित

संवेदना का नया स्तर था।

डॉ० केदारनाथ सिंह ने वातावरण के सूक्ष्म परिवर्तनों से संवेदना के विभिन्न रूपों की व्युत्पत्ति बताते हुए लिखा है-"छायावादी कवियों में रंगों, ध्वनियों और वातावरण के सूक्ष्म परिवर्तनों की जैसी सच्ची और कोमल संवेदना सुमित्रानन्दन पंत की कविता में पायी जाती है, एक भिन्न स्तर पर वैसी ही संवेदनात्मक क्षमता गिरिजा कुमार माथुर की काव्य कृतियों में भी पायी जाती है।"[22] कविता ने विकास की उपलब्धियों और सम्भावनाओं को अपने भीतर समाहित करने का प्रयास किया है। विभिन्न काव्यात्मक उपादानों को अपनी व्यापक संवेदना का अंग बना कर कवियों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इनके माध्यम से भी जीवन के गहनतम सत्यों की अभिव्यक्ति हो सकती है।

संवेदना की स्थितियाँ-परिस्थितियाँ व्यक्ति-दर-व्यक्ति बदलती रहती हैं क्योकि प्रत्येक व्यक्ति के चिंतन का फलक अलग होता है और उसका दृष्टिकोण भी विविधतायुक्त होता है। काव्यशास्त्र की प्राचीन अवधारणा (रस, छंद व अलंकार आदि वाली) हो अथवा आधुनिक अवधारणा (बिम्ब, प्रतीक, उपमान-योजना, मिथक, फंतासी आदि वाली), इनके विश्लेषणात्मक आधार के रूप में संवेदनात्मकता का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। मेरे अपने विश्लेषण के अनुसार संवेदनशीलता अग्रलिखित रूपों में हो सकती है जिनका अलग-अलग विश्लेषण करने की मैंने चेष्टा की है-

(क) प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता
(ख) स्वाभाविक संवेदनशीलता
(ग) परिवेशगत संवेदनशीलता
(घ) यथार्थपरक संवेदनशीलता
(ङ) समाजपरक संवेदनशीलता
(च) दृष्टिपरक संवेदनशीलता
(छ) विषमतापरक संवेदनशीलता
(ज) न्यायपरक संवेदनशीलता
(झ) कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता
(ञ) व्यंग्यपरक संवेदनशीलता
(ट) लौकिक संवेदनशीलता
(ठ) अलौकिक संवेदनशीलता
(ड) सर्जनात्मक संवेदनशीलता

(क) प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता

प्राकृतिक उपादानों के प्रभाव से मन में उत्पन्न भावों की विकसित दशा का नाम प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता है। प्रकृति में संवेदना देखने को रस्किन ने संवेदना का हेत्वाभास (Pathetic Fallacy) कहा है। कालिदास ने मेघदूत में विरही पक्ष के द्वारा मेघ से संवेदना की याचना कराई है। जायसी ने विरह के कारण ही मिट्टी में दरार पड़ना और गेहूँ का बीच में से फटा होना बताया है। आदि कवि वाल्मीकि ने स्वयं प्रकृति का जैसा संवेदी रूप प्रस्तुत किया है वैसा अन्यत्र देखने को नहीं मिलता।

छायावादी कविता ने नारी-पुरुष की परम्परागत धारणा को बदलकर और प्रेम की सूक्ष्म-गहन अनुभूतियों को प्रकृति के असंख्य कोमल-मधुर प्रतीकों और बिम्बों में रूपायित किया है। छायावादी रहस्यवाद की भावना संवेदनशीलता का ही पर्याय है। वस्तुतः प्रकृति मानव के सुख-दुःख दोनों में ही सहायक होती है। मानव के संवेदना के तंतु प्रकृति से जुड़े होते हैं इसलिए हर स्थिति में उसे प्राकृतिक दृश्यों, रंगों और उपादानों में सांत्वना तथा शान्ति मिलती है। कवि की संवेदनशीलता इसीलिए प्रकृतिजन्य हो जाती है। वह जब कल्पना की डोर पकड़ता है तो वस्तुतः प्रकृति की क्रोड में ही झूलते हुए संवेदना के अनेक आयाम तय करता है।

(ख) स्वाभाविक संवेदनशीलता

मानवीय प्रकृति निसर्गतः कोमल भावों से युक्त होती है। मनुष्य के स्वभाव की यही अनुभूति जब दूसरों के सुख-दुःख से स्वयं भी वैसी ही हो जाती है तो वह स्वाभाविक संवेदनशीलता कहलाती है। किसी के सौन्दर्य, कुरूपता, सुख-दुःख, हानि-लाभ, जीवन-मरण आदि को देखकर मनुष्य के हृदय में स्वतः ही संवेदना प्रादुर्भूत हो जाती है। यह संवेदना उस मनुष्य के दर्शन के अनुसार ही पुष्टता को प्राप्त करती है। चाहे कितना ही क्रूर व्यक्ति हो, किन्तु उसकी संवेदना का कोई न कोई कोना दया और करूणा से सिक्त होता है, जो मानवीय प्रकृति की देन होती है। प्रायः प्रबंधकाव्यों अथवा कथात्मक कविताओं के चरित्रों में हमको स्वाभाविक संवेदनशीलता के दर्शन होते हैं। सच तो यह है कि मनुष्य की व्यक्तिगत प्रकृति के अनुरूप इसका वितान संकुचित अथवा विस्तृत होता रहता है।

(ग) परिवेशगत संवेदनशीलता

हमारे परितः वातावरण में घटित होने वाली घटनाओं को देखकर मन में उत्पन्न हुई सहानुभूति को परिवेशगत संवेदनशीलता कहते हैं। हमारा परिवेश बड़ी तेजी से नए-नए परिवर्तनों की ओर बढ़ता रहता है। धर्मवीर भारती ने दूसरा सप्तक के अपने वक्तय में लिखा है कि ''इस संक्रान्ति-काल में मानव की सदियों पुरानी मान्यताएँ बहुत तेजी के साथ ढहती चली जा रही हैं, उनकी चेतना के आगे नये-नये क्षितिज हर साल खुलते जा रहे हैं। उसके मन की अनगिनत परतें एक के बाद एक उघड़ती चली जा रही हैं और जिंदगी के झंझावात हर क्षण उसे ऐसी-ऐसी परिस्थितियों और अनुभूतियों में उलझाते चले जा रहे हैं जो सर्वथा नहीं हैं, जो आज तक के संचित मानव ज्ञान और संवेदना के परे है। ऐसी अवस्था में जब कवि जीवन का आस्वाद करता है तो उसे ऐसे कितने ही स्पन्दन-संवेदन मिल जाते हैं, जिनके लिए उसे एक नयी अभिव्यंजना की खोज करनी पड़ती है, नया काव्य रूप ढूँढ़ना पड़ता है।''[23] स्वाभाविक संवेदनशीलता और परिवेशगत संवेदनशीलता एक-दूसरे

की पूरक होती हैं। जो व्यक्ति स्वभावतः संवेदनशील होगा उसे ही परिवेश में व्याप्त अनेक संवेदनाओं के दर्शन अथवा अनुभूति होगी। दूसरी ओर परिवेशगत अनुभूति से ही स्वाभाविक संवेदना का उद्रेक होता है।

(घ) यथार्थपरक संवेदनशीलता

जगत के स्वरूपों व सत्यों के यथातथ्य आग्रह का भाव जहाँ अपनी परिपक्व स्थिति को प्राप्त कर रहा हो वहाँ यथार्थपरक संवेदनशीलता होती है। कविता का साध्य संवेदनाओं को यथार्थ रूप में प्रेषण करना है। प्रयाग नारायण त्रिपाठी ने सेसिल लुइस का एक कथन प्रस्तुत करके इसकी पुष्टि करनी चाही है- ''सेसिल लुइस के इस कथन से मैं पूर्णतः सहमत हूँ कि-कविता यथार्थ को संवेदना और सहयोग प्रदान करने का एक मार्ग है, कविता यथार्थ का सृजन केवल इसी अर्थ में करती है कि वह अपनी उपलब्धि को नये रूपों में पुनः संयोजित करती है।''[24] चिंतन के विराट् फलक पर यथार्थपरक संवेदनशीलता को परिवेशगत संवेदनशीलता का एक अंग माना जा सकता है। किन्तु यथार्थ भी दो रूपों में हो सकता है- भौतिक और मानसिक, इसलिए यथार्थपरक संवेदनशीलता दो आयामों को धारण करके चलती है-एक वह जो मनुष्य के अंदर उसकी सोच में निहित होती है व दूसरी वह जो परिवेश से तादात्म्य स्थापित करती है।

(ङ) समाजपरक संवेदनशीलता

सामाजिक अवरोधों तथा विसंगतियों के कारण मन में उत्पन्न होने वाली सहानुभूति समाजपरक संवेदनशीलता कहलाती हैं। कविताओं में समाज की समस्याओं को सबके सामने लाने की एक सहज प्रवृत्ति पायी जाती है। केदारनाथ सिंह के अनुसार- ''समाज के प्रत्येक सदस्य की छोटी से छोटी चेतन क्रिया किसी न किसी अंश में सामाजिक होती है। फिर कविता तो समाज के सबसे अधिक संवेदनशील व्यक्ति की चेतन क्रिया है।''[25] आधुनिक समाज की जटिलताओं और अन्तर्विरोधों से कवि की संवेदना भी विचलित हो उठती है। समाज में जब-जब परिवर्तन होते रहे हैं तब-तब सुहृदों में संवेदना उद्भूत हुई है और इस संवेदना ने समाज को नवीनता प्रदान करने में अपनी अहम् भूमिका निभायी है। समाजपरक संवेदनशीलता परिवेशगत संवेदनशीलता के आगे की चीज है। एक ही समाज में कई परिवेशों के दर्शन हो सकते हैं। कभी-कभी समाज विशेष की व्याप्ति पूरे संसार में होती है। इसलिए कवि की संवेदना समाज के गुण-दोषों को लक्ष्य करने लगती है।

(च) दृष्टिपरक संवेदनशीलता

सहानुभूति उत्पन्न करने वाले दृश्यों, चित्रों, घटनाओं इत्यादि को देखने से जाग्रत संवेदना का

भाव दृष्टिपरक संवेदनशीलता कहलाता है। इस स्थिति में हृदय सात्विक हो जाता है। भरत का राम की पादुका लेकर विरक्त भाव से अयोध्या लौटने का दृश्य, हरिश्चन्द्र का अपनी रानी से कफन के लिए आधा वस्त्र माँगना, कृष्ण के वियोग में दुःखी ब्रजवासियों का चित्र, बाजरूपी इन्द्र से कबूतररूपी अग्निदेव की रक्षार्थ तराजू पर अपना माँस तौलते महाराज शिवि का चित्र, अस्थिदान करते महर्षि दधीचि का चित्र;ऐसे दृश्य भला किस सहृदय में संवेदनशीलता न उत्पन्न कर देंगे। ऐसे मार्मिक दृश्यों के साथ दर्शक का तादात्म्य इस प्रकार स्थापित हो जाता है कि वह स्वयं को ही पात्र समझने लगता है।

(छ) विषमतापरक संवेदनशीलता

किसी के साथ असमानता का व्यवहार होते देखकर उसके प्रति मन में उत्पन्न होने वाली सहज सहानुभूति विषमतापरक संवेदनशीलता कहलाती है। पूँजीवाद, ब्रिटिश साम्राज्यवाद, किसानों का शोषण इत्यादि का विरोध करने वाली कविताओं में इस प्रकार के स्वर, जगह-जगह पर सुनाई देते हैं। खोखली मान्यताओं को समाप्त करने का प्रयास और नयी सभ्यता की माँग करना विषमताओं से जूझते मनुष्य की विवशता हो जाती है। इन विषमताओं से कवि भी प्रभावित हुए बिना नहीं रहता और उसका संवेदनशील हृदय क्रान्ति के गीत गाने लगता है। वर्तमान में नारी-विमर्श अथवा दलित-विमर्श इसी प्रकार की संवेदनशीलता की देन हैं। वस्तुतः इस प्रकार की संवेदना दो कारणों से उत्पन्न होती है। एक तो न्यायवादी दृष्टिकोण से और दूसरे कुंठाग्रस्त होने से। इन दोनों ही कारणों से विषमतापरक संवेदनशीलता के दो आयाम सृजित होते हैं। एक में विषमता साध्य बन जाता है और दूसरे में साधन।

(ज) न्यायपरक संवेदनशीलता

न्याय की भावना से उत्पन्न संवेदना न्यायपरक संवेदनशीलता कहलाती है, चाहे वह न्याय करने की भावना हो या फिर न्याय पाने की भावना। रक्षार्थ उठने वाली करूणा न्याय की पक्षधर होती है। आचार्य शुक्ल के अनुसार-"लोक में प्रथम साध्य रक्षा है।"[26] न्यायवादी व्यक्ति में लोकमंगल की भावना होती है। लोकमंगल का विधान करूणा और प्रेम के द्वारा होता है। न्याय प्राप्ति के पश्चात प्रेम का या रंजन (सुख) का अवकाश मिलता है। इस प्रकार की संवेदनशीलता के लिए व्यक्ति के अंदर सूक्ष्म विवेचन की क्षमता होना अनिवार्य है और साथ ही उसके अंदर निष्पक्षता की भावना होनी चाहिए। इस प्रकार की संवेदनशीलता के दर्शन आत्मकथात्मक काव्यों में बहुलता से होते हैं।

(झ) कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता

ऐसी संवेदना जो बनावटीपन लिए हुए हो कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता कहलाती है। ऐसी संवेदनशीलता प्रायः अभिनेताओं में ही देखने को मिलती है। यदि कवि की संवेदना कृत्रिम है तो कविता का सामूहिक प्रभाव प्रधान नहीं रहता और न ही उसके वाह्य रूप की दृश्यता आनुषंगिक रहती है। ऐसी स्थिति में अनुभूति परिपक्वता को न प्राप्त होकर मिथ्या प्रदर्शन के द्वारा अन्य व्यक्ति में संवेदना जाग्रत करने का प्रयास करती है। यह संवेदनशीलता भौतिकता और शिष्टाचार की देन है और 'मुँह में राम बगल में छूरी' वाले भाव को चरितार्थ करती है। जबसे कविता को स्वार्थ-सिद्धि का हथियार बना लिया गया है, इसकी मात्रा में उत्तरोत्तर वृद्धि होती गई है।

(ञ) व्यंग्यपरक संवेदनशीलता

व्यंग्य और तीक्ष्णता से युक्त किन्तु यथार्थपरक संवेदना व्यंग्यपरक संवेदनशीलता कहलाती है। ऐसी संवेदना के आयाम मुखर, सचेत और सामयिक होते हैं। आधुनिक कविता में हास्य-व्यंग्य विधा का बौद्धिक विकसित रूप जगह-जगह पर देखने को मिलता है। उसमें समकालीन मुद्दों और अराजक-तत्त्वों पर व्यंग्यात्मक तौर पर प्रहार किया गया है। यह प्रहार पाठक या श्रोता के बौद्धिक स्तर को विकसित करता है। व्यंग्यपरक संवेदनशीलता काव्यशक्ति पर आधारित होती है। वक्रोक्तियों के आधार पर कविता में ऐसी विशेषता उत्पन्न हो जाती है जो लक्ष्यार्थ इंगित करने लगती है। इसका उद्देश्य हास-परिहास और कमियों अथवा समस्याओं की ओर संकेत करना है।

(ट) लौकिक संवेदनशीलता

सांसारिक योग-वियोग से उत्पन्न मार्मिक सहानुभूति की भावना लौकिक संवेदनशीलता कहलाती है। यह संवेदना लोकहृदय को स्पर्श करने वाली होनी चाहिए। आचार्य शुक्ल लिखते हैं- ''यदि लोक के मर्मस्थलों की पहचान हममें होगी तो हमारी उपस्थित की हुई योजना सहृदय मात्र को भावमग्न करेगी। यदि उस योजना में लोकहृदय को स्पर्श करने की क्षमता न होगी तो भावानुभूति का हमारा सारा प्रदर्शन भाँड़ो की नकल-सा होगा। भाव प्रधान कविता में- ऐसी कविता में जिसमें संवेदना की विवृत्ति ही रहती है-आलंबन का आक्षेप पाठक के ऊपर छोड़ दिया जाता है। विभाव प्रधान कविता में-ऐसी कविता में जिसमें आलंबन का ही विस्तृत रमणीय चित्रण रहता है- संवेदना पाठक के ऊपर छोड़ दी जाती है।''[27]

(ठ) अलौकिक संवेदनशीलता

सांसारिकता से परे विशिष्ट दैवीय योग से उत्पन्न अनुभवग्राह्यता अलौकिक संवेदनशीलता

कहलाती है। इस स्थिति में व्यक्ति साधारण भाव-भूमि से ऊपर उठ जाता है। ईश्वरीय ज्ञान ही भावानुभूति के संचार का वास्तविक द्वार खोलता है। ईश्वर की अनुभूति जाग्रत होने पर व्यक्ति के हृदय में लोक सीमा से परे विशिष्ट संवेदना उत्पन्न हो जाती है और वह भक्त या सन्त की कोटि में पहुँच जाता है। सम्पूर्ण भारतीय दर्शन इसी पर आधारित है और संसार के अन्य दर्शनों से इसी कारण अलग है। मोक्ष की कामना और ज्ञान-मीमांसा दोनों ही स्तरों पर आदिकाल से ही हिन्दी कवि अभिप्रेरित रहा है। प्रचुर मात्रा में भक्ति-साहित्य भी अलौकिक संवेदनशीलता की देन है। आधुनिक और समकालीन काव्य में भी इसका प्रयोग हो रहा है।

(ड) सर्जनात्मक संवेदनशीलता

कवि या लेखक की रचनाधर्मिता अपने प्रभाव से पाठक को उस रचना से तादात्म्य स्थापित कर सहानुभूति करने/रखने को बाध्य करती है। पाठक के मन में उत्पन्न होने वाली सहानुभूतिपूर्ण वैचारिकता सर्जनात्मक संवेदनशीलता कहलाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल कवियों या लेखकों की इस संवेदना को उनका संदेश (मैसेज) बतलाते हैं। उनके अनुसार- "हमारे आदिकवि का- आदि से अभिप्राय प्रथम कवि से है जिसने काव्य के पूर्ण स्वरूप की प्रतिष्ठा की—— संदेश है कि सब भूतों तक, संपूर्ण चर-चर तक अपने हृदय को फैलाकर जगत् में भावरूप में रम जाओ; हृदय की स्वाभाविक प्रवृत्ति के द्वारा विश्व के साथ एकता का अनुभव करो।"[28]

इस प्रकार से हिन्दी कविता में संवेदनशीलता इन सभी रूपों में मन के अन्दर की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को एक विस्तृत फलक में स्थापित करने का प्रयास करती है। वह विशुद्ध मनोभावों और उत्कृष्ट बिम्बों की ऐसी कोमल सहज मूर्ति हैं जो कविता को अक्षुण्ण बनाती है।

इ. भावनात्मकता : सप्तकों से पूर्व और सप्तकीय कविता में

सप्तकों से पहले की कविताओं में तथा सप्तकीय कविता में भावनात्मकता के विभिन्न रूपों का अध्ययन निम्नवत किया जा सकता है-

(क) व्यष्टिगत भावनात्मकता

सप्तकों से पूर्व की कविता में व्यष्टिगत भावनात्मकता के बड़े ही सुन्दर चित्र बन पड़े हैं। छायावादी कवियों ने तो अपनी सूक्ष्म अनुभूतियों को विभिन्न रंग-बिरंगे और लालित्यपूर्ण प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने का प्रयास किया है। 'कामायनी' महाकाव्य के श्रद्धा सर्ग में प्रलयजनित निराशा और वेदना के भँवर में डूबे हुए मनु जब श्रद्धा का कर्णप्रिय स्वर सुनते हैं तो उनकी जिज्ञासा प्रबल हो उठती है और वे कह उठते हैं-

कौन हो तुम वसंत के दूत विरस पतझड़ में अति सुकुमार।

घन तिमिर में चपला की रेख, तपन में शीतल मंद बयार।[29]

वह उनके हृदय-जगत के अन्धकार को विद्युत की कान्ति के समान दूर करती है और उनकी पीड़ा रूपी ऊष्णता को आशा रूपी शीतल वायु के झोकों से दूर कर देती है। यही आशा आगे चलकर कवि का सम्बल बनती है और आत्मपीड़न की स्थिति में भी कवि अपनी शक्ति का भरोसा नहीं छोड़ता है। निराला का विश्वास कुछ इसी प्रकार का है-

प्रात तव द्वार पर,

आयाजननि, नैश अन्ध पथ पार कर,

लगे जो उपल पद, हुए उत्पल ज्ञात,

कण्टक चुभे जागरण बने अवदात[30]

यहाँ कवि का योद्धा व्यक्तित्व संघर्ष करने का आदी है। उसकी भावनात्मक दृढ़ता मृत्यु पर भी विजय पाने वाली है। कवि की पीड़ा में भी नव जागरण की आशा है। उसके विषाद में भी आनन्द छिपा हुआ है।

सप्तकीय कविताओं में मनस्संगठन की ओर का प्रयत्न केवल बुद्धिगत ही नहीं शुद्ध जीवनगत है। विकेन्द्रित व्यक्तित्व अपने अबूझे समय के गत वैभव पर रोदन कर उठता है-

खण्डहरों के मूल औ' निस्पन्द से

उमड़े अकेले गीत।

ये भूत से निर्देह भय कर

बेचैन काले व्यथित आतुर

तिमिर नूपुर के अकेले स्वर,

उमड़े अकेले गीत।[31]

और वह अपने विगत वैभव की ओर पुनः लौटना चाहता है-

पीछे, पीछे, पीछे अपने हटते जाओ,

ओ हटो, हटो जाने दो

पीछे जाने की दो राह मुझे। मैं लौट रहा हूँ

X X X X

गत कुछ वर्षों में घुलता जाता तन मेरा।

पानी होकर मैं फैल गया हूँ अपनी पिछली बीती

पर।[32]

वह जन-जन के दुःख-दर्द हर कर सुख-शान्ति का समाज बनाना चाहता है-

मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी

तो दर्द हरे,

सुख सौख्य भरे

यही नहीं कि-

अपने

तन के, मन के,

निजी, व्यक्तिगत

दुःख दर्दों में जिये मरे।[33]

कवि की व्यक्तिगत भावना है कि वह इस जगत को, इस समाज को बदल कर नवीन भावभूमि का निर्माण करे-

मुझे तिरना नहीं है

एक दम पार करनी है

एक ही सम्पूर्ण स्पर्श से

गरजते भाव-सागर की महाभिलाषा।[34]

कवि की यह महाभिलाषा उसकी वैचारिक ऊर्जा का प्रतीक है। यहाँ कवि की वैयक्तिक अनुभूति सूक्ष्म के अन्दर विराट का विस्तार करती है।

सप्तकों से पूर्व की कविता की व्यक्तिगत अनुभूति जहाँ मौलिक तथा सहज ही आकर्षित करने वाली है वहीं सप्तकीय कविता का व्यक्ति पूरी निष्ठा के साथ अपने भावों और आवेगों को मानव और सृष्टि के विकास की दिशा में उन्मुख करना चाहता है। अर्थात् कवि के व्यक्तित्व का विकास भी समष्टि तक अपना प्रभाव प्रक्षिप्त करने वाला है।

(ख) समष्टिगत भावनात्मकता

सप्तकों से पूर्व की कविता देश-प्रेम और विश्व-प्रेम की कविता है। उसमें विश्व कल्याण की कामना निहित है। प्रसाद की इन पंक्तियों में लोक मंगल की भावना देखी जा सकती है-

विश्व की दुर्बलता बल बने, पराजय का बढ़ता व्यापार-

हँसाता रहे उसे सविलास, शक्ति का क्रीड़ामय संचार।[35]

विश्व की एकता और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का भाव उपरोक्त पंक्तियों में परिलक्षित होता है। 'विश्व मानव' की देह में शक्ति का संचार भी क्रीड़ा और कौतुक से भरा हुआ है। किन्तु जब कवि इसी 'विश्व मानव' की अस्थिरता को देखता है तो वह द्रवित होकर उसकी प्रकृति का विकृत स्वरूप दर्शाता है। उदारणार्थ पंत की ये पंक्तियाँ-

अचिरता देख जगत की आप

शून्य भरता समीर निः श्वास,

डालता पातों पर चुपचाप

ओस के आँसू नीलाकाश

सिसक उठता समुद्र का मन

सिहर उठते उडुगन।[36]

सांसारिक विषमताओं से प्रकृति भी आन्दोलित हो उठती है। हवा का तेजी से चलना, आकाश का वर्षा करना और समुद्र की लहरों का काँपना, प्रकृति के इन सभी रूपों में कवि को सांसारिक दुःख के निदर्शन होते हैं।

विश्व कल्याण की कामना वाले तार सप्तक के कवि रामविलाश शर्मा की दृष्टि विद्रोह के पश्चात आततायियों के विनाश के परिणामस्वरूप उत्पन्न शक्ति को अविनश्वर बतलाती है-

शिशिर की ओस भरी ठण्डी रात,

लाल हुआ लपटों से आसमान!

अग्नि विद्रोह की,

तोड़ कर क्षमाशील पृथिवी के वक्ष को,

सहस्रों शिखाओं में, उठी गगन में सुवर्ण सिंहासन ओर।

मज्जा और मांस से सने हुए मसान में

प्रज्वलित चिता की लपटों में,

अविनश्वर लिखी है शान्ति संसार की।[37]

सप्तकीय कवि प्रगति की राह पर चलने वाले मानव से नव सजृन का आह्वान करता है-

साफ कर लो

द्वार, घर, गलियाँ नगर की ग्राम की।

खेत का, खलिहान का कचरा समेटो।

अब नयी सुन्दर फसल के बीज के अंकुर निकलना चाहते हैं।[38]

वह विश्व कामना को ही एकमात्र लक्ष्य बनाकर सेवा, समर्पण इत्यादि भावनाओं को ग्रहण करने की सीख देता है-

सौदा सौदा है तभी अगर सेवा है,

सेवा सेवा है तभी, अगर अर्पण है।

अर्पण अर्पण है तभी अगर पीड़ा है

पीड़ा पीड़ा है तभी, अगर सोऽहं है।

सोऽहं जब त्वं हो जाय तभी सोऽहं है;

सोऽहं का त्वं में लय ही लक्ष्य परम है।[39]

सप्तकीय कवि का मनुष्य दुःख पर स्वयं-ही भारी पड़ता है। वह धरती और आकाश के भेद को भी समाप्त करने का पक्षधर है; वह समता का पुजारी है-

चाहता हूँ : धरती के भीतर तक गड़ूँ

फिर आकाश तक उठूँ

ताकि आकाश धरती के भीतर तक फैलता चला जाये।[40]

आज के मानव के लिए कवि का यही रूप अपेक्षित है। समस्त समष्टि के भावों का प्रतिनिधित्व करने वाली सप्तकीय कविताओं में कवि की भावनाएँ संकुचित दायरे से निकलकर 'सर्वजन हिताय' की कामना से परिपूर्ण हैं। वह व्यक्ति मन को समष्टि मन के साथ जोड़कर नयी ऊर्जा से युक्त होना चाहता है।

अतः यह कहा जा सकता है कि सप्तकों के पूर्व की कविता में मौजूद धरित्री को स्वर्ग बनाने की भावना सप्तकीय कविता में भी विद्यमान है, भले ही कुछ दूसरे रूप में।

(ग) मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता

मानव प्रायः कुछ विशेष आदतों का अनुकरण करता है। इन्ही आदतों को दृष्टिगत करके मनोविज्ञान उसकी मनः स्थितियों के आधार पर उसके अग्रिम क्रिया-कलापों तथा मनोभावों का निर्धारण करता है। सप्तकों से पूर्व की कविता में भावों का सूक्ष्म वैज्ञानिक विश्लेषण अनेक कवियों

के द्वारा किया गया है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने साकेत के नवम सर्ग में उर्मिला के द्वारा लक्ष्मण की सूक्ष्म मनः अनुभूतियों का चित्र इस प्रकार खींचा है-

अकस्मात निः शब्द आये जयी

मनोवृत्ति थी नाथ की मन्मयी

सखी आप ही आप वे हँसे-

बड़े वीर थे, आज अच्छे फँसे ?

हँसी मैं, अजी, मानिनी तो गई।

बधाई! मिली जीत यों ही नई।

प्रिये हार में ही यहाँ जीत है।[41]

प्रेम में प्रिय से अलग सत्ता की भावना नहीं रहती। यही दो के एक होने की दशा है। इस दशा में प्रेमी हृदय प्रिय के सुख-दुःख का अनुभव उसी रूप में करता है। भाव-तादात्म्य स्थापित करने की यही अनुभूति तब और भी प्रबल हो उठती है जब प्रिय परदेश में हो। रत्नाकर की इन पंक्तियों में कृष्ण के पत्र में लिखी बातों को सुनने के लिए नन्द के यहाँ गोपियों की इसी मनः स्थिति का चित्रण हुआ है-

कहै रत्नाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि

दौरि-दौरि नंद पौरि आवन तबै लगीं।

उझकि-उझकि-पद-कंजनि के पंजनि पै

पेखि-पेखि पाती छाती छोहनि छबै लगीं।।[42]

यहाँ कवि नारी हृदय की कोमलता और जिज्ञासा को स्वयं अनुभव करता है। उसकी दृष्टि अचेतन मन की गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न करती हुई सूक्ष्मतम भावों का विश्लेषण करती जान पड़ती है। इस प्रकार सप्तकों से पूर्व की मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता के विविध रंग दिखलाई पड़ते हैं।

मनःभावों का सूक्ष्मतम परीक्षण सप्तकीय कविताओं में सर्वत्र दिखायी पड़ता है। मन के रहस्यों की गर्त्त में उतरकर मुक्ता ढूँढ़ने का कार्य एक मौलिक व्यक्ति ही कर सकता है। अज्ञेय की कविताएँ कुछ इसी प्रकार की हैं-

मेरे स्मृति गगन में सहसा

अन्धकार चीर कर आया एक चेहरा उदास।

आँखो की पुतलियों में सोयी थीं बिजुलियाँ-

किन्तु वेदना का आर्द्र घन छाया आस-पास!

एक क्षण। केकी की पुकार से फटा हुआ

रात का रहस्यगर्भ स्पन्दित तिमिर फिर

व्रण निज ढक कर फैल कर मिल गया-

जैसे कोई निराकार चेतना

जीवन की अल्पतम

अनुभव-लहर की चोट सोख लेती है।[43]

मन की विभिन्न स्थितियों को जल की स्थितियों के माध्यम से प्रकट करने का प्रयत्न प्रयगानारायण त्रिपाठी की इस कविता में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता है-

सुप्तक जल/जो कुनमुनाता था,/झकोरों के सहारे सर उठाता था,

देखता था अचानक सम्मुख अड़े गिरि को;/ क्षुब्ध होता था,

थपेड़े मारता था, फिर लजा कर (हार कर शायद स्वयं से)

लौट जाता था;/ शान्त जल-/जो अपरिमित लघु-लघु प्रयत्नों की थकन से

चूर होता था/सरोवर के हृदय में दुबक कर

चुपचाप सोने के लिए मजबूर होता था

अन्ध जल-/जो निपट सीमा बद्ध मणिधर-सा

भू विवर में रेंगता था मौन/बाहर के विपुत्र विस्तार में

निज को समर्पित, रिक्त करने से बहुत भयभीत।[44]

कवि दुःख की स्थिति में भयभीत न होकर मन को विघ्नों से लड़ने की प्रेरणा देता है। वह मन के संघर्षों को सहज भाव से झेलने को ही जीवन बतलाता है-

निर्विघ्न तो झरना भी नहीं है

जैसे पत्थर और पानी की

आपस में कोई तुलना नहीं है ;

निर्विघ्न नहीं है पाँख का फूल से अलग होना।

सहज तो केवल क्रम है

पत्थर और पानी के बीच के संघर्ष का

पाँख और फूल के अन्तरतम तनाव का

और : मेरे और दुःख के बीच के राग का।[45]

यहाँ कविता का बदला हुआ नवीन रूप और स्वर बदली हुई मानवीय वृत्तियों की अनुभूति ही है। अन्तश्चेतना के गहन गुम्फित बिम्बों का मोह छोड़कर कवि प्रत्यक्ष ऐन्द्रिय प्रभावों को चित्रबद्ध करने का सफल प्रयास करता है।

अतः सप्तकों से पहले की कविता में यदि मनुष्य की स्वाभाविक मनःस्थितियों को सूक्ष्म और गहन स्तर पर उतारने का प्रयास देखने को मिलता है तो सप्तकीय कविता में चेतन-अचेतन के रहस्य का विश्लेषण पाश्चात्य मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से प्रभावित हुआ है।

(घ) सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता

हिन्दी कविता अपने प्रारम्भ से ही सौन्दर्यग्राही रही है। प्रकृति के सौन्दर्य की अनुभूति करने के लिए कल्पना का होना आवश्यक है। वस्तुगत सौन्दर्य का आधार भी कल्पना से ही निर्मित होता है। सौन्दर्य की अनुभूति में कल्पना के साथ ही हृदय की गम्भीर वृत्तियों का भी महत्त्व है। इन्ही दोनों रूपों का सम्मिश्रण हरिऔध के 'प्रियप्रवास' में इस प्रकार से हुआ है-

मकर केतन के कल-केतु से।

लसित थे वर कुण्डल कान में।

घिर रही जिनकी सब ओर थी

विविध भावमयी अलकावली।।[46]

वन से लौटते हुए श्रीकृष्ण की हृदयग्राही सुन्दरता और अलकावली का भावमय रूप कवि की कल्पना शक्ति और गहन भावों का उदात्त पक्ष ही है। कवि औरों की तुलना में सौंदर्य को अधिक निकट से देखता है। उसकी कल्पना यथार्थ में खूबसूरती का मुलम्मा चढ़ाकर धुँधला नहीं करती अपितु उसमें और भी निखार लाती है। निराला की इन पंक्तियों में सौंदर्य का यही निखरा हुआ रूप है-

बुझे तृष्णाशा विषानल झरे भाषा अमृत निर्झर,

उमड़ प्राणों से गहनतर छा गगन लें अवनि के स्वर।[47]

यहाँ अमृत के निर्झर धरती से उठकर आकाश में छा जाते हैं। धरती के इस सौंदर्य से कवि का मन कल्पना की ऊँचाइयों में नहीं अपितु धरातलीय यथार्थ की दृढ़ता के साथ बँधा हुआ है। सप्तकों से पूर्व की कविताओं में भरपूर सौंदर्यबोधक भावनाएँ हैं।

सप्तकीय कवि ग्लानि, हृदय की कड़वाहट और नीरसता से ऊब कर अपने प्रिय के निष्कलुष सौन्दर्य को यादकर परम आनन्द की अनुभूति करता है। नेमिचन्द्र की 'इस क्षण में' कविता की ये

पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

जिस अकल्पित दिव्यता की सुरभि से,

सौन्दर्य से

मन का सभी व्यापार ही थम जाय,

पलक भी हो जायँ स्थिर, निस्पन्द -

उस परम आनन्द-सी,

निष्कलुष सौन्दर्य के आगे उमड़ती विवशता -सी

पूर्ण, व्यापक, मधुर................[48]

प्रकृति का सौन्दर्य उमंग, प्यार और सुख की अनुभूति कराता है। मधुमास का सौन्दर्य मनुष्य को ही नहीं पशु-पक्षियों को भी मदोन्मत्त बना देता हैं-

वन की रानी, हरियाली-सा भोला अन्तर,

सरसों के फूलों-सी जिस की खिली जवानी,

पकी फसल-सा गरूआ गदराया जिसका तन।

अपने प्रिय को आता देख लजायी जाती।

गरम गुलाबी शरमाहट-सा हल्का जाड़ा

स्निग्ध गेहुँए गालों पर कानों तक चढ़ती लाली-जैसा फैल रहा है।[49]

आधुनिक सभ्यता में दया, सौन्दर्य, आदि गुणों का अभाव भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है-

आज की दुनिया में/विवशता,/भूख,/मृत्यु,

सब सजाने के बाद ही/पहचानी जा सकती हैं।

बिना आकर्षण के दुकानें टूट जाती हैं।

शायद कल उन की समाधियाँ नहीं बनेंगी

जो मरने के पूर्व/कफन और फूलों का

प्रबन्ध नहीं कर लेंगे।

ओछी नहीं दुनिया:

मैं फिर कहता हूँ,

महज उस का

सौन्दर्य-बोध बढ़ गया है।[50]

सौन्दर्य तथा सत्य के पुराने मान यहाँ कवि के लिए बदल चुके हैं। आज की दुनिया कल की दुनिया से अलग स्वार्थ की पूर्ति में संलग्न रहने वाली दुनिया है। ऐसे में भला कवि का सौंदर्य-बोध क्यों न अधिक सचेष्ट होगा ?

अतः सप्तकों से पहले छायावादी कवि जहाँ प्रकृति के सौन्दर्य का अनन्य प्रेमी है वहीं प्रगतिवादी कवि प्रकृति के उजाड़ में भी सौन्दर्य सृष्टि करता है। सप्तकीय कवि इसी क्रम में दीन-दलित मनुष्य, वैज्ञानिक यंत्रों और उपेक्षित वस्तुओं के सौन्दर्य को नवीन दृष्टि से देखता है।

(ङ) राष्ट्रवादी भावनात्मकता

हिन्दी कविता में राष्ट्र प्रेम की भावना आदि काल से ही विद्यमान थी। जगनिक, चन्दबरदायी, भूषण से लेकर भारतेन्दु, मैथिलीशरण गुप्त, सोहनलाल द्विवेदी, प्रसाद और निराला तक यह धारा अक्षुण्ण रूप में प्रवहमान रही है। इनकी कविताओं में राष्ट्रहित में बलिदान होने की भावना प्रधान रही है। सप्तकों से पूर्व की कविता मानवीय स्वतंत्रता की आवाज है। स्वतन्त्रता स्वयं वीरों का आह्वान प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियों में करती है-

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती

स्वयं प्रभा समुज्वला स्वतन्त्रता पुकारती

अमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोच लो।

प्रशस्त पुण्य पंथ है-बढ़े चलो, बढ़े चलो।[51]

मनुष्य ही नहीं अन्य जीवधारी भी स्वतंत्रता प्रेमी होते हैं। अपनी जन्मभूमि को स्वर्ग से भी बढ़कर मानने वाले कवि की दृष्टि में स्वदेश का गौरव सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है। तभी तो वह कहता है-

उड़ते खग जिस ओर मुँह किए समझ नीड़ निज प्यारा।

बरसाती आँखों के बादल-बनते जहाँ भरे करूणा जल।

लहरें टकरातीं अनन्त की-पाकर जहाँ किनारा।

अरूण यह मधुमय देश हमारा।[52]

राष्ट्र-प्रेम की कोमल भावनाओं से परिपूर्ण इन पंक्तियों का भाव अत्यन्त विशद है। कवि केवल मातृभूमि के वैभव का मुखर गायक ही नहीं है। वह स्वाधीनता का नया जागरण लाने वाला वीर सैनिक भी है, जो निर्भीकता और साहस को अन्त तक नहीं त्यागता। पन्त का कवि गीत-रूपी विहग के माध्यम से स्वाधीनता का दिव्य संदेश नव मानव को सुनाता है-

मैं जन्म मरण के द्वारों से बाहर कर

मानव को उसका अमरासन दे जाता,

मैं दिव्य चेतना का संदेश सुनाता,

स्वाधीन भूमि का नव्य जागरण गाता।[53]

राष्ट्रहित में प्राणों का उत्सर्ग ही सर्वोपरि है। राष्ट्रहित से ही राष्ट्रधर्म और संस्कृति की रक्षा भी होती है। सप्तकों से पूर्व की राष्ट्रीय भावनात्मकता मानवीय संस्कारों और अतीत की सुरक्षा के प्रति गम्भीर है।

सप्तकीय कविता में राष्ट्रवादी चेतना व विकास के भाव परिपक्व स्थिति में हैं। सप्तकीय कवि एक नये युग का स्वप्न देखने वाला और भारत जैसे निराले देश में जन्म लेने का इच्छुक है-

जिस देश प्राणों की जलन में

एक नूतन स्वप्न का संचार हो,

ओ हृदय मेरे, उस ज्वलन की भूमि में बिछ जा स्वयं ही,

औ' तड़प कर उस निराले देश में तू खोल आँखें।[54]

वह ऊँच-नीच को नीचा दिखाने वाली, विश्वास, प्रेम और बलिदान पर पलने वाली भारत भूमि को स्वतन्त्रता देवी द्वारा पूजित बतलाता है-

भारत की आरती

देश-देश की स्वतन्त्रता देवी

आज अमित प्रेम से उतारती।[55]

देश की आन पर मर मिटने वाले वीरों का स्वाभिमान उन्हें वज्र के सम्मुख भी नत नहीं होने देता है वह अवरोधों से कभी नहीं टूटता-

ओ रे पन्थ बाँकुरे

टूट जाता तू जो इन वैरी अवरोधों से

तो भी मैं दुलारता;

किन्तु इस सीमा पर

तू ने शीश वृक्ष के कबन्ध से टिका लिया

दाग दिये आँसुओं से सूर्य प्रतिस्पर्धी नैन

केवल इस दर्द से, कि

चूम गयी साधना को एक जहरीली साँस

एक शीत स्पर्श तुझे बींध कर चला गया।[56]

आजादी की लड़ाई में कलकत्ता का योगदान सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण था। स्वदेश भारती की कविता 'ओ कलकत्ता' में कलकत्ता शहर के राष्ट्रीय स्वरूप को दर्शाया गया है-

कलकत्ता! ओ कलकत्ता!!

वक्त कभी लिखता था/तुम्हारे मस्तक पर/गुलामी की स्याही से काली तकदीर।

तूने देखे हैं बहुत सारे उतार चढ़ाव

राजा रानी/ युद्ध/अकाल/हत्याएँ/आत्म हत्याएँ-

X X X X X

और फिर उन्ही हाथों में/प्रतिज्ञाबद्ध हाथों में/ मशाल लेकर

हिन्दुस्तान का माथा चूम आशीर्वाद दिया

मुक्ति का रास्ता दिखाया।[57]

आजादी की लड़ाई में ऐसे ही न जाने कितने महानगर और शहरों ने अपने त्याग और बलिदान से क्रान्ति की मशाल को प्रज्वलित बनाए रखा। भारत की विकृत अवस्था के ऐसे कई चित्र इन कवियों की कविताओं में देखने को मिलते हैं।

वस्तुतः सप्तकों से पूर्व की कविता और सप्तकीय कविता दोनों में ही राष्ट्रीयता की भावना बड़े ही खुलेपन और साफगोई के साथ व्यक्त हुई है। जहाँ-पहले का कवि विदेशी ताकतों के विरूद्ध खुलकर संघर्ष करने का आह्वान करता है तो वहीं सप्तकीय कवि स्वतंत्र भारत की विद्रूप राजनीतिक स्थिति पर प्रहार करने से नहीं चूकता। इस प्रकार स्वाधीनता और देश प्रेम की भावना दोनों का ही आधार है।

(च) मानववादी भावनात्मकता

मानवीय मूल्यों की रक्षा के साथ-साथ मानवीय भावनाओं का सम्मान करना भी भारतीय संस्कृति है। मानवता का गुण हृदय की शुद्धता तथा प्रेम की व्यापकता का अनुभव करने के पश्चात ही मनुष्य को प्राप्त होता है। मानवताविरोधी तत्त्वों का विनाश करके कवि मानवता की कीर्ति को सर्वत्र प्रस्तुत करने का इच्छुक है। प्रसाद की ये पंक्तियाँ इस सम्बन्ध में द्रष्टव्य हैं-

उन्हे चिनगारी सदृश सदर्प कुचलती रहे खड़ी सानंद,

आज से मानवता की कीर्ति अनिल, भू, जल में रहे न मन्द

X X X X X X X

शक्ति के विद्युत्कण जो व्यस्त विकल बिखरे हैं हो निरुपाय

समन्वय उसका करे समस्त विजयिनी मानवता हो जाय।[58]

बिखरी हुई मानवीय सृष्टि को एकता और समन्वय का संदेश देती हुई उपरोक्त पंक्तियों में कवि की अखिल ब्रह्माण्ड में मानवीय गुणों की स्थापना की प्रवृत्ति देखने योग्य है। कवि मानवता की कीर्ति को अमन्द रखने के साथ ही उसकी विजय पताका को फहराना चाहता है। पन्त के शब्दों में-

मैं नव मानवता का संदेश सुनाता

स्वाधीन देश की गौरव गाथा गाता

मैं मनः क्षितिज के पार मौन शाश्वत की।

प्रज्वलित भूमि का ज्योतिवाह बन जाता।[59]

मानव के अन्दर नवीन चारित्रिक गुणों का विकास करके उन मूल्यों को शाश्वत सत्य से समन्वित करने की कवि की यह भावना उच्चकोटि की है। सप्तकों से पूर्व की कविता में व्यष्टिनिष्ठता और समष्टिनिष्ठता दोनों ही दृष्टिगोचर होते हैं। यह समष्टिनिष्ठता ही मानववादी भावनात्मकता की द्योतक है।

सप्तकीय कवि मानवता का पोषक है। वह विराट् मानव का अन्वेषी है। विश्वास के पथ पर चलकर वह मानवीय भावनाओं की रक्षा करने को तत्पर है-

और जाने क्यों,/मुझे लगता कि ऐसा ही अकेला नील तारा,

तीव्र गति,/जो शून्म में निस्संग,/जिसका पथ विराट्-

वह छिपा प्रत्येक उर में,/प्रति हृदय के कल्मषों के बाद

जैसे बादलों के बाद भी है शून्य नीलाकाश।

उस में भागता है एक तारा,

जो कि अपने ही प्रगति पथ का सहारा,

जो कि अपना ही स्वयं बन चला चित्र/भीतिहीन विराट्-पुत्र।

इसलिए प्रत्येक मनु के पुत्र पर विश्वास करना चाहता हूँ।[60]

नव मानवतावाद का पुजारी कवि नये सृजन और मुक्ति के आकाश में नया विश्वास लेकर खगवत् उड़ता जाता है-

मुक्ति में जीवन नहा कर

हर दिशा में फेंकता है

नव सृजन के फूल भर-भर

और टूटे कर बढ़ा कर झेलते खण्डहर/अजानी आस

बाल पाँखी तोड़ पिंजर

खोलने निज जीर्ण कोटर

वायु मण्डल चीरता उड़ जा रहा है ले नया विश्वास।

सृष्टि के सौन्दर्य से सज्जित नया आकाश।[61]

मनुष्य के प्रेम, विश्वास और परहित जैसे गुणों से प्रभावित कवि हृदय उसे ही ईश्वर का स्थान दे बैठता है-

गंगा की गहरी धारा में बस इसीलिए

सब ज्ञान-ध्यान का मल धो आया मैं ज्ञानी,

जिस से मेरी यह खोज बहुत निश्चिंत जिये

जिसे पा जाऊँ कोई ईश्वर इनसानी।[62]

सप्तकीय कवि प्राचीन संस्कृति के मूल्यों एवं आदर्शों के बीच से समाज की प्रगति में सहायक बनने वाले उच्च एवं प्रगतिशील मूल्यों एवं आदर्शों को ढूँढ निकालता है तथा युगानुरूप नये रूप में उसे रचनात्मक स्वरूप प्रदान करता है।

तात्पर्य यह कि वह प्रत्येक चीज को मानवीय भावनाओं की कसौटी पर कसकर परखता है। यह मानवीयता उसकी कविता के साथ जुड़कर उसके भावों को व्यापकता प्रदान करती है। सप्तकों से पूर्व की कविता की मानववादी भावनात्मकता जहाँ विराट के साथ-साथ सूक्ष्म मानवीय भावों के बिम्बों से युक्त है वहीं सप्तकीय कविता की मानवीय भावनात्मकता मानवीय सम्बन्धों के बदलते रूपों और क्रिया-व्यापार का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित करती है।

(छ) सैद्धान्तिक भावनात्मकता

मानवीय क्रिया-व्यापार आदिकाल से ही आदर्शों तथा सिद्धान्तों पर आधारित रहे हैं। यह आदर्श और सिद्धान्त कभी भक्ति पर आधारित रहे हैं तो कभी जीवन, प्रेम, व्यवहार आदि विषयों पर आधारित। सृष्टि का सृजन और विनाश ये दोनों क्रियाएँ अनवरत रूप से चलती रहने वाली हैं। किन्तु फिर भी यह प्रकृति पुनः-पुनः नवीन सौन्दर्य से विभूषित होकर आशा और सृजन के सिद्धान्त को अक्षुण्ण बनाए रखती है-

विश्व का उन्मीलन अभिराम, इसी में सब होते अनुरक्त।

काम मंगल से मंडित श्रेय सर्ग इच्छा का है परिणाम।

X X X X

तप नहीं केवल जीवन सत्य, करूण यह क्षणिक दीन अवसाद।

तरल आकांक्षा से है भरा-सो रहा आशा का आह्लाद।[63]

जयशंकर प्रसाद का यही आशावादी सिद्धान्त समस्त कवि समुदाय का मूलमंत्र रहा है। कविता का सिद्धान्त ही जीवन जगत से निराश मानव में आशावादिता को पुनर्जीवित कर उसे दृढ़ता प्रदान करना है। यही नहीं समाज के बनाए जो सिद्धान्त उसकी इस आशावादिता का विरोध करते हैं वह उन सिद्धान्तों को तोड़ने की क्षमता भी रखता है। निराला का कवि ऐसे ही व्यक्तित्व वाला है-

खण्डित करने को भाग्य अंक

देखा भविष्य के प्रति अशंक।[64]

निराला का यही भाग्य विरोधी मन कविताओं में जहाँ-तहाँ उग्रता धारण करता रहा है। कवि के यही तीव्र आवेग-उन्तेजक पदार्थों, आवेग उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों से अलग होकर-नये बिंबरूपों में परिवर्तित हो जाते हैं।

सांसारिक जटिलताओं और विषमताओं से अधीर होकर सप्तकीय कवि विभिन्न सिद्धातों, वादों के माध्यम से सही मार्ग ढूँढ़ने का प्रयास करता है-

कौन सा पथ है?

मार्ग में आकुल अधीरातुर बटोही यों पुकारा;

'कौन सा पथ है?

'महाजन जिस ओर जायें- शास्त्र हुंकारा

अन्तरात्मा ले चले जिस ओर'-बोला न्याय-पण्डित

'साथ आओ सर्वसाधारण जनों के'- क्रान्ति वाणी।[65]

जीवन क्षण-भंगुर है। जीवन स्वप्नों के विपुल भण्डार को सत्य के दर्पण में देखने का नाम है। इसी सत्य को खोजती हुई कुंवर नारायण की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

हम एक इशारा हैं दो भिन्न दिशाओं में,

हम से होकर सदियों के प्रश्न गुजरते हैं;

हम एक व्यवस्था हैं क्षण भंगुर जीवन की

जो हर क्षण को सपनों से जीवित रखते हैं।[66]

सिद्धान्तवादी कवि अपने दृढ़ भावों को लिये हुए कभी भी न झुकने वाला मानव है-

नहीं यह नहीं कहूँगा मैं

आप चाहें तो मेरा कोई हमशक्ल ही ले आयें

या चाहें/मेरे चेहरे की तारीख बदल दें

भले ही खुल जाये/अत्याचारों की नई इबारत

मगर/मेरे संदर्भ का पहाड़ नहीं झुकेगा।[67]

वह हर बुराई और समस्या से स्वयं ही जूझने को तैयार है-

नहीं, मैं नहीं चाहता

तुम्हारी मुहर ललाट पर लगा कर

अपनी जमानत देना

और न ढाल ही

बनाना चाहता हूँ तुम्हें

किसी संकट या मृत्यु के विरुद्ध

उनसे तो मैं निपट लूँगा।[68]

वह हर दायित्व को निभाने का दृढ़ संकल्प लेकर मनुष्य को उसकी जड़ों से, उसके मूल से जोड़ना चाहता है। सप्तकीय कविता मनुष्य के भविष्य के प्रति आशान्वित है। उसका सिद्धान्त है मनुष्य को संघर्ष के लिए प्रेरित करना, उसकी जड़ता को तोड़कर उसे मनुष्यता से, सार्थक जीवन सन्दर्भों से जोड़ना।

अतः सप्तकों से पूर्व की कविता में सैद्धान्तिक भावनात्मकता जहाँ नितान्त आशावादी, जटिल और पुरातन संस्कारों से युक्त है वहीं सप्तकीय कविता की सैद्धान्तिक भावनात्मकता निराशावाद, कुण्ठा, संत्रास, मनोविश्लेषणवाद तथा विद्रोही स्वरों को अपनाए हुए है।

(ज) दार्शनिक भावनात्मकता

सप्तकों से पहले के कवि का दर्शन त्याग, करुणा और नेह एवं विराट् उदात्तता जैसे गुणों को अपनाना और समाज में फैलाना है। उसकी दृष्टि में आचरण की शुद्धता, विश्व बंधुत्व, राष्ट्रीयता,

संस्कृति और मानवीयता के सरोकारों को हृदयानुमन्य करके सद् का अन्वेषण तथा उसकी उपासना ही तप है। भावनाओं की परिपक्व स्थिति में दार्शनिकता स्वतः स्फूर्त हो जाती है। कवि का मानस तो जीवन के यथार्थ का उद्घाटन करने में ही अपनी सार्थकता अनुभव करता है-

नारी! तुम केवल श्रद्धा हो विश्वास रजत पग नभ तल में।

पीयूष स्रोत-सी बहा करो जीवन के सुन्दर समतल में।।

देवों की विजय, दानवों की हारों का होता युद्ध रहा।

संघर्ष सदा उर- अंतर में जीवित रह नित्य विरुद्ध रहा।।

आँसू से भीगे अंचल पर मन का सब कुछ रखना होगा।

तुमको अपनी स्मिति-रेखा से यह संधि पत्र लिखना होगा।।[69]

कवि का नारी सम्बन्धी दृष्टिकोण उपरोक्त पंक्तियों में खुलकर सामने आया है। इच्छा, ज्ञान और कर्म का समन्वित रूप श्रद्धा है। प्रेम और विश्वास का मिश्रित रूप श्रद्धा है। नारी इन्हीं गुणों को आत्मसात करके जीवन के प्रवाह में अमृत का स्रोत बनकर बहती है। पुरुष को अपनी यही भावना समर्पित करके नारी 'मनोनियोग' की अवस्था का सृजन करती है-

छत्र सा सिर पर उठा था प्राणपति का हाथ,

हो रही थी प्रकृति अपने आप पूर्ण सनाथ।

X X X X

किन्तु जहाँ है मनोनियोग

वहाँ-कहाँ का विरह वियोग?[70]

मैथिलीशरण गुप्त जी का प्रेमानुभूतिपरक गहन चिन्तन यहाँ परिलक्षित होता है। दाम्पत्य प्रेम की गूढ़ता में ऐसे भाव-चित्रों का मिलना स्वाभाविक है। कवि की यह भावना मनुष्य को सकारात्मक दिशा की ओर ले जाने का सजग प्रयास करती हैं।

तार सप्तक के कवि मुक्तिबोध की कविताएँ अपना पथ ढूढ़ने वाले बेचैन मन की अभिव्यक्ति हैं। वे अपने सत्यों और मूल्यों की खोज में प्रयोग करते हैं। वे कला ज्ञान के लिए आत्मा की सीमा के बाहर जाने का उपाय खोजते-से प्रतीत होते हैं-

आत्मवत हो जाय

ऐसी जिस मनस्वी की मनीषा,

वह हमारा मित्र है

माता-पिता-पत्नी-सुहृद पीछे रहे हैं छूट

उन सब के अकेले अग्र में जो चल रहा है

ज्वलत् तारक-सा,

वही तो आत्मा का मित्र है।

मेरे हृदय का चित्र है।[71]

पुरुष की सहचरी नारी को श्रद्धा के योग्य एवं शक्तिस्वरूपा बतलाया गया है। नारी कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी जीवन के तीव्र प्रवाह में बहती नहीं है बल्कि अद्‌भुत साहस का प्रदर्शन करते हुए सृष्टि को नया संदेश देती है-

बड़े वेग से आज समय की नदी गिर रही

नव जीवन की आग तिर रही।

तुम इसमें हो स्वयं समर्पित बही जा रही।

मैं नवीन आलोक बँधा हूँ तुमसे

उसी पुरानी क्षुद्र गाँठ में

जीवन का सन्देश, भार बन इस यात्रा का।[72]

कवि अपने अन्तःचक्षुओं का प्रसार करके अपने अन्दर ही समाधिस्थ सत्य की खोज करना चाहता है-

कब जागेगा-कब जागेगा

यह दर्पण-गिरि-गुहा निवासी?

कब तुरीय त्यागेगा-

यह अन्तस्थ, अचल सन्यासी?[73]

प्रेम की रहस्यात्मक अनुभूति वाणी से व्यक्त नहीं हो सकती है। प्रकृति के सौन्दर्य के रहस्य को जानने वाला ही प्रेम कर सकता है-

यदि तुम समझ सकते हो

जंगली कलरव और

पतझर में झरते पीले पत्तों का अन्तर्मन

तब

प्रेम जैसे कठिन युद्ध में

शरीक हो सकते हो।[74]

'स्व' से ऊपर उठना, खुद की घेरेबंदी तोड़ना और कल्पना-सज्जित सहानुभूति द्वारा अन्य के मर्म में प्रवेश करना सप्तकीय कविता का सबसे बड़ा लक्षण है। सप्तकीय कवियों का दर्शन सूक्ष्म भावानुभूति और गम्भीर विश्लेषण का अन्तिम निचोड़ है।

सप्तकों से पूर्व की कविता में कबीर, सूर, तुलसी, बिहारी से लेकर प्रसाद, पन्त, निराला, महादेवी तक सभी का दर्शन आज भी कवियों की प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। वहीं सप्तकीय कवि का भाव के साथ-साथ दृष्टिकोण का अपेक्षित विस्तार उसके कृतित्व को विशिष्टता प्रदान करता है।

(झ) ऐतिहासिक भावनात्मकता

ऐतिहासिक तथा पौराणिक गाथाओं में कवि अपनी कल्पना को विविध रंगों से रंगकर अपने भावों के अनुकूल आकार प्रदान करता है। इतिहास को यथार्थ की भाँति प्रस्तुत करने में सप्तकों के पहले का कवि कल्पना और भावनात्मकता दोनोंका आश्रय समान रूप से लेता है।

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के महाकाव्य साकेत में त्यागमूर्ति भरत जब अपनी माँ कैकेयी के द्वारा किये गए कर्मों से दुःखी होकर प्रभु श्रीराम के समक्ष अत्यन्त दीन स्थिति में पहुँचते हैं तो उनके भ्रातृत्व प्रेम और निष्काम भाव को देखकर स्वयं प्रभु श्रीराम उनकी प्रशंसा करते हैं-

सौ बार धन्य वह एक लाल की माई

जिस जननी ने है जना भरत-सा भाई

पागल-सी प्रभु के साथ सभा चिल्लाई-

सौ बार धन्य वह एक लाल की माई।।[75]

भरत के गुणों और महानता के कारण कैकेयी जैसी दुर्बुद्धि के अवगुण भी न्यून हो गए। कवि के मान्यताओं और रूढ़ियों को बदलने के सिद्धान्त की पूर्ति भी यहाँ हो जाती है। वह इतिहास के सुनहरे पन्नों को बार-बार खोलना चाहता है और नवीन युग में उसके सिद्धान्तों को स्थापित करने का प्रयत्न करता है। पन्त के अनुसार-

कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल?

भूतियों का दिगंत छबिजाल;

ज्योति चुंबित जगती का भाल?

राशि-राशि विकसित वसुधा का वह यौवन विस्तार?

X X X X

अये विश्व का स्वर्ण स्वप्न, संसृति का प्रथम प्रभात,

कहाँ वह सत्य, वेद विख्यात?[76]

इन पंक्तियों से स्पष्ट है कि कवि का भारतीय संस्कृति, इतिहास तथा अतीत के प्रति चिन्तन भावनात्मक रूप से जुड़ा हुआ है।

सप्तकीय कवि इतिहास की भावना प्रधान घटनाओं को यथार्थ के धरातल पर प्रत्यक्ष करके देश वासियों को उनसे शिक्षा ग्रहण करने हेतु प्रेरित करता है। तार सप्तक के कवि भारत भूषण अग्रवाल की ये पंक्तियाँ कुछ इसी प्रकार की हैं-

बचपन में तुम्हें हिटलर और गाँधी की कहानियाँ सुनायी जायेंगी

उस एक व्यक्ति की

जिस ने अपने देशवासियों को मोह की नींद सुलाकर

सारे संसार में आग लगा दी,

X X X X

और फिर उस व्यक्ति की

जिसने अपने देशवासियों को सोते से जगाकर

सारे संसार को शान्ति का रास्ता बताया

और जब संसार उस के चरणों पर झुक रहा था

तब जिस के देशवासी ने ही उस के प्राण ले लिये

कि कहीं सत्य की प्रतिष्ठा न हो जाये।[77]

देशभक्त नेताजी सुभाष चन्द्र बोस की मृत्यु से दुःखी कवि उनकी महानता को सिद्ध करते हुए कहता है-

प्राण तुम्हारे धूम केतु से चीर गगन पट झीना

जिस दिन पहुँचे होंगे देवलोक की सीमाओं पर

अमर हो गयी होगी आसन से मौत मूर्छिता होकर

और फट गया होगा ईश्वर के मरघट का सीना।[78]

कलकत्ता का आजादी की लड़ाई में अत्यधिक योगदान रहा है। कवीन्द्र रवीन्द्र, बंकिम चन्द्र चटर्जी, शरतचन्द्र, सुभाषचन्द्र बोस जैसे महान व्यक्तित्व कलकत्ता की ही देन है। कलकत्ता के अतीत पर चौथा सप्तक के कवि स्वदेश भारती ने इस प्रकार दृष्टि डाली है-

कलकत्ता! ओ कलकत्ता!!

वक्त कभी लिखता था

तुम्हारे मस्तक पर

गुलामी की स्याही से काली तकदीर

और तू

अंग्रेजी जूते की ठोकर खाकर

सिसकता, रोता

रिसता था अन्दर ही अन्दर

अशक्त। असहाय।निरूपाय।[79]

उपुर्यक्त पंक्तियों के माध्यम से कवि मात्र भारतीय इतिहास का एक करुण पृष्ठ ही नहीं खोलता अपितु युगीन संघर्षो से फूटती हुयी क्रान्ति और नई सदी की सांस्कृतिक चेतना के निर्माण की सामग्री भी प्रस्तुत करता है।

अतः सप्तकों से पूर्व की कविता में इतिहास बोध ही नहीं अपितु भावी युग का भावमय चित्र भी है जो सप्तकीय कविता में भी यत्र-तत्र देखने को मिलता है।

(ञ) बौद्धिक भावनात्मकता

सप्तकों से पूर्व की कविता में कल्पना और बुद्धि का अद्भुत सामंजस्य दिखायी पड़ता है। कविता में जब भावों के साथ-साथ बुद्धि की अवस्थिति पायी जाये तभी वह उत्कृष्ट कहलाती है। भाव उसे सहज ग्राह्य बनाते हैं तो बुद्धि व्यापक। मैथिलीशरण गुप्त ने साकेत महाकाव्य में अपनी इस भावयित्री और कारयित्री प्रतिभा को साथ लेकर चलने वाली प्रतिभा का परिचय स्थान-स्थान पर दिया है-

जाती-जाती, गाती-गाती कह जाऊँ यह बात-

धन के पीछे जन, जगती में उचित नहीं उतपात।

प्रेम की ही जय जीवन में,

यही आता है इस मन में।[80]

प्रेम अनुभव करने का भाव है। प्रेम सम्मोहनकारी शक्ति है जो हिंसक जीवों को भी वश में कर लेता है। किन्तु फिर भी जब अज्ञेय द्वारा प्रेम विषय पर बुद्धिपूर्ण ढंग से विचार किया जाता है है तो यह प्रेम ऐसे यज्ञ की ज्वाला है जिसमें स्वयं की आहुति देनी पड़ती है-

वे रोगी होंगे प्रेम जिन्हे अनुभव रस का कटु प्याला है-

वे मुर्दे होंगे प्रेम जिन्हें सम्मोहनकारी हाला है

मैंने विदग्ध हो जान लिया, अन्तिम रहस्य पहचान लिया

मैंने आहुति बनकर देखा यह प्रेम यज्ञ की ज्वाला है।[81]

बुद्धि और भावना का ऐसा परिपक्व रूप कहीं-कहीं ही देखने को मिलता है। यही समन्वित भावनात्मकता सच्ची कविता की विधायिका शक्ति है।

तार सप्तक के कवि मुक्तिबोध की भावना बुद्धिप्रेरित हो कुछ इस प्रकार व्यक्त हुई है-

खीच लें हम चित्र जीवन में बहे

रम्य मिश्रित रंग-धारा के नवल,

चकित हो लें, उल्लसित हो लें कभी

दुःख ढो लें, तत्त्व चिन्ता कर सकल।[82]

सप्तकीय कवि की भावना निष्क्रियता से मुक्त होने के लिए चिन्तनरूपी तप में अपने आपको गलाती है। विचारों की गहराई में पहुँचकर ही सत्य की प्राप्ति हो सकती है-

पर इसका अर्थ नहीं कि मैं सदा निष्क्रिय रहा

मैं ने तो चिन्तना की तपश्चर्या में गला डाला हृदय

ताज्जुब, मैं ने सदा सोचा हृदय में, अपने माथे में नहीं

मेरे अंगों ने सोचा, खून ने मेरे सोचा।[83]

कवि संसार के मोहरूपी मकड़जाल में उलझे हुए मन को मुक्त करने के लिए बुद्धि व मुक्ति की तृष्णा को ही आवश्यक बताता है-

और कदाचित्

कभी मुक्ति की तृष्णा जागे-

तो चुन-चुन कर एक एक उलझे धागे

अपने को ही सुलझाने होंगे;

एक-एक कर इन सब को पीना होगा।

एक मात्र बाहर के इन झंझावातों से

नहीं कभी भी ये ताने-बाने टूटेंगे।[84]

नयी-नयी समस्याओं और चिन्ताओं से दबे मानव मन की सोच प्रत्येक बन्धन स्तर को

नकारते हुए नये भविष्य का आह्वान करती है-

मैंने सोच के बन्धन को कितने साहस के साथ नकारा था-एक

बिलकुल नये और भिन्न किस्म के भविष्य को अपने

वर्तमान की हद में पुकारा था। मैं

अपने लिए सोच और अतीत के लिए सब चीजों और

पूरे भविष्य के लिए कितना बड़ा सहारा था।[85]

अवधेश कुमार ये पंक्तियाँ बदले हुए युग में बदलती सोच और बौद्धिकता का उदाहरण हैं। यहाँ पुरानेपन की जकड़ से मुक्त होने का प्रयास साफ-साफ दिखायी देता है। समाज में व्याप्त घोर विषमता, व्यथा, पीड़ा, अत्याचार, दुःख-दर्द और व्याकुलता आदि का सटीक चित्रण सप्तकीय कवि की नवीन चेतना व बौद्धिकता से युक्त भावनात्मकता को दर्शाता है।

इस प्रकार से सप्तकों के पूर्व की कविता में बुद्धि जहाँ अपने क्रिया-व्यापारों को एक सीमा के अन्दर ही सम्पादित करती रही वहीं सप्तकीय कविता में तेजी से बदले माहौल और काव्यरूपों ने कवि की बौद्धिकता को नूतन प्रयोगों और अभिनव संदर्भों में ग्रहण किया है।

(ट) आधुनिक भावनात्मकता

कविता प्रारम्भ से ही लगातार सामाजिक प्रभाव से अधिकाधिक बौद्धिकता युक्त होती जा रही है। हृदय के उन्मुक्त तथा स्वतन्त्र भावों की जगह छोटी-छोटी समस्याओं ने ले ली है तथापि कविता का सौन्दर्य आज भी कम नहीं हुआ है। नव्यता और आधुनिकता की चाह लिए हुए कवि इतना विकास करने के पश्चात मनुष्य को आज भी असहाय पाता है-

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,

पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।

भोग लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम्

बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।[86]

वही कवि इस पृथ्वी को पढ़ी हुई पुरानी पोथी, स्वादविहीन, परीक्षिता, और मनुष्य के लिए सुगम बताते हुए कहता है-

पर धरा सुपरीक्षिता, विश्लिष्ट स्वादविहीन,

यह पढ़ी पोथी न दे सकती प्रवेग नवीन।

एक लघु हस्तामलक यह भूमि-मंडल गोल,

मानवों ने पढ़ लिये सब पृष्ठ जिसके खोल।[87]

कवि की यही समग्र दृष्टि उसके भावों को विस्तृत फलक में स्थापित करके उनका नूतन संस्कार करती है। यहाँ आधुनिक मनुष्य के लिए पृथ्वी से सम्बन्धित आविष्कारों की श्रृंखला से भी बाहर निकलकर दूर अन्तरिक्ष की खोजों के प्रति आशावादिता झलकती है।

आधुनिक मानव एकान्तिक अनुभूति के द्वारा शान्ति प्राप्त करता है। जीवन की भीड़ से ऊबा हुआ मनुष्य एकान्तप्रिय हो जाता है। तारसप्तक के कवि नेमिचन्द की ये पंक्तियाँ इसी खोज में तत्पर हैं-

यह सब

न जाने और क्या-क्या

मुझे याद आया

और एक अपूर्व शान्ति से

परिपूर्ण हो गया मैं

जब आज/अचानक ही भीड़ में/इतने दिनों बाद

तुम से यों सामना हो गया

ओ मेरे एकान्त।[88]

बींसवी सदी की नयी खोजों ने मानव जीवन को अत्यधिक गतिशील बना दिया है। पूँजीपति शासन करते हैं और गरीब श्रमिक लोकतन्त्र के पैरों तले पिस रहा है। आज का मनुष्य, मनुष्य का भक्षक बन गया है। जिसने पाप किए, वही सम्मान का पात्र भी होता है-

मानव को मानव का भक्षण

मानव को निज संरक्षण का

परवाना सब को बाँट दिया-

जीवन संघर्ष बढ़ा याँ तक

उस हाथ दिया, इस हाथ लिया।

देखा न पुण्य अथवा पातक,

जिसने मारा, बस वही जिया।[89]

नव युग की आस लगाये हुए आज मानव कहता है-

आँज कर पीले नयन में ज्योति का धुँधला सपन।

जल रही प्राचीनताएँ बाँध छाती पर मरण का एक क्षण।

इस अँधेरे की पुरानी ओढ़नी को बेधकर

आ रही ऊपर नये युग की किरण।[90]

सप्तकीय कविता में भावनात्मकता के नवीन रूपों के दर्शन होते हैं जो कि पूर्व की कविता से नितान्त भिन्न हैं। उदाहरणस्वरूप मदन वात्स्यायन की 'स्वस्ति मेरी बेटी' कविता की ये पंक्तियाँ-

कोई कहता है, योगिराज शिव को भी मुग्ध करने वाली

तपस्विनी-वेष में देवी पार्वती ही सर्व-सुन्दरी थीं,

कोई कहता है, साज शृंगार सहित माँ जानकी ही सर्व सुन्दरी

थीं, जिनके रूप पर नारियाँ भी ईर्ष्या छोड़ मोह गयीं;

तो यह जो माँ के हाथों से फिसलकर, साबुन में सनी नंगी

मेरी ओर किलकती भागी आ रही है-

क्या उस से भी सुन्दर ?[91]

नारी के प्रति इस प्रकार की व्यापक और नितान्त नवीन मौलिक दृष्टि इससे पहले की कविताओं में मिलनी दुर्लभ है। सप्तकीय कवि यह मानकर चलता है कि कवि को राष्ट्रीय-अन्तरराष्ट्रीय परिवेशों तथा नवीन चेतनाओं से तादात्म्य स्थापित करने के साथ-साथ वैज्ञानिक दृष्टिकोण से भी समन्वित होना चाहिए। सप्तकों से पूर्व की कविता में चले युगान्तरकारी परिवर्तन सप्तकीय कविता में आकर उसके आधुनिकता-बोध को पूर्णता प्रदान करते हैं। आधुनिकता-बोध के ही कारण आज के कवि के भावों का आलम्बन शोषित, नारी, किसान और मानवीय दुःखानुभूति बनी है।

(ठ) काल्पनिक भावनात्मकता

कविता में कल्पना का महत्त्व सर्वाधिक है। हिन्दी कविता में कल्पना और स्वप्न के उदाहरण अत्यधिक मात्रा में पाए जाते हैं। वीरगाथाकाल और रीतिकाल के काव्यों में तो कल्पना की इति हो गयी है। भक्त कवि ईश्वरीय स्वरूप और धर्म सुधार की कल्पना करता है तो शृंगारिक कवि रमणी के सौन्दर्य की कल्पना में विस्मृत रहता है। भारतेन्दु और द्विवेदी युग का कवि राष्ट्रीयता, सामाजिक समृद्धि और विकास की कल्पना करता है तो छायावादी कवि प्रकृति को ही अपनी रंग-बिरंगी कल्पनाओं से चेतना प्रदान करने का स्वप्न देखता है। विरह की कल्पना में भावुक होकर कवि के प्रेम की पीड़ा इतनी तीव्र हो उठती है कि उसको पीड़ित करने वाली स्मृतियाँ आँसुओं के रूप में बरस पड़ती हैं-

जो घनीभूत पीड़ा थी

मस्तक में स्मृति-सी छायी

दुर्दिन में आँसू बनकर

वह आज बरसने आयी।[92]

यहाँ कवि कल्पना और मनोविज्ञान के सम्बन्ध को भी दर्शाता है। दुःखानुभूतियाँ पीड़ा के रूप में संघनित होकर अश्रु-रूप में प्रकट होती हैं। साकेत में विरहिणी उर्मिला अपनी व्यथा को हृदय में छिपाए हुए आँसुओं में भी हर्ष की कल्पना करती है-

प्रिय के व्रत में विघ्न न डालूँ, रहूँ निकट भी दूर,

व्यथा रहे, पर साथ-साथ ही समाधान भरपूर।

हर्ष डूबा हो रोदन में,

यही आता है इस मन में।[93]

कल्पना का यह सात्विक भाव ही मानव की सबसे बड़ी उपलब्धि बन जाती है। उर्मिला का प्रेम कर्त्तव्य मार्ग में बाधक बनकर अपनी गरिमा को नहीं खोना चाहता। उसका प्रेम भाव भी एक कर्त्तव्यनिष्ठ क्षत्राणी की वीरोचित कल्पना है।

सप्तकीय कविता में नये भारत के निर्माण की कल्पना को मूर्तिमान करने का प्रयास किया गया है। आशा की चिनगारियाँ ज्वलित होकर स्वर्णिम भविष्य का आलोक प्रसृत कर रही हैं। मुक्तिबोध की कल्पना मात्र कल्पना ही नहीं अपितु वृहद् ज्ञान लिप्सा भी है-

जिस देश प्राणों की जलन में

एक नूतन स्वप्न का संचार हो,

ओ हृदय मेरे, उस ज्वलन की भूमि में बिछ जा स्वयं ही;

औ' तड़प कर उस निराले देश में तू-खोल आँखें।

देख-जलते स्पन्दनों में क्या उलझता ही गया है।[94]

कल्पना शक्ति का ह्रास होने पर सृजन की भावना अविकसित रह जाती है। इसलिए कवि निराश कल्पना को बन्ध मुक्त हो पुनः नयी क्रान्ति के गीत गाने को प्रेरित करता है-

कल्पने निराशिनी

मगर सुनो नवीन स्वर

सुनो-सुनो नवीन स्वर

विशाल वक्ष ठोंक कर

सुदूर भूमि से तुम्हें जवान कवि पुकारता

लौट-बन्धन तोड़कर

बेड़ियाँ झँझोड़ कर

नवीन राष्ट्र की नवीन कल्पना सँवारता।[95]

अन्तरात्मा का उद्वेलन अभिव्यक्ति के पश्चात ही शान्त होता है। कवि का विश्वास है कि जब तक वह अपनी कल्पना और अपने स्वप्नों की सार्थक अभिव्यक्ति करके फल बोध नहीं ग्रहण करेगा, उसकी कल्पना (सोच) का तब तक अन्त नहीं होगा-

जब तक मुझे तुम से, और तुमसे और तुम से जोड़ने वाला जीवन्त सूत्र है

जब तक मैं बिखरूँगा नहीं, मैं मरूँगा नहीं

जब तक यह मेरा विश्वास

कि समय की अनवरत तीव्र धारा में

कहीं मैं ठहरूँगा, कहीं किनारा पाऊँगा,

टूटेगा नहीं टूटेगा नहीं।[96]

कवि स्वयं को, अतीत को, भविष्य को और सम्पूर्ण जीवन शैली को परिवर्तित करके नवीन रूपों में स्थापित करना चाहता है। उसकी कल्पना निरन्तर प्रयत्नशील है-

कि मैं अपने आप को बदल लूँगा, अतीत

को बदल दूँगा, भविष्य का सारा नक्शा बदल डालूँगा।

कि मैं रंगों की रंगतें और उनका क्रम बदल डालूँगा।

आवाज की शख्सियत को बदल डालूँगा।

और चीजों को उनके भीतर से ही उथल दूँगा।[97]

ऐसी कल्पना की उत्पत्ति चिन्तनशील और वाह्य जगत के सक्रिय रूप के पारस्परिक सम्बन्ध से होती है। यह काल्पनिकता देश और काल की सीमा को तोड़कर भावलोक के दुर्बोध स्तरों से साक्षात्कार करती है। उसके वैयक्तिक संकेत काव्य की मूल प्रेरक शक्ति से प्रेरित और उत्सर्जित होते हैं।

यदि सप्तकों से पहले कवि की काल्पनिक भावना ऐतिहासिक और पौराणिक तथ्यों को आलम्बन बनाती थी तो सप्तकीय कवि की काल्पनिकता तुच्छ-से तुच्छ वस्तु और साधारण से

साधारण क्षेत्रों को भी अपनी अनुभूति का अंग बनाकर उनके महत्त्व को प्रतिपादित करती है।

(ड) प्रेमबोधक भावनात्मकता

प्रेमबोधक भावनात्मकता तो आदिकाल से ही कविता का सबसे प्रमुख विषय रहा है। मिलन अथवा विरह के कारण प्रेम इतना तीव्र हो जाता है कि उस स्थिति में भाव अत्यन्त सरस और कोमल हो जाते हैं। भारतेन्दु की अधिकांश शृंगारिक रचनाओं में प्रेम की तीव्र अनुभूति को दर्शाया गया है। प्रियतम के परदेश गमन के समय नायिका अन्तर्द्वन्द्व में पड़ जाती है। प्रिय को रोकने से अमंगल होता है, 'जाइए' कहने से प्रेम नष्ट होता है; 'न जाइए' कहने से प्रिय के ऊपर प्रभुता व्यक्त होती है, कुछ न कहने पर भी प्रेम नष्ट हो जाएगा। नायिका की प्रेमातिशयता की भावना यहाँ द्रष्टव्य है-

रोकहिं जौ तो अमंगल होय औ' प्रेम नसै जो कहैं पिय जाइए।

जौ कहैं जाहु न तौ प्रभुता जो कछू न कहैं तौ सनेह नसाइए।

जो हरिचन्द कहैं तुमरे बिनु जीहैं न तो यह क्यों पतिआइए।

तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आपै हमें समुझाइए।।[98]

प्रेम की यह स्थिति बड़ी विलक्षण है। प्रश्नकर्त्ता को श्रोता से ही स्वयं प्रश्न पूछना पड़ता है। कवि का शब्द सामञ्जस्य उच्च कोटि का है। प्रेमी प्रिय से हारने पर ही अपनी जीत समझता है। ऐसे प्रेम के भाव को भला बन्धन में कौन बाँध सकता है, जो पूर्णतः समर्पण की भावना को अपने में समाहित किए हुए हो। मैथिली शरण गुप्त की भावनात्मकता यहाँ इसी सन्दर्भ में व्यक्त हुई है-

हार जाते पति कभी पत्नी कभी,

किन्तु वे होते अधिक हर्षित तभी।

प्रेमियों का प्रेम गीतातीत है,

हार में जिसमें परस्पर जीत है।[99]

प्रेम में हारने पर विजय से भी अधिक हर्ष प्राप्त होता है क्योंकि उस हार में 'मैं' का भाव समाप्त हो जाता है। यही प्रेम की विजय है। सप्तकों से पूर्व की कविता में प्रेम और सौन्दर्य का चित्रण उसको पाठक या श्रोता से तदाकार कर देता है।

प्रेम मनुष्य को मन के भीतर गहराइयों में डूबकर स्वप्नलोक में विचरण करने से प्राप्त होता है। स्वदेश भारती की निम्नलिखित पंक्तियाँ ऐसे ही प्रेम का उदाहरण हैं-

प्रेम की परिणति यही होती है। उम्र भर

पलकों में सपनों के अंकुर उगाना

अथवा गहरे

बहुत गहरे मन के भीतर डूबना

डूबते जाना।[100]

प्रेम एक कठिन युद्ध की भाँति होता है। अनगिनत अवरोधों से टकराकर भी जो हृदय इस युद्ध में पीछे नहीं हटता वही सच्चा प्रेमी कहलाने योग्य है। धर्मवीर भारतीकीये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

ईश्वर न करे तुम कभी ये दर्द सहो!

दर्द, हाँ अगर चाहो तो इसे दर्द कहो;

मगर ये और भी बेदर्द सजा है ऐ दोस्त!

हाड़-हाड़ चिटख जाय मगर दर्द न हो![101]

प्रेम में विरही की दशा अत्यन्त दयनीय हो जाती है-

यह मधुमास सजीला चुप-चुप

तेरे उर के आँगन को

गीला कर-कर जाता होगी री![102]

प्रिय की अनन्यता के भाव से विह्वल होने पर जब नेत्रों से अश्रु बिन्दु निकलते हैं तो उनमें मृत्यु को भी जीवन की आशा दिखायी देने लगती है-

आँखों में आँखे उलझाये

हम रहें बैठ,

जब तक न स्वयं चारो आँखें

हो जायँ बन्द;

प्राणों से उलझा प्राणों को

हम रहें पैठ

जब तक न प्राण दोनों के

हो जावें अ-स्पन्द

जब तक न बह उठें फूट-फूट

पलकों के बाँध तोड़

अन्तस् के मृत्युंजय मुक्त छन्द

निर्द्वन्द्व![103]

सप्तकीय कवि व्यक्ति-मन और समष्टि-मन दोनों के प्रेम एवं सौन्दर्य के ऐसे गायक हैं जिन्होंने दोनों के यथार्थ को भी उतनी ही बारीकी और तीक्ष्णता से प्रस्तुत किया है जितनी प्रेम एवं सौन्दर्य की गहराई को। कवि प्रेम गीतों का अन्धा गायक नहीं बनना चाहता। वह युग धर्म का राही है।

अतः सप्तकों से पूर्व की कविता में कवि की सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति और उत्कृष्ट कलात्मक क्षमता के द्वारा मानवीय और प्रकृति प्रेम के संयोग तथा वियोग से सम्बन्धित दुर्लभ चित्रों को प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया गया है। सप्तकीय कविता में प्रेम की यही अनुभूति इतनी व्यापक और गहरी हो गयी है कि उसमें शिशु की-सी निश्छलता, कोमलता और सरलता भी अपने आप ही समाहित हो गयी है।

समग्रतः सप्तकों से पूर्व की कविता में व्यष्टि, समष्टि, मनोविज्ञान, सौन्दर्य, राष्ट्र, मानव, सिद्धान्त, दर्शन, इतिहास, बौद्धिकता, कल्पना और प्रेम इत्यादि से सम्बन्धित भावनात्मकता के विभिन्न रूपों को जहाँ तत्कालीन संदर्भों में रूपायित करते हुए व्यापक दृष्टि प्रदान की गई है वहीं सप्तकीय कविता में इन्ही रूपों को नये रंगों की भावमय छटाओं के साथ परिवर्तित एवं परिष्कृत शैली में कविता के कैनवास पर चित्रित करने का सफल प्रयास किया गया है।

ई. संवेदनशीलता : सप्तकों से पूर्व और सप्तकीय कविता में

सप्तकों से पहले की कविताओं में तथा सप्तकीय कविता में संवेदनशीलता के विभिन्न पहलुओं का हम निम्नवत् अध्ययन करेंगे-

(क) प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता

प्रकृति का हरा-भरा सौन्दर्य संयोगावस्था में मन को जितना आनन्दित करता है, वियोगावस्था में वही प्राकृतिक सौन्दर्य संवेदनशील मन को कष्ट देने लगता है। प्रिय विहार स्थल देख-देखकर अतीत की स्मृतियाँ मन में जाग्रत हो जाती हैं। शीतल शशि अग्नि की वर्षा करता प्रतीत होता है; मधुवन मदार वन-सा लगता है; ज्योत्स्ना ज्योति पुंज-सी ज्वलनशील प्रतीत होती है। मानव के कल्याण की कामना करके प्रकृति आनन्दित हो उठती है-

रश्मियाँ बनी अप्सरियाँ अंतरिक्ष में नचती थीं।

परिमल का कन-कन लेकर निज रंग मंच रचती थीं।

मांसल-सी आज हुई थी हिमवती प्रकृति पाषाणी,

उस लास-रास में विह्वल थी हँसती-सी कल्याणी।[104]

प्रकृति के पाषाण रूप से मांसल रूप में परिवर्तित होने की कल्याणकारी प्रक्रिया सृष्टि के प्रति प्रकृति के असीम अनुराग का ही सूचक है। संवेदनशील प्रकृति दया, ममता, करूणा, आत्मीयता, परोपकार आदि मानवीय गुणों से परिपूर्ण है। वह मनुष्य के सुख-दुःख में सहचरी की भाँति सदैव साथ लगी रहती है। मैथिलीशरण गुप्त जी की दृष्टि से देखें तो-

सरल तरल जिन तुहिन कणों से

हँसती हर्षित होती है,

अति आत्मीया प्रकृति हमारे

साथ उन्हीं से रोती है।[105]

प्रकृति का यह मानवीय रूप अपनी सत्ता का आभास अपने विभिन्न रूपों के माध्यम दे देता है। सप्तकों से पूर्व की कविता में प्रकृति का उद्दीपन भाव प्रमुख रहा है। इसके अतिरिक्त आलम्बन, दूती, पृष्ठभूमि इत्यादि रूपों की अभिव्यंजना भी भावनात्मक और प्रभावोत्पादक है।

प्रकृति का अपार सौन्दर्य हिमालय की घाटियों में बिखरा पड़ा है। 'पहाड़ों की रानी' के नाम से प्रसिद्ध मंसूरी प्रत्येक ऋतु में अपनी सुषमा के कारण देश-विदेश के यात्रियों को आकर्षित करती है। मैदानी भागों के निर्धन लोगों और इस शहर की समृद्धता की तुलना तार सप्तक के कवि भारत भूषण अग्रवाल ने इस प्रकार से की है-

मैं ने देखा है, जो गाती रहती हैं कल-कल निर्झर के

स्वर में अपना स्वर डुबा, हुलास-विलासों में भर-भर मस्ती,

जब चीखा करती है क्षुधार्थ नीचे मैदानों की बस्ती।

हाँ, मैं ने अपनी आँखों देखा है विभेद यह, यह विरोध

जो साधारण घटना है अपनी पूँजीवाद-प्रणाली की,

है बात, यातना ने जिसकी विश्व को दिया है नया बोध।[106]

दूसरा सप्तक के कवि भवानी प्रसाद मिश्र ने प्रलय के भयावह रूप के चित्रण के माध्यम से प्रकृति के विनाशक रूप को दर्शाया है-

सात हैं सागर किसी दिन

फैल एकाकार होंगे

पंच तत्त्वों में गये बीते

बिचारे चार होंगे,

धार में बहना कहाँ का

अतल तक डुबकी लगेगी;

जागना तब व्यर्थ ही होगा,

अगर जगती जगेगी;

देखने की चीज होगी

मृत्यु की वैसी विजय भी।

एक दिन होगी प्रलय भी।[107]

विजय देव नारायण साही ने 'तीसरा सप्तक' में माघ मास में हल्की धूप से ढकी हुई पृथ्वी के सौन्दर्य को इस प्रकार निरूपित किया है-

मैं देखता धरा को

ये अधखुली निगाहें

ये बस्तियाँ बसन्ती

रंगीन शाहराहें

वह दूर खेतियों की

आँचल दुलारती-सी

इस रस भरे नगर की

फैली जवान बाहें।[108]

प्रकृति मनुष्य को प्यार-दुलार देने वाली है। कवि प्रकृति के इस वात्सल्य भाव को महसूस करता है और उसकी संवेदनशीलता को पुत्रवत ग्रहण करता है।

निष्कर्षतः सप्तकों से पूर्व की कविता में जहाँ प्रकृति मानवीय संवेदनाओं का सफल सम्प्रेषण करने के साथ ही मानव कल्याण में तत्पर दिखायी देती है वहीं सप्तकीय कविता में मनुष्य के अन्तर्द्वन्द्व तथा सूक्ष्म मनाभावों का विश्लेषण करती हुई-सी जान पड़ती है।

(ख) स्वाभाविक संवेदनशीलता

सहृदय व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति के आनन्द से स्वयं भी आनन्दित हो उठता है और दूसरे के दुःख सेस्वयं भी दुःखी हो जाता है। फिर कवि तो स्वभाव से ही संवेदनशील होता है। बादलों को देखकर वह भी आकाश में उड़कर समस्त विश्व का अवलोकन करना चाहता है। वह परतन्त्रता की बेड़ियों से मुक्त होने के लिए बादलों से शक्ति, उत्साह तथा क्रान्ति का संचार करने का आग्रह

करता है-

अरे वर्ष के हर्ष।

बरस तू बरस-बरस रसधार।

पारले चल तू मुझको

बहा, दिखा मुझको भी निज

गर्जन-भैरव-संसार।[109]

क्रान्ति और मुक्ति के पथ पर निर्भय विचरने वाले कवि का ओजमय आह्वान उसके अन्तर्मन की व्याकुलता और सांसाारिक बन्धन से आजाद होने की उत्कण्ठा को व्यक्त करता है। कठिनाइयों से लड़ना तथा विपत्ति में पीछे मुड़कर न देखना ही वीरों का स्वभाव होता है। भारतीय नारी भी मातृत्व के साथ-साथ वीरता से परिपूर्ण है। साकेत महाकाव्य में अयोध्यावासियों के वार्त्तालाप का भावपूर्ण चित्र गुप्त जी ने प्रस्तुत किया है-

अम्ब तुम्हारा पुत्र पैर पीछे न धरेगा,

प्रिये, तुम्हारा पति न मृत्यु से कहीं डरेगा।

'फिर भी फिर भी अहो! विकल-सी तुम हो रोती?

'हम यह रोतीं नहीं, वारतीं मानस मोती।[110]

अपने प्रिय और पुत्रों पर वीर नारियाँ अपना आँसू-रूपी मोती न्यौछावर करती हैं। कवि की संवेदना यहाँ मानवीय भावों के स्वतः स्फूर्त होने वाले मार्मिक भावों का ओजमिश्रित रूप प्रस्तुत करती है। आज का कवि कविता की दुर्दशा को देखकर वीणा के शिथिल साजों जैसा हो गया है। कभी राजा कवि की पालकी पर कन्धा लगाते थे और आज कवि राजनेताओं और धनाढ्यों की विलासपूर्ण जिन्दगी को प्राप्त करने के लोभ में कवि का धर्म भूल गए हैं। तार सप्तक के कवि रामविलास शर्मा की मार्मिक पंक्तियाँ कवि दुर्दशा का बोध कराती हैं-

अब कहाँ यक्ष-से कवि-कुल गुरू का ठाट-बाट?

अर्पित है कवि चरणों में किस का राज पाट?

उन स्वर्ण-खचित्र प्रासादों -में किसका विलास?

कवि के अन्तःपुर में किस श्यामा का निवास?

पैरों में कठिन बिवाई कटती नहीं डगर;

आँखों में आँसू दुख से खुलते नहीं अधर।

खो गया कहीं सूने नभ में वह अरूण राग,

धूसर सन्ध्या में कवि उदास है वीतराग।[111]

अपने प्रिय से प्रेम के प्रतिदान की आशा करना मनुष्य का स्वभाव होता है। वह अपने लिखे पत्र द्वारा, जिसमें उसके जीवन से जुड़े कई महत्त्वपूर्ण प्रश्न हैं, अपने जीवन को एक नई आशा और दिशा देना चाहता है, किन्तु पत्र न भेजने के पश्चात उसका निश्चय बदल जाता है-

जैसे-जैसे उस का नीला कागज पड़ता जाता फीका

वैसे-वैसे मेरा निश्चय यह पक्का होता जाता है

प्रत्याशा की आशा में कोई तथ्य नहीं

उत्तर पा कर हो पाऊँगा कृतकृत्य नहीं।[112]

मुक्ति की चाह से युक्त पीड़ा को कवि इस प्रकार व्यक्त करता है-

और कब तक धमनियों के अन्ध में धारे रहूँ

यह दर्द की देवापगा?

और कब तक मुक्ति प्यासी अस्थियों की चीख

भी सुनता रहूँ?

खोल दो मेरी शिराएँ खोल दो;

तोड़ दो, मेरी परिधियाँ तोड़ दो।[113]

समय का चक्र मनुष्य को अपनी गति के अनुसार चलने को विवश कर देता है। अनन्त काल तक सृष्टि के उत्थान-पतन का क्रम चलता रहता है और मनुष्य किंकर्त्तव्यविमूढ़ होकर उसका अनुसरण करता रहता है-

क्या होगा हमारा?/ रथ उलट जाने पर भी

उसके पहिए बहुत देर तक घूमते रहेंगे

और टूटी हुई रीढ़ें लेकर

हम अधर में अनन्त चक्कर खाते रहेंगे।[114]

निरन्तर असफलताओं और संकटों से जूझते मनुष्य के मन में अज्ञात भविष्य के प्रति शंका, नैराश्य और खीझ उत्पन्न होना स्वाभाविक है। सप्तकीय कवि भी इन सबसे अछूता नहीं है।

इस प्रकार से सप्तकों के पहले का कवि क्रान्ति, मुक्ति, संघर्ष, विद्रोह, अन्तर्द्वन्द्व, विवशता इत्यादि संवेदनशील तथ्यों को कविता में उभारता है तो सप्तकीय कवि नवीन आशावादिता, प्रेम उत्साह, ईश्वरीय अनुभूति जैसे गम्भीर मनोभावों की पड़ताल करता है।

(ग) परिवेशगत संवेदनशीलता

किसी भी व्यक्ति के क्रिया-कलापों पर सर्वाधिक प्रभाव उसके परिवेश का पड़ता है। संवेदी मन परिवेश की घटनाओं से अपनी मनः स्थिति को अनुकूल बना लेता है। हमारे चारो ओर अच्छाइयों और बुराइयों की पर्याप्त मात्रा विद्यमान है। आज का मनुष्य ईर्ष्या, घृणा और द्वेष की आग में जल रहा है। उसके लिए त्याग, सहानुभूति और समता के उपदेश प्रभावहीन सिद्ध हुए हैं-

है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,

पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार।

भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,

बह रही असहाय नर की भावना निष्काम।[115]

परिवेश और समाज की स्वार्थान्धता इतनी बढ़ चुकी है कि सदाचार और परहित जैसे मानवीय गुणों का अभाव-सा हो गया है। संवेदनशील कवि का विद्रोही मन पीड़ित और दलित वर्ग के संघर्ष को अपने जीवन का संघर्ष समझकर विरोधी अनुभूतियों को कविता का विषय बनाता है। निराला का संघर्ष इसी प्रकार का है-

खुला भेद विजयी कहाये हुए जो

लहू दूसरों का पिये जा रहे हैं।[116]

मन का गहरा विषाद शब्दों के ढेर में छिपाकर निराला अपनी संवेदनात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। कवि जितना श्रोता के भावों को जगाता है, उससे ज्यादा तर्क द्वारा उसके विवेक को झकझोरने का प्रयास भी करता है। सप्तकों से पूर्व सामाजिक व परिवेशगत संवेदनशीलता के ऐसे विषमता से पूर्ण उदाहरण देखने को मिलते हैं।

स्वातंत्र्योत्तर परिवेश की विशेषता-समय की गति से कदम मिलाकर मनुष्य का चलना है। घरों, दफ्तरों और बाजारों की अनजानी भीड़ में अपने अस्तित्व की तलाश करता हुआ कवि कभी-कभी बेचैन हो उठता है। स्वदेश भारती की ये पंक्तियाँ उसी बचैन कवि की अभिव्यक्ति हैं-

मैं इस दराजों वाले नगर' की

एक दराज में बन्द

पत्रों, फाइलों

फोन की घंटियों के बीच

समय के पहिए के नीचे पिस रहा हूँ।[117]

अपने चारों ओर मोह तथा अज्ञान के फैले जालों को मुक्त हृदय से सुलझाने की कोशिश में लगा कवि कहता है-

कदाचित्-

कभी मुक्ति की तृष्णा जागे-

तो चुन-चुन कर एक-एक उलझे धागे

अपने को ही सुलझाने होंगे;

एक-एक कर इन सबको पीना होगा।

एक मात्र बाहर के इन झंझावातों से

नहीं कभी भी ये ताने-बाने टूटेंगे।[118]

दूसरा सप्तक के कवि शकुन्त माथुर ने गरीबी और गन्दगी में पल रहे बेवस बच्चों का कितना हृदयस्पर्शी चित्र प्रस्तुत किया है-

निकल रही छिपकली-सी

लड़की दरवाजे से

गली का पिल्ला बन

फिर रहा बच्चा

लिये खाली बोतल

मट्टी के तेल की।[119]

तो एक ओर कवि मानव के रूढ़िवादी विचारों को नष्ट करने का प्रयास भी कर रहा है-

.............अब देर नहीं

हम अग्नि-शिखा प्रज्वलित करेंगे।

जिस के सम्मुख एक बार ही

गल-गल पिघल जायँगे सारे हिम के प्रस्तर।

एक बार फिर

जीवन पायेगा अपनी उन्मुक्त धार, निर्बन्ध प्रगति

टूटेंगे गति के पथ में आये रुढिग्रस्त मानव के मन के भाव बन्ध।[120]

कवि अपनी प्रगति में बाधक बनने वाले सामाजिक बन्धनों और रूढ़ियों को तोड़कर स्वच्छन्द जगत में उन्मुक्त भाव से जीवन जीने का अभिलाषी है। उसे अपनी शक्ति पर विश्वास है कि वह

समय दूर नहीं जब वह अपने विरोधियों के प्रति उठ खड़ा होगा और क्रान्ति का आह्वान करेगा।

संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकों के पहले का कवि अपने परिवेश की पीड़ा, घुटन, विषमता, कुंठा, निराशा और उच्चवर्गीय भोगवादिता जैसे गंभीर विषयों को कविता में उतारता है तो सप्तकीय कवि स्वतंत्र भारत की आर्थिक, राजनीतिक व गम्भीर सामाजिक समस्याओं को चित्रित करने का सफल प्रयास करता है।

(घ) यथार्थपरक संवेदनशीलता

जीवन के कुछ यथार्थपरक तथ्य संवेदना उत्पन्न करने वाले होते हैं। मानव निरन्तर यथार्थ की खोज में लगा रहता है। वह जब यथार्थ से साक्षात्कार करता है तो बरबस कह उठता है-

किंतु जीवन कितना निरूपाय। लिया है देख नहीं संदेह,

निराशा है कि जिसका परिणाम, सफलता का वह कल्पित गेह।[121]

मनु यहाँ जीवन को निराशावादी और काल्पनिक सफलताओं का घर बताते हैं। यही मनु आगे चलकर जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण अपनाते हैं। वास्तव में जीवन का यथार्थ उद्‌देश्य सृष्टि को पल्लवित और पुष्पित करना है और इस सृजन के कार्य में पुरुष की प्रेरक शक्ति नारी होती है। नारी प्रेम का प्रतीक है और प्रेम ही जीवन का यथार्थ है-

अवश-अबला' तुम? सकल बल वीरता;

विश्व की गम्भीरता ध्रुव धीरता,

बलि तुम्हारी एक बाँकी दृष्टि पर,

मर रही है, जी रही है सृष्टि भर।

भूमि के कोटर, गुहा गिरि, गर्त्त भी

प्रेयसी किसके सहज-संसर्ग से।

प्राणियों को दीखते हैं स्वर्ग-से?[122]

नारी पुरुष को यथार्थ के धरातल में लाकर उसे सृष्टि के सत्य का ज्ञान प्रदान करती है। मृत्युलोक भावों और संवेदनाओं का लोक है। यहाँ सुख के साथ दुःख है, आशा के साथ निराशा है और देवों की वृत्तियों के साथ ही दैत्यों की वृत्तियाँ भी हैं। मनुष्य के जीवन का यही यथार्थ है।

कभी-कभी कवि की यथार्थ आत्म-स्वीकृतियों और वाह्य जीवन के यथार्थ परस्पर विरोधी रूपों में सामने आते हैं तब अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति उत्पन्न हो जाती है-

मै सफल हूँ (पथ भ्रष्ट हूँ) अविजेय हूँ (आधीन हूँ मैं)

हृदय में घुन-सा लगा रहता

(पाप यह दारूण जगा रहता)

मैं महाशोधक महाशय सत्य-जल का मीन हूँ मैं

सत्य का मैं ईश औ' मैं स्वप्न का हूँ परम प्रष्टा

(किन्तु सपने? प्राण की है बुरी हालत

और जर्जर देह; यह है खरी हालत)

उग्र-द्रष्टा मैं स्वयं हूँ जबकि दुनिया मार्ग-भ्रष्टा।[123]

सांसारिक सत्यों और दुःख-दर्दो के मार्ग पर चलकर कवि उनका सामना करना चाहता है जिससे वह दूसरों की पीड़ा को बाँट सके-

दूसरे पथ पर पड़ी हैं हड्डियाँ

फैला हुआ भोले जनों का रक्त

द्रौपती-सी चीखती हैं नारियाँ निर्वस्त्र

जिन के चीर दुःशासन कहीं पर

फेंक आया खींच कर।

मूक शिशुओं के अधर की प्राणदा पय-धार

नभ का चाँद बन कर हो गयी है दूर।[124]

मानव जीवन नश्वर है, क्षण भंगुर है। ईश्वरीय नियति के सम्मुख मनुष्य मात्र एक क्रीड़ा-कन्दुक की भाँति है। इसी यथार्थ को कुछ अलग ढंग से डॉ० केदारनाथ सिंह ने तीसरा सप्तक में प्रस्तुत किया है-

खिड़कियों को तोड़ता,

हर हाँक पीछे छोड़ता, अनसुना, अनजान,

इस पथ से गया है-

अभी बिलकुल अभी।

आह, कोई उसे रोके, उसे बाँधे

झुटपुटे में फिर कहीं वह बिला जाएगा।

चक्रवर्ती कहाँ है वह!

कौन है हम में!

दिग्विजय का अश्व यों ही चला जायेगा।[125]

नियति का दास मनुष्य भौतिक जगत में तो सरलता से अपना आधिपत्य स्थापित कर लेता है परन्तु भाग्य के सामने घुटने टेकने को विवश हो जाता है। सप्तकीय कवियों की संवेदना ऐसे ही जीवन-जगत के यथार्थपरक तथ्यों के विश्लेषण में सर्वाधिक रमी है।

तात्पर्य यह है कि जीवन-जगत के अपरिवर्तनीय यथार्थपरक मूल्यों को सप्तकों के पहले की कविता में जहाँ आम आदमी के जीवन में स्थापित करने का प्रयास दिखायी देता है वहीं सप्तकीय कविता अपनी संवेदना के स्तर पर उन यथार्थ-मूल्यों के आकार को सुस्पष्टता और विशालता प्रदान करती है।

(ङ) समाजपरक संवेदनशीलता

समाज में व्याप्त गुणों और अवगुणों के प्रभाव से उत्पन्न अनुभूतियों को कवि गम्भीरता पूर्वक ग्रहण करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य का कर्त्तव्य बनता है कि वह समाज की संवेदनाओं को ग्रहण करे। समाज में पुरुष और नारी का समान अधिकार व महत्त्व है। कामायनी के 'इड़ासर्ग' में जयशंकर प्रसाद सामाजिक शान्ति के लिए अधिकारी और अधिकृत के बीच सामञ्जस्यपूर्ण सम्बन्धों का होना अनिवार्य बतलाते हैं-

तुम भूल गये पुरुषत्व मोह में कुछ सत्ता है नारी की।
समरसता है सम्बन्धी बनी अधिकार और अधिकारी की।।[126]

पुरुष वर्ग के अधिकार और शक्तियाँ प्रायः उसे भ्रमित करते हैं। वह एक निरंकुश शासक की भाँति अधिकारी और अधिकार के व्यापक सम्बन्ध को विस्मृत कर देता है। वह समाज के हीन-दुर्बल लोगों के साथ अमानवीय व्यवहार करता है। कवि के व्यक्ति के लिए यह अन्याय असहनीय है। निराला जैसा विद्रोही व्यक्तित्व ऐसे समाज पर प्रहार किए बिना नहीं रहता-

मेरे पड़ोस के वे सज्जन,
करते प्रतिदिन सरिता मज्जन,
झोली से पुए, निकाल लिये,
बढ़ते कपियों के हाथ दिये,
देखा भी नहीं उधर फिर कर
जिस ओर रहा वह भिक्षु इतर,
चिल्लाया किया दूर दानव,
बोला मैं- 'धन्य', श्रेष्ठ मानव।[127]

समाज के विद्रूप चित्रण के साथ ही उच्च वर्ग की कलुषित भावनाओं पर निराला की ये पंक्तियाँ करारा व्यंग्य करती हैं। मनुष्य के साथ पशुतर व्यवहार करने वालों की संवेदनहीनता की जड़ों को हिलाना सप्तकों के पूर्व के कवि का प्रमुख धर्म रहा है। कवीन्द्र रवीन्द्र की पुण्यभूमि बंगाल की सामाजिक समस्याओं को तार सप्तक के कवि रामविलास शर्मा ने 'गुरूदेव की पुण्य भूमि' कविता में उद्घाटित किया है-

भाई-भाई से जुदा चिता पर लड़ते हैं

भाई-भाई दो भीरू श्वान-से कायर।

लाखों की रकमें काट रहे हैं, काट रहे हैं

गले करोड़ों के छिप-छिप कर कायर।

सिर पर सरकार मौत-सी बेदम बैठी है,

चुपचाप मौत-सी पस्त निकम्मी कायर।[128]

श्रम से बोझिल जीवन उतना कठिन नहीं होता जितना कि जिन्दगी को बोझ मानकर ढोना कठिन होता है। जीवन एक सुन्दर पहलू है जिसे समाज के साथ मिलकर जीया जाता है-

भारी है जीवन/झूठे बोझों से

जो नहीं छूते हैं/जरा भी जीवन

पीठ पर लादे वह/जब थक जाता है

हाथों को पावों को/छोड़ बैठ जाता है

बिस्तर को फेंक/बीच प्लेटफार्म

मुँह बेरूखी से/घूमता है वहाँ।[129]

सामाजिक रूढ़ियों और विश्वासों पर चलने वाला मनुष्य जब निराशा झेलने को मजबूर हो जाता है तो उसका अन्तर्मन उसे व्यथित करने लगता है-

कभी बचपन में सुनी थी शाहजादे की कहानी

................/समुन्दर पार कैसे दानवी/मायानगर में वह विचारा/

भूल जाता है/भटकता खोजता, पर अन्त में राजी खुशी घर/

लौट आता है....................

आज पर जब एक दानव/शिशु मनोरथ के घरौंदे

रौंद जाता है

न जाने क्यों सदा को एक नाता/इस व्यथा का उस कथा से

टूट जाता है/और मुझको कहीं समयातीत

हो जाना/ अधिक भाता है।[130]

इतिहास और मिथक का कविता की भावभूमि से धीरे-धीरे दूर होने का कारण है उसका आधुनिक परिप्रेक्ष्य में कोरी कल्पना सिद्ध होना। समाज झूठ, अविश्वास सत्य और यथार्थ के ठोस और पथरीले धरातल पर चलता है। समाज विरोधी वातावरण प्रत्येक सहृदय की संवेदनाओं को प्रभावित करता है।

वस्तुतः सामाजिक शान्ति, समानता और कल्याण की भावना रखने वाला सप्तकों के पहले का कवि तत्कालीन समाज की चिन्ताओं से ग्रस्त होकर आम-आदमी के साथ संघर्ष व विद्रोह करता हुआ दिखायी देता है। सप्तकीय कवि अपने समकालीन समाज की विद्रूपताओं को उद्‌घाटित करते हुए उसमें सहज मानवीय संवेदना का संचार करने की बेचैनी को लिए हुए है।

(च) दृष्टिपरक संवेदनशीलता

किसी भी मार्मिक दृश्य को देखकर हृदय तदाकार हो जाता है और उसमें दृश्य के भाव के अनुरूप ही संवेदना जाग्रत हो जाती है। दृश्य के मर्म में जितनी अधिक व्यापकता होगी कवि हृदय उससे उतना ही अधिक आंदोलित होगा। सारस्वत प्रदेश में रोती बिलखती श्रद्धा की करूण पुकार सुनकर इड़ा उसे देखती है और उसकी दयनीय स्थिति को देखकर द्रवित हो उठती है-

इड़ा उठी, दिख पड़ा राज-पथ

धुँधली-सी छाया चलती,

वाणी में थी करूण वेदना

वह पुकार जैसी जलती।

शिथिल शरीर वसन विशृंखल

कबरी अधिक अधीर खुली,

छिन्न पत्र मकरन्द लुटी-सी

ज्यों मुरझायी हुई कली।[131]

रससिक्त कली को म्लान और मकरन्दविहीन देखकर भी सहृदय के मन में शोषित नारी का चित्र उपस्थित होना स्वाभाविक है। संवेदनशील व्यक्ति किसी भी अन्य व्यक्ति को कष्ट सहते हुए देखकर उसके भाव को ग्रहण करके वैसी ही अनुभूति करने लगता है। निराला ने 'राम की शक्ति

पूजा' कविता में अपने आराध्य प्रभु श्रीराम के नेत्रों से सीता के 'राममय नयनों' को स्मरण करके गिरे अश्रुओं को देखकर हनुमान जी के मन में उत्पन्न व्याकुलता को दर्शाया है-

टूटा वह तार ध्यान का, स्थिर मन हुआ विकल,

संदिग्ध भाव की उठी दृष्टि देखा अविकल,

बैठे वे वही कमल-लोचन, पर सजल नयन

व्याकुल-व्याकुल कुछ चिर-प्रफुल्ल मुख, निश्चेतन।

'ये अश्रु राम के' आते ही मन में विचार

उद्वेल हो उठा शक्ति-खेल-सागर अपार।[132]

अपने प्रिय को दुःखी देखकर किसी के भी हृदय में दुःख, दया, अक्षमता और उत्तेजनापूर्ण भावों का उत्पन्न होना निश्चित है। कवि इन्हीं सूक्ष्म भावों को बारीकी से देखता है और उन्हें शब्दों का रूप प्रदान करके श्रोता या पाठक के लिए ग्राह्य बनाता है।

कवि की सूक्ष्म दृष्टि किसी आईने से कम नहीं होती। वह समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करने में कुशल होती है। सप्तकीय कवि स्वदेश भारती की निम्नलिखित पंक्तियाँ उनकी इसी सूक्ष्म दृष्टि का प्रतीक हैं-

यदि मैं देख सकता

स्वार्थ के पारदर्शी आईने में चेहरा

अपना या औरों का

तभी जीने का सफल संघर्ष झेल पाता।[133]

कीर्ति चौधरी की ये पंक्तियाँ-

फूल झर गये।

क्षण-भर की ही तो देरी थी,

अभी-अभी ही दृष्टि फेरी थी-

इतने में सौरभ के प्राण हर गये;

फूल झर गये।[134]

शकुन्त माथुर (दूसरा सप्तक) की ये पंक्तियाँ उनकी संवेदनशीलता का ज्वलन्त उदाहरण हैं-

कौन है जा रहा?

सड़ी है गली टपरे-सी

टपरा सड़ा है घूरे-सा,

बम्बा है पानी का

घर से बहुत दूर;

टूटे घड़े हाथ में

काई चढ़े

निकल रही छिपकली-सी

लड़की दरवाजे से;

गली का पिल्ला बन

फिर रहा बच्चा

लिये खाली बोतल

मट्टी के तेल की।[135]

बीसवीं सदी की खोजों तथा नए-नए उपकरणों ने मानव जीवन में असमानताओं को और भी बढ़ा दिया है। कहीं आर्थिक संकट है तो कहीं अथाह पूँजी, कहीं भूख बिलबिलाती है तो कहीं विलासी जीवन जिया जा रहा है-

जब कि किसी के घर अनेक/जलते हों विद्युद्दीप देख।

जब होगी ही कोई कुटिया/जिसमें जलता होगा न दिया।

बीसवीं-सदी ने यही दिया ?/ उन्मूलित कर दी दान-दया।[136]

वैज्ञानिक खोजें तथा आर्थिक प्रगति केवल धनी उच्च वर्ग के ऐश्वर्य और भोग-विलास में बढ़ोत्तरी करने के लिए हैं। जीतोड़ मेहनत करके दो वक्त की रोटी कमाने वाला मजदूर आज भी पराधीन भारत का जीवित प्रतिबिम्ब बना हुआ है।

अतः सप्तकों से पूर्व और सप्तकीय कवियों की संवेदना दृष्टि का संक्षिप्त विवेचन किया जाए तो सप्तकों से पूर्व कवि की दृष्टि जहाँ परिवेश और समाज के दयनीय और दलित दृश्यों में अधिक रमी है वहीं सप्तकीय कवि की दृष्टि नगर-गाँव की गन्दी गलियों से लेकर वैज्ञानिक खोजों के परिणाम और सदियों से पर्दे के पीछे छिपे हुए अनेक गूढ़ रहस्यों को सुलझाने और विश्लेषण करने में अपनी सार्थकता को प्रमाणित करती रही है।

(छ) विषमतापरक संवेदनशीलता

सामाजिक विषमताओं से क्षुब्ध होकर कवि का संवेदनशील मन क्रान्ति के गीत गाने लगता

है। वर्षों तक भारतवर्ष विदेशियों की दासता के बन्धनों में जकड़ा रहा। विदेशियों ने भारतीयों के साथ हमेशा ही असमानता का व्यवहार किया। सुमित्रानंदन पंत ने 'बापू के प्रति' कविता में जनशोषण के विरूद्ध आवाज उठाते हुए लिखा है-

साम्राज्यवाद था कंस, बन्दिनी

मानवता पशु-बलाक्रान्त,

शृंखला-दासता प्रहरी बहु

निर्मम शासन-पद शक्ति भ्रान्त,।[137]

समाज के दीन, दुर्बल और अभावग्रस्त लोगों के प्रति सहानुभूति रखना ही कवि का धर्म है। धार्मिक परम्पराओं को ढोने वाले इन अभावग्रस्त पीड़ित और शोषित मनुष्यों को बनाकर शायद ईश्वर भी भूल जाता है। सुमन की यही भावना इन पंक्तियों में व्यक्त हुई है-

इन सबसे बढ़कर भूख बिलखती मिट्टी की

पथ पर पथराई आँखें पास बुलाती हैं,

भगवान भूल में रचकर जिनको भूल गया

जिनकी हड्डी पर धर्म-ध्वजा फहराती है।

इनको भूलूँ तो मेरी मिट्टी मिट्टी है

मेरी आँखों का पानी केवल पानी है,

इनको भूलूँ तो मेरा जन्म अकारथ है

मेरा जीना मरने की मूक कहानी है।[138]

ईश्वर तो उन असहाय मनुष्यों को भूल गया परन्तु संवेदनशील कवि उन्हें भूलकर अपना जन्म अकारथ नहीं करता। वह अपने जीवन के सुख उनमें बाँटकर उनके दुःखों का साझीदार बनना चाहता है।

किसानों का शोषण, आणविक युद्ध, नरसंहार जैसी अमानवीय घटनाओं का प्रभाव आज की पीढ़ी के साथ-साथ आने वाली पीढ़ियों पर भी पड़ेगा। मानव सभ्यता का पुजारी कवि हृदय इन विषम परिस्थितियों से भयाक्रान्त है-

सिक्के के दूसरे छोर पर

एक भयानक नर-बलि ले कर

जन भविष्य की कीमत पर

इतिहासों का हो रहा फैसला

नया फैसला मनुज भाग्य का।

शुद्ध हो रही है समाज की मूर्ति पुरानी

गरम रक्त का स्नान करा कर।[139]

युद्ध की विभीषिका को झेलकर अनगिनत शरणार्थी बेघर हो अपने बिखरे सपनों को पुनः जीवित करने की चाह में अनचाही जिन्दगी जीने को बाध्य हो जाते हैं। वे हर किसी की दया के पात्र बन जाते हैं-

चीख और पुकार, हाहाकार

बेघर-बार जन-जन के रूदन के स्वर भरे हैं कान में।

धूम के बादल लपट की बिजलियाँ घिर रही हैं प्राण में।

कौन जाने यह हुआ क्या?

और क्या होना अभी है?[140]

कलकत्ता शहर की आम जन-जीवन की दुरूह स्थिति का चित्रण स्वदेश भारती की इन पंक्तियों में देखने योग्य है-

महीने के अन्तिम सप्ताह

जब मध्यवर्ग की पॉकेट तंग होती है

दिमाग के आर-पार मँडराती हैं समस्याएँ

राशन की। भाड़े की।

तेल, नोन, लकड़ी की।

जब शामें उदास बीतती हैं

और चाय। कहवाघर। रेस्तरान। बार। सिनेमाघर

चकलाघर अपने चारों ओर वीरानगी का पर्दा

तान लेते हैं। जब

साठ हजार औरतें खोजती हैं

अपने शिकार

महानगर के जनरव में। गहरे सन्नाटे के आर-पार

बेचती हैं अपनी इज्जत।[141]

मध्यम वर्ग की आर्थिक समस्याएँ आज के मँहगे होते बाजारों ने और भी बढ़ा दी हैं। महानगरों की समस्याओं से आज हर कोई परिचित है। वेश्यावृत्ति जैसी अनैतिक बुराई आज के महानगरीय जीवन को प्रदूषित कर रही है।

इसलिए कहा जा सकता है कि सप्तकों से पहले की कविता तत्कालीन भारतीय जन-जीवन के विदेशी शासन और नीतियों से आक्रान्त समूह का प्रतिनिधित्व करती है, जबकि सप्तकीय कविता दीर्घकाल तक शोषित मानव की विषम परिस्थितियों तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् की अप्रभावी नीतियों से क्षुब्ध कवि की संवेदना को व्यक्त करती है।

(ज) न्यायपरक संवेदनशीलता

संसार में अन्याय की भावना का विस्तृत होता वितान न्याय की भावना के लिए अमङ्गल का सूचक है। न्यायोचित कर्मों के द्वारा ही मनुष्य सच्चा आत्मिक सुख प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक सहृदय व्यक्ति न्याय के पथ पर चलने का प्रयास करता है। वह किसी के साथ अन्याय होते देखकर संवेदनशील हो उठता है। इसी प्रकार अपने साथ अन्याय देखकर भी व्यक्ति मन संवेदनशील हो उठता है। राम के प्रति भरत के प्रेम को न्याय न मिलने का क्षोभ मैथिलीशरण गुप्त जी की इन पंक्तियों में साफ-साफ दिखायी देता है-

हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?

मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी ?

पाया तुमने तरु-तले अरण्य बसेरा,

रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?[142]

राम के द्वारा अपना अभिप्राय पूछने पर वे उसी प्रकार से कहते हैं जैसे उचित न्याय न मिलने पर कोई निरपराध व्यक्ति संवेदनशील और क्षुब्ध हो उठता है। जहाँ प्रेम होता है, वहीं प्रिय से आशाएँ भी होती हैं। रत्नाकर की इन पंक्तियों में गोपियों का कृष्ण से न्याय पाने की आशा का भाव द्रष्टव्य है-

कहैं 'रत्नाकर' पै प्रीति रीति जानत ना,

ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की।

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम

तौ हूँ हमें भावति न भावना अन्यारी की।

जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की,

बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की।[143]

यहाँ कवि ने गोपियों का जो प्रियतम कृष्ण के प्रति अद्वैत भाव दर्शाया है वह सचमुच न्यायमुक्त है। कृष्ण जैसे गुणों के महासागर में गोपियाँ अपने परिव्यक्त अस्तित्व को विलीन करके एकाकार होना चाहती हैं।

न्याय का अभिलाषी कवि प्रकृति की संवेदनाओं का स्पर्श पाकर अपने आप को समर्थ महसूस करता है। सप्तकीय कवि ढेर सारी कठिनाइयाँ सहकर भी न्याय की आशा लगाए हुए है-

खामोशी की धुन्ध में डूबे

गिरिवन-प्रान्तर के बीच

आते-जाते मौसम के पाँवों तले रौंदा जाता

झेलता रहा निरूपाय, तटस्थ

सिर्फ एक ही विश्वास के साथ

कि कोई लहर आयेगी

अवगाहित कर जायगी।[144]

इन्द्रधनुषी रंगों से युक्त सपनों वाली, सुख-समृद्धि व प्रेम की पृथ्वी का इच्छुक कवि शान्ति और विकास की सृष्टि में जीना चाहता है। वह मानव से न्याय पथ पर चलने का आह्वान करता है-

मैं आज सरल धरती का अभिलाषी।

X X X X

पड़ कहीं न जाये धूल तृषित अरमानों की मेरे-

मेरे ही सपने आज बचाते हैं मुझ से दामन।

केवल पथ का वासी![145]

और उसका संवेदी मन न्याय पाकर प्रफुल्लित हो उठता है। मानव-मंगल की उसकी भावना साकार रूप ग्रहण कर लेती है-

आयी है दुनिया अब सूक्ष्म के किनारों तक,

उठने लगी है मन्द आज यवनिका विराट्

दिखने लगे हैं कुछ झिलमिल अनन्त लोक,

होने लगा है दिव्य का अबूझ आभास।

मन पर से परदों का कुहर हटा जाता है

अब तक थी भूमिका इतिहास अब आता है।[146]

दुनिया के सूक्ष्म चित्रों को उद्घाटित करके मानव मङ्गलकारी दृश्यों की कल्पना करके कवि ईश्वरीय न्याय के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है। धुँधरूपी कुहरा मन से हटने पर मानवीय भावों के विराट बिम्ब कवि की संवेदना को उद्दीप्त करते हैं।

समग्रतः कवियों की न्यायपरक संवेदना का आधार सप्तकों से पहले और सप्तकीय कविता में ईश्वर और मनुष्य दोनों रहे हैं। कवियों की सूक्ष्म दृष्टि अन्याय के विरोध में सदैव न्याय की पक्षपाती रही है। यद्यपि सप्तकीय कविता के कुछ पहले से ही कवि ईश्वर की न्याय पद्धति से अप्रभावित मानव के उदार रूप की स्थापना का समर्थक रहा है।

(झ) कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता

सप्तकों से पूर्व की कविता में भावों और सवेदनाओं को दूसरों तक पहुँचाने के लिए कृत्रिमता का प्रयोग भी किया जाता रहा है। बनावटीपन का सम्मिश्रण संवेदनाओं के साथ होने पर वह सत्य जैसा प्रतीत होता है। मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं-

बलि तुम्हारी एक बाँकी दृष्टि पर,

मर रही है, जी रही है सृष्टि भर।

भूमि के कोटर, गुहा, गिरि, गर्त्त भी

शून्यता नभ की सलिल-आवर्त्त भी

प्रेयसी किसके सहज-संसर्ग से

दीखते हैं, प्राणियों को स्वर्ग-से?[147]

यहाँ कवि ने प्रेयसी के मिलन से प्रेमी को होने वाली गहन अनुभूति को व्यक्त करने के लिए ऐसे उपमानों का प्रयोग किया है कि अतिशयता के कारण कृत्रिमता का समावेश भी पर्याप्त मात्रा में हो गया है। निराला की 'कुकुरमुत्ता' कविता में कुकुरमुत्ते की संवेदनशीलता कृत्रिम भावों को मिश्रित किए हुए है-

दिसम्बर का तान पूरा, हसीना का सुरबहार।

मैं ही लायर, लीरिक मुझसे ही बने

संस्कृत, फारसी, अरबी, ग्रीक, लैटिन के जने

मंत्र, गजलें, गीत। मुझसे ही हुए शैदा

जीते हैं, फिर मरते हैं, फिर होते हैं पैदा।[148]

कुकुरमुत्ते को यहाँ कवि ने अपनी कल्पना के शिखर पर आरूढ़ करके उच्च स्थान प्रदान करने

का प्रयास किया है। उपरोक्त पंक्तियों में उसका कृत्रिम वक्तव्य भी पाठक की संवेदनाओं को स्पर्श करता है।

मनोभावों को अनुभूति से कृत्रिमतापूर्वक जोड़कर संवेदनशील बनाने का प्रयास सुमन राजे की इस कविता में हुआ है-

नहीं मुझसे नहीं होता

किसी बिम्ब को खुरच कर कपाट देना

प्रतीकों को मांस के कतरों में बाँट देना

अपने अहसासों को अलगनी से उतार

धरती पर पछाड़ देना

और संवेदन की कोपालों को कचर-कचर छाँट देना

नहीं, मुझसे नहीं होता।[149]

कहीं-कहीं पर पूर्णतः कृत्रिम ढंग से थोपी गयी संवेदनाएँ भी वास्तविक प्रतीक होने लगती हैं। तीसरा सप्तक की कवयित्री कीर्ति चौधरी की 'प्रस्तुत' कविता की इन पंक्तियों में कुछ इसी प्रकार की संवेदनशीलता देखने को मिलती है-

मैं ने कोई भी बड़ा दर्द तो सहा नहीं।

कुछ क्षण भी मुझ सँग बहुत हर्ष तो रहा नहीं।

जो दृढ़ता-दर्प पंक्तियों में मैंने बाँधा,

वह मुझ में क्या,

मेरी अगली पीढ़ी में भी सम्भाव्य नहीं।

वह गीत कि जिस का दर्द देखकर,

आँखे सब भर आयी थीं

मुझ में उसकी अनुभूति महज

घर के झगड़ों से उपजी थी।

वह अडिग, अविचलित पन्थ-ज्ञान,

जिस के ऊपर

भावुक हृदयों की श्रद्धा उमड़ी-मँडरायी

बस विवश, पराजित, तकिये में मुँह गाड़,

खीज कर लिया गया।[150]

घरेलू झगड़ों तथा पीड़ा रहित अनुभूतियों का स्वरूप यहाँ दुःख और संवेदना को उत्पन्न कर रहा है। जिस ज्ञान को पाकर भावुक हृदय में श्रद्धा उत्पन्न होती है। संवेदनहीन व्यक्ति के लिए वही ज्ञान मात्र खीझ और उलझन पैदा करता है।

तात्पर्य यह है कि सप्तकों से पूर्व जहाँ समाज में कृत्रिम संवेदना कम व काव्य में अधिक विद्यमान थी वहीं सप्तकीय कविता कठोर धरातल पर खड़े कवि की कविता में इस प्रकार की संवेदनशीलता कम तथा तत्कालीन समाज में अधिक बढ़ती हुई दिखायी देती है।

(ञ) व्यंग्यपरक संवेदनशीलता

सप्तकों से पहले की कविताओं में व्यंग्य करने वाले कवि का भाव सात्विक, निरपेक्ष और मुखर है। उसकी आस्था छायावादी कविता तक ईश्वर में पूर्णतः बनी रही है। किन्तु वही ईश्वर जब उसकी संवेदना से अनभिज्ञ रहकर उसे अपने से दूर करना चाहता है तो उसका स्वर व्यंग्यात्मक होना स्वाभाविक है-

हे आर्य, रहा क्या भरत-अभीप्सित अब भी ?

मिल गया अकण्टक राज्य उसे जब तब भी ?

पाया तुमने तरूतले अरण्य बसेरा,

रह गया अभीप्सित शेष तदपि क्या मेरा ?[151]

मैथिलीशरण गुप्त की इन पंक्तियों में भरत की मार्मिक वेदना उनके मुख से प्रभु के समक्ष व्यंग्य के रूप से निकल रही है। ईश्वर के प्रति क्षोभ का भाव प्रगतिवाद में आते-आते और भी गहरा गया है। ईश्वर एवं पूजन अर्चन के प्रति अनास्था का भाव रखने वाली इन पंक्तियों में शिवमंगल सिंह 'सुमन' का व्यंग्य उल्लेखनीय है-

ईश्वर-ईश्वर में आज पड़ गया अन्तर

टुकड़ों-टुकड़ों में बँटा मनुजता का घर

ली ओढ़ धर्म की खोल, पर हृदय सूना

पूजन-अर्चन सब व्यर्थ देवता पत्थर।[152]

मनुष्य के अस्तित्व और उसके पुरुषार्थ पर विश्वास करने वाले कवि का यथार्थ एवं विशिष्ट वही मनुष्य बन गया है। धर्म एवं ईश्वर के प्रति व्यंग्य का यह स्वर विद्रोही भावों से समन्वित है। सप्तकीय कविता में यही व्यंग्य खुलकर आया है।

मानवता के विरोधियों ने इस संसार में घृणा, द्वेष, विरोध, क्रोध जैसी दुर्भावनाओं को फैलाकर मनुष्य को क्षुद्र और लघु जीव की कोटि में पहुँचा दिया है। मुक्तिबोध उन पर व्यंग्य करते हैं-

है खत्म हो चुका स्नेह कोष सब तेरा

जो रखता था मन में कुछ गीलापन

X X X X

किन्तु आज लघु स्वार्थों में घुल, क्रन्दन-विह्वल,

अन्तर्मन यह टार रोड के अन्दर नीचे बहने वाली गटरों से भी

है अस्वच्छ अधिक,

यह तेरी लघु विजय और लघु हार।

तेरी इस दयनीय दशा का लघुतामय संसार

अहंभाव उत्तुंग हुआ है तेरे मन में

जैसे घूरे पर उट्ठा है

धृष्ट कुकुरमुत्ता उन्मत्त।[153]

और तो और संवेदनशील कवि अन्याय से विक्षुब्ध होकर ईश्वर तक को अपने व्यंग्यबाणों का शिकार बना डालता है-

तुम तो पिता हो न?

सच-सच कहो

कैसा लगता है तुम्हें

जब यीशु का रक्त

बूँद-बूँद टपकता है

और तुम्हारा चेहरा और हाथ

अपने ही बेटे के खून से

भीग जाते हैं?[154]

तीसरा सप्तक के कवि प्रयागनारायण त्रिपाठी प्रभु की खोज करने पर भी जब ईश्वर को नहीं पाते तो उन्हें लगता है जैसे मनुष्य से भी अधिक गर्व देवताओं में है, और वे इस प्रकार कहते हैं-

जब सभी देवता मिले मुझे ऐंठे-ऐंठे

जब सभी मिले पत्थर प्रभु, बेदिल-बेजबान,

X X X X

गंगा की गहरी धारा में बस इसीलिए

सब ज्ञान-ध्यान का मल धो आया मैं ज्ञानी,

जिस में मेरी यह खोज बहुत निश्चिंत जिये

जिस से पा जाऊँ कोई ईश्वर इनसानी।[155]

सप्तकीय कवि सच्चा मानवतावादी है। वह पत्थर के ईश्वर से आशा रखने वाला नहीं है क्योंकि ऐसा ईश्वर उसकी आस्था को बार-बार खंडित करता है। कवि की संवेदना उत्तम कर्म करने वाले श्रमशील मानव को ही ईश्वर का स्थान प्रदान करती है।

वस्तुतः कवि समाज की बुराइयों और उनमें लिप्त स्वार्थी मनुष्य को अपने व्यंग्य का लक्ष्य बनाता है। सप्तकों के पहले का कवि मनुष्य की कामान्ध प्रवृत्तियों पर खुलकर व्यंग्य करता है तो सप्तकीय कवि मनुष्य के साथ-साथ युगो-युगों से सत्य और धर्म के प्रतीक ईश्वर की महानता पर प्रश्नचिह्न खड़ा करता हुआ उसे भी अपने व्यंग्य का लक्ष्य बना लेता है।

(ट) लौकिक संवेदनशीलता

सप्तकों से पूर्व की कविता में कवियों में विद्यमान लोक हृदय की पहचान तथा लोक मंगल की भावना स्पष्ट दिखायी देती है। प्रसाद ने कामायनी के चिंता सर्ग के आरम्भ में महाप्रलय के पश्चात सृष्टि के विनाश से दुःखी मनु की मार्मिक दशा का वर्णन किया है-

चिंता कातर बदन हो रहा, पौरुष जिसमें ओत-प्रोत,

उधर उपेक्षामय यौवन का बहता भीतर मधुमय स्रोत।

बँधी महावट से नौका थी सूखे में अब पड़ी रही,

उतर चला था वह जल-प्लावन और निकलने लगी मही।

निकल रही थी मर्मवेदना, करूणा विकल कहानी-सी,

वहाँ अकेली प्रकृति सुन रही हँसती-सी पहचानी-सी।[156]

सांसारिक परिवर्तन सदैव मानवीय सुख-दुःख का वाहक बनता है और मनुष्य को मिलन और विरह के क्षणों से मिलाता है। इधर जन्म तो उधर मृत्यु, अभी उत्सव तो कुछ ही पलों में अवसादों की भीड़। प्रकृति परिवर्तनशील है और इस नियम से कोई भी बच नहीं सकता। सुमित्रानंदन पंत कहते हैं-

खोलता इधर जन्म लोचन

मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण,

अभी उत्सव औ' हास हुलास,

अभी अवसाद, अश्रु उच्छ्वास।[157]

लोक हृदय की गहन अनुभूतियों को संवेदना के स्तर पर समझने का प्रयास और उन्हें कलमबद्ध करके कागज पर उतारने का साहस कवि की सबसे बड़ी पहचान होती है। सप्तकों से पूर्व के कवियों में यही पहचान मुक्त रूप में विद्यमान रही है।

सप्तकीय कविता सांसारिक कष्टों से भयभीत नहीं होने की सीख देती है। प्रलय का उत्तर देने के लिए भी कवि तैयार है। भवानीप्रसाद मिश्र की यह कविता-

इस दुखी संसार में जितना

बने हम सुख लुटा दें;

बन सके तो निष्टपट मृदु हास के

दो कन जुटा दें;

दर्द की ज्वाला जगायें, नेह

भींगे गीत गायें।[158]

मुक्तिबोध की 'मृत्यु और कवि' नामक कविता मनुष्य को संसार में सत्कर्म करते हुए जीवन और मृत्यु की गहन दार्शनिकता को समझने का संकेत देती है-

ऐसा मत कह मेरे कवि, इस क्षण संवेदना से हो आतुर

जीवन चिन्तन निर्णय पर अकस्मात् मत आ ओ, निर्मल!

इस वीभत्स प्रसंग में रहो तुम अत्यन्त स्वतन्त्र निराकुल,

भ्रष्ट न होने दो युग-युग की सतत साधना महाराधना,

इस क्षण-भर के दुःख भार से, रहो, अविचलित, रहो अचंचल

अन्तर्दीपक के प्रकाश में विनत-प्रणत आत्मस्थ रहो तुम;

जीवन के इस गहन अतल के लिए मृत्यु का अर्थ कहो तुम।[159]

कवि का उद्देश्य अपनी कल्याणकारी प्रतिभा के द्वारा जन-जन के कष्टों को दूर कर लोकमंगल करना है-

अभिव्यक्त मुझे करनी है,

जन-मन की वाणी

मेरी प्रतिभा यदि कल्याणी/तो दर्द हरे/सुख सौख्य भरे,/

यही नहीं कि-/अपने/तन के, मन के,/निजी, व्यक्तिगत/

दुख-दर्दों में जिये मरे।[160]

दूसरों के लिए जीने वालों के व्यक्तिगत स्वप्न, दुःख दर्द नहीं होते। वे तो दूसरों की प्रसन्नता और स्वप्न को साकार करने का उपकरण बन कर जीते हैं। बहुत दुर्लभ हैं ऐसे देवपुरुष-

तो क्या वे जिन का

अपना नहीं होता कुछ

उपकरण हो जाते हैं

मूरत करने को किसी और का सपना।[161]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि की संवेदना लौकिक से अलौकिक भाव-भूमि में प्रवेश कर जाती है। किसी का अपना कुछ न होना ही उसके निष्काम भाव का सूचक है, फिर दूसरों के स्वप्नों को मूर्त्त करने के लिए अपने जीवन को समर्पित करना तो आज के स्वार्थान्ध समाज में आश्चर्य ही है।

इस प्रकार से लौकिक भावभूमि में कवि का मानस निरन्तर सृजन और विकास की परम्परा को गतिमान बनाने का कार्य करता रहा है। सप्तकों से पूर्व की कविता में लोकमंगल की जो भावना कवियों में देखने को मिलती है वही सप्तकीय कवि की वाणी से भी मुखरित होती है।

(ठ) अलौकिक संवेदनशीलता

अव्यक्त ईश्वर की अनुभूति तथा अज्ञात सत्ता के प्रति समर्पण का भाव अलौकिक संवेदनशीलता है। सप्तकों से पहले भक्तिकालीन कविता से लेकर छायावाद तक और उसके बाद भी उस सत्ता का प्रभाव कविता में यत्र-तत्र देखने को मिलता है। प्रसाद के मनु को भी प्रकृति में उसी रहस्यमय सत्ता की अनुभूति होती है-

खुली उसी रमणीय दृश्य में अलस चेतना की आँखें;

हृदय कुसुम की खिलीं अचानक मधु से वे भीगी पाँखें।

व्यक्त नील में चल प्रकाश का कंपन सुख बन बजता था;

एक अतींद्रिय स्वप्न लोक का मधुर रहस्य उलझता था।[162]

यह भावनात्मक मोड़ व्यापक परिवर्तन की अन्तर्निहित प्रेरणा से परिचालित था। प्रकृति की नीरवता में इन सूक्ष्म-रहस्य संकेतों का आना सृष्टि का रहस्यमय पूर्वाभास है। कवि की जो कल्पना

दृश्य वस्तुओं के भीतर सौन्दर्य देखती है वही अनन्त आकाश में व्याप्त अस्पष्ट और अदृश्य के रहस्यवादी सौन्दर्य का आविष्कार भी करती है। आचार्य शुक्ल के 'हृदय के मधुरभार' में ऐसी अनेक रहस्योन्मुख अभिव्यक्तियाँ मिल सकती हैं-

धुँधले दिगन्त में विलीन हरिताभ रेखा

किसी दूर देश की-सी झलक दिखाती है।

जहाँ स्वर्ग-भूतल का अन्तर मिटा है चिर

पथिक के पथ की अवधि मिल जाती है।

भूत और भविष्यत की भव्यता छिपी है सारी

दिव्य भावना-सी वही भासती भुलाती है।

दूरता के गर्भ में जो रूपता भरी है वही

माधुरी ही जीवन की कटुता मिटाती है।[163]

'दूरता के गर्भ' में छिपे हुए अदृश्य रूपों और मार्मिक छवियों को कल्पना के द्वारा भावबोध के स्तर पर लाना ही इन पंक्तियों का उद्देश्य है। डॉ० केदारनाथ सिंह के शब्दों में "आज की भाषा में कहें तो ऐन्द्रिय बोध की सीमा के बाहर यथार्थ का जो एक बहुत बड़ा अज्ञात रह जाता है, ये कविताएँ उसी के सूक्ष्म स्तरों का उद्‌घाटन करती हैं।"[164]

सप्तकीय कविता में कई कविताएँ आत्मा-परमात्मा से सम्बन्धित हैं। इन कविताओं में कवि की आत्मा की दिव्य अनुभूति के दर्शन होते हैं। उदाहरणार्थ रामविलाश शर्मा की 'परिणति' कविता का यह अंश-

दुख की प्रत्येक अनुभूति में

बोध करता हूँ कहीं आत्मा है

X X X

एक दिन गहनतम इसी अनुभूति में

महत्तम आत्मा की ज्योति यह

विकसित हो पायेगी चिर परिणति महाशून्य में।[165]

ईश्वरीय प्रेम हो या मानवीय प्रेम यदि वह सच्चा है तो उसमें अलौकिकता अवश्य परिलक्षित होती है। ईश्वर भी तो भक्त का अनुरागी होता है। जैसे-

प्रभु जो बाँहों में उलझ झूमने वाला हो-

जो कहे-सुने कुछ जी की, काँधे शीश टेकः

जो इन गीतों का प्यार चूमने वाला हो-

मैं खोज रहा हूँ अपना वह प्रभु मात्र एक![166]

मानवीय प्रेम भी ईश्वरीय भक्ति के समान है। प्रेमी का हृदय लोक से परे प्रिय से मिलकर एकरूप हो जाता है। उसे स्वयं में और प्रिय में काया का अन्तर नहीं दिखायी देने लगता है-

सुनो, तुम्ही तो नहीं हो तब कहीं

वह जल, वह, आकाश, वह मिट्टी,

वह हवा, वह आग

जो कि मैं हूँ

और मैं तुम से खुद ही-को भोगता हूँ।

तो क्या तुम भी..............।[167]

मन की गूढ़ पर्त्तों में घुसकर अनन्त सत्ता के भाव में लीन होना और प्रिय में अद्वैत भाव से एकाकार होना ही अलौकिक संवेदनशीलता है। कवि का हृदय क्षेत्र इतने उच्च सोपानों में आरूढ़ होता है कि बुद्धि का विस्तार उसकी परिधि के अन्दर सिमट जाता है। ऐसे स्थल सप्तकीय कविता में भी अलौकिक संवेदना द्वारा निर्मित हुए हैं।

अतः सप्तकों से पूर्व की कविता में कवियों की अलौकिक सत्ता के प्रति जो गूढ़ भक्तिभावना विद्यमान थी, सप्तकीय कविता में अलौकिक भावना का आधार सृष्टि के धरातल का ही प्राणी उत्तम मनुष्य बन गया। सप्तकीय कवि दृष्टि में वह अलौकिक दिव्य भावों का ही अमूर्त्त चित्र है।

(ड) सर्जनात्मक संवेदनशीलता

हिन्दी कविता के प्रत्येक काल और प्रत्येक युग में कुछ न कुछ ऐसे मूर्धन्य कवि होते रहे हैं। जिनकी रचनाधर्मिता का प्रभाव विशिष्ट वर्ग से लेकर जन-साधारण तक रहा है। वह पूरे युग की साहित्यिक दृष्टि और काव्यगत मूल्यों में होने वाले परिवर्तनों को अपनी संवेदना के स्तर पर व्यक्त करता है। मैथिलीशरण गुप्त की ये पंक्तियाँ उनकी सर्जनात्मक संवदेनशीलता का ही उदाहरण हैं-

राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है

कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।[168]

कवि अपनी सर्जनात्मक क्षमता को दैव प्रेरित मानता है। उसके शब्द भी अनायास ही उत्पन्न

होते हैं। कवि का चिंतन, संवाद और भाषा शैली उसके काव्य की अनुभूति को प्रबलता प्रदान करते हैं। यही तथ्य कविता को श्रोता या पाठक के लिए ग्राह्य बनाते हैं। निराला की 'वनबेला' जीवन के दुःख और अवसादों की परिधि को तोड़कर स्वच्छन्द भाव से मुस्कान लिए हुए खिली है-

आलोक स्निग्ध भर दिखा गयी पथ जो उज्ज्वल;

मैंने स्तुति की-"हे वन्य वह्नि की तन्वि-नवल,

कविता में कहाँ खुले ऐसे दल दुग्ध-धवल?[169]

ग्रीष्म का प्रखर ताप, लू और धूल को सहने वाली वनबेला प्रहार सहकर भी अविचलित भाव से कवि कर्म करने की प्रेरणा देती है। निराला जैसे संवेदनशीलता कवि की रचनात्मकता को ऐसे ही प्रभावशाली चित्र मूर्त्त रूप प्रदान करने में सक्षम हो पाते हैं।

सप्तकीय कवियों की काव्य प्रतिभा पाठकों की रुचि के अनुरूप ही विकसित हुई है। युगों की संवेदना को समेटे हुए उनकी कविता पूर्ण व्यक्ति बन गयी है। उनकी कविता हँसती है, रोती है, जीती है, मरती है और क्रान्ति भी करती है। कवि अपने कवि कर्म को गंभीरता के साथ पूर्ण करने के लिए तत्पर है-

पर मेरे मन में अमित चाह!

दिखती है मुझको स्पष्ट राहः

कुछ देर भले ही लग जाये

दिन ढले चाँद भी उग आये

मैं कर्मशील/मैं जागरूक,/

दायित्व संभाले बैठा हूँ।[170]

धर्मवीर भारती की कविता 'कविता की मौत' का एक अंश प्रस्तुत है-

लाद कर ये आज किस का शव चले

और उस छतनार बरगद के तले

किस अभागिन का जनाजा है रुका

बैठ इस के पाँयते गरदन झुका

कौन कहता है कि कविता मर गयी?

मर गयी कविता नहीं तुम ने सुना?

हाँ वही कविता कि जिसकी आग से

सूरज बना

धरती जमी

बरसात लहराई।[171]

संवेदनशील कवि मन शिथिल होने पर भी जन-सत्ता की सुख कामना को अपने से अलग नहीं होने देता है। वह आह्वान करता है-

यह कहे न कोई- जीर्ण हो गया जब शरीर,

विचलित हो गया हृदय भी पीड़ा से अधीर।

पथ में उन अमित रक्त-चिह्नों की रहे शान,

मर मिटने को आते हैं पीछे नौजवान।

इस वन में जहाँ अशुभ ये रोते हैं शृगाल,

निर्मित होगी जन-सत्ता की नगरी विशाल।[172]

सप्तकीय कवि की अनुभूति आम आदमी की अनुभूति है। वह एक मानव प्रेमी और युवा हृदय की विशेषताओं से परिपूर्ण है। कविता में नवीन चेतना उत्पन्न करके उसे नये युग की नींव रखने का दायित्व इन कवियों ने बखूबी सौंपा है।

इस प्रकार देखा जाय तो सप्तकों से पूर्व के अधिकांश प्रसिद्ध कवियों ने ओजस्वितापूर्ण सृजन-मानदण्डों को अपनाकर मार्मिक तथा सारगर्भित भावोद्गार व्यक्त किए हैं। उनकी लगभग प्रत्येक तीसरी पंक्ति काव्य का वास्तविक आनन्द प्रदान करती है। सप्तकीय कवियों की कविताओं में भी भावों की तरंगमयता, सक्रिय कल्पना और चित्रण की बिम्बात्मकता जैसी आन्तरिक शक्तियाँ उनकी उत्कृष्ट काव्य सर्जना की द्योतक हैं। सिद्धांत और व्यवहार दोनों ही दृष्टिकोणों से सप्तकीय कविता सप्तकों-पूर्व कविता की विकास यात्रा साबित होती है। भावनात्मकता और संवेदनशीलता के तार सप्तकों-पूर्व की कविता जहाँ छोड़ती है, सप्तकों की कविता उन्हें वहीं से उठाकर आगे बढ़ाती है।

संदर्भ सूची

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-1; भाव या मनोविकार, पृ0-1
2. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-1; कविता क्या है, पृ0-110
3. नेमिचन्द्र जैन : तार सप्तक; वक्तव्य, पृ0 55
4. प्रभाकर माचवे : तार सप्तक; वक्तव्य, पृ0 111
5. गोस्वामी तुलसीदास : श्रीरामचरितमानस; बालकाण्ड, दोहा 241, पृ0 167
6. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-1; कविता क्या है ?, पृ0 110
7. वेदव्यास : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता; द्वितीय अध्याय, श्लोक 66
8. गोस्वामी तुलसीदास : श्रीरामचरितमानस; उत्तरकाण्ड, सोरठा 89, पृ0 638
9. गोस्वामी तुलसीदास : विनय पत्रिका; पद 115, पृ0 184-185
10. वेदव्यास : श्रीमद्‌भगवद्‌गीता; द्वितीय अध्याय, श्लोक 65
11. गोस्वामी तुलसीदास : विनय पत्रिका ; पद 72, पृ0 129
12. पद्‌माकर : जगद्विनोद; बाबू गुलाबराय, सिद्धान्त और अध्ययन, प्रस्तावना, पृ0 23
13. बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन; काव्य की आत्मा विभिन्न सम्प्रदाय, पृ0 34

13.1 बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन; काव्य की परिभाषा, काव्य के तत्त्व, पृ046-47

13.2 बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन; काव्य की परिभाषा, काव्य के तत्त्व, पृ046-47

14. बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन; काव्य की परिभाषा, काव्य के तत्त्व, पृ0 46-47
15. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-1; कविता क्या है ?, पृ0 97
16. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-1; कविता क्या है ?, पृ0 117
17. ए0ई0 मेण्डर : सिद्धान्त और अध्ययन (बाबू गुलाबराय), पृ0 205
18. रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग 2; काव्य में प्राकृतिक दृश्य, पृ0 32
19. बाबू गुलाबराय : सिद्धान्त और अध्ययन; कविता और स्वप्न-कुछ कवियों के स्वप्न, पृ0 104.
20. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिंदी कविता में बिंबविधान; बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया, पृ0 75-77
21. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्बविधान; बिम्ब निर्माण की प्रक्रिया, पृ054
22. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिंदी कविता में बिम्बविधान; प्रयोग और बिम्ब, पृ0 302
23. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; वक्तव्य, पृ0 160

24. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; वक्तव्य, पृ० 22

25. केदार नाथ सिंह : तीसरा सप्तक; वक्तव्य, पृ० 129

26. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग- 1; काव्य में लोकमंगल की साधनावस्था, पृ० 152

27. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-2; काव्य में रहस्यवाद, पृ० 74

28. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-2; काव्य में रहस्यवाद, पृ० 42

29. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; श्रद्धासर्ग, पृ० 25

30. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग विराग; सं० रामविलास शर्मा, पृष्ठ 78-79

31. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'व्यक्तित्व और खण्डहर', पृ० 41

32. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; 'कोशिश', पृ० 146

33. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'प्रस्तुत' पृ० 65

34. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक; 'महाभिलाषा', 55

35. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; श्रद्धासर्ग, पृष्ठ 19

36. सुमित्रानंदन पंत : काव्यांजलि; 'परिवर्तन' (कविता), पृ० 174

37. रामविलास शर्मा : तार सप्तक; 'विश्वशान्ति', 212

38. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; शिशिरान्त; पृ० 79

39. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'लक्ष्य', पृ० 25

40. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक; 'दुःख कोई एक रूप धरे; पृ० 39-40

41. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; नवम् सर्ग, पृष्ठ 327

42. जगन्नाथ दास रत्नाकर : काव्यांजलि; 'उद्धव प्रसंग', पृष्ठ 125

43. अज्ञेय : तारसप्तक; 'चेहरा उदास, पृ० 236

44. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'नयी बरसात', पृ० 31

45. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक; 'दुख कोई एक रूप धरे', पृ० 39

46. अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध :' काव्य संकलन; (प्रियप्रवास से), पृष्ठ 65

47. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग विराग; पृष्ठ 78

48. नेमिचन्द्र : तारसप्तक; 'इस क्षण में, पृ० 65-66

49. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; 'बसंत, पृष्ठ 140

50. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : तीसरा सप्तक; 'सौन्दर्य बोध', पृ० 240-250

51. जयशंकर प्रसाद : काव्य संकलन; 'आह्वानगीत' (चन्द्रगुप्त से), पृ0 81
52. जयशंकर प्रसाद : काव्यांजलि; 'अरूण यह मधुमय देश हमारा' (चन्द्रगुप्त से), पृ0 152
53. सुमित्रानंदन पंत : काव्यांजलि; 'गीत विहग' (उत्तरा से), पृ0 179
54. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'खोल आँखे', पृ0 28
55. शमशेर बहादुर सिंह : दूसरा सप्तक; 'भारत की आरती, पृ0 99
56. विजयदेव नारायण साही : तीसरा सप्तक; 'ओ रे पन्थ बाँकुरे', पृ0 210-211
57. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'ओ कलकत्ता', पृ0 129-130
58. जयशंकर प्रसाद : कामायनी;'श्रद्धा सर्ग,' पृष्ठ 18-19
59. सुमित्रानन्दन पंत : काव्यांजलि; 'गीत विहग' (उत्तरा से), पृ0 178
60. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'दूर तारा', पृष्ठ 27
61. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; 'मुक्ति के आभास', पृ0 68
62. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'प्रभु की खोज', पृ0 38
63. जयशंकर प्रसाद : कामायनी;'श्रद्धा सर्ग,' पृष्ठ 17
64. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'सरोज स्मृति', पृ0 84
65. भारतभूषण अग्रवाल : तारसप्तक; 'पथ-हीन, पृ0 97
66. कुंवर नारायण : तीसरा सप्तक; 'हम', पृ0 183-184
67. राजकुमार कुम्भज : चौथा सप्तक; 'सवाल की नोक पर', पृ0 99-100
68. नन्दकिशोर आचार्य : चौथा सप्तक;'मैं नहीं चाहता,' पृ0 154
69. जयशंकर प्रसाद : कामायनी;'लज्जा सर्ग,' पृ0 37
70. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; प्रथम सर्ग, पृ0 42
71. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'आत्मा के मित्र मेरे', पृ0 26
72. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; 'ग्रन्थि', पृ0 75-76
73. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'समाधिस्थ', पृ0 23-24
74. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'प्रेम की परिणति', पृ0 111
75. मैथिलीशरण गुप्त : काव्यांजलि; 'कैकेयी का अनुताप', पृ0 250
76. सुमित्रानंदन पंत : काव्यांजलि; 'परिवर्तन' (पल्लव से), पृ0 174
77. भारत भूषण अग्रवाल : तार सप्तक; आने वालों से एक सवाल', पृ0 100-101

78. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; 'सुभाष की मृत्यु पर', पृ0 169

79. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'ओ कलकत्ता', पृ0 129

80. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; नवम सर्ग, पृष्ठ 169

81. स0ही0 वात्स्यायन 'अज्ञेय' : काव्यांजलि; 'मैने आहुति बनकर देखा' (पूर्वा से), पृ0 203

82. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'अशक्त', पृ0 29

83. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; 'अनिश्चय', पृ0 147-148

84. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'मकड़ी-जाल', पृ0 42-43

85. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक; 'अपनी कमर', पृ0 46-47

86. रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्यांजलि; 'अभिनव मनुष्य' (कुरूक्षेत्र से), पृ0 196

87. रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्यांजलि; 'अभिनव मनुष्य' (कुरूक्षेत्र से), पृ0 197

88. नेमिचन्द्र : तार सप्तक; 'आज फिर जब तुमसे सामना हुआ', पृ0 77-78

89. प्रभाकर माचवे : तार सप्तक; 'बीसवीं सदी', पृ0 132-133

90. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; 'एक भावना', पृ0 67

91. मदन वात्स्यायन : तीसरा सप्तक; 'स्वस्ति, मेरी बेटी', पृ0 99-100

92. जयशंकर प्रसाद : काव्यांजलि; 'आँसू', पृ0 153

93. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; नवम सर्ग, पृ0 323

94. मुक्तिबोध : तारसप्तक; 'खोल आँखें', पृ0 28

95. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; 'कवि और कल्पना', पृ0 163-164

96. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'यह उद्वेलन', पृ0 27

97. अवधेश कुमार : चौथा सप्तक; 'अपनी कमर', पृ0 46-47

98. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र : काव्यांजलि; 'प्रेममाधुरी' (भारतेन्दु ग्रन्थावली से), पृ0 119

99. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; प्रथम सर्ग, पृ0 33

100. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'प्रेम की परिणति', पृ0 111

101. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; 'यह दर्द', पृ0 171

102. नेमिचन्द्र : तार सप्तक; 'अनजाने चुपचाप', पृ0 62-63

103. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'मृत्युंजय छन्द'; पृ0 37-38

104. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; आनंद सर्ग, पृ0 123

105. मैथिलीशरण गुप्त : काव्य संकलन; 'पंचवटी', सं०डॉ० खुशीराम शर्मा, पृ० 74

106. भारत भूषण अग्रवाल : तार सप्तक; 'मंसूरी के प्रति', पृ० 90-91

107. भवानीप्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'प्रलय', पृ० 31

108. विजयदेव नारायण साही : तीसरा सप्तक; 'माघ : 10 बजे दिन', पृ० 198-199

109. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'बादल राग-1', पृष्ठ 54

110. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; द्वादश सर्ग, पृ० 465

111. रामविलास शर्मा : तार सप्तक; 'कवि', पृ० 191-192

112. रघुवीर सहाय : दूसरा सप्तक; 'भला', पृ० 144-145

113. विजयदेव नारायण साही : तीसरा सप्तक; 'दर्द की देवापगा', पृ० 194-195

114. सुमनराजे : चौथा सप्तक ; 'पीछे आने वाले भविष्य से', पृ० 199

115. रामधारी सिंह 'दिनकर' : काव्यांजलि; 'अभिनव मनुष्य (कुरूक्षेत्र से), पृ० 196

116. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'किनारा वह हमसे', पृ० 136

117. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'अस्तित्व', पृ० 112-113

118. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'मकड़ी-जाल', पृ० 42-43

119. शकुन्त माथुर : दूसरा सप्तक; 'लीडर का निर्माता', पृ० 56-57

120. भारत भूषण अग्रवाल : तार सप्तक; 'जीवन धारा', पृ० 86-87

121. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; 'श्रद्धा सर्ग,' पृ० 17

122. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; प्रथम सर्ग, पृ० 31-32

123. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : तार सप्तक; 'आत्म संवाद', पृ० 40-41

124. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; 'एक मित्र से', पृ० 72-73

125. केदार नाथ सिंह : तीसरा सप्तक; 'दिग्विजय का अश्व', पृ० 154

126. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; 'इड़ा सर्ग,' पृ० 170

127. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : काव्य संकलन; 'दान (अपरा से)', पृ० 91

128. रामविलास शर्मा : तार सप्तक; 'गुरूदेव की पुण्य भूमि', पृ० 201-202

129. शकुन्त माथुर : दूसरा सप्तक; 'जिन्दगी का बोझ', पृ० 53-54

130. कुंवर नारायण : तीसरा सप्तक; 'शाहजादे की कहानी', पृ० 175

131. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; 'निर्वेद सर्ग,' पृ० 220

132. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'राम की शक्ति पूजा', पृ० 95

133. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'सामर्थ्य', पृ० 109

134. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'फूल झर गये', पृ० 62

135. शकुन्त माथुर : दूसरा सप्तक; 'लीडर का निर्माता', पृ० 56-57

136. प्रभाकर माचवे : तार सप्तक; 'बीसवीं सदी', पृ० 132-133

137. सुमित्रानंदन पंत : काव्यांजलि; 'बापू के प्रति' (युगान्त से), पृ० 181

138. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : काव्य संकलन; 'युगवाणी', पृ० 103-104

139. गिरिजा कुमार माथुर : तारसप्तक; 'गीतिका', पृ० 181-182

140. हरिनारायण व्यास : दूसरा सप्तक; 'शरणार्थी, पृ० 76-77

141. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'ओ कलकत्ता', पृ० 130-131

142. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; अष्टम सर्ग, पृ० 246

143. जगन्नाथ दास रत्नाकर : कविता कुसुमाकर; 'गोपी प्रेम', पृ० 68

144. स्वदेश भारती : चौथा सप्तक; 'असमर्थता', पृ० 121

145. विजयदेव नारायण साही : तीसरा सप्तक; 'मानव राग', पृ० 193

146. गिरिजा कुमार माथुर : तार सप्तक; 'पृथ्वीगीत', पृ० 178

147. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; प्रथम सर्ग, पृ० 31-32

148. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'कुकुरमुत्ता-1', पृ० 149

149. सुमन राजे : चौथा सप्तक; 'जवाब देही', पृ० 220

150. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'प्रस्तुत', पृ० 64

151. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; प्रथम सर्ग, पृ० 31-32

152. शिवमंगल सिंह 'सुमन' : विश्वास बढ़ता ही गया; 'विडम्बना', पृ० 59

153. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : तारसप्तक; 'नूतन अहं', पृ० 32-33

154. नन्दकिशोर आचार्य : चौथा सप्तक; 'यदि मान भी लूँ', पृ० 152

155. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'प्रभु की खोज', पृ० 38

156. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; चिंता सर्ग, पृ० 1

157. सुमित्रानंदन पंत : काव्यांजलि; 'परिवर्तन' (पल्लव से), पृ० 177

158. भवानीप्रसाद मिश्र : दूसरा सप्तक; 'प्रलय', पृ० 33

159. मुक्तिबोध : तार सप्तक; 'मृत्यु और कवि', पृ0 32

160. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'प्रस्तुत', पृ0 65

161. नन्दकिशोर आचार्य : चौथा सप्तक; 'उपकरण', पृ0 144

162. जयशंकर प्रसाद : कामायनी; आशा सर्ग, पृ0 21

163. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : आधुनिक हिन्दी कविता में बिम्ब विधान (केदारनाथ सिंह); 'हृदय का मधुभार', पृ0 133

164. डॉ0 केदार नाथ सिंह : आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान का विकास, पृ0 133

165. रामविलास शर्मा : तार सप्तक; 'परिणति', पृ0 213

166. प्रयागनारायण त्रिपाठी : तीसरा सप्तक; 'प्रभु की खोज', पृ0 38

167. नन्दकिशोर आचार्य : चौथा सप्तक, पृ0 159

168. मैथिलीशरण गुप्त : साकेत; पृष्ठ भूमि से

169. सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' : राग-विराग; 'वन बेला', पृ0 116

170. कीर्ति चौधरी : तीसरा सप्तक; 'दायित्व भार', पृ0 52

171. धर्मवीर भारती : दूसरा सप्तक; 'कविता की मौत', पृ0 175

172. रामविलास शर्मा : तार सप्तक; 'कवि', पृ0 193

तृतीय अध्याय

सप्तकोत्तर कविता की विकास यात्रा

3

सप्तकोत्तर कविता की विकास यात्रा

पिछले दो अध्यायों में सप्तकोत्तर कविता की पृष्ठभूमि तथा हिन्दी कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण किया गया। इसके अतिरिक्त सप्तकों से पूर्व की कविता में और सप्तकीय कविताओं में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का अध्ययन भी किया गया है।

नवीन अध्याय सप्तकों के पश्चात् की कविता के स्वरूप व धरातल का निर्माण करने वाले सार्वकालिक तथा तात्कालिक तथ्यों की पड़ताल करेगा। समाज, साहित्य या कविता का विकास किसी एक व्यक्ति, कवि या अकेली पीढ़ी के द्वारा नहीं होता है, वह व्यापक मानव समुदाय द्वारा देशकाल की गत्यात्मकता और वैचारिक चेतना के अनवरत समायोजन से ही सम्भव होता है। बदलते परिवेश, जीवन मूल्यों, आदर्शों और धारणाओं का योगदान इन सबको विकसित करता है। प्रभाकर श्रोत्रिय के अनुसार-"यहाँ तक कि शताब्दियों के अंतराल के बाद हमें ऊपरी तौर पर सब कुछ बदला-बदला नजर आता है, लेकिन भीतर पैठने पर पता चलता है कि परिवर्तन में एक सुशृंखलित प्रक्रिया है। परंपरा की व्याख्या जड़ता के रूप में करके न हम उसके प्रति न्याय कर सकते हैं, न अपने निष्कर्षों के प्रति। कई बार जब हम रूढ़ियों का विरोध कर रहे होते हैं, तब भी समझते यही हैं कि हम परम्परा का विरोध कर रहे हैं, बिना यह जाने कि परम्परा की प्रवहमानता स्वयं ही रूढ़ियों का विरोध करने के लिए प्रेरित कर रही है।"[1]

आदिकवि वाल्मीकि के मुख से उच्चरित प्रथम श्लोक बतलाता है कि बड़ी कविता देशकाल के भीतर ही सृजित होती है। सामाजिक जटिलताएँ बढ़ने पर व मनुष्य सभ्यता के चरणों का विकसित दौर में पहुँचने पर मानवीय अन्तर्वाह्य सम्बन्धों को व्यक्त कर पाना कुछ मुश्किल होता है। इसलिए, एक कवि या साहित्यकार को अपने समकाल को समझने के लिए न केवल भावना या संवेदना के स्तर पर एक व्यापक और बुनियादी क्रियाशील संसार की आन्तरिकता का अनुभव करना पड़ता है, वरन् उसके यथार्थ की जटिल तहों तक जाने के लिए उससे जुड़े सामाजिक-आर्थिक और दार्शनिक प्रश्नों की गुत्थी को भी सुलझाना पड़ता है।

सप्तकोत्तर कविता के शेष कविता के साथ सम्बन्धों, विभेदों विकास के चरणों और प्रमुख प्रवृत्तियों का अध्ययन हम निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत करेंगे-

(क) युग सर्वेक्षण

(ख) सप्तकोत्तर कविता के सोपान

(ग) सप्तकोत्तर कविता की प्रवृत्तियाँ

(क) युग सर्वेक्षण

हर युग के काव्य की समकालीनता के पीछे सामान्य जन की भावनाओं के इतिहास को देखा जा सकता है, जो सभ्यताओं की समृद्धि में जटिल से जटिलतर होता चला गया है। समकालीन जीवन चेतना से जुड़ी कविता अनुभूति, दृष्टि और शिल्प के स्तर पर स्वयं को पूर्ववर्ती धाराओं से अलग कर देती है। यही कविता सामाजिक मानव हृदय की गहनता में विचरण करने वाली हो तो सर्वकालिक हो जाती है। इन्हीं रचनाओं के माध्यम से कविता की मूल प्रवृत्तियाँ प्रत्येक युग में वही सुगन्ध बिखेरती हैं।

आठवें दशक में आपातकाल के दौरान राजनीति और अर्थतंत्र ने मानव जीवन के आदर्शों की पोल खोल दी। नेताओं की कथनी करनी का अंतर जनता के सामने स्पष्ट हुआ। राजनीति और नेताओं पर जितना खुला प्रहार आठवें दशक की कविता में हुआ उतना शायद पहले कभी नहीं हुआ था। नागार्जुन ने इंदिरा गांधी को 'हिटलर की नानी' तक कहा है। व्यक्ति इतना भयभीत और संत्रस्त हो जाता है कि वह हर वक्त डरा-डरा-सा जीता है। इसी तरह अर्थतंत्र के कारण भी कवि संत्रस्त होता है। एक ओर भूखे गरीबों का शोषण होता है। दूसरी ओर अमीरों की शानदार कोठियाँ और कारें हैं। धार्मिक सांस्कृतिक विघटन से उत्पन्न विसंगति की ओर भी आठवें दशक के कवि का ध्यान आकृष्ट हुआ है। डॉ० रंजना राजदान के अनुसार- "वे मानते हैं कि केवल देवता, ईश्वर, धर्म, पूजा पाठ आदि पर आस्था रख कर ही भाग्योदय नहीं हो सकता। ईश्वर पर भी आज आम आदमी आस्था नहीं रख पाता। वह इतना संत्रस्त है कि ईश्वर उसे रिरियाता हुआ-सा जान पड़ता है। वह ईश्वर को नरक-कुण्ड मानकर उसकी सत्ता के प्रति आशंका से भरा रहता है। यही कारण है कि उसका मन न अतीत के प्रति आस्था रखता है, व भविष्य के प्रति श्रद्धा भाव।"[2]

आठवें दशक का कवि खालीपन, असमर्थता, आत्मनिरीक्षण, विद्रोह, पीड़ा, संघर्ष आदि मानसिक स्थितियों से होकर गुजरता है। चौथा सप्तक की कविताएँ भी इन्हीं स्थितियों की उपज हैं। अज्ञेय जी के अनुसार- "जिस काल की रचनाओं से चौथा सप्तक के कवि और उनकी कविताएँ ली गयी हैं उसमें फिर राजनैतिक पक्षधरता के आन्दोलन एक से अधिक दिशाओं से आरम्भ हुए और ध्रुवीकरण के नाम पर फिर एक व्यापक असहिष्णुता का वातावरण बन गया। आपातकाल ने एक लगभग देशव्यापी आतंक की सृष्टि की तो उस की परिधि के भीतर विभिन्न प्रकार की असहिष्णुताएँ आतंक के छोटे-छोटे मंडल बनाती रहीं। आपातकाल की समाप्ति से आतंक का तो अन्त हो गया,

लेकिन मतवादी असहिष्णुताओं के ये वृत्त अभी कायम हैं। चौथा सप्तक के सभी कवि इस परिस्थिति से न केवल परिचित रहे हैं बल्कि उसके दबाव का तीखा अनुभव भी करते रहे हैं और कुछ ने उसके कारण कष्ट भी सहा है।''[3] इनकी कविताएँ नयी कविता और अकविता से अलग हटकर सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हैं। इस दशक की कविता सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक विसंगतियों से और यथास्थिति के विपरीत मूल्यों की अकुलाहट से भरी हुई है। इसी अकुलाहट की हड़बड़ाहट में कविता में 'मैं' छा गया और कविता 'कुछ न बोलने वाली' से 'बहुत बोलने वाली' बन गयी। अज्ञेय जी के शब्दों में- ''आज की कविता का बहुत बड़ा और शायद सबसे बड़ा दोष यह है कि उस पर एक 'मै' छा गया है, वह भी एक अपरीक्षित और अविसर्जित 'मैं'। आज की कविता बहुत बोलती है, जब कि कविता का काम बोलना है ही नहीं।''[4]

सप्तकोत्तर कविता की विकास यात्रा में परिश्रम करने वाले कुछ कवि नयी कविता के भी हैं और बहुत से समकालीन या आधुनिक कवि हैं। इन कवियों में धूमिल, ऋतुराज, लीलाधर जगूड़ी, चन्द्रकान्त देवताले, बिजेन्द्र, कैलाश बाजपेयी, प्रयाग शुक्ल, नरेश मेहता, केदारनाथ अग्रवाल, कुंवर नारायण, हेमन्त कुकरेती, यश मालवीय, त्रिलोचन शास्त्री, केदारनाथ सिंह, इन्दु जैन, नीरज, नंद चतुर्वेदी, दुष्यन्त कुमार, चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', केशव तिवारी, रमानाथ अवस्थी, रणजीत तथा अन्य बहुत से कवियों के नाम उल्लेखनीय हैं। इनकी कविताएँ सामाजिक सरोकारों से जुड़ी पहले से अधिक साफ-सुथरी हैं। वैचारिक आन्दोलन का जो निखरा हुआ रूप सप्तकों के बाद की कविताओं में देखने को मिलता है वैसा पहले की कविताओं में नहीं। दृष्टि, कथ्य और प्रेरक रूपों में वैचारिकता का प्राधान्य समकालीन कविता की पहचान है। सप्तकोत्तर कविता अभिव्यक्ति की सादगी से युक्त आम आदमी की कविता है। जनवादी कवियों की कविताओं में भी प्रगतिवादी संकीर्णताओं से मुक्त होकर आम आदमी की जिंदगी का यथार्थ रूपायित करने का प्रयास हुआ है।

नई और पुरानी मान्यताओं के बीच सदैव द्वन्द्व होता रहता है और एक नई वैचारिक ऊर्जा पैदा होती है। इस भूमण्डलीकरण के दौर में जब पूँजीवाद के शिकंजे में कसे उपभोक्तावादी बाजारीकरण के प्रभाव से संस्कृति के मायने बदल रहे हैं, अनेकानेक संकटों से जूझते समाज की संरचना जटिल होती जा रही है, धर्म अपनी मूलभूत अवधारणाओं को खो रहा है, ऐसे में कविता का दायित्व बढ़ गया। है। आजकल राजनेता धर्म का राजनीतिक प्रयोग अपनी रक्षा के लिए करते हैं। मंदिर और मस्जिद के आंदोलन इस व्यवस्था की स्वाभाविक परिणति है। एक शताब्दी पूर्व जिस जातिवाद को पीछे छोड़ा गया था वह आज फिर मुख्य पृष्ठ पर है। मायावती, मुलायम सिंह और लालू यादव इसी परिवेश की देन हैं।

यद्यपि आधुनिकतावाद और उत्तर-आधुनिकतावाद जैसे आन्दोलन कविता में चले हैं किन्तु आज कविता को किसी काल विशेष में नहीं बाँधा जा सकता है, चूँकि आज समस्त विश्व लगभग एक जैसी समस्याओं से जूझ रहा है। लोक जीवन की महक धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। आज की उपभोक्ता संस्कृति में व्यक्ति की क्षीण हो रही संवेदनशीलता और आत्मकेन्द्रितता की सीमा तक सिमटता उसका स्वरूप कविता की मुख्य समस्या बन गया है। आज मनुष्य कमरे में बैठकर टी०वी० के पर्दे पर गरजते-बरसते बादल, हहराते समुद्र, हुंकारते पहाड़, बहती हवाएँ, हिलते जंगल, नाचते-गाते पंछी सभी देखता है, किन्तु आज खुली प्रकृति को निहारने का समय व्यक्ति के पास नहीं हैं। आज की कविता में शहरी और ग्राम्य चेतना का संघर्ष इतना प्रबल है कि वह कविता की मूल संवेदना में बार-बार लक्षित होता है और कवि शहरी चेतना से आक्रान्त होकर मानसिक शान्ति पाने के लिए बचपन और अतीत में प्रतिगमन करता है। वह राग और संवेदना का एक शांत और आकर्षक विश्व बनाना चाहता है।

आज उत्तर आधुनिकतावाद, विसंरचनावाद, उदारीकरण, वैश्वीकरण, विश्वग्राम जैसे विषयों पर चर्चाओं से सारा मीडिया जगत् और बुद्धिजीवी समाज आक्रान्त है। सूचना प्रौद्योगिकी के सहारे सारे विश्व को एक इकाई के रूप में परिवर्तित करने की कोशिश हो रही है। ''जैसे-जैसे भारतीय समाज में जन-जीवन जटिल से जटिलतर और कठिन से कठिनतर हुआ है वैसे-वैसे जन-जीवन की चिन्ता करने वाली कविता की संस्कृति में परिवर्तन आया है और वह इतिहास से मुठभेड़ की क्षमता अर्जित करने का प्रयत्न करती दिखायी देती है। इसके संकेत नागार्जुन, मुक्तिबोध और धूमिल की कविता में मिलते रहे हैं, लेकिन पिछले दो दशकों से हिन्दी कविता जनजीवन के इतिहास की त्रासदियों को पहचानने और व्यक्त करने में पहले से अधिक सक्रिय और समर्थ हुई है, इसके प्रमाण अयोध्या की दुर्घटना और गुजरात के नरसंहार पर लिखी कविताओं में मिलते हैं। जाहिर है ऐसी कविता में केवल 'सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रमविधान' ही नहीं चल सकता, उसमें भदेस, देशज और तिरस्कृत शब्दों के विस्फोटक अर्थो का प्रयोग जरूरी होता है।''[5]

समकालीनता का सम्बन्ध 'देश' और 'काल' दोनों से बराबर का रहता आया है। आज दुनिया चाहे कितनी छोटी क्यों न हो रही हो, पूंजी-बाजार के स्तर पर उसके वैश्वीकृत होने का कितना ही शोर-शराबा क्यों न मच रहा हो, और देश का एक वर्ग देशी न रहकर वि-देशी क्यों न बन गया हो, किन्तु वास्तविकता यह है कि करोड़ों लोगों का जीवन अपनी देशी और जातीय परम्पराओं से विरत नहीं है। उसके लिए सदैव ही रामायण-गीता प्रेरणा का स्रोत रहेंगे।

21वीं सदी का यथार्थ भूमंडलीकरण के तहत साम्राज्यवादी शोषणतंत्र के कसते जाने का यथार्थ है। यहाँ विज्ञापनवाद, उपभोक्तावाद और बाजारतंत्र की शक्ल में अधिकाधिक मुनाफा कमाने और कम्प्यूटर क्रांति के सामने आदमी को बौना बनाने की अमरीकी नेतृत्व में साम्राज्यवादी कोशिशें तेज होती जा रही हैं। आज की कविता में इस शोषक सत्ता की पक्षधरता और सत्ता-प्रतिरोध के द्वन्द्व को मूर्त्त रूप में देखा जा सकता है।

मजे की बात तो यह है कि सन् 1980 ई० से लेकर 2000 ई० तक के समय में सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक, साहित्यिक और आर्थिक धरातलों पर उथल-पुथल मची हुई थी तथा साथ ही इन सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व प्रगति भी हुई। इन सभी क्षेत्रों में जो भी गतिविधियाँ और विकास-ह्रास हुआ, दरअसल उन पर ठीक-ठीक किसी का भी नियंत्रण नहीं रहा, इसलिए जो कुछ भी दिखाई पड़ रहा है वह एक जंगल में विकसित अथवा मुरझाते हुए पेड़-पौधों की तरह है। जिसकों जितनी हवा, पानी व प्रकाश मिला उसी अनुपात में खिला अथवा मुरझाया। कहने को तो सरकार भी रही, तथाकथित सभ्य लोगों की दुनिया भी रही, गैर सरकारी संगठन भी रहे, फिर भी जो कुछ हुआ अपेक्षित नहीं बल्कि अनापेक्षित ही। राजनीतिक उथल-पुथल, अवसरवादिता एवं सत्ता में बने रहने की ललक ने न केवल लोकतंत्र को कमजोर बनाया बल्कि सामाजिक विद्वेष और धार्मिक कट्टरता तथा आतंकवाद को बढ़ावा दिया। तदर्थवाद का परिणाम 1999 ई० का कारगिल युद्ध रहा। इस बीच देश को अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर शक्तिशाली बनाने के प्रयास भी हुए। परिणामस्वरूप तकनीकी विकास के प्रति सजगता, नई शिक्षा नीति, नई औद्योगिक व आर्थिक नीति तथा परमाणु शक्ति संपन्नता की दिशा में उठाए गये कदम दिखाई देते हैं। कुल मिलाकर यह निश्चित तौर पर कहा जा सकता है कि यह युग विविध अनुभवों से परिपूर्ण है और पूर्व के युगों से कई प्रकार से अलग है। मोटे तौर पर यह भारत के परमाणु शक्ति सम्पन्न देश बनने के प्रयासों के बीच (1974 से 1998 ई० तक)का समय है जिसमें तेजी से अनेक राजनैतिक और गैर-राजनैतिक घटनाएँ घटित हुई हैं तथा कई परिवर्तन भी हुए हैं। संपूर्ण साहित्य और विशेष रूप से कविता इन सबका बखूबी वहन करती हुई चली है।

सप्तकों के बाद की हिन्दी कविता को यों तों समकालीन कविता, विचार कविता, जनवादी कविता, नवगीत आंदोलन, आधुनिक कविता और उत्तर आधुनिक कविता जैसे अनेक नामों से इतिहास में 'दर्ज' कराने का प्रयास किया गया, किन्तु ये सभी आन्दोलन कोई सर्वमान्य नाम नहीं दे

सके। भविष्य में इस काल की कविताओं पर अनेक शोधों, बहसों, अध्ययनों और एक समान प्रवृत्तियों के आधार पर भले ही कोई सर्वमान्य और सार्थक नाम मिल जाये पर उपरोक्त सभी नाम कहीं अधिक सीमित तो कहीं अधिक दूर-से जान पड़ते हैं। इस समय की कविता से सप्तकों के बाद बीते छब्बीस--सत्ताईस वर्षो में कविता पहले से बहुत बदली है फिर भी उसने पुरानी संस्कृति और अपने कविता होने के गुण को सहेज कर रखा है। इन्ही जीवन-मूल्यों की रक्षा करते हुए आज तक समाज में चेतना का आह्वान करती कविता को अध्ययन की दृष्टि से निम्नलिखित पाँच सोपानों में बाँटा जा सकता है-

(अ) प्रथम सोपान- (सन् 1980 से 1985 ई० तक की कविता)

(आ) द्वितीय सोपान (सन् 1986 से तक 1990 ई० तक की कविता)

(इ) तृतीय सोपान (सन् 1991 से1995 ई० तक की कविता)

(ई) चतुर्थ सोपान (सन् 1996 से 2000 ई० तक की कविता)

(उ) पंचम सोपान (सन् 2000 से 2005ई० तक की कविता)

(अ) प्रथम सोपान (सन् 1980 से सन् 1985 ई० तक की कविता)

सप्तकोत्तर कविता में प्रथम सोपान में प्रकाशित प्रमुख कविता संग्रह 'भूरी-भूरी खाक धूल' (मुक्तिबोध 1980), 'शबरी' (धनंजय अवस्थी 1981), 'हे मेरी तुम' (केदारनाथ अग्रवाल 1981), 'नदी की बाँक पर छाया' (अज्ञेय 1981), 'सुदामा पाण्डे का प्रजातन्त्र' (सुदामा पाण्डे 'धूमिल' 1982), 'खूँटियों पर टँगे लोग' (सर्वेश्वर दयाल सक्सेना 1982), 'तृष्या' (माधवीलता शुक्ला 1983), 'अपराधिता' (रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' 1983), 'नवगीत दशक' (सं० शम्भूनाथ सिंह 1983), 'धुएँ का सच' (कुसुम असंल 1984), 'अपूर्वा' (केदारनाथ अग्रवाल 1984), 'अभिनवा' (डॉ० ओंकारनाथ त्रिपाठी 84), 'हर सुबह एक ताजा गुलाब' (गुलाब खण्डेलवाल 1984), 'बोले बोल अबोल' (केदारनाथ अग्रवाल 1985), 'भस्मांकुर' (नागार्जुन 1985), 'स्नेहिल बन्धन टूट गए तो' (शिवकुमार सिंह 1985), आदि हैं।

'खूँटियों पर टँगे लोग' काव्य संग्रह में कवि की नियति को स्वीकार कर लेने की तथा व्यक्ति संघर्ष की व्यापक पीड़ा की अनुभूति है। यह पीड़ा कवि और समाज को नकारती हुई उसके काव्य व्यक्तित्व को विराट् कर जाती है। इसी संग्रह में घोर सामाजिक राजनीतिक यथार्थ से जूझने वाली कविताएँ हैं।

'अपराधिता' प्रबन्धकाव्य में रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने महाभारत कालीन काशीनरेश की पुत्री

अंबा का करूण व्यक्तावस्थायुक्त और दुर्दशापूर्ण चित्रण किया है। अम्बा स्वयं को भस्म कर द्रुपद की पुत्री शिखंडिनी के रूप में जन्म लेने के पश्चात् शिखण्डी बनकर भीष्म की मृत्यु का कारण बनती है।

'तृष्या' माधवीलता शुक्ला द्वारा रचित गीतिकाव्य है। इसमें प्रकृति और पुरूष को सौन्दर्य, सांसारिक सम्बन्धों की व्यर्थता, एकांतिक प्रेम की सघनता, भाव प्रवणता, विराटता तथा आत्माभिव्यक्ति प्रमुख हैं।

'अभिनवा' गीतिकाव्य में डॉ० ओंकारनाथ त्रिपाठी ने संस्कृति और सभ्यता की सर्जना करने वाली अनुभूतिपरक और संवेदनशील कविताएँ दी है। नारी चेतना, अन्वेषण की प्रवृत्ति, आस्था के स्वर तथा व्यथा और पीड़ा के द्वारा भी कवि को आगे बढ़ने की प्रेरणा मिलना इस संग्रह की विशेषताएँ हैं।

'हर सुबह एक ताजा गुलाब' गजल संग्रह में गुलाब खण्डेलवाल ने हिन्दी कविता को मात्रिक छंदों की यांत्रिकता तथा अनमनीयता से निकालकर उर्दू कविता की तरह वजन पर आधारित करने का प्रयास किया है। काव्यात्मक संवेदना, राजनीतिक यथार्थ, प्रेम की विशद अभिव्यंजना, जिजीविषा तथा हृदय के कोमल और उदात्त पक्ष का चित्रण इत्यादि उनके संग्रह की प्रमुख विशेषताएँ हैं।

इस अवधि में प्रसिद्ध गाँधीवादी कवि भवानीप्रसाद मिश्र के पाँच काव्य संग्रह आए। डॉ० अश्विनीकुमार शुक्ल के अनुसार "1980 में उनके (मिश्र जी के) दो काव्य संग्रह साहित्य-जगत् को समर्पित हुए। पहला 'मानसरोवर दिन' युगबोध और सांस्कृतिक चेतना से बोझिल है तो दूसरा 'शरीर कविता फसलें और फूल' दुःखी चेहरों के बीच आशा खोजता प्रतीत होता है। उनका अगला काव्य-संग्रह 'सम्प्रति' 1982 में आया, जिसमें उन्होंनें आदमी को आदमी बने रहने के लिए सचेत किया है। उनके जीवन-काल में प्रकाशित होने वाला अंतिम ग्रंथ 'नीली रेखा तक' है, जो मानवीय चेतना की संवेदना से ओत-प्रोत हैं। यह संग्रह 1984 में प्रकाशित हुआ। 'तूस की आग' उनका अंतिम काव्य संग्रह है, जो उनके मरणोपरान्त अगस्त 1985 में प्रकाशित हुआ। इस संग्रह की कविताएँ कविता और जीवन की एकरूपता पर बल देती हैं।"[6] कहने का तात्पर्य यह है कि कविता की नई बानगी के साथ-साथ मँजी-मँजाई कविता भी इस अवधि में अपने कई रूपों में उपस्थित है।

(आ) द्वितीय सोपान (सन् 1986 से 1990 ई० तक की कविता)

द्वितीय सोपान के अन्तर्गत सन् 1986 से 1990 तक की कालावधि में प्रकाशित काव्य संग्रह आते हैं। इनमें से इन्दु जैन का 'कितनी अवधि' (1986), केदारनाथ अग्रवाल का 'जो शिलायें तोड़ते हैं (1986), केदारनाथ सिंह का 'आँका सूरज बाँका सूरज (1980), डॉ० रणजीत का 'झुलसा हुआ

रक्त कमल' (1986), शतदल का 'पवन गया नीली घाटी' में (1987), डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' का 'अभिशप्त शिला' (1987), बलभीम राज गोरे का 'मोरचे में अकेला' (1987) ओम निश्चल का 'शब्द सक्रिय है' (1987) बलदेव वंशी का 'युवा कवि नये हस्ताक्षर'(1987)', हिमांशु जोशी का 'अग्नि संभव'(1987), देवी प्रसाद मिश्र का 'प्रार्थना के शिल्प में नहीं' (1989), यतीन्द्र तिवारी का एक 'सूली पर आकाश' (1990), नरेश मेहता का 'देखना एक दिन' (1990), और विजय देव नारायण साही का 'संवाद तुमसे' (1990) काव्य उल्लेखनीय हैं।

इन संग्रहों में से 'जो शिलाएँ तोड़ते हैं'(1986) काव्य संग्रह में केदारनाथ अग्रवाल ने कृषक समाज का दयनीय वर्णन करने के साथ-साथ अपने कवि कर्म को भी भरपूर निखारा है। 'आँका सूरज बाँका सूरज' काव्य संग्रह में केदारनाथ सिंह ने समाज में व्याप्त बुराइयों पर व्यंग्य करते हुए धर्म और राजनीति सभी को गरीबों की रोटी छीनने वाला बताया है। उन्होंने मानव मन को सीमित दायरों से बाहर निकालने की कोशिश संगीत को माध्यम बनाकर की है। अभिव्यक्ति की मुक्ताओं से सुसज्जित करके सुन्दरतम विश्व की उनकी कल्पना कविताओं में की गयी है।

डॉ० रणजीत के काव्य संग्रह 'झुलसा हुआ रक्त कमल' में प्रगतिशील कविताएँ है। उनकी कविताएँ उद्देश्यपरक तथा भावप्रणवता से युक्त हैं। शतदल के गीत संग्रह 'पवन गया नीली घाटी में' में सौन्दर्यानुभूति से प्रेरित कविताएँ हैं। उन्होंनें गीत को उसकी परम्परा के साथ ग्रहण किया है। अकेलेपन के अँधेरे से निकलने के लिए कवि दीर्घकाल तक प्रतीक्षा करने को तैयार है। हृदय की गहराइयों में उतरकर उसमें आनन्द की खोज करना यही इस संग्रह की विशेषता है।

'अभिशप्त शिला' डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' का दर्शन प्रधान ग्रन्थ है। इसमें उन्होंने अहिल्या और गौतम ऋषि का वर्णन किया है। ललित जी ने गौतम, इन्द्र और अहिल्या को ज्ञान, वृत्ति और कर्म के रूपकों के रूप में दर्शाया है। अहिल्या और गौतम के संयोग में सात्विक कंप का विस्तृत वर्णन सह अस्तित्व का संकेत है। उनके द्वारा प्रस्तुत अहिल्या और गौतम के संवाद सत्य और सौन्दर्य को शिवत्व तक ले चलने वाले हैं।

'प्रार्थना के शिल्प में नहीं' काव्य संग्रह में देवी प्रसाद मिश्र ने कविता की सार्थकता और प्रतिबद्धता के आधार पर नैतिकता, मूल्यों, ईमानदारी और विरोध को प्रतिबिंबित करने का प्रयास किया है। प्रेम की विशद व्यंजना और सत्य का अन्वेषण करती उनकी कविताएँ सप्तकोत्तर कविता की एक सशक्त नींव रखती हैं।

डॉ० रणजीत के द्वारा सम्पादित काव्य संग्रह 'खामोशी भयानक है' पर्यावरण चिंता पर लिखी

गयी चौदह श्रेष्ठ कवियों की कविताओं का संग्रह है। इसमें विकास के नाम पर वर्तमान विज्ञान और तकनीक के द्वारा किये जाने वाले कार्यो के कारण उत्पन्न विनाश की स्थिति का चित्रण इन सभी कवियों की कविताओं में किया गया है। इन कवियों में 'नीरज', विश्वनाथ प्रसाद तिवारी' आदि प्रमुख हैं।

विजयदेव नारायण साही के काव्य संग्रह 'संवाद तुमसे' का उद्देश्य कवि और श्रोता के मध्य संवाद स्थापित करना है। प्रस्तुत संग्रह में साही जी की कुछ कविताएँ 'तीसरा सप्तक' से भी उद्धृत हैं। उनकी कविताओं में व्याप्त तन्मय उन्माद उनकी उदात्त भावनाओं को बड़े ही सहज ढंग से व्यक्त करने में सहायक होता है।

'देखना एक दिन' कविता संग्रह नरेश मेहता की यथार्थपरक रचना है। उन्होंने धर्म, व्यक्तित्व, पर्वत, आकाश, जल, प्रकाश इत्यादि प्राकृतिक उपमानों को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाकर उन्हें नवीन संज्ञा प्रदान की है। उन्हें नवागत भविष्य से अनन्त आशाएँ हैं। 'स्त्री' कवि के लिए केवल स्त्री ही न होकर एक सम्बन्ध है, एक विराट भाव अन्विति है।

(इ) तृतीय सोपान (सन् 1991 से 1995 ई० तक की कविता)

तृतीय सोपान की कालावधि में सन् 1991 से सन् 1995 तक की अवधि में प्रकाशित कविता संग्रह आते हैं। इन कविता संग्रहों में से प्रमुख संग्रह लीलाधर जगूड़ी कृत 'भय भी शक्ति देता है' (1991), विवेकी राय कृत 'यह जो है गायत्री', (1991), अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' कृत 'सप्तदल' (1991), बोधिसत्व कृत 'सिर्फ कवि नहीं' (1991), गोपाल दास 'नीरज' कृत 'बादल बरस गयो' (1991), रामचन्द्र शुक्ल कृत 'अरूणिमा' (1992), नरेन्द्र पुण्डरीक कृत 'नंगे पाँव का रास्ता', (1992), धर्मवीर भारती कृत 'सपना अभी भी' (1993), रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' कृत 'ध्रुवान्तर' (1993), लीलाधर जगूड़ी कृत 'अनुभव के आकाश में चाँद' (1994), रामदरश मिश्र कृत 'शब्द सेतु' (1994), गोपालदास नीरज कृत 'वंशीवट सूना है' (1994), केदारनाथ अग्रवाल कृत 'पुष्पदीप' (1994), गिरिजा कुमार माथुर कृत 'पृथ्वी कल्प' (1994), एकान्त श्रीवास्तव कृत 'अन्न हैं मेरे शब्द' (1994), नासिर अहमद सिकंदर कृत 'जो कुछ भी घट रहा है दुनिया में' (1994), विनोद दास कृत 'वर्णमाला से बाहर' (1995), राजेश दीक्षित कृत 'गीत उन्मादिनी' तथा 'गीत भागीरथी' (1995), और सुनीता जैन कृत 'कातर बेला' (1995), इत्यादि हैं।

'यह जो है गायत्री' काव्य संग्रह में विवेकी राय ने आशावादी भावनाओं को प्रस्तुत किया है। उन्होंने अनुभूति के क्षेत्र में न केवल स्थूल प्रभात के अपितु जीवन, जगत्, विविध ऋतुओं, दृश्यों एवं

वर्णनों में लपेटकर उनका अंकन किया है। उनके छंदों की भावधारा में नवीन जीवन-शक्ति है।

'सप्तदल' में अयोध्या प्रसाद गुप्त 'कुमुद' ने जीवन में दुख और मृत्यु की अनिवार्यता को स्वीकारते हुए जिजीविषा को व्यक्त किया है। कुमुद ने राग और सौन्दर्य को चाहे वह प्रकृति का हो या नारी का, डूब कर जिया और सराहा है।

'सिर्फ कवि नहीं' में बोधिसत्व की कविताएँ ताजगी लिए हुए व्यक्ति अनुभव की तथा जन चेतना की कविताएँ हैं। उनकी कविताएँ संस्कृति के अछूते कोनों को तलाशकर उन्हें बिलकुल नये सांस्कृतिक व्यक्तित्व में ढालने का प्रयास करती हैं।

'भय भी शक्ति देता है काव्य संग्रह में कवि लीलाधर जगूड़ी ने आधुनिक भौतिक और नैतिक संकटों को कविता में दर्ज किया है। कवि की आलोचनात्मक दृष्टि लोकगीतों और मिथकों को अपने अनुभव के नये आयामों के साथ देखती है। उनकी कविताएँ कहीं तो पापी के पाप की तरह चुभने लगती हैं और कहीं पुण्य की तरह ढाँढ़स बँधाती हैं।

'अरूणिमा' की स्फीत भूमिका 'चिन्तन' में कवि रामचन्द्र शुक्ल ने कुंभज अगस्त्य, दुर्योधनादि की उत्पत्ति की प्राचीनतम कथाओं को नली-शिशुओं (टेस्ट ट्यूब बेबीज) की अधुनातन वैज्ञानिकता से संपृक्त किया है, प्रजनन-रहस्यों एवं पुनर्जन्म पर ऊहापोह किया। स्वप्न के फ्रायड दर्शन पर प्रकाश डाला है। वाल्मीकि-रामायण के उत्तर कांड की वेदवती कथा को सीता-कथा एवं जयंत-प्रकरण को राम के प्रक्षेपास्त्र-सामर्थ्य के परीक्षण-यन्त्र से मिलाया है।

'पृथ्वीकल्प' कविता संग्रह गिरिजा कुमार माथुर की लंबी रचना प्रक्रिया का परिणाम है। उनकी यह रचना दार्शनिक एवं वैज्ञानिक दोनों पीठिकाओं को लेकर चली है। सृष्टि को जानने एवं समझने की सतत् चेष्टा, पृथ्वी को आत्मीयता और निकटता से जानने का प्रयास तथा नए वैचारिक शब्दों का प्रयोग माथुर जी के काव्य की विशेषताएँ हैं।

'नंगे पाँव का रास्ता' कविता संग्रह में नरेन्द्र पुण्डरीक ने आम आदमी को उसके परिवेश और प्रवृत्तियों के साथ चित्रित किया है। उनकी भाषा तथा शैली स्वस्थ और ताजी है। ग्रामीण तथा आँचलिक चित्रों को भी बड़ी स्वच्छता के साथ इन्होंने प्रस्तुत किया है।

(ई) चतुर्थ सोपान (सन् 1996 से 2000 ई० तक की कविता)

सन् 1996 से सन 2000 तक की कविताएँ चतुर्थ सोपान के अन्तर्गत आती हैं। इस सोपान के कुछ महत्त्वपूर्ण संकलन कुमार अंबुज कृत 'क्रूरता' (1996), रमेश रंजक कृत 'पतझर में बसंत की छवियाँ' (1996), केदारनाथ अग्रवाल कृत 'बसन्त में प्रसन्न हुई धरती' (1996), सुधीर रंजन सिंह

कृत 'और कुछ नहीं तो' (1996), केदारनाथ सिंह कृत 'बाघ' (1996), प्रियंवदा देवी कृत 'अनुभूतियाँ' (1997), केदारनाथ अग्रवाल कृत 'कुहुकी कोयल खड़े पेड़ की देह' (1997), मत्स्येन्द्र शुक्ल कृत 'शब्दों को समझना जरूरी है, और 'हवाएँ दे रही हैं संदेश' (1997), डॉ0 माधव हाड़ा सम्पादित संग्रह 'लय' (1997), रमेश पोखरियाल 'निशंक' कृत 'मातृभूमि के लिए' (1998), के0 सच्चिदानंदन कृत 'वह जिसे सब याद था' (1998), धर्मवीर भारती कृत 'कुछ लम्बी कविताएँ' (1998), पंकज चतुर्वेदी कृत 'एक सम्पूर्णता के लिए' (1998), भगवान स्वरूप कटियार कृत 'जिन्दा कौमों का दस्तावेज' (1998), गगन गिल कृत 'यह आकाँक्षा समय नहीं' (1998), सावित्री डागा कृत 'शताब्दी की सरहद पर' (1999), ओम भारती कृत 'जोखिम से कम नहीं' (1999), हरीशचन्द्र पाण्डेय कृत 'एक बुरूँश कहीं खिलता है' (1999), कैलाश बाजपेयी कृत 'भविष्य घट रहा है' (1999), ज्ञानेन्द्र पति कृत 'गंगातट' (1999), हरिराम मीणा कृत 'हाँ चाँद मेरा है' (1999), श्रीकान्त वर्मा कृत 'दिनारम्भ' (1999), राजकुमार कुम्भज कृत 'मुद्दे की बात' (1999), सावित्री डागा कृत 'शताब्दी की सरहद पर' (1999), लीलाधर जगूड़ी कृत 'ईश्वर की अध्यक्षता में' (1999), रवीन्द्र भारती कृत 'यह मेरा ही अंश है' (1999), यतीन्द्र मिश्र कृत 'अयोध्या तथा अन्य कवितायें' (2000), मोती भुवानिया कृत 'मैला दर्पण' (2000), ओम भारती कृत 'जोखिम से कम नहीं' (2000) सुधीर मोता कृत 'सिगड़ी' (2000), सुषमा मुंजाल कृत 'जब्त व्यथाएँ' (2000), सारस्वत मोहन 'मनीषी' कृत 'शब्द यज्ञ' (2000), पी0वी0 जगमोहन कृत 'समुद्र के तट पर' (2000) रवीन्द्र भ्रमर कृत 'धूप दिखाए आरसी' (2000), मत्स्येन्द्र शुक्ल कृत 'यह अपना इतिहास' (2000), नीरजा माधव कृत 'प्रस्थानत्रयी' (2000), राकेश चक्र कृत 'चरवाहों का चक्रव्यूह' (2000), किशोरी शरण शर्मा सम्पादित 'राष्ट्रीय काव्याँजलि' (2000), रामजी लाल दीक्षित कृत 'आंजनेय' (2000), केशव प्रसाद बाजपेयी कृत 'संवाद भारती' (2000), निदा फाजली कृत गजल संग्रह 'खोया हुआ-सा कुछ' (2000), मंगलेश डबराल कृत 'आवाज भी एक जगह है (2000), विजय किशोर, 'मानव' कृत 'राजा को सब क्षमा है। (2000), हरिराम मीणा कृत 'हाँ चाँद मेरा है' (2000), कुसुम अंसल कृत 'समय की निरंतरता में' (2000) और नरेन्द्र पुण्डरीक कृत 'सातों आकाशों की लाड़ली' (2000) इत्यादि हैं।

'और कुछ नहीं तो' सुधीर रंजन सिंह का पहला कविता संग्रह है। कविता के भीतर और बाहर फैले विविधि प्रसंगों पर तर्क-वितर्क करती उनकी कविताएँ वैचारिकता से अपनी अस्मिता को अर्जित करने की कोशिश करती हैं। उनकी कविताएँ करूणा और सांसारिक विडम्बनाओं की कविताएँ

हैं। कवि की बौद्धिक संवेदना और प्रश्नाकुलता इन कविताओं में स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है।

तीसरा सप्तक के सहयोगी कवियों में से एक डॉ० केदारनाथ सिंह का काव्य 'बाघ' पंचतंत्र की कथाओं में विद्यमान विशेषताओं का अनुकरण है। बाघ को कवि ने एक नवीन आनुषंगिक प्रतीक के रूप में लिया है। बाघ से मनुष्य को जोड़ने का प्रयास उन्होंने बड़े ही सजीव ढंग से किया है।

डॉ० माधव हाड़ा के द्वारा सम्पादित 'लय' पुस्तक में कविताओं, गीतों और गजलों का संग्रह है। ये रचनाएँ राजस्थानी पत्रिका एवं इतवारी पत्रिका में प्रकाशित हो चुकी श्रेष्ठ कविताएँ हैं। ये कविताएँ नये प्रकार के संकटों और चुनौतियों से जूझते हुए वास्तविकता को सम्मुख लाने का प्रयास करती हैं।

धर्मवीर भारती की कविताओं का संग्रह 'कुछ लम्बी कविताएँ' स्वातन्त्र्योत्तर इतिहास के हादसों और कवि की अन्तरात्मा के प्रश्नों को हल करने का प्रयास करती हुई कविताओं का संग्रह है।

'गंगातट' ज्ञानेन्द्रपति की स्थानीय आंचलिक बोध कराने वाली समकालीन कविताओं का संग्रह है। ज्ञानेन्द्रपति ने कविता को राजनीतिक प्रवाह में बहने से बचाकर वस्तुनिष्ठता के साथ अपने समय के अनुभवों को कविता में साधा-सिरजा और बहुवस्तुस्पर्शी बनाया है।

कैलाश बाजपेयी कृत 'भविष्य घट रहा है' काव्य संग्रह आज के आदमी की समस्याओं का मुखर दस्तावेज है। मानव-मानव के बीच का प्रेम से भरा स्थान रिक्तता से पूर्ण हो गया है और उसका अस्तित्व संकट में फँस गया है। कैलाश बाजपेयी की ये कवितायें सुख और दुख की मिश्रित मधुर अनुभूति के समान हैं।

हरीशचन्द्र पाण्डेय कृत 'एक बुरूँश कहीं खिलता है' लघुता को भी महत्त्व देने वाली संवेदनशील और सजग कविताओं का संग्रह है। समय की ही भाँति मानवीय इच्छाशक्ति को बाँधना असम्भव है। इसी अदम्य इच्छाशक्ति के साथ अपने समय से जूझती उनकी कविताएँ अद्वितीय धैर्य का परिचय देती हैं।

मंगलेश डबराल कृत 'आवाज भी एक जगह है' काव्य संग्रह मानवीय चिन्ताओं और सरोकारों की कविताओं को समेटे हुए है। नारी जीवन की मार्मिकता मानसिक दुरवस्थाजन्य पीड़ा, अन्तःसंघर्ष और ऐतिहासिक व्यथाओं का चित्र खींचती हुई उनकी कविताएँ सत्य की पुनर्स्थापना का प्रयत्न करती हैं।

'खोया हुआ-सा कुछ' गजल संग्रह में निदा फ़ाज़ली ने प्रेम-सौन्दर्य की भावना, लौकिक

संवेदनशीलता और यथार्थ की खोज में उलझे हुए व्यक्ति की आशावादिता को दर्शाया है। उनकी गजलें उनके हृदय की मुक्तावस्था और संयुक्तावस्था दोनों का निरूपण बड़ी ही सहजता से करती हैं।

'संवाद भारती' केशव प्रसाद बाजपेयी की संवाद शैली में लिखी गयी एक संवेदनशील और यथार्थपरक कृति है। जीवन से जुड़ी समस्याओं का सामना करते हुए अपने अस्तित्व की रक्षा करना और उसे गौरवान्वित करना कवि का ध्येय है। सामाजिक वैषम्य का कोना-कोना झाँककर कवि ने वहाँ शुचिता, सौम्यता, मूल्यों और भावों की गरिमा से युक्त करने का अथक प्रयत्न किया है।

'चरवाहों का चक्रव्यूह' काव्य संग्रह में कवि राकेश 'चक्र' की प्रेमिल, रागात्मक अनुभूतियों के साथ-साथ सामाजिक और मानवीय चिन्ताओं से दूर तक परिचित कराने वाली सम्वादपूर्ण कविताएँ हैं।

डॉ० किशोरीशरण शर्मा सम्पादित कविता संग्रह 'राष्ट्रीय काव्याञ्जलि' में इक्यानबे कवियों की कविताएँ संग्रहीत हैं। ये कविताएँ देश प्रेम के रंगों में डूबी हुई तथा भारतीय संस्कृति के भावनात्मक व संवेदनशील चित्रों का रेखांकन करती हैं।

'आञ्जनेय' प्रबन्ध काव्य में डॉ० रामजीलाल दीक्षित ने पौराणिक प्रतीकों (ब्रह्मा, पुलस्त्य, हनुमान, दिति, अदिति, विश्रवा, कैकसी, रावण, गौतमी इत्यादि) का प्रयोग करके आधुनिक समाज की विसंगतियों को स्पष्ट करने का प्रयास किया है।

'एक सम्पूर्णता के लिए' काव्य संग्रह कवि पंकज चतुर्वेदी का ताजा, मौलिक, संवेदनशील और विचारशील संग्रह है। उनकी कविताएँ इकहरेपन और विवरणात्मकता से बचकर जीवन की परस्पर विरोधी स्थितियों और उनकी विडंबना के प्रति सजग हैं।

'जिन्दा कौमों का दस्तावेज' काव्य संग्रह में संग्रहीत भगवान स्वरूप कटियार की कविताएँ विषम, तनावपूर्ण और कठिन परिस्थितियों में भी खुशी, उम्मीद और ऊर्जावान बनाए रखने की पहल करती दिखायी देती हैं।

'जोखिम से कम नहीं' कविता संग्रह में ओम भारती की कविताएँ भाषा एवं संस्कारों के देशीपन को समेटे हुए भी आधुनिकता की दृष्टि से युक्त हैं।

(उ) पंचम सोपान (सन् 2001 से 2005 ई० तक की कविता)

पंचम सोपान में सन् 2001 से सन् 2005 तक रची गयी कवितायें आती हैं। संजय कुन्दन कृत 'कागज के प्रदेश में' (2001), सुन्दर चन्द ठाकुर कृत 'किसी रंग की छाया' (2001), विनोद श्रीवास्तव कृत 'अक्षरों की कोख से' (2001), प्रेमरंजन अनिमेष कृत 'मिट्टी के फल' (2001) श्री

प्रकाश शुक्ल कृत ' जहाँ सब शहर नहीं होता (2001), गोपालदास नीरज कृत ' नीरज दोहावली' (2001), नंद चतुर्वेदी कृत 'उत्सव का निर्मम समय' (2001) हरिशंकर आदेश कृत 'प्रवासी की पाती' (2001), अनन्तराम मिश्र कृत 'सचकर रहा विलाप' (2001), रमेश कुमार त्रिपाठी कृत 'सार्थक कुछ' (2001) फिराक गोरखपुरी कृत 'धरती की करवट' (2001), दिनेश नन्दिनी डालमिया एवं रश्मि मल्होत्रा सम्पादित 'सृजन के झरोखे से' (2001), वीरेन्द्र गोयल कृत' 'इस तरह से ये समय' (2001), दफैरून कृत 'पेड़ अकेला नहीं कटता' (2001), अनिल गंगल कृत 'एक टिटिहरी की चीख' (2001), अनिल कुमार सिंह कृत 'पहला उपदेश' (2001), डॉ० आशाराम त्रिपाठी कृत 'धरा ये चन्दन सदृश शीतल रहे' (2002), सुरेन्द्र पाण्डेय 'रज्जन' कृत 'मुहावरा काव्य भाग-1 (2002), किशन सिंह अटोरिया कृत 'धरती मुस्करायेगी' (2002), राय राजेश्वर बलि कृत 'रूप लहरिया' (2002), सवेन्द्र विक्रम कृत 'एक दिन दिल्ली में समय' (2002), राजा जुत्शी कृत 'मैने कहाँ गगन माँगा था' (2002), रामभरोसे लाल कृत 'नयनदीप' (2002), त्रिलोचन कृत 'मेरा घर' (2002), कुँवर नारायण कृत 'इन दिनों' (2002), डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय कृत 'आइने में समय के हम फिर खड़े' (2002), अंशु मालवीय कृत 'दक्खिन टोला' (2002), रमानाथ अवस्थी कृत 'हंस अकेला' (2002), नरेश मेहता कृत 'महा प्रस्थान' (2002), निरंजन श्रोत्रिय कृत 'जहाँ से जन्म लेते हैं पंख' (2002), रामचन्द्र भूषण कृत 'समय अब सहमत नहीं' (2002), कैलाश गौतम कृत 'सिर पर आग' (2002), यश मालवीय कृत 'उड़ान से पहले' (2002), आशुतोष दुबे कृत 'असंभव सारांश' (2002), नरेश चंद्रकर कृत 'बातचीत की उड़ती धूल में (2002), अग्निशेखर कृत 'कालवृक्ष की छाया में' (2002), वंदना देवेन्द्र कृत 'समय का हिसाब' (2002), जितेन्द्र सिंह सोडी कृत 'हाजिर है समन्दर' (2002), स्वरांगी साने कृत 'शहर की छोटी-सी छत पर' (2002), मोहन कुमार डहेरिया कृत 'कहाँ होगी हमारी जगह' (2002), सूर्यनाथ सिंह कृत 'नदियाँ गाती हैं' (2003), रामदरश मिश्र कृत 'मेरे गीत' (2003), कुमार रवीन्द्र कृत 'सुनो तथागत' (2003), (2003), बशीर बद्र कृत 'उजाले अपनी यादों के' (2003), नईम कृत 'लिख सकूँ तो' (2003), हेमन्त कुकरेती कृत 'चाँद पर नाव' (2003), सुरेश शुक्ल 'संदेश' कृत 'चाँदनी के घर' (2003), अनन्तराम मिश्र कृत 'सप्तसिंधु' (2003), प्रकाश मनु कृत 'सदी के आखिरी दौर में' (2003), यादवेन्द्र शर्मा कृत 'सबसे सुन्दर लड़कियाँ' (2003), ब्रज श्रीवास्तव कृत 'तमाम गुमी हुई चीजें, (2003), मालम सिंह कृत 'इस सदी में' (2003), पद्मनाभ तिवारी कृत 'भावार्थ' (2003), मणिमोहन मेहता कृत 'कस्बे का कवि और अन्य कविताएँ, (2003), एकांत श्रीवास्तव कृत 'बीज से फूल तक' (2003), गुलाम मुर्तज़ा 'राही' कृत 'सदाबहार गजल'

(2003), विजेन्द्र कृत 'पहले तुम्हारा खिलना' (2004), बोधिसत्व कृत 'दुःख तन्त्र' (2004) अशोक चन्द्र कृत 'धरती ने दिए हैं बीज' (2004), शरद रंजन 'शरद' कृत 'एक ही तो है आखर' (2004), इंदु जैन कृत 'कुछ न कुछ टकराएगा जरूर' (2004), शीला गुजराल कृत 'धरती का आर्त्तनाद' (2004), मोहन कुमार डहेरिया कृत 'उनका बोलना' (2004), राजेन्द्र केशव लाल शाह कृत 'साम्प्रत मैं चिंतन' (2004), प्रेम रंजन अनिमेष कृत 'कोई नया समाचार' (2004), संजय कुन्दन कृत 'चुप्पी का शोर' (2004), निर्मला पुतुल कृत 'नगाड़े की तरह बजते शब्द' (2004), अरूण देव कृत 'क्या तो समय' (2004), बसन्त त्रिपाठी कृत 'सहसा कुछ नहीं होता' (2004), नीलेश रघुवंशी कृत 'पानी का स्वाद' (2004), ओम भारती कृत 'वह छठवाँ तत्त्व' (2004), मनोज मेहता कृत 'सुलगा हुआ राग' (2004), रमेश पाण्डेय कृत 'कागज की जमीन पर' (2004), श्रीरंग कृत 'यह कैसा समय' (2004), राग तेलंग कृत 'बाजार से बेदखल' (2004), संध्या गुप्ता कृत 'बना लिया मैनें भी घोसला' (2004), शिरीष कुमार मौर्य कृत 'शब्दों के झुरमुट में' (2004), बद्री नारायण कृत 'शब्द पदीयम्' (2004), आर० चेतन क्रांति कृत 'शोक नाच' (2004), अनिल त्रिपाठी कृत 'एक स्त्री का रोजनामचा' (2004), अष्टभुजा शुक्ल कृत 'दुःस्वप्न भी आते हैं' (2004), वीरेन्द्र सारंग कृत 'हवाओ लौट आओ' (2004), भारत यायावर कृत 'हाल बेहाल' (2004), राजीव पाण्डे कृत 'तुम्हारे वो शब्द' (2004), पवन करण कृत 'इस तरह मैं' (2002), अजित पुष्कल कृत 'पत्थर पर बसंत' (2004), डॉ० ओमप्रकाश भारद्वाज कृत 'कगार की कुशा' (2004), प्रेमशंकर रघुवंशी कृत 'सतपुड़ा के शिखरों से' (2004), भगवान स्वरूप कटियार कृत 'हवा का रूख टेढ़ा है' (2004), लीलाधर मंडलोई कृत 'काल बाँका तिरछा' (2004), वीणा घाणेकर कृत 'पता है, नहीं भी' (2005), केशव तिवारी कृत 'इस मिट्टी से बना' (2005), रमण कुमार सिंह कृत 'बाघ दुहने का कौशल' (2005), यतीन्द्र मिश्र कृत ड्योढ़ी पर आलाप' (2005), अनामिका कृत 'खुरदुरी हथेलियाँ' (2005), विवेक निराला कृत 'एक बिम्ब है यह' (2005), रश्मि रमानी कृत 'बीते हुए दिन' (2005), रमेश कुमार त्रिपाठी कृत 'अस्तित्व के स्वर' (2005) इत्यादि प्रमुख हैं।

श्री प्रकाश शुक्ल कृत 'जहाँ सब शहर नहीं होता' काव्य संग्रह में संदर्भ, संवाद और सवाल एक साथ मिलते हैं। इनकी कविताओं में इतिहास बोध, समयगत व सामयिक बोध तथा मनोवैज्ञानिक व दार्शनिक संदर्भ एक साथ मिलते हैं।

नंद चतुर्वेदी कृत 'उत्सव का निर्मम समय' की कविताएँ अस्तित्व के बुनियादी सरोकारों और सांस्कृतिक मूल्यों की कविताएँ हैं। विराट् का विपुल अनुभव ग्रहण करने की प्रबल इच्छा उनके स्वरों

में सुनायी पड़ती है। इनमें कवि अपने जमाने की विसंगतियों की जवाबदेही इतिहास से माँगता है।

गोपाल दास 'नीरज' कृत 'नीरज दोहावली तुलसी, कबीर, रहीम, बिहारी आदि की परम्परा को नया रूप प्रदान करती है। जीवन और जगत के भिन्न-भिन्न पक्षों पर उनकी लेखनी बड़ी सफलता के साथ चली है।

अंशु मालवीय कृत 'दक्खिन टोला' में इतिहास बोध; प्रकृति और बौद्धिकता की कविताएँ हैं। उनकी कविताओं में यथार्थ दृष्टि और वैचारिकता है।

कैफ़ी आजमी कृत 'बहार आए तो' उर्दू हिन्दी कविताओं का श्रेष्ठतम संग्रह है। कैफी की रचनाएँ भावनाओं, विचारों और दर्शन इन सबकी जमीनी मजबूती को समाहित किए हुए हैं। स्वप्न, सौंदर्य और विद्रोह का स्वर खुल कर उनकी कविताओं में आया है।

रमानाथ अवस्थी कृत 'हंस अकेला' की कविताएँ हमारे अन्तःकरण में रचे-वसे मधुर, कोमल और उत्कृष्ट के साथ-अपने समय के यथार्थ और बेचैनी भरे एकान्त हाहाकार को भी बड़ी सहजता से अभिव्यक्त करती हैं। उनकी कविताएँ उदात्त सौन्दर्य और सत्य का सतत अन्वेषण करती हैं।

कुँवर नारायण कृत 'इन दिनों' संग्रह की कविताएँ वैचारिक और जीवन के संघर्षो से जूझती हुई गम्भीर मानवीय संवेदनायुक्त हो जाती हैं। सामाजिक और राजनीतिक दुरवस्थाओं को प्रतिबिम्बित करके अपनी प्रौढ़ समझ को सिद्ध करती है। उनकी कविताओं में दृढ़ता, विराटता और दूरदर्शिता इत्यादि प्रवृत्तियाँ उनके कर्तव्य बोध को दर्शाती हैं।

त्रिलोचन का काव्य संग्रह 'मेरा घर' आज के व्यक्ति का बेबाक वक्तव्य है; अदृश्य पीड़ा है। अवधी पर उनके नव्य प्रयोग भी उनकी प्रौढ़ अभिव्यक्ति और सजगता के सही प्रतीक हैं।

गीतकार नईम का 'लिख सकूँ तो' कविता संग्रह कविता में नयी दीप्ति भरने के साथ ही प्रकृति, सामयिक परिवेश और मानव सम्बन्धों का एक अनूठा लगाव प्रदर्शित करता है। गीतों की लयात्मकता उन्हें और भी प्रभावी तथा सम्प्रेषणीय बनाती है।

गजलकार बशीर बद्र का गजल संग्रह 'उजाले अपनी यादों के' समकालीन चेतना से परिपूर्ण है। उनकी कविताएँ आज की वैश्विक जिंदगी से उस नये मनुष्य की खोज करती हैं जो आत्मिक बल से ओत-प्रोत है और देश काल का शुभ चिन्तक है।

'चाँद पर नाव' युवा कवि हेमन्त कुकरेती का 'केदार सम्मान' से सम्मानित महत्त्वपूर्ण कविता संग्रह है। उनकी प्रत्येक कविता अपना अलग अस्तित्व दर्शाती है। हिन्दी कविता की समस्त विशेषताएँ रखने वाली उनकी कविताएँ उनकी वैचारिक प्रौढ़ता की प्रतीक हैं। उन्होंने कई जगह अमूर्त्तन का

रचनात्मक इस्तेमाल किया है जिनमें शब्दार्थ को वैशिष्ट्य प्रदान करने वाली बहु आयामी रचनाशीलता मिलती है।

कवि विजेन्द्र का काव्य संग्रह 'पहले तुम्हारा खिलना' नवीनता की पूरी चेतना के साथ जातीय स्मृतियों को अपनी कविता में गूँथने का विरल कौशल है। उनकी कविताओं में एक ईमानदार नैतिकता बोध एवं उदार व्यक्ति के असुरक्षा बोध का स्वर बहुत ऊँचा और परिपक्व है। उनकी भाषा कथ्य के अनुरूप लोकांचलों की ओर सहज भ्रमण करती है।

'धरती ने दिये है बीज' कविता संग्रह में कवि अशोक चन्द्र की कविताएँ सामाजिक सरोकारों के साथ-साथ मानवीय त्रासदी का तीखापन लिए हुए हैं। उनकी कविताएँ हमें सामान्य जन के कठिन श्रम और क्रियाशील लोक तक ले जाती हैं। भावों की संश्लिष्टता और वैचारिक ऊर्जा से सम्पन्न अशोक की कविताएँ हमें सहज आकर्षित करती हैं।

'दुःख-तन्त्र' कविता संग्रह में बोधिसत्व की रची हुई लोक जीवन की कविताएँ हैं। उन कविताओं में उनका लोक-जीवन ध्वनित होता है। बोधिसत्व अपनी कविताओं को अकस्मात मिली कमला नामक देवदासी से मिलने के पश्चात् उत्पन्न अनुभूति का विस्तार बताते हैं। नागरिक जीवन के सभी दबावों और तनावों का चित्र उनकी कविताओं में है।

डॉ० वीणा घाणेकर के काव्य संग्रह 'पता है नहीं भी' की कविताएँ वर्तमान समय के दुःख, कष्ट एवं पीड़ाओं को सच्चे शब्दों में अभिव्यक्त करने और सम्प्रेषणीय बनाने का प्रयास हैं। आधुनिक समाज और राजनीति किस प्रकार से जन सामान्य के परम्परागत संस्कारों को प्रदूषित करते हैं, यही संवेदना डॉ० वीणा घाणेकर की कविताओं का मुख्य विषय है।

'इस मिट्टी से बना' कविता संग्रह युवा कवि केशव तिवारी की अन्तः संघर्षो और संवेदनाओं की कृति है। इन कविताओं में आद्यन्त नवीन जनवादी मूल्यों की पुनर्स्थापना का प्रयास हुआ है। केशव तिवारी की कविताएँ उनकी भावुक और संवेदनशील जीवन-शैली का मूर्त्त प्रतिबिम्ब हैं। उनकी कविताएँ लोक जीवन और लोक संस्कृति के प्रति उनके गहन लगाव को दर्शाती हैं। ऐसे बहुत से विषय जिन्हें अन्य कवि किसी अनहोनी के भय से या कविता के बाहर का समझकर अपनी कविता में नहीं उठाते, उन्हें कवि ने साहस के साथ अपनी कविता में स्थान दिया है। इन कविताओं के माध्यम से कवि ने हमें एक नयी संवेदना दृष्टि दी है।

'पेड़ अकेला नहीं कटता' काव्य संग्रह में दफैरून ने अपनी छोटी-छोटी कविताओं में अपने भावों की व्यापकता को अपने व्यक्तित्व में केन्द्रित करने का प्रयास किया है। उनकी संवेदना में

गहराई, दृष्टि में विस्तार और भावों में वैविध्य है।

'समय का हिसाब' काव्य संग्रह में कवयित्री वंदना देवेन्द्र की वैविध्यपूर्ण, व्यापक दृष्टिकोण से युक्त तथा गहन दार्शनिकता से युक्त कविताएँ संग्रहीत हैं। उनकी दृष्टि समाज की व्यापकता को केन्द्रित करने वाली संवेदनशील दृष्टि है।

'तमाम गुमी हुई चीजें' काव्य संग्रह में कवि ब्रज श्रीवास्तव ने प्रेम, विश्वास, दृढ़ता और पारदर्शिता जैसी वाँछनीय प्रवृत्तियों का निरूपण किया है। उनकी कविताओं में समय की भयावहता को व्यक्त करने वाली सूक्ष्म एवं गम्भीर वैचारिकता विद्यमान है। दुःस्वप्न भी आते हैं', काव्य संग्रह में अष्टभुजा शुक्ल ने लोक जीवन के क्रिया कलापों और मार्मिक चित्रों के साथ ही महानगरीय सभ्यता के विभिन्न पहलुओं को नितान्त नये रूप में लयात्मकता के साथ प्रस्तुत किया है।

'एक स्त्री का रोजनामचा' कवि अनिल त्रिपाठी का पहला कविता संग्रह है। स्त्री विमर्श पर आधारित इस संग्रह में कवि ने अपने अन्तःसंघर्षो को आत्मकेन्द्रित करने की अपेक्षा सार्वजनिक करना उचित समझा है। उनकी कविताएँ जीवन-जगत की यथार्थपरक अनुभूति से उपजी सहज वृत्तियों को समेटे हुए हैं।

'शोकनाच' कवि आर०चेतन क्रांति का समकालीन परिदृश्य की विद्रूपताओं पर व्यंग्यपरक दृष्टि डालती हुई उत्तेजना और बेचैनी से परिपूर्ण कविताओं का संग्रह है। उनकी कविताएँ वैचारिक दृढ़ता से युक्त गहन अनुभूति तथा सामाजिक सरोकारों से जुड़ी हुई कविताएँ हैं।

'शब्द पदीयम' कवि बद्रीनारायण के द्वारा विचरित संस्कृति, इतिहास व सामाजिक चेतना से जुड़ी कविताओं का संग्रह है। इस संग्रह में उन्होंने राजनैतिक विद्रूपताओं को उजागर करने के साथ-साथ अपनी बौद्धिक चेतना का परिचय दिया है।

'शब्दों के झुरमुट में' काव्य संग्रह में रचनाकार शिरीष कुमार मौर्य की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक दर्शन को एक नवीन रूप में चित्रित करती कविताएँ संग्रहीत हैं। प्रकृति प्रेम के अतिरिक्त इनकी रचनाएँ सादगी व निष्पक्षता से युक्त हैं।

'बाजार से बेदखल' कविता संग्रह राग तेलंग की बाजारवाद और भूमण्डलीकरण के प्रभाव से उपजी उपभोक्तावादी नीतियों के दुष्प्रभाव को दर्शाती कविताओं का संग्रह है। राग तेलंग की कविताएँ सामाजिक विषमताओं को ढोने की विवशता को छोड़कर उनसे संघर्ष करने की प्रेरणा प्रदान करती हैं।

'यह कैसा समय' काव्य संग्रह कवि श्री रंग के द्वारा रचित हमारे परिवेश और समाज के विद्रूप

चेहरे को अभिव्यक्ति के दर्पण में प्रतिबिम्बित करने का प्रयास करती हुई कविताओं का संग्रह है। उनकी कविताएँ आम-आदमी के सापेक्ष जीवन मूल्यों को तलाशती हुई कविताएँ हैं।

'बना लिया मैंने भी घोसला' काव्य संग्रह कवयित्री संध्या गुप्ता की अपने आप से जूझती हुई तथा जीवन के आशावादी विकल्पों को तलाशती हुई कविताओं का संग्रह है। 'कागज की जमीन पर' कवि रमेश पाण्डेय का पहला काव्य संग्रह है। इसमें उन्होंने परस्पर विरोधी भावों को एक साथ पिरोकर उन्हें मानवीय धरातल से जोड़ने की कोशिश की है। आधुनिक समाज के तनावों और अवसादों की पीड़ा इनकी कविताओं में साफ उभरती है।

'सुलगा हुआ राग' कविता संग्रह मनोज मेहता के द्वारा रचित समकालीन नगरीय यथार्थ का निरूपण करने वाली और भाषा को लोक जीवन के निकट ले जाने वाली संवेदनशील कविताओं का संग्रह है।

'एक बिम्ब है यह' काव्य संग्रह में विवेक निराला ने सामाजिक अनुभवों को व्यक्तिगत स्तर पर व्यंग्य और भावुकता के साथ प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएँ अपने पूर्ववर्ती काव्य-मूल्यों को पुष्ट करने वाली चिन्तनपरक कविताएँ है।

'खुरदरी हथेलियाँ' काव्य संग्रह में कवयित्री अनामिका की लोक-जीवन से जुड़ी व्यापक अनुभूतियों को कुछ नये और अटपटे ढंग से व्यक्त करके अपना स्थान नियत करने वाली प्रभावोत्पादक कविताएँ है।

'ड्योढ़ी पर आलाप' कविता संग्रह में कवि यतीन्द्र मिश्र ने परदे के पीछे छिपे हुए सामाजिक यथार्थ को परदे पर प्रकाशित करने का जोखिम उठाया है। उनकी कविता विश्लेषण से संश्लेषण की ओर उन्मुख होती कविता है।

'बाध दुहने का कौशल' काव्य संग्रह में कवि रमण कुमार सिंह ने वर्तमान में फैली विषमताओं का विरोध करते हुए अतीत के अनुभवों को भविष्य के स्वप्नों का यथार्थ बनाने की दिशा में नवीन कदम उठाये हैं।

'बीता लौटता है' कविता संग्रह में कवि मनोज शर्मा ने अतीत से अर्जित संस्कारों की सुरक्षा की आशावादी दृढ़ता का विस्तार करने की कोशिश की है। उनकी कविताओं में शिल्प के साथ-साथ सघन वैचारिकता के प्रभाव को देखा जा सकता है।

'बीते हुए दिन' रश्मि रमानी का अपनी तरह का अलग काव्य संग्रह है। उनकी कविताएँ नारीवादी दर्शन से संपृक्त और आज के नीरस माहौल में भी सरसता का संचार करने वाली कविताएँ

हैं।

'प्रवासी की पाती' काव्य संग्रह में कवि हरिशंकर 'आदेश' ने अपनी आस्था को भारत-माता के चरणों में दर्शाया है। उनकी कविताओं में कवि की आत्मा की पुलक, आशंका, ललक, हर्ष, अमर्ष, आदि संचारी भावों की झलक दिखायी देती है।

सच कर रहा विलाप' काव्य संग्रह में कवि अनन्तराम मिश्र ने अपनी गजलों में व्यक्तिगत पीड़ा के साथ-साथ समग्र युग की व्यथा को भी संग्रथित किया है। उन्होंने हिन्दी गजल के विशाल कैनवास पर सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों, के आकर्षक, प्रेरक और कलात्मक चित्र उकेरे हैं।

'मैंने कहाँ गगन माँगा था' काव्य संग्रह में राजा जुत्शी ने मानव मन की अनुभूतियों की सक्षम पकड़ को दर्शाया है। उनकी रचनाएँ व्यक्ति मन को कल्पना लोक से खींचकर ठोस धरातल पर लाकर उसके रंगों का साक्षात्कार कराने वाली हैं।

'एक दिन दिल्ली में समय' काव्य संग्रह में कवि सर्वेन्द्र विक्रम ने रोजमर्रा की घटनाओं से लेकर इतिहास और संस्कृति के विभिन्न रूपों को अनुभूति की कसौटी पर कस कर प्रस्तुत किया।

'नयन दीप' काव्य संग्रह में रामभरोसे लाल ने जीवन के आन्तरिक पक्षों तथा मानवीय प्रवृत्तियों का मार्मिक व भावनात्मक ढंग से विश्लेषण किया है।

'सप्त सिंधु' कविता संग्रह में कवि अनन्त राम मिश्र ने इतिहास और संस्कृति का अभूतपूर्व मिश्रण प्रस्तुत किया है। उनकी कविताएँ संवेदनशील व भावनात्मक समेकता में सहायक होने वाली हैं।

प्रकाश मनु के द्वारा सम्पादित काव्य संग्रह 'सदी के आखिरी दौर में' में मनुष्यता को बचाये रखने की जद्दोजहद करती विभिन्न कवियों के अनुभवों तथा काव्य-विवेक से उपजी कविताएँ संग्रहीत हैं।

'चाँदनी के घर' कविता संग्रह में कवि सुरेश कुमार शुक्ल 'संदेश' की हिन्दी गजलें संग्रहीत हैं। ये गजलें आनुभूतिक नैरन्तर्य के निर्वहन के साथ-साथ प्रकृति को आयामित करते प्रतीकों और जीवन की रागात्मकता को उत्सृज करते बिम्बों से युक्त हैं।

'रूप लहरिया' ब्रजभाषा काव्य में डॉ० रायराजेश्वर बली की रचनाएँ संग्रहीत हैं। इनकी रचनाएँ हिंदी भक्तिकाल की उच्चतम कृतियों का स्मरण दिलाती हैं। उनकी सबसे बड़ी विशेषता उत्कृष्ट काव्य कला और सच्ची आत्मानुभूति के सम्मिश्रण में है।

(ग) सप्तकोत्तर कविता की प्रवृत्तियाँ

कविता स्वानुभूति की अभिव्यक्ति ही नहीं, अपितु जीवन में सामने आने वाली विसंगतियों, विडम्बनाओं, कष्टों, पीड़ाओं और दुःसह्य अनुभवों का प्रतिबिम्ब होती है। आज के परिवेश में सुख की अनुभूति उतनी तीव्रता से नहीं होती, जितनी दुख, कष्ट एवं पीड़ाओं की होती है। सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक एवं बौद्धिक स्तर पर जन्म लेने वाली अनेकानेक चुनौतियों से हम अपरिचित नहीं हैं। डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय के शब्दों में "ये अनेक तरह की बड़ी चुनौतियाँ हैं- कवि के लिए भी और कविता के लिए भी। आज के कवि ने अपने कवि-मन और कवि-कर्म को सामाजिक सरोकारों से जोड़कर चलने की चुनौती को पूरी ताकत से स्वीकारा है। अपने समय से टकराना और मानव जीवन तथा समाज के समक्ष उपस्थित चुनौतियों से जूझना तथा जूझने की प्रेरणा देना, एक बड़ी उपलब्धि है, जिसे हम आज की कविता में देख सकते हैं। वह तो कालबोध की कविता है, चेतना के द्वार को खोलने वाली कविता है, संवेदना को संस्कारित करने वाली सम्पूर्ण मनुष्य की कविता है, भीतरी एवं बाहरी संघर्ष की भूमिका को रचने वाली तथा अपने समय के विरूद्ध खड़ी होने वाली कविता है; जो हमें झूठ से आगाह करती है, जो झूठ का पर्दाफ़ाश करती है- उस झूठ का जिसे हम जाने-अनजाने जी रहे हैं या जीने के लिए विवश हो रहे हैं।"[7]

सप्तकोत्तर कविता के कवियों ने आदर्शवादिता और इतिवृत्तात्मकता के विरूद्ध भाव और काव्य-उपादानों की नव्यता की प्रतिष्ठा के साथ-साथ चिन्तनशील काव्य चेतना की प्रतिष्ठा कर काव्य को अभिनव संदर्भ दिये। प्राचीन कविता यदि पुरातन इतिहास तथा परम्पराओं की पुनरावृत्ति करती है तो वर्तमान कविता पुरानी रूढ़ियों औंर संकीर्ण विचारों का निरन्तर विरोध करती है। कविता में जनपदीय चेतना को व्यक्त करना भारतीय कविता की बड़ी लंबी परंपरा है। यही वह लोकधर्मिता है जिसको निराला, नागार्जुन, केदारबाबू और त्रिलोचन विकसित करते रहे हैं। उसी परंपरा के कवि आज उसे आगे बढ़ा रहे हैं। नए कवियों ने अपनी रचनाओं में प्रेम, सौन्दर्य, भक्ति, आध्यात्मिक दर्शन, प्रकृति प्रेम, राष्ट्र-प्रेम, इतिहास, मानवीयता, विश्वबंधुत्व तथा काल्पनिक अनुभूतियों की अत्यन्त भावपूर्ण अभिव्यंजनाओं के माध्यम से नए काव्य में जीवन-मूल्यों की स्थापना की है।

प्रवृत्यात्मक दृष्टि से सप्तकोत्तर कविताओं का मूल्यांकन निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है-

1. प्रेम और सौन्दर्य
2. प्रकृति चित्रण

3. सामाजिकता

4. भक्ति, अध्यात्म एवं दर्शन

5. ऐतिहासिक सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावबोध

6. आधुनिकता बोध

7. बौद्धिकता एवं सम्प्रेषणीयता

8. मानवतावादी दृष्टिकोण

9. आम आदमी का चित्रण

10. नारी चित्रण

11. नवगीत तथा गजल लेखन के माध्यम से गहन समस्याओं का रेखांकन

12. कुंठा, संत्रास, विद्रोह, तथा संघर्ष का चित्रांकन

13. राजनैतिक विद्रूपताओं (तदर्थवाद, जातिवाद, अलगाववाद, अवसरवादिता आदि) का वर्णन

14. यूरोपीय और अमेरिकी साहित्यिक वादों का पिछलग्गूपन

15. शैल्पिक विविधता

16. भाषिक परिवर्तन

17. साहित्यिक खेमेबाजी में वृद्धि

18. असुरक्षा और अस्थिरता की भावना

19. बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण का प्रभाव

20. सूचना तकनीक और वैज्ञानिक विकास का प्रभाव

21. असहज यथार्थबोध (तनाव, क्षणवाद, यथाशीघ्रता आदि)

1. प्रेम और सौन्दर्य

सप्तकोत्तर कविता के कवियों ने प्रेम और सौन्दर्य को भव्यता एवं नव्यता दोनों गुणों से परिपूर्ण किया है। मानव का मानव से प्रेम होना सौन्दर्य की भावनात्मक परिणति ही है। सौन्दर्यप्रिय कवियों नें दाम्पत्य-प्रेम, वात्सल्य-प्रेम, देश-प्रेम एवं विभिन्न सौन्दर्य बोधक तत्त्वों का लालित्यपूर्ण चित्रण किया है।

वस्तुतः सौन्दर्य भावना काव्य की एक प्रमुख प्रेरणा रही है। रोमांटिक कवि तो सौन्दर्य-भावना से सदैव ही प्रेरणा प्राप्त करता रहा है। प्रकृति अथवा नारी का सौन्दर्य रोमांटिक कवि की कल्पना को उद्वेलित कर देता है और वह अपनी सौन्दर्यानुभूति को बरबस कविता का रूप प्रदान कर देता है।

कवि वाह्य जगत में और अपने प्रेम के आदर्श में निरन्तर विरोध पाता है; किन्तु वह अपनी आन्तरिक अनुभूति के आलोक में एक ऐसे जगत का साक्षात्कार करता है; जहाँ निरन्तर प्रेम का महोत्सव होता रहता है। प्रेम, मानव हृदय की एक चिर-निगूढ़ वृत्ति है। प्रत्येक साहित्य में देश-काल के अनुरूप उसकी अभिव्यक्ति हुई है।

नारी पुरूष के प्रेम में अपना सर्वस्व न्यौछावर करके प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करती है। डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' तथा सुधीर रंजन सिंह की ये पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में द्रष्टव्य हैं-

कहा ऋषि ने अहल्ये।

तुम न और अधीर हो सङ्गिनि;

अहल्ये! तुम तुम्हारे खण्ड भी सम्भव नहीं होते

अहल्ये! तुम न हो आस्वाद की या भोग सामग्री

तुम्हारी पूज्यता छल से अपावन हो नहीं सकती

न तुममें छल, न तुममें छद्म

फिर कैसे अपावन हो?[8]

और

बहुत मामूली बात से वह डबडबाती

और मैं डूब जाता उसकी भरी आँखों में

जैसे पत्थर डूबता है पानी में चुभ से

थोड़ी देर में मैं उसे अच्छा लगने लगता[9]

प्रेम का स्पर्श हृदय की अनन्त गहराइयों तक अनुभूत होता है। उन गहराइयों में प्रेमी युगल डूब जाना चाहते हैं-

जल में आग लगाने वाले

तुमको क्या/मायावी ठहरे;

बीच धार/लाकर अनजाने

मुझे छू गए कितने गहरे;[10]

प्रेम की व्यापकता को स्पष्ट करते हुए कवि ललित पति-पत्नी के प्रेम को सारस पक्षी युगल के अद्वितीय प्रेम के उदाहरण के द्वारा प्रस्तुत करते हैं-

और वही सारस की जोड़ी

हँसती गाती चिन्ता थोड़ी

X X X X

साथ-साथ जीवन जीते हैं

पल भर न ये प्रेम रीते हैं।[11]

कैलाश बाजपेयी अपनी प्रेमानुभूति को कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

सब स्त्रियाँ प्यार पाने के वास्ते

जन्म लेती हैं

वह लुटाती चली आयी है अपने को

इसलिए मैं रोम-रोम से

दरियादिली का उसकी, भक्त हूँ[12]

प्रियतम से मधुर मिलन के क्षणों की मधुर स्मृति को स्मरण करके अभिसारिका नायिका के रोम-रोम सिहर उठते हैं। प्रातः काल के प्रकाश में मानों उसका भेद प्रकट हो जाएगा इस लज्जा से उसका हृदय प्रकम्पित होता है-

कैसे तम कुंज बीच

गुप-चुप चलती थी

प्रेम की कहानी सोच

रोम-रोम सिहरे।

प्रात के प्रकाश में तो

सकुच सकुच मरूँ

लाज में कपोल लाल

हिया हाय हहरे।[13]

प्राचीनकाल से ही कवियों ने प्रेम के मार्ग को कंटकों से अवरूद्ध बताया है। इस कठिन मार्ग पर चलने वाले के हृदय में साहस का उन्माद और आँखों में गर्व की चमक होनी चाहिए। गजलकार निदा फाज़ली के अनुसार-

दिल में न हो जुर्अत तो

मुहब्बत नहीं मिलती

खैरात में इतनी बड़ी

दौलत नहीं मिलती।

कुछ लोग यूँ ही शहर में

हमसे भी खफ़ा हैं

हर एक से अपनी भी

तबीअत नहीं मिलती।[14]

प्रेम गोपन है, एकाकी है, अनिर्वचनीय है। प्रेम में बँधा हृदय विवश होता है और इस विवशता को किसी से भी कहना अनुचित है। गुलाब खण्डेलवाल की निम्नलिखित पंक्तियाँ इसी विवशता को उद्घाटित करने का प्रयास करती हैं-

कभी होठों पे दिल की बेबसी लायी नहीं जाती

कुछ ऐसी बात है जो कहके बतलायी नहीं जाती

X X X X X X

हमारा दिल तो कहता है उन्हें भी प्यार है हमसे

तड़प उसकी भले ही हमको दिखलायी नहीं जाती।[15]

मुग्धा नायिका के अल्हड़पन से युक्त सौन्दर्य का निरूपण 'बड़ी होती लड़की' कविता में इस प्रकार से हुआ है-

एक लड़की अल्हड़-सी

पुनः-पुनः हँसती है

खिलखिलाकर कहीं छिप जाती है

कभी कुछ कहती है/कभी कुछ गाती है

और बिखर जाती है

चारों ओर हर सिंगार सी

लड़की सुबास बन जाती है

जब-जब मुस्कुराती है।[16]

इस तरह सप्तकोत्तर कविता प्रेम और सौन्दर्य की बहुंरगी तस्वीरें प्रस्तुत करती है। इस कविता में प्रेम के विविध पक्षों को प्रस्तुत किया गया है जो मर्यादा के प्रतिमान के रूप में सात्विकता का निर्माण करते हैं। यह समय इस तरह है कि इसमें एक साथ आदिकाल से लेकर समकालीन कविता

तक की प्रत्येक प्रवृत्ति देखने को मिल जाती है। तात्पर्य यह है कि भक्ति, रीति (श्रृंगारपरक), छायावादी, प्रगतिवादी, प्रयोगवादी और नई कविता की प्रवृत्तियों के साथ-साथ अन्य सभी विशेषताएँ आलोच्यकाल की कविता में उपलब्ध हैं। इसी प्रकार प्रेम और सौंदर्य के बहुआयामी निरूपण इस अवधि की कविता में उपलब्ध हैं जिनके कुछ ही उदाहरण यहाँ दिए जा सके हैं।

2. प्रकृति चित्रण

प्रकृति स्रष्टि का मूलाधार है। मानव उससे निसर्गतः सम्बद्ध है। मानव ने अपनी चेतना के विकास के साथ पहले प्रकृति में विस्मय और कौतूहल की छाया देखी तथा उसके अगाध, अगम्य एवं अनन्त रूप के प्रति आश्चर्य का अनुभव किया है।

कवि प्रकृति का भावगत अध्येता है। प्रकृति हमारे कवियों के लिए प्रेरणा का स्रोत ही नहीं सौन्दर्य का अक्षय भण्डार, कल्पना का अद्भुत लोक, अनुभूति का अगाध सागर और विचारों की अटूट शृंखला भी रही है।

प्रकृति का मानवीकरण जगह-जगह हुआ है। कहीं-कहीं प्रकृति मानवीय क्रिया व्यापारों को सम्पन्न करती हुई-सी जान पड़ती है- उदाहरणार्थ धर्मवीर भारती की कविता 'घाटी का बादल' में-

प्रातधूप की ज़रतारी ओढ़नी लपेटे

अभी-अभी जागी

खुमार से भरी

नितान्त कुमारी घाटी

इस कामातुर मेघधूम के

औचक आलिंगन में पिसकर

रतिश्रान्ता-सी मलिन हो गयी।[17]

तथा ज्ञानेन्द्रपति की 'नदी और साबुन' कविता में-

आह! लेकिन

स्वार्थी कारखानों का तेजाबी पेशाब झेलते

बैंगनी हो गई तुम्हारी शुभ्र त्वचा

हिमालय के होते भी तुम्हारे सिरहाने

हथेली भर की एक साबुन की टिकिया से

हार गई तुम युद्ध।[18]

प्रकृति अपने सौम्य तथा शुद्ध रूप में कितनी मनमोहक प्रतीत होती है। इसका चित्रण 'अभिशप्त शिला' के 'छद्म' सर्ग में ललित जी ने इस प्रकार से किया है-

सूर्योदय के प्रथम माङ्गलिक अभिनन्दन को

सूर्यमुखी ने आनन मोड़ा

मुग्ध मौलिश्री चन्द्रमौलि के अभिनन्दन को

झरते हर सिंगार भोर की अगवानी में।[19]

प्रकृति को पृष्ठभूमि रूप में आलम्बन बनाकर उन्होंने इस प्रकार से चित्रित किया है-

कमल, केतकी करूणाकर कर बीर न फूलो

रूप मञ्जरी आज रूप रस में मत झूलो

X X X X X

जूही-जाही बेलि चम्प मत गन्ध उड़ाओ

दुपहरिया के फूल न यूँ मन में इतराओ।[20]

प्रकृति के सन्तुलन में रहने से ही सृष्टि विकास सम्भव है। मनुष्य के द्वारा उत्पन्न किया गया प्रदूषण और प्रकृति विनाशक अभियान निरन्तर मनुष्य को ही विनाश के गर्त्त में ले जा रहा है-

जंगल का मंगल

अब खत्म होने लगा

छटपटाते पेड़ों की हत्या से

स्तब्ध जंगल रोने लगा

हत्यारा मनुष्य

पेड़ों की हत्याकर

अपनी मौत को बुलाने लगा

वनों की जगह

कंक्रीट के नये जंगल उगाने लगा

कीटस्य विषमौषधम् तैयार करने में।[21]

विभिन्न आलंकारिक अभिव्यक्तियों के लिए भी प्रकृति का आश्रय कवियों ने लिया है उदाहरणार्थ मनोहर प्रभाकर की इन पंक्तियों में-

ये सुग्गे की चौंच सरीखे

रंग पलाशों के,

ये महुए की महक, दिवस ये

ढोलक ताशों के,

छलका जाता जीवन का आनन्द हवाओं में।[22]

आज का कवि प्रकृति और वनस्पतियों की सुरक्षा के प्रति भी सर्वाधिक संवेदनशील है। नदी, हवा, जल, जंगल और मनुष्य इन सबकी सुरक्षा के प्रति मनुष्य को सचेत करने का प्रयत्न कुँवरनारायण की इस कविता में हुआ है -

बचाना है-

नदियों को नाला हो जाने से

हवा को धुँआ हो जाने से

खाने को जहर हो जाने से

बचाना है- जंगल को मरूथल हो जाने से

बचाना है- मनुष्य को जंगल हो जाने से।[23]

नंद चतुर्वेदी की कविता 'फागुन के आते ही' में फागुन माह का वर्णन इस प्रकार से हुआ है-

फागुन के आते ही

हमारा नीबू सहस्रों छोटे पत्तों

फूलों से दमदमाने लगता है

सुगन्ध से प्रमत्त हवाओं के दिन

मुँडेर पर बैठ जाते हैं

छोटी चिड़िया-से गरदन उठाये।[24]

प्रकृति में अन्तर्निहित परोक्ष सत्ता का आभास उसके रहस्यवादी भावों को प्रकट करता है। यथा-

घने गाढ़े बादलों के बीच

खिली धूप की इच्छा ही

मेरा प्रतिरोध है

पकने की यही खूबी है

कि लीचियों की अन्दरूनी बन्दिश

उनके खुरदरे ललौंहेपन में भी

दहकती है।[25]

रहस्यवादी लक्षणों से युक्त प्रकृति रंग-बिरंगे नित्य-नूतन भावों को प्रकट करती है-

रंग गई हृदय तरंग सुकुमार संग

प्रकृति का अंग-अंग अभिनव हो रहा।

देखते ही किसी की मधुरता महानताओं

दिव्यता दयालुता का अनुभव हो रहा।[26]

सप्तकों के बाद की कविता में प्रकृति मात्र मानव के क्रीड़ा-कौतुक की चित्रमयी रंग स्थली ही नहीं है, अपितु वह मानव को नवीन सृजन करने का संदेश देती है और उससे सत्यान्वेषण भी कराती है। प्रकृति का अप्रतिम सौन्दर्य उसके अन्तःकरण को सतत् स्पर्श करता हुआ उसे मनुष्य प्रेम और सहृदयता जैसे कोमल भावों को धारण करने हेतु प्रेरित करता है।

3. सामाजिकता

समाज का प्रयोग साधारण बोलचाल की भाषा में व्यक्तियों के समूह के लिए किया जाता है। समाज शास्त्र में कम से कम दो व्यक्तियों के बीच स्थापित होने वाले सम्बन्ध जिसमें एक दूसरे के अस्तित्व के प्रति जागरूकता हो सामाजिकता कहा जाता है। ई०बी० रयूटर ने कहा है कि, ''जिस प्रकार जीवन एक वस्तु नहीं है बल्कि जीवित रहने की एक प्रक्रिया है, उसी प्रकार समाज एक वस्तु नहीं बल्कि सम्बन्ध स्थापित करने की एक प्रक्रिया है।''[27]

सप्तकोत्तर कविता में सामाजिक व्यवस्था का चित्रण कवियों ने प्राचीन परम्पराओं को ध्यान में रखते हुए अत्यन्त गहराई से किया है। परम्परागत सामाजिक रूढ़ियों को भी कवि अपनी कविता का विषय बनाता है-

सदियों से भूखी औरतें

पानी से भरी थाली में कँपकँपाती देखती हैं अपनी परछाई

और फेंक देती हैं पीठ पीछे

भय तब भी दिखता है।[28]

सामाजिक रूढ़ियाँ, मनुष्य को अनिष्ट के भय को दिखाकर अज्ञात दैवीय इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए विवश करती हैं और वह अदना आदमी भयभीत होकर उनका पालन करता है-

देवता माँगते हैं अंगार

और राख शरीर पर लपेट कर कुपित होते हैं

देवता शिकायत करते हैं कि हम उन्हें भूल गये

याद तो पड़ता नहीं भूल-चूक क्षमा।

हम दण्ड निकालते हैं देवता के नाग से

और वह अनिष्ट की सूचना धमकाने के स्वर में देता है।[29]

विभिन्न सामाजिक समस्याओं को संवाद भारती खण्डकाव्य के माध्यम से प्रस्तुत करते हुए कवि केशव प्रसाद बाजपेयी ने बढ़ते भ्रष्टाचार को 'क्षुधित आक्टोपस' और 'आसुरी वृत्ति' बताया है-

आचरण जो था ग्राह्य त्यागा लोक ने अविचार से,

पीड़ित हुये सब इसलिए दुर्दान्त भ्रष्टाचार से,

इसकी जड़ें बढ़ती गयीं 'आक्टोपसी' क्षुधितातुरा,

पाताल की गहराइयाँ मिलती गयीं' नव उर्वरा।[30]

मानिकपुर के पाठा क्षेत्र के जंगलों से लकड़ी काटकर रेलों द्वारा जाकर शहरों में बेचकर अपनी आजीविका चलाने वाली आदिवासी बालिकाओं के जीवन की विषमताओं का चित्रण कवि केशव तिवारी ने इस प्रकार से किया है-

कितनी निरीह हो

इस गिद्धों भेड़ियों के बीच

तुम्हारे दुःखों को देखकर

खो गया है मेरी भाषा का ताप

गड्डमगड्ड हो गये हैं बिम्ब

पीछे हट रहे हैं शब्द

इस अधूरी कविता के लिये

मुझे माफ करना

पाठा की बिटिया।[31]

गीतकार नईम के गीतों में समाज की अभिलाषाएँ और विसंगतियाँ स्पष्ट साँस लेती हैं। उन्हें वे सहज भाव से मार्मिक अभिव्यक्ति देते हैं-

महँगे हैं ईमान आज सस्ते हैं सोने,

तरह-तरह की आज गरीबी और भूख के सौ-सौ रोने।

जीने से ज्यादा मरने की खुली छूट है-

बेच रहे हैं खुद को ही हम औने-पौने।[32]

समाज विरोधी तत्त्वों की गतिविधियाँ सामाजिकता के क्षरण का हेतु बनती हैं। विकृत मानसिकता वाले ये तत्व सामाजिक व्यवस्था का विरोध करते हैं और हत्या जैसी घटनाओं को तक करने में नहीं हिचकते-

हत्यारा चाहता है तमाम सुंदर और मजबूत विचार

हत्याओं के बारे में

वह चाहता है जितने भी सुंदर और मज़बूत विचार हों

सब उसी के हों

वह फेंके और विचार चल पड़ें

वह मारे और विचार जीवित हों

वह गाड़े और विचार फूट पड़ें

हत्यारा पूरा माहौल बदलना चाहता है।[33]

हाथ में लकुटी लिए, चिथड़ों में लिपटा हुआ, जर्जर शरीर वाला भिखारी सामाजिक संकट की पहचान है। रामचन्द्र शुक्ल ने उसकी स्थिति का चित्रण इस प्रकार से किया है-

पर चट्टान सा अड़ा है

हाथ की लकुटिया में है

जीवन की चाह

चीथड़ो में लिपटा

व्यवस्था की आह

डगमग डग बनाता राह

पड़ा अकेला है समाज की संकट शैया पर/जर्जर मुरझाया।[34]

आज के माहौल को बिगाड़ने का सबसे अधिक श्रेय नेताओं को जाता है। राजनीति, संस्कृति, अर्थ व्यवस्था इन सभी पर हावी होकर ये दादागीरी करते हैं और देश को गुलामी की राह पर ले जाने के लिए तत्पर हैं-

उन्हें खून चाहिये पीने को।

दुनिया की भुखमरी, अकाल से

उनका कोई सरोकार नहीं है।

उन्हें मतलब है तो केवल

अपने आप से।

यात्रा के लिये हवाई जहाज

घूमने के लिए लम्बी लम्बी गाड़ियाँ

रहने के लिये एयर कंडीशण्ड घर

उनकी न्यूतम जरूरतें हैं।[35]

अतः यह कहा जा सकता है कि आधुनिक कवि समाज की विसंगतियों का प्रबल विरोधी और आलोचक है। उसकी कविता सामाजिकता की पोषक है। समाज का यथार्थ बिम्ब निर्मित करने का कार्य आज की कविता ने किया है।

4. भक्ति, अध्यात्म एवं दर्शन

सप्तकोत्तर कवियों की रचनाएँ भारतीय सभ्यता और संस्कृति में अध्यात्म-प्राण का स्पंदन एवं भाव साधना व अद्वैतवाद के एकाकार स्वरूप को प्रमाणित करती हैं। योग की झाँकियाँ भी बड़ी प्रौढ़ हैं, जो कवियों के चिन्तन और अध्ययन को प्रस्तुत करती हैं।

भक्ति और अध्यात्मपरक कविताओं में विशेष प्रवृत्ति यह पाई जाती है कि ये कविताएँ ब्रह्म-जीव जगत के सम्बन्ध में चिन्तन सूत्र को पकड़कर हृदय क्षेत्र में अनेक रम्य भाव लहरियों के स्पन्दन से बौद्धिकता की जड़ता को नष्टकर संवेदना के रंग में रंगकर, पूर्ण प्रौढ़ रूप प्रदान करती हैं।

सप्तकोत्तर कविता में जगह-जगह दार्शनिक चिन्तन की अनुभूति होती है। कही-कहीं उनका दर्शन अध्यात्म प्रेरित है तो कहीं-कही स्वच्छन्द। कहीं-कहीं उनका जीवन-दर्शन रहस्यवादी है तो कहीं-कही वेदान्त प्रभावित।

मानव अपनी अदम्य शक्ति से, आत्म साधना से उस दिव्य लक्ष्य तक पहुँच सकता है तथा तत्व ज्ञान का बोध हो जाने पर मनुष्य सृष्टि के रहस्य का विश्लेषण भी बन जाता है। सनातनकाल से ही ईश्वर नाम स्मरण की पद्धति रही है। आज भी वह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। यथा-

राम में जब से रमा है, दिव्य मेरा मन।

देह माटी की महकती हो गई चन्दन।।[36]

यह सम्पूर्ण संसार रचने वाला ईश्वर कण-कण में बसा हुआ है। भक्त उसे जानने की

उत्सुकता में जीवन भर भटकता है; अनगिनत चाहों को लिये हुए-

होने नहीं देता वह हमको अकेला,

सुख-दुख जो मिले हमें, साथ-साथ झेला!

उसके अलावा है कोई नहीं अपना,

दुनिया तो लगी बस एक झूठा सपना!

यहाँ सब सदा मरे, केवल अधिकार को![37]

प्रलयान्त में आकाश-पाताल एक हो जाते हैं और जीवन का अन्त हो जाता है। कवि कहता है-

न आकाश होगा, न पाताल होगा,

वहाँ कुछ नहीं, बस महाकाल होगा![38]

आज के वैज्ञानिक युग में जबकि नयी पीढ़ी ईश्वरीय आस्था से मुख मोड़ रही है, धार्मिक कट्टरता और वैचारिक संकीर्णता से ग्रस्त हो रही है ऐसे में पुरानी पीढ़ी के बुजुर्गो की आस्था और विश्वास बड़ा ही प्रभावकारी सिद्ध होता है। उनकी प्रार्थना प्रायः पारिवारिक संकटों को दूर करके ईश्वरीय सत्ता का आभास नयी पीढ़ी को देती रहती है-

विचित्र था दादी माँ का

सन्तों में विश्वास

और भी विचित्र था

उनके विश्वास के रास्ते

घर में सन्तों की दुआओं का असर।[39]

ईश्वरीय विराट्ता का ही प्रतीक यह ब्रह्माण्ड है जिसमें असंख्य सूर्य और अनगिनत धराएँ विद्यमान हैं चन्द्रमाओं की तो गणना ही क्या। गिरिजा कुमार माथुर के अनुसार-

विशिष्टता की असम डोरियाँ

असंख्य सूर्यो को हैं पिरोए

बँधी-बँधी हैं रूद्राक्ष-मनकों-सी

अन्तहीना मुग्धा धराएँ

विपुल भूमियाँ

विपुल पृथ्वियाँ

लिए अलख जन्म की कथाएँ

देख रहीं बिम्ब विभूति अपनी

हाथ लिए दर्पण-चंद्रमाएँ।[40]

मानवीय-जीवन और मानवीय रूपों के निश्छल भावों का अध्येता कवि सुख और दुःख की अनुभूति स्पष्ट रूप से करना चाहता है। वह कहता है-

न हों सुख और दुःख कभी

पूरी तरह विलीन हमारे भीतर

जैसे आम बोने पर आम और बबूल बोने पर बबूल

उग आता है जमीन पर

वैसे दिखें हमारे सुख-दुख

हमारें भीतर से बाहर फूटते हुए।[41]

कैलाश बाजपेयी की इन पंक्तियों में उनका रहस्यवादी दर्शन द्रष्टव्य है-

ऐसे भी लोग हैं दुनिया में

दुखने का वक्त नहीं है जिनके पास

कमी में कभी कुछ कम नहीं पड़ता

'है' नहीं है में भी व्याप्त है

दुःख की परिणति भी राख है

सुख की भी

धर्म जनहन्ता योग है

हर 'विभक्ति' का कारण भक्ति है[42]

और त्रिलोचन की कविता 'कोई नहीं जानता' में दार्शनिक अनुभूति-

कोई नहीं जानता, राही कौन, कहाँ से

आता है, जाएगा कहाँ। सब अपनी अपनी

धुन में मगन पड़े हैं, बात किसी की बनी

या बिगड़ी; यह परखे कौन;......................[43]

अभिशप्त शिला का वेदान्त दर्शन प्रस्तुत है-

तपस्वी। मैं तुम्हारी साधना की वृत्ति हूँ निश्छल

X X X X X X X

किसी घनघोर दण्डक में कहीं पाषाण होकर मृत न हो जाऊँ

बचा लो तुम, तुम्हारी प्रेरणा हूँ सूक्ष्म और अमूर्त्त

मेरे मूर्त्त। मेरे प्राण।[44]

केशव तिवारी की ये दार्शनिक पंक्तियाँ किसी अदृश्य शक्ति का आभास कराती हैं जो सबके शरीर में स्थित है-

साहस यह किसका है

कि मैंने टूटी-सी नाव पर बैठकर

ललकार दिया है सागर को

आग यह किसकी है

कि पिघलने लगी मेरे भीतर की

बर्फ।[45]

जीवन एक अज्ञात पौधे की भाँति है। उसके गन्धहीन पुष्प जीवन की इच्छाएँ हैं जिनका प्रयोजन जीव को ज्ञात नहीं। विजेन्द्र की इन पंक्तियों में इसी दर्शन का उद्‌घाटन हुआ है-

पहले तुम्हारा खिलना ही सच है-

उगना जीवन है

फूल आगे की काम्य इच्छाएँ।[46]

इस विवेचन से स्पष्ट है कि सप्तकोत्तर कविता में गहन दार्शनिकता के साथ-साथ अध्यात्म एवं भक्ति की धारा भी प्रवहमान है। निर्गुण और सगुण के दोनों रूपों के अतिरिक्त विशुद्ध रूप से गहन दार्शनिकता के पुट भी इस कविता में देखे जा सकते हैं।

5. ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय भावबोध

ऐतिहासिक तथ्यों एवं पौराणिक मतों के आधार पर कवियों ने सनातनकाल से ही विभिन्न ग्रन्थों की रचना की है। धर्म एवं राजनीति वैश्विक संस्कृति के साथ-साथ भारतीय सभ्यता को प्रभावित करने वाले दो प्रमुख कारक हैं। आदिकवि वाल्मीकि विरचित रामायण तथा वेदव्यास कृत महाभारत महाकाव्य आगे आने वाली पौराणिक एवं ऐतिहासिक काव्य-परम्परा के पथ प्रदर्शक बने। वाल्मीकि की रामायण का देव-दानव संघर्ष कामायनी में अन्तर्मुखी हो गया है। कालिदास के काव्य में भारतीय इतिहास के स्वर्णिम युग की छाया है। वर्तमान साहित्यिक परिदृश्य में राष्ट्रीय भावबोध

हाशिए पर आ गया है जो अपने देश के लिए घातक है जबकि अनेक विकसित देशों लोगों के रग-रग में देश प्रेम समाया हुआ है।

अभिशप्त शिला महाकाव्य में डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' ने वैदिक एवं पौराणिक साहित्य में बिखरी हुई अहल्या विषयक सामग्री को नये संदर्भ एवं आधुनिक परिप्रेक्ष्य में सार्वभौमिक संवेदना के रूप में संयोजित किया है। व्यक्ति की चिन्तनशीलता को गौतम, अखण्ड वृत्ति को अहल्या तथा ऐन्द्रिक कर्म शक्ति को चित्रित करके मानवीय चेतना का सफल विश्लेषण अभिशप्त शिला में किया गया है-

उस सौन्दर्य-समुद्र-सुतल से

प्रकट हुआ यह रत्न अहल्या, इस भूतल में

ऐसा और कृतित्व कहाँ

इस पृथ्वी तल में।[47]

ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालते हुए इन्होंने कहा है-

यह हजारों वर्ष का इतिहास जो घायल पड़ा है

युद्ध के प्रक्षेप से, हिंसा घृणा से,

आदमी का आज वह व्यक्तित्व बौना हो गया।[48]

विजय बहादुर त्रिपाठी 'रसनायक' के महाकाव्य 'श्रीरामचरित रामाश्वमेध' की कथावस्तु पद्मपुराण की परम्परागत कथा पर आधारित है। रामायण व मेघदूत के आदर्शों का चरमोत्कर्ष इन्होंने इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है-

परम सती साध्वी शुभ गीता।

त्यागन योग नाथ नहीं सीता।।

X X X X

सीता सम जग सती न तीया।

विमल चरित सब जन कथनीया।।[49]

बोधिसत्व की कविता 'यह पृथ्वी' में ऐतिहासिकता द्रष्टव्य है-

जब यह सिर्फ

अग्नि-पिण्ड थी, दहकती हुई

तब से मेरा इन्तजार है इसे

X X X X

यह घूमती है मेरे लिए

मेरे लिए अधिर्ज है यह

न जाने कितने अकालों-भूचालों

की उथल-पुथल के बाद भी

सही सलामत है यह[50]

क्रेमलिन के ऐतिहासिक संग्रहालय का यह दृश्य रोचक है-

अब वे ठंढे शीशों के भीतर सहमी हुई पड़ी हैं

खौफ़नाक इवान का कवच एक निरीह इवान की तरह खड़ा है

कैथरीन का रेशमी बिस्तर

कैथरीन के बूढ़े शरीर की झुर्रियों की तरह है

रानियों के सोने के मुकुट उनके मृत चेहरों की तरह सिकुड़े हुए हैं

इतिहास का विशाल शव अंट नहीं रहा है सिमटी हुई घोड़ा गाड़ियों पर[51]

आज का कवि भारतीय संस्कृति का गायक और क्रान्ति का विधाता है। उसका व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों राष्ट्रीयता के ताने-बाने से गुँथे हुए हैं। आध्यात्मिकता, अद्वैतवादी भावना तथा विद्रोह की खाद पाकर अंकुरित और पल्लवित हुई गतिशील राष्ट्रीयता उनकी रचनाओं में जगह-जगह परिलक्षित होती है-

मूड़ी काटे देश मिलत है, चारा काटे खेत।[52]

आज का कवि पूँजीवादी शासक वर्ग का विरोधी तथा स्वाधीन भारत की प्रगति के लिए संघर्ष करता हुआ-सा जान पड़ता है। देश की सामाजिक एवं आर्थिक दुर्दशा पर कवि का क्षोभ तथा देश हितार्थ सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना निम्नलिखित पंक्तियों में दर्शनीय है-

क्रान्ति भावना मानस-सर में, भर-भर उभर रहा।

कुछ करने की, मर मिटने की, लहर-लहर लहरी।[53]

क्रान्ति के इन भावों को समेटे हुए कवि को विश्वास है कि भारत-भूमि पर फिर से एक दिन सुख-समृद्धि का साम्राज्य होगा। क्षेत्रीय तथा आँचलिक विशेषताओं को समेटे हुए महर्षि वामदेव की नगरी बाँदा का अपना अलग इतिहास है। यहाँ की संस्कृति, शिक्षा और कविता सभी अपने आप में अनूठे हैं। छल और स्वार्थान्धता से दूर रहने वाले सरल हृदय लोगों का आपसी प्रेम भी प्रेरणादायक

है। कवि केशव तिवारी की कविता 'बाँदा' में उसकी विशेषताओं को निम्नवत् दर्शाया गया है-

अभी बहुत कुछ है

इस शहर में

मानिक कुइयाँ, छाबी तालाब

टुनटुनिया पहाड़

केन और

उसके गर्भ में शजर

इन्हीं चीजों से जाना जायेगा यह शहर

मंदिर-मस्जिद के विवाद से नहीं

अद्‌भुत है इस शहर का

अपने लोगों से प्यार।[54]

इतिहास प्रसिद्ध सोमनाथ मन्दिर का चित्रण ओंकारनाथ त्रिपाठी ने इस प्रकार से किया है-

मन्दिरों में स्वर्ण कलश ,

स्वर्ण मूर्तियाँ, स्वर्ण स्तम्भ

दम्भी दस्युओं के शिकार

बार-बार, हजार बार-

उनका पुनरुद्धार

श्रम सौहार्द्र, का शृंगार

अपराजित मानव का शाखोच्चार

स्वर्णिम युग का द्वारचार।[55]

निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है कि सप्तकोत्तर कविता में ऐतिहासिक तथ्यों एवं कल्पनाओं का सुन्दर सम्मिश्रण रहा है। कवियों ने मध्यकालीन और आधुनिक घटनाओं को काव्य का विषय बनाकर विशिष्ट ढंग से प्रस्तुत करते हुए नैतिक मूल्यों की रक्षा का दायित्व बखूबी निभाया है। अतीत के सांस्कृतिक वैभव का गौरवगान, भविष्य के स्वस्थ-स्वाधीन समाज का मनोरम चित्र, राष्ट्र- भाषा हिन्दी के प्रति अगाध श्रद्धा और मानवीय मूल्यों का पोषण जैसी विशेषताएँ सप्तकोत्तर कविता में भरी पड़ी हैं।

6. आधुनिकता बोध

सप्तकोत्तर कविता आज की कविता है। आज के माहौल की कविता है। प्रत्येग युग अपने युग में आधुनिक रहता है, क्योंकि, हर युग में नयी-नयी समस्याओं का जन्म होता रहा है और उसके समाधान के लिये नये रास्तों का अन्वेषण होता रहा है। आधुनिक कवि परम्परागत काव्य की आत्मा को परिवर्तित कर नये शिल्प, रूप, प्रतीक तथा बिम्ब आदि से युक्त नई कविता का सृजन करने लगा है। आधुनिकतावादी कविता कल्पनाशील न होकर वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर आधारित मन के अन्तरतम का उद्‌गार है।

आधुनिकतावादी कविता शहरी जीवन-बोध से जुड़ी हुई है जिससे आधुनिकता की अभिव्यक्ति आवेग और चिंतन द्वारा हुई है। आधुनिक परिवेश में व्यक्ति का शहरी जीवन निरर्थक रूप से बीत रहा है। कैलाश बाजपेयी इसे भविष्य का घटना मानते हैं-

विकल्प ही भविष्य था

भविष्य घट रहा है

इस क्षणभंगुर संसार में

अमरौती की तलाश भी

जा छिपी राष्ट्र संघ के

पुस्तकालय में।[56]

नयी पीढ़ी दिन-ब-दिन नैतिक ह्रास तथा अपराध-बोध का शिकार हो रही है जिससे मानव जीवन ही सहम-सा गया है और उसका अस्तित्व संकटापन्न हो गया है-

निर्गुणता का अबोध बोध

हमारी नई पौध................

कुछ अपराध-बोध, कुछ-कुछ प्रतिशोध

अकारण क्रोध की काली परछाई

सहमे हैं हमारे अहं और अस्तित्व।[57]

इक्कीसवीं सदी विज्ञापन और दिखावे की सदी है। इस सदी की अन्धाधुन्ध दौड़ में किसी के पास भी सोचने और रुकने का समय नहीं है। ऐसे में आम आदमी का जीवन संघर्षमय हो गया है। लीलाधर जगूड़ी की कविता 'इक्कीसवीं सदी का एक विज्ञापन' इसी दृष्टिकोण पर लिखी गयी है-

मुझे ऐसे बच्चे चाहिए जो सीधे आदमी हो जाएँ

जिनके बड़े होने और खड़े होने का इंतजार न करना पड़े

जो एकदम तैयार रहते हों और छुट्टी न लेते हों

जो सोचें नहीं सिर्फ करें

बस बीमार न पड़ते हों जो सिर्फ जिएँ और मरें।[58]

आधुनिक मनुष्य तनावपूर्ण माहौल में जी रहा है। हेमन्त कुकरेती ने इस युग को काव्य में ऐसे अभिव्यक्त किया है-

चमड़े की उत्तेजना से आदमी की नस्ल का सम्बन्ध नहीं

खून केवल धर्म के आता है काम। इस हड्डीखोर समय में

हर चीज का अनन्त सिलसिला है। चीजों का अन्त नहीं है।

सम्बन्ध का अन्त कर रहे होते हैं हम कि पता चलता है यह

एक और भंगुर सम्बन्ध की शुरूआत है।[59]

आज की राजनैतिक व्यवस्था पर तीखा व्यंग्य करती हुई नरेश मेहता की यह कविता आधुनिक परिस्थितियों पर प्रहार करती है-

आज यदि हुआ होता

द्रौपदी का चीर हरण

तो

न तो दुर्योधन को ही निराशा होती

और न ही

स्वयं द्रौपदी ही कहती-

अपनी पार्टी और नेता के लिए

चीर हरण क्या

शील हरण भी स्वीकार है।

निश्चित ही तब महाभारत न हुआ होता

और कितने पहले लोकतंत्र भी स्थापित हो गया होता।[60]

आधुनिक मनः स्थिति का चित्रण नईम ने कुछ इस प्रकार से किया है-

स्वप्नों, सूझों की जड़ में ही ज्ञानी मट्ठा डाल रहे हैं

अपने ही हाथों अपनों पर कीचड़ लोग उछाल रहे हैं।

X X X X X X X

करतूतों जैसें ही कितने काम हो गये,

किष्किन्धा में

लगता अपने राम खो गये।[61]

आधुनिक समाज की विषमताओं से त्रस्त होकर कवि कह उठता है-

किस कदर होकर निहत्थे

आ गये हम इस सदी में

फ़र्क ही जाता रहा है

आज तो नेकी-बदी में।[62]

अच्छे-बुरे की पहचान करना आज के मुखौटों से भरे समाज में जितना मुश्किल है उससे भी कहीं अधिक मुश्किल है नये युग की नयी-नयी समस्याओं को सुलझाना। नन्द चतुर्वेदी इस युद्ध को दूसरी तरह का बताते हैं-

जब पुराने किले के

तरतीब और आकर्षक शिल्प से

जमाए गये पत्थर

गिरने लगे

उसे अचानक लगने लगा

उसके घुटनों में दर्द है

वर्तमान का युद्ध पेचीदा और

दूसरी तरह का है।[63]

आज का मनुष्य पीड़ा, वेदना, व्यर्थता, सूनापन, अकेलापन, दिशाहीनता, अजनबीपन जैसे प्रश्नों की टकराहट में मृत्युदंश से पीड़ित है। आज का कवि इन प्रश्नों को खोजते-खोजते थक कर आत्म-निर्वासन की स्थिति में आकर अकेलेपन से दूर रहा है इसलिए आधुनिक कविता में विकृति का तत्त्व अत्यधिक प्रबल है।

7. बौद्धिकता एवं संप्रेषणीयता

सप्तकों के बाद की कविता में बुद्धिवाद की प्रमुखता है। कवि बुद्धिजीविता उसकी कविता का

प्रधान अंग बन गयी है। आज की कविता गहन वैचारिकता से युक्त है। कवि जीवन की जटिल लटों को अपनी बुद्धि के कौशल से कविता में सुलझाने का प्रयास करता हुआ दिखायी देता है। उदाहरणार्थ अंशु मालवीय की कविता 'करेला' में-

क्या बात करते हैं आप,

भई करेला है तो लतर पर ही होगा।

क्या यह कद्दू के बराबर होता है?

अजीब अहमक हैं आप, उतना बड़ा कैसे होगा।

आपको वनस्पति शास्त्र की जरा भी तमीज नहीं।

आखिर.............इसमें हट के क्या है.......?

यह आपकी समझ से बाहर है,

यह आस्था का सवाल है,।[64]

बुद्धि अटल भाव से जब मनुष्य के साथ होती है तो उसके लिए कोई भी कार्य असम्भव नहीं रह जाता। इसी बात को 'संकल्प' कविता में नन्द चतुर्वेदी दर्शाते हैं -

हम अपना पक्ष खुद हैं

समय वकील का चोगा पहनकर खड़ा हो

विदूषक की तरह

बिका हो मणि-कंचन की दुकान पर

तब भी हम छोड़े नहीं

अपने सपनों का यथार्थ

ऊँचे आकाश तक की छलाँग।[65]

नरेश मेहता की ये पंक्तियाँ बौद्धिकता तथा संप्रेषणीयता से युक्त हैं-

स्वतः तो फूल को झरना ही था

पर यदि वह

सौंप देता अपनी सुगन्ध

किन्हीं अँगुलियों को

तो सब कुछ बीत जाने पर भी

वे अँगुलियाँ

जब भी लिखतीं

लिखतीं फूल ही।[66]

कविता जन-जन तक कवि का संदेश पहुँचाती है। कविता कभी मरती नहीं। वह कण-कण के संगीत में रची-बसी है। आदमी को आदमीयत का पाठ पढ़ाकर नये युग का सृजन करने वाली कविता ही है-

फिर उभर कर कहेगी कविता-

'क्या हुआ दुनिया अगर मरघट बनी,

अभी मेरी आख़िरी आवाज़ बाकी है,

हो चुकी हैवानियत की इन्तेहा,

आदमीयत का मगर आग़ाज बाक़ी है।

लो तुम्हें मैं फिर नया विश्वास देती हूँ,

नया इतिहास देती हूँ।

कौन कहता है कि कविता मर गयी?[67]

लीलाधर जगूड़ी की ये पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

कविता में एक साथ उदय होते हैं

पशुओं के पुण्य और मनुष्यों के पाप

पापी के पाप की तरह एकदम चुभने लगती है

कविता।[68]

इच्छाशक्ति के अभाव में आज का मनुष्य अकर्मण्यता का दास बन जाता है। इच्छाशक्ति से आत्मविकास होता है और आत्म विकास से ही मनुष्य महान बनता है। केशव प्रसाद बाजपेयी इन पंक्तियों में इसी दृष्टिकोण को दर्शाते हैं-

ऐसा नहीं इस देश के हैं लोग कुछ करते नहीं,

ऐसा नहीं कि लोग चाहें और कर सकते नहीं,

यह चाहना ही मुख्य है यह चाहना का चाव है,

यह गूढ़ इच्छाशक्ति है जिसका तुरंत प्रभाव है।[69]

संक्षेप में कहा जाय तो आज का कवि एक ही लीक पर अटके हुए व्यक्ति को कुछ विशेष सोचने के लिए प्रेरित करता है। वह हृदय के साथ में बुद्धि पक्ष के सम्मिश्रण को आवश्यक मानता

है तभी कविता में पैनापन और संप्रेषणीयता की शक्ति आएगी।

८. मानवतावादी दृष्टिकोण

कविता श्रेष्ठ मनुष्य की श्रेष्ठ रचना है। दया, करूणा, परोपकार, प्रेम, सम्मान आदि मानवीय गुणों को जन सामान्य की भाव-भूमि पर अवतरित करने हेतु कवि उन्हें अपनी कविता का विषय बनाता है। वह मानवता का पोषक है।

आज का कवि सत्य का प्रेमी है। वह सत्य के मार्ग पर आने वाली कठिनाइयों से नहीं घबड़ाता है। गिरते हुए को उठाने वाले मनुष्य को कवि सम्मान की दृष्टि से देखता है-

लिख सका जैसा मैं, लिखा भी वही,

जो नहीं अच्छा लगा गाया नहीं!

लोग हँसते रह गये मुझ पर मगर,

दुर्दिनों के बीच घबराया नहीं!

चूम लेता हूँ उसके चरणों को,

कोई जो गिरते को उठाता है![70]

कवि संहारक अस्त्रों के प्रयोग का विरोधी है। वह प्रक्षेपास्त्रों, बमों के स्थान पर संगीत, गान और नृत्य का वातावरण चाहता है। केदारनाथ सिंह की कविता 'बड़ा हो जाने दो जन को' में इसी बात को दोहराया गया है-

प्रक्षेपास्त्रों

ऐटम बमों के

खींच लो प्राण।

भरो उनमें आदमीयत-

संगीत, नृत्य और गान![71]

कैलाश बाजपेयी की कविता 'अनेकान्त' में मनुष्यता के संकट को इस प्रकार से प्रदर्शित किया गया है-

कभी जल था, जंगल, वनस्पतियाँ, वातावरण

और अब सिर्फ जहाँ

धूसर चट्टान है निरापद, निर्जन

मर चुकी मनुष्यता

नष्ट हो गयी न जाने कब

और

और अधिक सभ्य होने के

चक्कर में।[72]

कभी-कभी प्रकृति का स्निग्ध और संयमित रूप देखकर कवि उसमें मनुष्यता के समस्त लक्षणों को देखता है। प्रकृति का निःस्वार्थ रूप उसे मानवता की रक्षा का आश्वासन देता है। यथा वीणा घाणेकर की कविता 'मनुष्यता में-

जिसकी दृष्टि में समग्र सृष्टि है

ऐसी ऋतंभरा सहिष्णुता

चट्टान पर उगी घास-सी कोमल

आश्वासन देती है मनुष्यता का।[73]

सामाजिक विकास तथा शैक्षिक स्तर में सुधार के बावजूद भी दहेज जैसी विकराल समस्या से छुटकारा नहीं मिल पाया है। दहेज लोभियों के द्वारा नव विवाहिता से लेकर उसके माता-पिता तक को नाना प्रकार के दुःख प्रदान किए जाते हैं। गोपाल दास 'नीरज' इसे 'मानवता के भाल पर कलंक' कहते हैं-

ये दहेज का दैत्य जो निगल रहा सिन्दूर

मानवता के भाल पर, है कलंक अति क्रूर।[74]

मनुष्य का जीवन क्षण भंगुर है। मृत्यु की कोई नियत तिथि नहीं। वह सर्वत्र पृथक-पृथक रूपों में विद्यमान है। जीवन इस की चिन्ता किए बिना ही अपने कर्त्तव्य पथ पर निरन्तर गतिशील रहता है। जुगमन्दिर तायल की कविता 'जिन्दगी' में मानव की इसी अदम्य जिजीविषा को चित्रित किया गया है-

है कहां नहीं मौत

और जिन्दगी

इस सबकी उपेक्षा करती

इस सब पर हंसती

इस सबके बीच भागती रहती है जिन्दगी।[75]

मानवीय पीड़ा का आभास करने वाली नन्हीं बालिका अपने गुड्डे के गिरने पर उसे तुरन्त

उठाकर उसके काल्पनिक दुःख की अनुभूति से दुःखी हो जाती है, परन्तु आज का शिक्षित और चिन्तनशील मनुष्य इतना स्वार्थी और निर्दयी है कि वह दूसरे मनुष्य के दुःख से जरा भी विचलित नहीं होता है-

कल जो बाजार में गिरा था मेरे सामने

वह तो आदमी था बिटिया

गिरने पर वह चीखा था

उसके सिर से खून बह रहा था

वह काफी देर तक आँखें फैलाए देख भी रहा था

कि कोई उसे उठा ले

पर कोई नहीं आया उसे उठाने।[76]

राजा जुत्शी की निम्नलिखित पंक्तियाँ मानवता की रक्षा की गुहार लगा रही हैं-

आज देश की माटी दहकी

गंगा का जल खौल रहा है

मानवता को दानव अपने

पंजों में ले तौल रहा है।[77]

हर तरफ से निराश होकर मनुष्य मानवता की रक्षा करने के लिए सृष्टि के पालनहार को आर्त्तवाणी में पुकार उठता है-

रब के बन्दे करते हाहाकार

चहुँ ओर मची है चीख पुकार

दानवों का कब होगा संहार?

नानक, गौतम, अल्लाह, राम

कब करेंगे दुष्टों पर प्रहार?

मानवता को पुकार

कहाँ छुपे तुम पालनहार?[78]

मानवता की रक्षा के लिए ईश्वर को आर्त्तस्वर में पुकारता कवि मानवताविरोधी तत्वों के विनाश की कामना भी करता है। तात्पर्य यह है कि सप्तकोत्तर कविता कवि के मानव-प्रेम व मानवीय गुणों को ग्रहण करने की माँग को ऊँचे स्वर में दोहराती हुई-सी जान पड़ती है।

9. आम आदमी का चित्रण

सप्तकोत्तर कविता मध्यमवर्गीय समाज से जुड़े कवि की कविता है और मध्यमवर्गीय जीवन की चुनौतियों से संघर्षरत आम आदमी का वर्ग है। जीवन की इस आपाधापी में आम-आदमी महँगाई और रोजी-रोटी की चिन्ता में डूबा हुआ है फिर भी वह अपने मूल्यों और संस्कृति की रक्षा के लिए जागरूक है।

महानगरीय जीवन की विषमताओं से दुःखी होकर आम-आदमी अपनी मनः स्थिति को इस प्रकार से व्यक्त करता है-

दुःख कहें किससे कोई नहीं सुनता

बार-बार मन में यहाँ यही गुनता।

बदल गया स्वर भी दुख कहते-कहते,

जीवन ही गुजर गया सहते-सहते।

बहता हूँ दिन-रात अश्रु की लहर में।

घुटता हैं दम मेरा इस महानगर में।[79]

निश्छल भावों और समदर्शिता को व्यावहारिकता में लाना उतना ही मुश्किल है जितना कि ऊँची इच्छाओं वाले स्वप्नों को साकार रूप प्रदान करना। वीणा घाणेकर की 'मंजिल' कविता में इसी बोध को प्रदर्शित किया गया है-

कुछ स्वप्न बुझे-बुझे!

जिन्हें वे कहते थे मीनार बुलंदियों की!

सूली थी मेरी आत्मा की!

और यात्रा थी वह बीमार मन की

जिसे नकार न सका मैं।[80]

सप्तकोत्तर कविता में बनते बिगड़ते भारत की झलक है। आम समाज में जो घटित होता है उसका यथार्थ चित्रण आज की कविता में देखने को मिलता है। भट्ठों में काम करने वाले मजदूरों का यथार्थ चित्रण केशव तिवारी की 'भट्ठहा' कविता में हुआ है-

उतारकर मैले कुचैले

पहनेंगे लक्क दक्क कपड़े

बालों में चुपड़ेंगे महकऊआ तेल

टेयेंगे जुल्फी

छैल चिकनिया बनकर पहुँचेंगे गाँव

परदेश कमाकर लौटे हैं

पूरा घर हाथों-हाथ लेगा इन्हें[81]

आम आदमी ढोंग-ढकोसलों की दुनिया से दूर सरल और स्वच्छन्द हृदय का प्रेमी है। राजा जुत्शी की ये पंक्तियाँ इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय हैं-

ज्यादा सुन्दर चेहरे, ज्यादा मीठी बातें

हर मेले में चलती फिरती दूकानें हैं।

मैं तो मन के भीतर की पर्तो का आदी

ऊपर की सज धज के सौदे मनमानें हैं।

लगता हृदय लिये मैं ही हूँ यहाँ अकेले।[82]

उर्दू के प्रसिद्ध शायर बशीर बद्र ने आम आदमी को इस प्रकार से चित्रित किया है-

मैंने दरिया से सीखी है पानी की पर्दादारी,

ऊपर-ऊपर हँसते रहना, गहराई में रो लेना।[83]

समस्याओं से लड़ते-लड़ते मनुष्य थक गया है। उसके पाँव थरथराते हैं। नयी समस्यायें उसे जूझने के लिए ललकारती हैं, प्रेरित करती हैं एक अत्याधुनिक छदम् युद्ध के लिए-

भारी मन से फिर मुझे लौटना है

उसी कुरूक्षेत्र-उसी पानीपत-उसी प्लासी के

रक्त सने धूसर मैदानों से

एक थके हुए योद्धा की तरह खाली हाथ।[84]

आज भी महाजनी सभ्यता का प्रभाव आम आदमी पर सर्वाधिक पड़ता है। गरीब कर्ज़दार किसानों की आर्थिक तंगी का चित्रण नईम की इन पंक्तियों में हुआ है-

शहंशाह के आगे हम सब बँधे हाथ से,

खड़े हुए दरबारों में होकर अनाथ से।

तनी रीढ़ रह गयी कहाँ अब,

लगातार सज़दा करने में।[85]

आज का आम-आदमी अफसरों, नेताओं और गुण्डों के समक्ष लाचार हो गया है। वह धरातल

पर आने के लिए संघर्षशील है। उसे आशा भी है कि वह एक न एक दिन समय को बदलने में सफल होगा। आज की कविता उसके सुख-दुःख में बराबर का साझा करती है और उसके लिए संघर्ष करती है।

10. नारी चित्रण

नारी समाज को उत्पन्न करने वाली और उसमें संस्कारों को जाग्रत करने वाली प्राकृतिक शक्ति है। किसी भी समाज में रहने वाली नारी प्रकृति के अधिक निकट होती है, चूँकि वहाँ वह स्वाभाविक रूप से जीती है। प्रत्येक रूप में वह पुरुष को प्रेरणा प्रदान करती है चाहे वह माँ हो, बहन हो, पत्नी हो या प्रेमिका। उसके ममत्व की ऊर्जा पुरूष को समाज के प्रति कर्तव्यनिष्ठ बनाती है।

जिस राष्ट्र और समाज में नारी की रक्षा नहीं होती वहाँ की संस्कृति कभी सुपल्लवित नहीं हो सकती है। केशव प्रसाद बाजपेयी के अनुसार-

जिस देश में नारी नहीं रक्षित नहीं 'श्रद्धेय है,

उस देश में गरिमा नहीं वह देश निश्चित हेय है।[86]

समाज में माँ का स्थान सबसे ऊँचा बताया गया है। माँ के पवित्र प्रेम का वर्णन शब्दातीत है। वह जीवन का वह स्रोत है जो कभी समाप्त नहीं होता। नंद चतुर्वेदी की कविता 'मृत्यु पर माँ की' इन्हीं भावों की कविता है-

तुम मरी नहीं

मर कर भी

तुम अपनी तर्ज पर जीती रहीं

अपनी धुन राग-लय

गाती, बनाती

चुपचाप तुम देखती थीं

खिड़कियों से

जाती हुई सर्दियाँ

आती हुई बसन्त की

नयी कोपलें

छोटे-छोटे फूल

फिर जो बड़े हो जाते

आकार लेते फल'।[87]

नारी आदि शक्ति है; जीवन की ज्योति है। जीवन पर और सत्य पर विश्वास करना माँ ही सिखाती है। रामचन्द्र शुक्ल की निम्नलिखित पंक्तियों से यह बात स्पष्ट है-

नारी

जीवन की ज्योति

शक्ति आदि

अरुण शिखा सभ्यता की

उषा की लाली में

रही बाँच

नियति ने जो कुछ लिखा

अपने क्रोड़ के अंतरतम में

गुह्य अपरिचित

जग का चिर पोषित विधान।[88]

माँ का हृदय ममता और प्रेम का एक आदर्श रूप हैं। वह प्रेम धर्म-सम्प्रदाय या राजनीति से प्रेरित नहीं होता प्रत्युत उसके हृदय की सात्विक अनुभूति है। वीणा घाणेकर के अनुसार-

पर सारी माँएँ

अपने लाल की रक्त से सनी लाश को देखकर

खूब रोएँगी

खूब चीत्कार करेंगी

क्योंकि

माँ

किसी सम्प्रदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करती।[89]

रमानाथ अवस्थी अपनी अनुभूति को कुछ इस प्रकार से व्यक्त करते हैं-

माँ के जाने के बाद दुख का कुछ हिसाब नहीं,

अब मेरे शीश पर आशीष-भरा हाथ नहीं;

माँ की ममता की समता नहीं हो पायी,

उसके आँचल के तले भूख-प्यास कब आयी?[90]

पुरूष प्रधान समाज में प्राचीन काल से ही नारी उत्पीड़न होता रहा है। फिर भी नारी सदैव दृढ़ और अडिग भाव से अपना वात्सल्य पुरूष को प्रदान करती रही है-

मन में विचार कर बोली, राक्षस राज धर्म नहीं नारी उत्पीड़न

असहाय नहीं है नारी नारीत्व-विपुल जिसका जीवन धन

निर्जन वन का एकान्तिक क्षण हो या द्वेष भरा भीषण रण

अडिग सदा रहा है, दृढ़ नारी मन का संकल्पित प्रण।[91]

बचपन में अपनी बाल सुलभ क्रीड़ाओं से पिता और माता के हृदय को मुग्ध करने वाली पुत्री जब बड़ी होने पर विवाह के पश्चात् ससुराल चली जाती है तो उसकी स्मृतियाँ, उसका बचपन, उसकी बचपन की वस्तुएँ ताजा कर देती हैं। पवन करण की ये पंक्तियाँ-

बिटिया बड़ी हो चुकी, ब्याह हो चुका

जा चुकी अपने घर

कहाँ आ पाती है पिता के घर

चिड़ियाँ आती हैं

जब कोई चिट्ठी उसकी आती है

घर में बसी उसकी यादें

गुल्लक में भरे सिक्कों-सी

खन-खन बजती हैं।[92]

माँ अपना रूप, अस्तित्व और प्रेम अपनी सन्तानों को बाँटकर अपने सदैव रहने का आभास कराती है-

बाँट के अपना चेहरा, माथा,

आँखें जाने कहाँ गयी

फटे पुराने इक अलबम में

चंचल लड़की जैसी माँ।[93]

परन्तु जब नारी पुरूष की स्वेच्छाचारिता और अहं का शिकार होकर कभी अहल्या तो कभी सीता की भाँति त्यागी जाती है, तो निश्छल भावों का उपासक हृदय आहत होकर पुकार उठता है-

नारी जीवन का बना मापा।

वह दिन बीता, वह युग बदला।

अब तक न पाप का पग बदला।

बदले लौहे के माप तौल।

नारी जीवन का यही मोल।[94]

स्पष्टतः सप्तकोत्तर कविता में नारीवादी दर्शन में विकास हुआ है। नारी जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर कवियों की सूक्ष्म निरीक्षणात्मक दृष्टि पहुँची है और उन्हें सफलतापूर्वक सम्प्रेषित भी किया है।

11. नवगीत तथा गजल लेखन के माध्यम से गहन समस्याओं का रेखांकन

गीत और गजल ऐसे मनलुभावने शब्द हैं जिन्हें सुनते ही भावनाएँ साकार हो उठती हैं और हृदय किसी रूपहली कल्पना के ताने-बाने बुनने लगता है। अपनी कोमलता एवं शृंगारिकता के कारण ये दोनों विधाएँ आजकल सभी का मनमोह रही हैं।

गीत समसामयिक परिवर्तनों के साथ चिरन्तन विधा है। आज के व्यक्ति के सुख-दुःख, राग-विराग की संवेदना में बौद्धिक युग की बहुत-सी जटिलताएँ आ गयी हैं। यह भाव-सत्य आज की कविता और गीत दोनों में देखने को मिलता है। नवगीतकारों में से ओम् प्रभाकर, नईम, श्रीराम सिंह, चन्द्रमौलि उपाध्याय, देवेन्द्र कुमार, रमेश रंजक, सोम ठाकुर, गोपालदास नीरज, बालस्वरूप राही, धर्मवीर भारती, शम्भूनाथ सिंह आदि का नाम उल्लेखनीय है।

गजल उर्दू, अरबी व फारसी कविता का एक प्रकार विशेष है। जिसमें प्रायः 5 से 11 शेर होते हैं। सारे शेर एक ही रदीफ़ और समान काफ़िये में होते हैं तथा हर शेर का मजमून (विषय) अलग-अलग होता है। इस प्रकार गजल काव्य की एक रसभरी एवं सुमधुर विधा है। उर्दू ग़ज़लें अपनी सूक्ष्मता एवं कोमलता के कारण बेहद लोकप्रिय हुई हैं। हिन्दी में जो स्थान कभी बिहारी के दोहों का रहा है ठीक वही प्रभाव उर्दू में आज ग़ज़लों का है।

आज के गीतों में प्रमुखतः आज की त्रासद तथा अमानवीय अवस्थाओं के चित्र अधिक मिलते हैं। यह त्रासदी उस रचनाकार से भी जुड़ी हो सकती है। केदारनाथ सिंह इन पंक्तियों में अमानवीयता को एक विवश व्यक्ति के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

हर एक तमाशा है, हर एक तमाशाई।

वह कौन जग रहा है? यह नींद किसको आयी?

आसान तो नहीं है इन्सान बन जियें क्या?

जब राह ही नशीली तब पाँव ही करें क्या?[95]

विभिन्न दुर्घटनाओं और समस्याओं से साक्षात्कार करती हुई जिंदगी संवेदनहीनता और पीड़ा से आक्रान्त हो उठती है। इसी स्थिति का चित्रण देवव्रत जोशी की 'बांचना है तो' कविता में हुआ है-

बांचना है तो

नदी की आंख जाकर बांच

निर्जला है जो।

इन किताबों में नहीं है जिन्दगी

वह हाँफती

उस भीड़ में खोयी मिलेगी,

खून से तर-हर सुबह/हर सांझ

हर कली की पांखुरी

रोई मिलेगी।[96]

आज के गीत उस परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं जिसमें यथार्थ के भिन्न रूप तथा संदर्भ पुराने तथा नए रूपाकारों या अनुभव बिम्बों के द्वारा काल के गतिशील रूप को किसी न किसी रूप में अर्थ देने में संलग्न हैं। प्रस्तुत हैं नईम की ये पंक्तियाँ-

कहने जैसी बात नहीं,

पर कहने को मजबूर कर रहे,

द्वारों पर आए ओछे दिन,

अपनों से ही दूर कर रहे।

X X X X

मौसम सारे ही बेमौसम

फौत हो गयीं सारी परियां,

कमरों में धंस आए ये दिन

हमको घर से दूर कर रहे।[97]

धार्मिक हिंसा और स्वार्थ ने मनुष्य को इतना मदान्ध बना दिया है कि वह अपनी स्वाभाविक प्रकृति को त्यागकर, संस्कृति और प्रकृति का विनाश करने में जुट गया है। गीतकार इस भय और त्रासदी में संघर्ष करने वाले और समृद्धि को पुनः लाने वाले महामानव को तलाशता है-

मथ रहा है,

आम घाटी को यही एक प्रश्न,

कौन थामेगा गयंदिनि को ?

कौन मर्यादित करेगा ?

कौन देगा दिशा बौराई हवा को ?

कब उगेगा रश्मि रथिले सुखद, शीतल, मोर ?

कब मिलेगा मनुज को उसका सहज सम्मान ?[98]

निदा फाज़ली की ये प्रसिद्ध पंक्तियाँ उनकी संवेदनाओं को मुखर रूप में प्रस्तुत करती हैं-

गरज-बरस प्यासी धरती पर

फिर पानी दे मौला

चिड़ियों को दाने, बच्चों को

गुड़धानी दे मौला

X X X X

फिर मूरत से बाहर आकर

चारो ओर बिखर जा

फिर मन्दिर को कोई 'मीरा'

दीवानी दे मौला।[99]

अभिव्यक्ति प्रक्रिया का मुख्य काम अनुभव और विचारों को अधिक सार्थक और प्रभावशाली बनाना है। विषमताओं पर प्रहार भी कितनी मासूमियत से किए जा सकते हैं, यह इस शेर से स्पष्ट होता है-

किसने जलाई बस्तियाँ बाजार क्यों लुटे,

मैं चाँद पर गया था मुझको कुछ पता नहीं।[100]

गजल विधा शृंगारिक भावों को बड़ी ही कुशलता से प्रस्तुत करती है। उदाहरण के लिए डॉ० बशीर बद्र की ये गजल-

गुलाबों की तरह दिल अपना शबनम में भिगोते हैं,

मोहब्बत करने वाले खूबसूरत लोग होते हैं।[101]

इस प्रकार से आज की गीत-गजल विधाएँ परम्परा और आधुनिकता दोनों को अपनी संरचना

में अर्थ दे रही हैं। इस अर्थ देने में परम्परा का गतिशील रूप भी सामने आता है और कहीं-कहीं नएपन का 'कथ्य' और रूप के स्तर पर गहन स्पर्श प्राप्त होता है जो गीत और गजल विधाओं के विकास का परिचायक है।

12. कुंठा, संत्रास, विद्रोह तथा संघर्ष का चित्रांकन

सप्तकोत्तर कविता में कुंठा, संत्रास, विद्रोह तथा संघर्ष के चित्र बहुत अधिक मात्रा में देखने को मिलते हैं। आज के कवि के समक्ष सदियों की कुंठाओं से मानवता को मुक्त करने के सवाल से अधिक प्रबल वर्तमान की कुंठाओं और सीमाओं का सवाल खड़ा हो गया है। आए दिन अनजाने ही घटित होने वाली घटनाओं के भय से आज का मनुष्य ग्रसित है। पूँजीवादी समाज व्यवस्था की विषमताओं के प्रति विद्रोह का भाव भी आज की कविता में विद्यमान है। आज की कविता आम-आदमी के संघर्ष को चित्रित करती है। निराशा, भय, बेचैनी, झल्लाहट और अकेलेपन जैसी समस्याओं से डरकर पलायन करने की अपेक्षा समकालीन कवि संघर्ष में विश्वास करता है। कुण्ठा विकृत मनः स्थिति का द्योतक है। लक्ष्मीकान्त वर्मा के शब्दों में- "कुण्ठा रूकावट नहीं है, अगति है, प्रतिक्रिया है, अवरोध और विकृति है; क्योंकि उसके सामने जीवन की सापेक्षता का महत्व नहीं है, वरन् इसके विपरीत आत्मप्रशस्ति और आत्मोन्माद का महत्त्व है।"[102] यही कुण्ठा कवि के अन्दर युग-परिवेश के प्रति घुटन तथा निराशा को उत्पन्न करती है। यह घुटन और निराशा तीव्र होकर विद्रोह का सृजन करती है। इस दुनिया में उलझा हुआ कवि इसे सुलझाने का भरसक प्रयास करता है परन्तु वह और भी उलझता जाता है। विजेन्द्र की कविता 'तिमिर में' कवि की इसी निराशाजन्य प्रवृत्ति को दर्शाती है-

नहीं क्या ऐसा भाव जनमता है

कई बार निराशा भर जाती है

रोम रोम में, घर कर जाती है

चिंता, आँक दिखे माथे पर, पाता है।

कोई राह नहीं है आगे तक

चलना है इसी तिमिर में भरसक।[103]

कवि को दुनिया की सुन्दरता का ज्ञान तो है परन्तु दुनिया का यह सौन्दर्य उसे अपना नहीं लगता है। दुनिया का सौन्दर्य बाहर से तो अत्यन्त मनोरम और आकर्षक है किन्तु अन्तः सौन्दर्य के अभाव में केवल उलझनों और निराशा को जन्म देता है। यह निराशा मनुष्य के मन में अनागत

भविष्य के प्रति आशंका उत्पन्न करके काल्पनिक बिम्बों की संरचना करती है। यथा-

और जो लापरवाह थे उनसे भी-

यही पूछना है कि जब

आ ही गया है घर मुहल्ले में

लकड़बग्घा तब ?

तब इस दुर्गम पर्वत पर भागोगे

या वृक्ष पर चढ़ोगे

या यहीं शहर के बीचों बीच

चौराहे पर

लड़ोगे लकड़बग्घे से ?[104]

आज की सामाजिक विषमताओं का प्रतीक लकड़बग्घे को बनाकर कवि ने मनुष्य के अन्दर व्याप्त भय का चित्रण किया है। अनजाने ही घटित होने वाले संकट का काल्पनिक भय उसे घेरे हुए है। वह निरन्तर अपने अतीत और अनागत भय से संत्रस्त रहता है। प्रायः वह इन समस्याओं से अपने स्तर पर संघर्ष करता है। आज का आशावादी कवि निराशावादी प्रवृत्तियों से सर्वत्र जूझता दिखायी देता है-

हादसों से भरा अखबार

गाजर की तरह कट रहा है आदमी

स्वार्थ की हांडी में खदक रहे हैं

नरमुण्ड, भूख प्यास के प्रश्नों से

जूझ रहा है ग्लोब

अब हम इन समस्याओं से

बेखबर नहीं हैं।[105]

जहाँ कवि एक ओर समाज की इस भयावह स्थिति पर अपनी नजर डालता है वहीं जीवन और जगत् के बदलते तथा नित-प्रति विषम होते माहौल के प्रति आक्रोश भी व्यक्त करता है। वह कायरों, ढोंगियों और मूर्खो के घेरे में रहने की अपेक्षा विद्रोह करना उचित समझता है-

अब कुछ ठीक नहीं।

मैं कब हँस पड़ूँ

कब चीखकर

अपना गला दबा लूँ

कब छुरा उठाकर

सामने वार कर बैठूँ

अब कुछ ठीक नहीं।[106]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि की पीड़ा और आत्मरक्षा की भावना विद्रोह के स्वर में उभर कर सामने आयी है। चारो ओर अत्याचार, अन्याय, शोषण और विनाश की लीला से जूझता आम-आदमी जब विवश हो जाता है तो कवि का संवेदनशील होना स्वाभाविक है। फलतः कुंठा और संत्रास से पीड़ित होकर वह कभी सामाजिक समस्याओं के विरूद्ध विद्रोह की बात करता है तो कभी पूरी ताकत के साथ संघर्ष करने का आह्वान करता है।

13. राजनैतिक विद्रूपताओं (तदर्थवाद, जातिवाद, अलगाववाद, अवसरवादिता आदि) का वर्णन

सप्तकों के बाद की कविता में समकालीन राजनैतिक परिस्थितियों तथा समस्याओं का विश्लेषण गंभीरतापूर्वक किया गया है। आज का आम आदमी तेजी से विकसित हो रहे समाज और नीतियों के बीच साँस लेने वाला विकासशील प्राणी है। आज देश में सबसे अधिक भ्रष्टाचार राजनीति में हो रहा है। आए दिन होने वाली हिंसक घटनाओं को प्रश्रय देने का काम राजनेता कर रहे हैं। किसी समय राजनीति को पारदर्शितायुक्त और पुण्य कर्म मानने वाले भारतीय जन-मानस में आधुनिक राजनेताओं और उनकी नीतियों के प्रति अविश्वास और घृणा का भाव व्याप्त हो चुका है। आज की राजनीति काम चलाऊ, उच्छृंखलतापूर्ण, जातिवाद को बढ़ावा देने और भड़काने वाली, सामाजिक अलगाववादी नीतियों से युक्त तथा अवसरवादी राजनीति है। सप्तकोत्तर कविता में भारतीय राजनैतिक यथार्थ का विकट और कठिन रूप टिप्पणियों और प्रश्नों के रूप में कविता का विषय बना है। स्वार्थी राजनेताओं ने अपने धन, पद और साहित्येतर अन्य कूट संसाधनों से समाज को ही नहीं अपितु साहित्य को भी भ्रमित करने के कई प्रयास किए हैं। धर्म को अपना अभिन्न हथियार बनाकर राजनेता मंदिर-मस्जिद और हिन्दू-मुस्लिम विवादों को भड़काकर अपना उल्लू सीधा करने का प्रयास करते हैं। उन्हें सत्ता प्राप्ति के लिए धर्म, पाखण्ड और जातिवाद का सहारा लेने में कोई हिचक नहीं है। आज का कवि ऐसे राजनेताओं को सचेत करता है-

सुनो!

खुदा के सरपरस्तो सुनो!

इन्हें रोटी चाहिए

रंग नहीं

इन्हें रहने के लिए

मकान चाहिए

जंग नहीं

इन्हें बीमारियों से

निजात पाने के लिए

दवाइयाँ चाहिए

साम्प्रदायिक पहरे नहीं।[107]

साम्प्रदायिक भेद-भाव को बढ़ावा देने वाले राजनेता अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए गरीबों का शोषण करते हैं। उनकी प्रत्येक नीति किसी न किसी साजिश का अंग होती है। अलगाववाद को बढ़ावा देकर दंगों की आग में अपनी रोटी सेंकना ही अधिकांश नेताओं की नियति बन चुकी है। पंजाब में फैलायी गयी हिंसा के चित्र वीरेन्द्र गोयल ने इस प्रकार प्रस्तुत किए हैं-

हिंसा से

नफरत को मिटाने के

काम बड़े नादान थे

छेद उन्होंने ही किया

देश की इस नाव में

बने जो इसके बागवान थे।[108]

दलीय राजनीति के लिए आज कल प्रत्येक जाति की अलग-अलग राजनीतिक पार्टियाँ जातिगत समीकरणों के आधार पर बाहुल्य के अनुसार क्षेत्र व नेता का चयन भी करती हैं। जो शक्तिशाली है वही नेता बनता है और चुनाव भी वही लड़ सकता है। साधारण जनता को भ्रमित करके ये चुनाव जीतकर सत्ता को हथियाते हैं और फिर उसी जनता की दयनीय स्थिति को भूल जाते हैं-

वे मुस्काते हैं

उनके नाक के नीचे आग है

यह भूल जाते हैं

जनता मर रही है

यह भूल जाते हैं

विश्व पटल पर

अपने मुल्कों की दयनीय स्थिति

वे भूल जाते हैं।[109]

नेताओं की यही तुच्छ और गर्हित भावना उन्हें आम आदमी की दृष्टि में गिराती है। सत्ता और कुर्सी के लालची ये नेता सादगी का मुलम्मा चढ़ाकर अपनी जनविरोधी और राष्ट्रविरोधी घृणित भावनाओं को अवसर मिलते ही साम्प्रादायिक व आतंकी साजिशों का रूप प्रदान कर देते हैं। फलतः इनका शिकार बनती है भोली-भाली जनता। कवि की संवेदना को आहत करती ये ज्यादतियाँ उसे विद्रोह के लिए विवश कर देती हैं-

बगावत तो

ज्यादतियों की उपज है

ज्यादतियाँ हैं बीज

बगावत फसल है।[110]

अव्यवस्था विद्रोह को जन्म देती है। आज की कविता में निरन्तर बिगड़ती राजनीतिक व्यवस्था को सुधारने की माँग की गई है। सरकार और नेता जब स्वस्थ मानसिकता के होगें तभी देश और जनता का विकास हो सकेगा। सप्तकोत्तर कविता में कवि का यह विश्वास उसकी रचनाधर्मिता को पैनापन व सम्यक दृष्टि प्रदान करता है।

14. यूरोपीय और अमेरीकी साहित्यिक वादों का पिछलग्गूपन

सप्तकोत्तर हिन्दी कविता की एक महत्त्वपूर्ण प्रवृत्ति यूरोपीय और अमेरीकी साहित्य सिद्धान्तों को अपना आधार बनाना है। भारतीय दर्शन और सिद्धान्तों को फीका समझने वाले बहुत से साहित्यिक संस्थान और पश्चिमी रंग में डूबे हुए कवि समुदाय पाश्चात्य सिद्धान्तों और वादों को अपनाने के प्रयास में उनका अंधानुकरण करने में लगे हुए हैं। अपने दर्शन और विषय क्षेत्र की व्यापकता को सिद्ध करने के लिए मनो विश्लेषणवाद, मार्क्सवाद तथा अस्तित्ववाद के सार्थक पहलुओं को नकारते हुए बहुत से कविगण आज-कल पृथक-पृथक ढंग से उनकी मनमानी व्याख्या करते है। उपरोक्त वादों की प्रतिष्ठा के नशे में चूर होकर प्रायः साहित्यकार भारतीय संस्कृति और जीवन-मूल्यों

पर प्रहार कर बैठते हैं। अमरीकी नव्य समीक्षा ने हिन्दी कविता की भाषा, शिल्प, समकालीनता और सौंदर्यबोध सभी को अपनी पतनशील, अमानवीय व पूंजीवादी सोच में ढालने का भरपूर प्रयास किया। फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त ने कविता में काम वृत्तियों के नग्न रूप तथा ऐन्द्रिकता को बढ़ावा दिया तो कीर्केगार्ड के अस्तित्ववाद ने क्षणवाद, अंतर्मुखता और घोर वैयक्तिकता की प्रवृत्ति को बढ़ावा देकर नितांत असामाजिक दर्शन की सृष्टि की। इसके अतिरिक्त प्रकृतिवाद, प्रतीकवाद, अति यथार्थवाद और बिम्बवाद का प्रभाव भी हिन्दी कविता में एक बड़े पैमाने पर देखने को मिलता है। उदाहरणार्थ-

तमाम विश्वासों को ध्वस्त करते हुए हमारी आदतें
उनमें भी अपने लिए सम्भावनाएँ तलाशने लगती हैं
किसी की भी हों खूबसूरत पत्नियों को दिनों तक
नहीं निकलने देते हम अपनी सोच से
हम उन्हें टहलाते ही रहते हैं अपनी अतृप्त इच्छाओं में लगातार।[111]

मनोविश्लेषणवादी दृष्टि से मुक्त उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने ऐंद्रिकता और कुण्ठा का चित्रण किया है। विश्वास और प्रेम से परे व्यक्ति की अतृप्त इच्छाएँ सृष्टि के प्रश्नों में उलझी रहती हैं। कामनाओं का यही उलझाव अंतविहीन बुद्धिचक्र में भटकते हुए घोर ऐंद्रिकता के लक्षणों को उत्पन्न करता है-

और वह सारी चाँदनी रातों की
खिलखिलाती युवतियाँ
समान आयु और अनुपात
नंगे बदन नाचती नाट्यम और बैले
एक साथ मुड़ते और उठते
बाहों के लोच
तालबद्ध थिरकते कूल्हे।[112]

कविता का यह नितान्त अभिधात्मक रूप पाश्चात्य शैली से प्रेरित है। उपरोक्त कविता में कवि सीधे-सरल शब्दों के द्वारा अन्तरंग व्यवहारों को खुलेपन की सीमा से बाहर लाकर कविता के सौन्दर्य विहीन होने का जोखिम उठाता है। कविता में अन्तमुर्खी प्रवृत्ति या बहिर्मुखी प्रवृत्ति का सीमा से अधिक विस्तार उसके आकर्षण को नष्ट करता है। आज का कवि पाश्चात्य वादों से बचने का प्रयत्न करता हुआ भी प्रायः दीख पड़ता है-

मैं

अपनी शराफत खोना

नहीं चाहता।

विदेशी आवाजों से

बेहतर है

अपने जल में

डूब जाना।[113]

पाश्चात्य प्रभावों से मुक्त होने की आकांक्षा और भारतीय संस्कृति को ग्रहण करने की लालसा कवि को कविता में उत्कृष्ट संस्कारों की स्थापना हेतु प्रेरित करती है। आज का कवि सामाजिक परिवर्तनों का सजग द्रष्टा है और वह समाज की माँग के अनुरूप नए रचनात्मक जोखिमों की ओर उन्मुख होता है। वस्तुतः पिछलग्गूपन का संकट मौलिक सोच न होने के कारण पैदा हुआ है। इसके मूल में अपने को हीन और हेय समझने की भावना है। संस्कृति और देश-प्रेम का संकट ऐसी ही भावनाओं के कारण पैदा हुआ। संतोष का विषय यह है कि ऐसी मानसिकता के लोगों की संख्या अधिक नहीं है।

15. शैल्पिक विविधता

सप्तकोत्तर कवियों ने अपने मन के प्रभाव को समान रूप में दूसरों तक पहुँचाने के लिए अभिव्यक्ति के विभिन्न गुणों को प्रयुक्त किया है। कवि की शैली ही उसके व्यक्तित्व का परिचय देती है। कविता में व्यक्तित्व और निर्वैयक्तित्व का मिश्रण होना आवश्यक है। सप्तकोत्तर कविता में शैली, प्रतीक, बिम्ब और छन्द के प्रयोग पर कवियों ने अभिनव प्रयोग किए है। आधुनिक गीत वायवीयता, वैयक्तिकता, कल्पनोन्मुखता व आत्माभिव्यक्ति तक सीमित न होकर समकालीनता के सोपानों को पार करते हुए कुंठा, घुटन, संत्रास को भोगते और संवेदना से सिक्त कर मानवीय जीवन को प्रतिष्ठित करते हुए छंद, लय और रस को एक साथ लेकर चलते हैं। मुक्त छन्द की परम्परा भी अबाध रूप से गतिशील है। प्रजातंत्र के प्रबल समर्थक कवियों ने मुक्त छंद के प्रयोग पर अधिक ध्यान दिया। नित्य नये प्रतिमान और प्रतीकों के परिवर्तन ने कविता के स्वरूप में भी नये प्रतिमान और प्रतीकों के परिवर्तन ने कविता के स्वरूप में भी परिवर्तन किया। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद हिन्दी साहित्य में आयी नयेपन की लहर ने कविता के शिल्प को विविध रूपों में ढाला है। नवें दशक में आयी

नागार्जुन, केदार व त्रिलोचन की कविताओं में शिल्प सम्बन्धी परिवर्तन व्यापक स्तर पर हुए। पुराने रोमाण्टिक अप्रस्तुतों और प्रतीकों के स्थान पर यान्त्रिक सभ्यता के नये बिम्ब और प्रतीक महत्त्व पाने लगे हैं। पारदर्शी, प्रतीकात्मक, शिशु और भाषा वैज्ञानिक बिम्बों का प्रयोग करके मानव मन को छूने का प्रयास आज के कवियों ने किया है। सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'कोट' में कोट जैसी साधारण वस्तु भी क्रांति का प्रतीक बनकर सामने आ जाती है-

एक अरसे से खूँटी पर टँगे-टँगे

मैं भी

एक काली आँधी

एक बड़े भूकम्प की जरूरत

महसूस करने लगा हूँ।[114]

आज के कवि के संवेदन क्षेत्र में कोट, दस्ताने, स्वेटर सब-के सब आधुनिक युग की चुनौतियों से टकराकर क्रांति, विद्रोह और विरोध के प्रतीक बन जाते हैं। समकालीन हिन्दी कविता वस्तु और शिल्प की ताजगी से परिपूर्ण नये ढंग की बिम्ब योजना और उपमानों के प्रयोग से युक्त है।

ओ मुझे

न चाहने वाली लड़की!

ओ धूप की तरह नमकीन

और पके बाँस की तरह

भूरी लड़की,

मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है

जो तुमने मेरे हाथ देने का

जवाब नहीं दिया।[115]

प्राकृतिक बिम्बों के संस्पर्श से परिष्कृत और आत्मीयतापूर्ण सहजाभिव्यक्ति से युक्त कविता के ये चित्र उसके शिल्प को नूतन रंगों से सजाते हैं। डॉ० बुद्धिनाथ मिश्र की 'जाल फेंक रे मछेरे' शीर्षक गीति रचना में मछेरे ईश्वर के प्रतीक व मछली को आत्मा के प्रतीक के रूप में लिया गया है-

एक बार और जाल फेंक रे मछेरे

जाने किस मछली में बंधन की चाह हो।[116]

नवगीत में यही बिंब-प्रतीक समय की माँग के अनुरूप परिवर्तित हुए हैं। प्रेम, कोमलता, दया, करूणा आदि के प्रतीकों में आज के कवि की प्रवृत्ति नहीं रमती। आज की कविता में बिंब-प्रतीक प्रेम, कोमलता और आकर्षण के नहीं, वेदना, विकर्षण और क्रूरता-कठोरता के द्योतक हैं-

आज दृश्य है, लहरों पर

जालों के घेरे हैं

तड़प रही मछलियाँ, बहुत खुश

आज मछेरे हैं।[117]

समय के साथ गीत की प्रवृत्तियों में भी परिवर्तन हुआ युगानुरूप नयी प्रवृत्ति ने नवगीत विधा का सृजन किया। समकालीन गीतों में सामान्य जन की संवेदनाओं को नये बिम्बों, उपमानों व प्रतीकों के रूप में प्रस्तुत करने हेतु नवगीतकार प्रतिबद्ध हैं-

जब तक मेरा साथ निभाये नीलकंठिनी लेखनी,

दर्द तुम्हारा पीने से इंकार करूँ तो कहना।[118]

लेखनी के लिए प्रयुक्त हुआ 'नीलकंठिनीं' शब्द बिल्कुल नया और युगानुरूप है। विभिन्न रूपों के साथ कविता में छन्द का परिवर्तन भी बहुत से कवियों ने किया है। रामचन्द्र शुक्ल की कैप्स्यूल कवितायें (हाइकू) द्रष्टव्य हैं-

एक तो शूल

रंग बदला देख

चुभते फूल।[119]

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता में शिल्प के विविध आयामों में से बहुत से नवीनता ग्रहण किये हुए हैं तो कहीं-कहीं पुराने आयाम भी अपनी अर्थवत्ता को बनाए हुए हैं। आज की कविता में परम्परागत शिल्प-विधान के साथ-साथ नये बिम्बों, प्रतीकों, उपमानों इत्यादि का प्रयोग भी बढ़ता जा रहा है।

16. भाषिक परिवर्तन

भाषा भावाभिव्यक्ति का सर्वोत्तम साधन है। प्रत्येक युग का कवि युग की परिस्थितियों एवं संदर्भो के बीच युगानुरूप समर्थ भाषा की खोज करता है। बच्चन की 'मधुशाला' व 'मधुकलश' की कविताओं मे भाषागत नये स्वरूप का परिचय दिया। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नयी कविता के कवियों ने भी भाषा के संस्कार के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया है। आधुनिक भावबोध तथा युगीन परिवेश

की परिवर्तनशीलता के फलस्वरूप सप्तकोत्तर कवियों ने काव्य की विषय वस्तु में परिवर्तन करने के साथ-साथ नये अर्थवान शब्दों के निर्माण का प्रयास और पुराने शब्दों का नया संस्कार भी किया। आज के कवियों ने भाषा को जन-सामान्य के लिए बोधगम्य व नवीन भंगिमा से युक्त बनाया। इनकी भाषा तत्समता से ऋजुता की ओर जाने वाली साधारण बोल-चाल की भाषा है। भाषा की सरलता मुहावरों, परिभाषाओं, सामाजिक शब्दों के क्रम-प्रयोग, छोटे-छोटे वाक्यों के अधिकाधिक प्रयोग और प्रचलित रूपों के समुचित व्यवहार आदि से होती है। आधुनिक भाषा युग सापेक्ष्य, संक्षिप्त, सूत्रात्मक, अधुनातन एवं तकनीकी अभिव्यक्तियों से युक्त, निर्विकल्पक और सामाजिक स्थितियों एवं सन्दर्भो की अभिव्यक्ति में सक्षम भाषा है। प्रचलन में आ रहे अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी धीरे-धीरे कविता में बढ़ रहा है-

महामहिम के सुनहरे हाथ,
कटे हुए हाथों के टुण्डों से गोल्डेन हैण्ड शेक करने लगे।
वे शब्दों को फैलाकर, हमारे अर्थों को
छोटा कर देते हैं, वे अर्थो को फैलाकर
शब्दों को फाड़ देते हैं।[120]

सप्तकोत्तर कविता में अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग के साथ-साथ आँचलिक और लोक व्यवहार में प्रचलित तद्भव तथा देशज शब्दों का प्रयोग भी मिलता है। आम आदमी से कवि का जुड़ाव उसकी भाषा में ऐसे सरल व प्रचलित शब्दों के प्रयोग को बढ़ावा देता है। बोधिसत्व की कविता 'बादल' में ऐसी ही भाषा का प्रयोग हुआ है-

मुलझुला रही हैं
खेत में बिरइयाँ
सूखकर पपड़ी हो रहा है
रोज दोपहर को आसमान
ताल के पैरों में
बिवाइयाँ फट रही हैं
झुरा गया है मदारों का दूध
हरहरा कर आओ
बिल्कुल तड़के।

मेरी गरदा-भरी लटों को

भिंगो दो

मुझे लथेर दो तर-उप्पर।[121]

आज का कवि भाषा के सरल व सुग्राह्य बनाने का पक्षधर है। उसकी दृष्टि में भाषा का यह सहज स्वरूप जिसे हर वर्ग का आदमी आत्मसात कर सके, आज की कविता की प्रमुख आवश्यकता है। लाक्षणिक भाषा के स्थान पर आज का कवि अभिधात्मक भाषा-प्रयोग पर विशेष बल देता है। सरलता और सुबोधता के लिए आज का कवि संस्कृतनिष्ठ तत्सम एवं अर्द्धतत्सम शब्दों को भी सरल तथा सहज रूप में व्यवहृत करता है। इस संदर्भ में विवेकी राय की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

मधुर तिमिर चीर

विहग अधीर रव

अनिल प्रमत्त, मत्त

श्वान कहीं गरजा![122]

कुछ कवियों की कविताओं में तत्सम शब्दों के मोह तथा उनके लालित्य के प्रभाव के चलते कहीं-कहीं भाषागत गूढ़ता एवं क्लिष्टता भी देखने को मिलती है। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी आदि के प्रचलित शब्दों का कवियों ने धड़ल्ले के साथ प्रयोग किया है। 'स्विच', 'काक्रोच', 'कम्युनिज्म', 'ओजोन', 'स्टारवार', 'शेयर मार्केट', 'ओवरटाइम', 'ब्लडग्रुप', 'ब्लैकाउट', 'मैन्युफैक्चरर', 'एहतियात', 'चिराग', 'सब्रोकरार', 'रवानी', 'काफिला', 'गुलशन' आदि लोक प्रचलित अंग्रेजी एवं उर्दू-फारसी के शब्दों के प्रयोग द्वारा कवियों ने भाषा को सरल, सुबोध तथा भावानुकूल बनाने की कोशिश की है।

17. साहित्यिक खेमेबाजी में वृद्धि

सप्तकोत्तर कविता में समकालीन साहित्य के क्षेत्र में बढ़ती गुटबाजी और असहमति का भी खुलकर विरोध देखने को मिलता है। साहित्यकारों की तेजी से बढ़ती संख्या और अच्छे साहित्य में दिनों दिन हो रही कमी ने कवि की संवेदना को प्रभावित किया है। धन, सत्ता, प्रतिष्ठा और पुरस्कार के लोभ में आज के अधिकांश कवि और लेखक तुच्छ गुटबंदियां तथा राजनैतिक पहुँच के प्रयास में लगे रहते है। बहुत से अच्छे कवि और लेखक पुरस्कृत होने के पश्चात् अच्छे साहित्य से विमुख हो जाते हैं और नौकरशाही आरंभ कर देते हैं। अवसरवादी साहित्यकार जिन अच्छे रचनाकारों से ईर्ष्या करते हैं, अपने राजनीतिक व दलीय लाभ के लिए उनकी कविता के प्रशंसक बने रहते हैं। उनकी कविताएँ जीवन और प्रकृति के सहज संपर्क से कटकर एकाकी व विघटनकारी तत्वों से युक्त हो जाती

हैं। विभिन्न प्रकाशन ऊँची पहुँच वाले रचनाकारों की डालर दिलाने वाली या फिर जोड़-तोड़कर पुरस्कार दिलाने वाली रचनाओं को ही प्रकाशित करते हैं। महानगरीय साहित्यकारों ने इस साहित्यिक खेमेबाजी को और भी अधिक बढ़ावा दिया है। ढेर-सारी पत्रिकाएँ ऐसी हैं जो अपनी विचारधारा को ही पुष्ट करने वाली सोच की कविताओं को ही प्रकाशित करती हैं। आज की निरपेक्ष कविता में इन विषमताओं पर भी दृष्टि डाली गयी है। भगवत रावत की कविता 'अच्छा यह है कि ज्यादातर लोग ऐसे नहीं हैं' में ऐसे साहित्यकारों की बात की गयी हैं-

वे हमारे-आपके बीच अत्यंत विनम्र सहृदय और
दयालु बनकर छिपे रहते हैं
ऐसे लोगों को सिर्फ उनकी भाषा से पहचाना जा सकता है
और यह कोई अचरज नहीं कि इन दिनों वे
भाषा ही नष्ट करने पर उतारू हैं
कमसकम आप उनसे सावधान रहिए।[123]

आज के साहित्यकारों की करनी-कथनी में स्पष्ट अन्तर देखा जा सकता है। अपने आप को अपनी कविता से दूर रखने की प्रवृत्ति उनकी रचना को एकान्त प्रलाप बना देती है। ऐश्वर्य और विलासिता के कृत्रिम वातावरण का अस्थायी आकर्षण उसे उसके धर्म से विलग होने को प्रेरित करता है-

रईसों और राजनयिकों के इस श्लोक को मैं जानता हूँ
लेकिन उसकी महँगी कोठियों में इस जिंदगी में तो
रह पाने की संभावना नहीं
वात्स्यायन के निवास मैं कभी नहीं गया
लेकिन उसके कृतकृत्य गद्‌गद वर्णन सुने जाते हैं
कहते हैं उस पर अब करोड़ों की कोई पारिवारिक कशमकश चलती है।[124]

कविता के गिरते स्तर का सबसे बड़ा कारण साहित्यिक खेमेबाजी ही है। समाज का सबसे संवेदनशील व्यक्ति कवि ही जब व्यक्तिगत स्वार्थो की पूर्ति के लिए कविता को अपनी ढाल बनायेगा तो कविता के स्तर का गिरना स्वाभाविक है। साहित्य को खेमों और गुटों में बाँटना सम्पूर्ण समाज के लिए घातक है-

वे सिद्ध कर देंगे कि महाभारत

कल की नहीं आज की बात है

मनुष्यता एक नहीं, दो में बंटी

कौरवों और पाण्डवों की जात है।[125]

सप्तकों के बाद की कविता में साहित्य में बढ़ती खेमेबाजी का विरोध भी विभिन्न रूपों में मिलता है। सजग और संवेदनशील कवि इस पीड़ा का अनुभव सर्वाधिक करता है और प्रायः लाक्षणिक ढंग से उस व्यथा को व्यक्त भी करता है-

सत्ता की कुटिया मक्खियों से घिरी है

फाइलों में उसकी लटकती दुम पर

शोध-कर्त्ता, मीमांसक, तत्त्ववेत्ता, दार्शनिक

कवि विमुग्ध-मूर्छित हैं।[126]

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता में राजनीतिक और आर्थिक सोच में डूबे हुए लोगों पर व्यंग्य भी बहुत जगह देखने को मिलते हैं। ऐसी खेमेबाजी देशकाल की व्यापकता के सामने त्याज्य है, गौण है; और उसे आसानी से छोड़ा जा सकता है। खेमेबाजी यदि स्पर्धात्मक हो तो ठीक है क्योंकि उससे गुणवत्ता में सुधार होता है, किन्तु ऐसा है नहीं। राष्ट्रीय धारा के साहित्यकारों/कवियों में संकीर्णता नहीं है और न ही प्रचार के प्रति लगाव जबकि अन्य धाराओं में कठमुल्लापन बढ़ता जा रहा है। नारेबाजी में मानवीयता और समानता की बातें होती हैं जबकि व्यवहार में एक प्रकार की कट्टरता ही दृष्टिगत होती है।

18. असुरक्षा और अस्थिरता की भावना

कविता सदैव मनुष्य के विकास में शोषण विहीन समाज की संरचना में अपनी भूमिका निभाती रही है। आतंकवाद की समस्या में झुलसती दुनिया, धार्मिक कट्टरता, बढ़ते फासले, महँगाई, बाजारवाद परमाणु युद्ध जैसी समस्याओं ने आम-आदमी के साथ-साथ स्वतन्त्रचेता कवि के अन्दर भी असुरक्षा और अस्थिरता की भावना को बढ़ावा दिया है। हर तरफ बढ़ते जुल्म, शोषण, उत्पीड़न और दरिन्दगी के विरूद्ध संघर्ष करते आदमी के अन्दर एक अज्ञात भय की भावना बढ़ती जा रही है। आतंकवाद सीमा से लेकर महानगरों और छोटे शहरों तक में अपनी गतिविधियाँ तेज कर रहा है। स्वार्थी राजनेताओं के द्वारा एक छोटी-सी घटना को अपने प्रचार का माध्यम बनाकर जनता को भड़काना, दंगे कराना, आगजनी, तोड़-फोड़ और व्यक्तिगत तथा सार्वजनिक सम्पत्ति को नष्ट कराना जैसे गर्हित कार्यो ने सर्वत्र शंका और भय का वातावरण निर्मित कर दिया है। यह भय आज की

कविता में प्रायः देखने को मिलता है-

सपने अभिलाषा, प्रेम

जितनी जगह खाली करते जाते

सब में टाँग पसार लेता था भय

अँधेरे का भय, अकेलेपन का भय[127]

स्वप्न और इच्छाएँ भी मिश्रित मनः स्थितियों को उत्पन्न करते हैं। आज का मनुष्य प्रेम, विश्वास और हँसी-मजाक इत्यादि को जैसे भूलता जा रहा है। उसे किसी परिचित पर भी विश्वास नहीं रहा। स्वार्थ और लोभ जैसी विनाशकारी प्रवृत्तियों ने उसे यहाँ तक पहुँचा दिया है कि-

पता नहीं कैसे

हो गए है इतने अभिशप्त

कि जब कोई परिचित खुलकर हँसता है साथ-साथ

उससे खतरा होने लगता है।[128]

यह खतरा इतना अधिक बढ़ जाता है कि आज का आदमी अपने रक्षकों का ही शिकार बन जाता है। मालम सिंह की कविता 'अकेला आदमी' की इन पंक्तियों में इसी असुरक्षा की भावना को चित्रित किया गया है-

अकेला आदमी लड़ सका है कब

मारा जाता है दर्दनाक मौत

जनतंत्र में बहुमत से मारा जाता है अकेला आदमी।[129]

आज के परिवेश में मनुष्य को सबसे अधिक खतरा राजनेताओं से है। सरकारी नीतियाँ महँगाई बढ़ाने और सामाजिक अव्यवस्था फ़ैलाने में कोई कमी नहीं छोड़ रही हैं। जनता ईश्वर के भरोसे है और शासक उसे लूटने में लगे हुए हैं-

जनता तो है राम-भरोसे, राजा उसको लूट रहा है

देश फँस गया अँधियारों में, घड़ा पाप का फूट रहा है।

रामराज का सपना टूटा, भूले हम गौतम, गाँधी को,

काले कर्मों में फँसकर हम, भूले उजली परिपाटी को।[130]

राजनीति के चक्रव्यूह में फँसा हुआ आम आदमी अपनी परम्परा को भूलकर मात्र अपना स्वार्थ और अपनी जेब गर्म करना ही पसन्द करता है। इनके प्रदूषण ने सम्पूर्ण परिवेश को गँदला

कर दिया है। जीवन-जगत के प्रति आम-आदमी के साथ-साथ कवि में भी अविश्वास और अस्थिरता का भाव व्याप्त हो चुका है-

दुनिया को मोमजोमे से ढककर सुरक्षित किया लेकिन

कोई भी जामा आदमी को ऐसा पाजामा तक नहीं

दे सकता कि वह गुण्डागर्दी और राजनीति से बच सके![131]

आज की राजनीति में गुण्डागर्दी का विशेष योगदान है। समाज में वही सफलता प्राप्त करता है जो गुण्डा है। प्रत्येक पार्टी में गुण्डों का विशेष स्थान है। कवि इनके भय को आम-आदमी के मन से निकालने के लिए संघर्षशील है। इस प्रकार आज की कविता इन परिस्थितियों के विरूद्ध लामबन्द होती कविता है।

19. बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण का प्रभाव

आज की कविता में तेजी से बढ़ रहे बाजारवाद और भूमण्डलीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव दिखायी देता है। इस भूमण्डलीकरण के युग में जब पूँजीवादी शिकंजें में फँसे उपभोक्ता-बाजार के प्रभाव से संस्कृति के मायने बदल रहे हैं, अनेकानेक संकटों से जूझते समाज और धर्म की संरचना जटिल होती जा रही है ऐसे में दुनिया भर में शब्दों की मिटती सत्ता के बीच प्रश्नचिह्न लग चुका है। विकसित देशों के माध्यम से आज विकासशील देशों की अर्थव्यवस्था को नष्ट किया जा रहा है। उदारीकरण और भू मण्डलीकरण की मोहकता में शिक्षा, स्वास्थ्य और रोजगार जैसी चीजें भी स्वदेशी न बनी रहकर साम्राज्यवादी हाथों में जा रही हैं। इसी के प्रभाव के कारण आज तक बुद्धिजीवी किसान भी सामूहिक आत्महत्याएँ करने को विवश हो रहे हैं। उपरोक्त साम्राज्यवादी नीतियों ने लूटपाट, घृणा, द्वेष को फैलाकर सामाजिक वातावरण को विषाक्त बना दिया है। कर्णभेदी पाश्चात्य संगीत, मारकाट हिंसा-अपराध और भय उत्पन्न करने वाले कार्यक्रमों में वृद्धि इन्हीं का उदाहरण है। सप्तकोत्तर कविता बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण के कारण समाज में व्याप्त उथल-पुथल, एकाकीपन, विघटित होते मानव मूल्यों, अजनबियत आदि की ओर संकेत करती है-

पर मैं इस बात को लेकर खुश था कि

मैं कविता लिखता हूँ

दूसरों से अलग और बेहतर दिखता हूँ

जबकि मुझे अब

कविता से ज्यादा चीजों का बाजार आकर्षित करता है।

और मैं कविता के भीतर

तोड़-फोड़ करके

बाजार के बीच चीजों की तरह खड़ा हूँ।[132]

आज के माहौल में व्यक्ति भी बाजार की वस्तु की भाँति हो गया है। सत्ता के लालची राजनेताओं और नौकरशाहों की मनमानी ने आम-आदमी को जीवन और मृत्यु के बीचों-बीच ला खड़ा किया है। समय की मार को झेलता हुआ आदमी बाजारीकरण के बढ़ते प्रभाव में संकुचित होकर रह गया है-

फसलों की गन्ध के लिए

तरसते घूमते हैं लोग

नदियों में अन्धाधुन्ध पानी

मौत के लिए कोई जगह नहीं छोड़ता

आराम देह कुर्सियों के नीचे

अफसरों का जूता और जनता का भाग्य है

बाजार के बीचों-बीच मृत्यु-रथ खड़ा है।[133]

व्यक्ति की अपेक्षा वस्तु का महत्व आज बढ़ गया है। बाजारों की चहल-पहल में आम-आदमी का व्यक्तित्व खो-सा गया है। आधुनिकता और फैशन के दौर में वस्तु के साथ-साथ व्यक्ति की भी गारण्टी नहीं रह गयी है। बाजार में जंगलों के अकेलेपन को महसूस करती हुई कुँवर नारायण की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

वैसे सच तो यह है कि मेरे लिए

बाजार एक ऐसी जगह है

जहाँ मैंने हमेशा पाया है

एक ऐसा अकेलापन जैसा मुझे

बड़े-बड़े जंगलों में भी नहीं मिला।[134]

इस कठिन काव्य समय में कविता का दायित्व पहले से अधिक बढ़ गया है। आतंकवाद का मकड़जाल सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है। आज का विश्व-समाज भयानक संकट के दौर से गुजर रहा है। इस स्थिति को कवि की नजरें इस रूप में परखती हैं-

जिसने कुछ रचा नहीं समाज में

उसी का हो चला समाज

वही है नियंता जो कहता है तोडूँगा अभी और भी कुछ

जो है खूंखार हंसी है उसके पास

जो नष्ट कर सकता है उसी का है सम्मान

झूठ फिलहाल जाना जाता है सच की तरह।[135]

यह समाज जिसमें झूठ को ही सच माना जाता हो, तब कवि का हताश होना स्वाभाविक ही है। कवि अतिरिक्त रूप से संवेदनशील होता है इसलिए समाज की चुनौतियों और समय की माँग को समझते हुए समाज को चेताने की कोशिश भी करता है-

इस तेज बहुत तेज चलती पृथ्वी के अन्धड़ में

जैसे मैं बहुत सारी आवाज नहीं सुन रहा हूँ

वैसे ही तो होंगे वे लोग भी

जो सुन नहीं पाते गोली चलने की आवाज ताबड़तोड़

और पूछते हैं-कहाँ है पृथ्वी की चीख।[136]

कवि यदि 'पृथ्वी की चीख' को पूरे समाज को सुनाना चाहता है, अवरोधों, असंगतियों, विषमताओं और यन्त्रणाओं को अभिव्यक्ति देता है तो बाजारीकरण और भूमण्डलीकरण के बढ़ते प्रभाव से होने वाले हानि-लाभ को भी चित्रित करता है। वह संघर्षो के बीच से जीने की प्रेरणा देने वाली कविता की रचना करता है।

20. सूचना तकनीक और वैज्ञानिक विकास का प्रभाव

हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सूचना प्रौद्योगिकी तथा वैज्ञानिक विकास का योगदान अविस्मरणीय है। सूचना की नई-नई तकनीकों के विकसित होने से दुनिया किसी गाँव की तरह छोटी प्रतीत होने लगी है। आज पत्र-पत्रिकाओं और इलेक्ट्रानिक मीडिया दोनों संचार माध्यमों में प्रयोजनमूलक हिन्दी का प्रयोग हो रहा है। संचार माध्यमों टी०वी०, रेडियो, समाचार पत्रों इत्यादि में प्रयुक्त होने वाली बहुआयामी हिन्दी के बहुत से उदाहरण सप्तकोत्तर कविता में देखे जा सकते हैं। विज्ञापन की भाषा को भी कविता में लाने का प्रयास कही-कहीं हुआ है। दिन-ब-दिन तेजी से विकसित होते कम्प्यूटर के प्रयोग तथा हिन्दी व अन्य भारतीय भाषाओं से जुड़ने के कारण सूचना तकनीक का लाभ अधिकाधिक हिन्दी भाषियों को मिल रहा है। आज हम कम्प्यूटर युग में जी रहे हैं। सूचना प्रौद्योगिकी (ई-मेल) के द्वारा आज की बढ़ती 'संवेदनहीनता की गिरफ्त में आते जा रहे हैं-

जाने क्या फीड किया

हमने कम्प्यूटर में

संवेदनहीन हुई ईट

ईट घर-घर में

'ई-मेली' परिवर्तन के

नित प्रहार सहने के दिन आए

अब तो, सच कहने के दिन आए।[137]

यह कहना रचनाकार का दायित्व है क्योंकि इस संवेदना के न होने पर मानव का अस्तित्व अंधकारमय हो जाएगा। कम्प्यूटर तकनीक, जनसंचार और सूचना तकनीक का निरन्तर होता विस्तार हमारे परम्परागत मूल्यों, मान्यताओं और आस्थाओं के सन्दर्भ में सोचने-विचारने को विवश करते हैं-

सुनो अभय जो न दिखे

उसे देखने की कोशिश करो

जो न सुनाई दे

उसे सुनने की कोशिश करो

जो समझ न आए

उसे समझने की कोशिश करो

इसी तरह इसी तरह

कविता को भी

कविता में विकसित होते विरोध को भी।[138]

इस अनदेखे को देखने, अनसुने को सुनने और अनसमझे को समझने की जरूरत आज के परिदृश्य में बहुत अधिक है। कल्पना की उड़ान से भी ऊँची टैक्लोलॉजी की उड़ान ने कविता और पाठक के बीच के संवाद को भी क्षीण कर दिया है। रमा तिवारी की हास्य-व्यंग्य से परिपूर्ण से पंक्तियाँ आधुनिक बोध को दर्शाती हैं-

कम्प्यूटर विज्ञान पढ़ाते

टीचर जी ने पूछ लिया:

कम्प्यूटर गणपति दोनों में

बोलो, है समानता क्या ?

अर्णव ने जब हाथ उठाया

टीचर ने पूछा उससे

बोलाः सर ये दोनों चलते

अपने अपने 'माउस' से।[139]

विज्ञान के बढ़ते हुए चरणों ने मनुष्य को कम्प्यूटर, रोबोट, बन्दूकों, प्रेक्षेपास्त्रों से लेकर परमाणु बम तक भेंट किए हैं। साधारण बीमारी से लेकर हृदय प्रत्यारोपण तक आ पहुँचा विज्ञान प्रेम, विश्वास, सद्भाव और शान्ति जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को आज भी पूरा नहीं कर पाया। कवि की यही हताशा उसकी कविता में मुखर होती है-

धड़विहीन, खोखला दिमाग लिए ये हाथ

मशीनी रोबोटों-से चलते ये हाथ

अनिश्चितता के कुहासे में खोए

नेताओं द्वारा

बरगलाए

अपना वजूद तलाश करते

ये हाथ।[140]

आज के मशीनी युग में मनुष्य अपने अस्तित्व को बचाने के लिए निरन्तर समय से जूझ रहा है। प्रेम, नैतिकता जैसी बातें तो मात्र काल्पनिक और मिथक बनती जा रही हैं। विज्ञान की देन 'प्लास्टिक' का इतना अधिक प्रचलन बढ़ा कि प्रत्येक वस्तु प्लास्टिक से निर्मित होने लगी। हेमन्त कुकरेती की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

यह प्लास्टिक युग है। इसका कोई सम्भ्रान्त वैज्ञानिक नाम भी होगा।

आदमी नृशंस है और उसका नृतत्वशास्त्र है

उसके लिए सबसे जरूरी हैं हड्डियाँ।[141]

इस प्रकार सूचना तकनीक, कम्प्यूटर और विज्ञान के व्यापक होते प्रभावों ने जहाँ जन-जीवन को आधुनिक व त्वरित सुख-सुविधायें प्रदान की हैं वहीं इनके अधिकाधिक प्रयोग से समय और विश्व के साथ-साथ मानवीय गुणों का परिक्षेत्र छोटी-छोटी सीमाओं के वृत्त में सिमटता जा रहा है। आज का कवि तेजी से बढ़ती जा रही इस समस्या की चिन्ता से जन-जन को परिचित कराने की कोशिश

कर रहा है।

21. असहज यथार्थबोध (तनाव, क्षणवाद, यथाशीघ्रता आदि)

आधुनिक युग के मानव में बढ़ता तनाव, प्रत्येक क्षण की महत्ता का प्रश्न तथा अतिशीघ्रता जैसी प्रवृत्तियाँ उसे असहज बनाती हैं। आज का कवि इसी असहज भावबोध को कविता में हथियार बनाकर जीवन की विषाक्त, जर्जरित एवं कठोर परिस्थितियों से संघर्ष करता है। उसकी उदात्त एवं सूक्ष्म दैविक मान्यतायें स्वतः बिखकर यथार्थवादी सीमाओं की ओर अग्रसर होने लगीं। आज का युग यांत्रिक युग है। इस यंत्र युग में मानव जीवन की अंधी दौड़ ही उसके परिणाम का निर्धारण करती है। परन्तु मनुष्य आज के हर क्षण परिवर्तित होते समाज में अपनी निजी चेतना को साधारण अभिरूचि के साथ जोड़ना चाहता है। सप्तकोत्तर कविता में आज के कवि की महानगरी मशीनी जीवन की ऊब से मुक्त होने की बेचैनी झलकती है। उसके जीवन का माधुर्य-सौंदर्य नष्ट होता जा रहा है। एकाकी और निजी जीवन जीने से उत्पन्न तनाव, क्षणवाद, पलायनवाद, यथाशीघ्रता जैसी स्थितियाँ उदासीनता, भोगवाद, घोर स्वार्थ, निर्ममता और शुष्कता जैसी मानसिक रुग्णताओं को जन्म देती हैं-

मिलने वालों से मिलकर तो बढ़ जाती है और उदासी,

हार गये जिन्दगी जहाँ, पर पता चला वह बात जरा-सी।

मन कहता है दर्द कभी स्वीकार न कर

मजबूरी हर रोज कहे-इसको सहिए।[142]

आज की विषम परिस्थितियाँ व्यक्ति को पीड़ा और उदासी सहन करने को विवश करती हैं, फलस्वरूप मानसिक तनाव की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मानवीय गुणों का निरन्तर हो रहा ह्रास और पारिवारिक व सामाजिक एकता में आयी कमी ने प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक खालीपन उत्पन्न कर दिया है-

बच्ची पूछती है तूफान क्या होता है पापा

प्रतियोगी परीक्षा की तैयारी करता छोटा भाई

त्रासदी में मृत लोगों के आँकड़े नोट करता है

नींद के आमंत्रण पर चला जाता हूँ मैं

खालीपन के अहसास को धक्का देकर।[143]

यह खालीपन का अहसास व्यक्ति में तनाव और क्षणवादी प्रवृत्ति को बढ़ावा देता है। वस्तु-जगत के प्रति उदासीन और अवसाद-ग्रसित एवं क्षुब्ध कवि एकाकी संघर्ष में असफल होकर

नियतिवादी और पलायनवादी बन जाता है-

कभी भी खाली नहीं रहता रूका नहीं रहता यहाँ कोई भी क्षण

वेग गति प्रवाह सब पर भागम-भाग

जिला मुख्यालय सी हो गई हैं आदतें

आते ही कोई हाकिम विचार कष्ट बढ़ जाते हैं।[144]

तनाव और अवसाद की स्थिति में जीवन का एक क्षण, जो सुख व तृप्ति प्रदान करता है, शेष सारे जीवन से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण लगने लगता है। यही भावना 'भोगवाद' और 'अहं' को बढ़ावा देती है। रमानाथ अवस्थी की ये पंक्तियाँ अकेलेपन को सच मानती हैं-

समय कभी देवता कभी दानव लगता है,

जो हैं नहीं सचेत उन्हीं को यह ठगता है।

वह क्षण ही सच जब तू निरा अकेला होगा।[145]

समय को विभिन्न विरोधी रूपों में देखने वाला कवि आज की भागमभाग और परिवर्तनों से भरी हुई जिन्दगी जीने को मजबूर है। आर्थिक युग में जीने के लिए और अपनी पहचान बनाने के लिए कवि को भी इस दौड़ में शामिल होना पड़ता है-

अगला दिन गुरूवार एक पड़ाव की तरह लगता है

क्योंकि हम आधे रास्ते तक आ गये हैं

और जान सकते हैं कि इन दुर्दिनों में हमारी ठीक ठाक

स्थिति क्या है

और शायद इसी में से कोई रास्ता निकलता है

इसी रास्ते पर शुक्रवार सांत्वना देता हुआ आता है

लेकिन यह तय है कि हम अभी कुछ नहीं कर पाये हैं

और अब समय बहुत कम रह गया है।[146]

आज के कवि का चिन्तन समय की सीमा और महत्व प्रतिपादित करते हुए 'स्व' की लघुता और निरीहता का चित्रण एवं क्षणवादी-पलायनवादी प्रवृत्तियों को व्यापक रूप में प्रदर्शित करना है।

वस्तुतः सप्तकोत्तर कविता प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, समाज, दर्शन, भक्ति, इतिहास, बुद्धि, मानव, नारी, कुंठा, संत्रास, विद्रोह, संघर्ष, राजनीतिक विद्रूपता, शिल्प, भाषा अस्थिरता, असुरक्षा, तनाव, क्षणवाद और सूचना तकनीकी जैसी आधुनिक प्रवृत्तियों का सरल एवं सुस्पष्ट विश्लेषण आज

के परिप्रेक्ष्य में करती है। समग्रतः सप्तकोत्तर कविता आगे की दुनिया के बेहतर होने की सम्भावनाओं के प्रति दृढ़ विश्वास की कविता है। यह विश्वास, यह आशा कोरी कल्पना पर नहीं बल्कि वास्तविकता की कठोर भूमि पर टिकी हुई है। आज की कविता पूरी ईमानदारी और पारदर्शिता के साथ अपने समक्ष आने वाली चुनौतियों का सामना करके विकास मार्ग पर आगे बढ़ने वाली कविता है। इस कविता में अच्छाइयाँ की अच्छाइयाँ हो, ऐसा नहीं है, सबसे बड़ा दोष इसके सतहीपन में है। अब ऐसा भी नहीं है कि पूरी की पूरी कविता ऐसी ही हो किन्तु कुछ कवियों की अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही हैं। कुछ न्यूनताओं का जिक्र हम पहले ही कर चुके हैं। कुल मिलाकर हम यही कह सकते हैं कि कविता तो इंद्रधनुषी है, किन्तु यह इंद्रधनुष वर्षा ऋतु के आसमान पर नहीं खिचकर धुएँ और गुबार से भरे आकाश पर खिंचा हुआ है।

संदर्भ सूची

1. डॉ० प्रभाकर श्रोत्रिय : कविता की तीसरी आँख; परंपरा और आधुनिकता, पृ० 4
2. डॉ० रंजना राजदान : हिन्दी अनुशीलन (त्रैमा० मार्च, जून 2001), सं० डॉ० कामता कमलेश); आठवें दशक की हिन्दी कविता में संत्रास (लेख), पृ० 23
3. स०ही०वा० 'अज्ञेय' : चौथा सप्तक ; भूमिका, पृ० 9
4. स०ही०वा० 'अज्ञेय' : चौथा सप्तक ; भूमिका, पृ० 14
5. मैनेजर पाण्डेय : पहल-77 (पत्रिका); उपन्यास और लोकतंत्र (लेख), पृ० 67
6. डॉ० अश्विनीकुमार शुक्ल : विकल्प 2004-2005 (सं०-डॉ० रामगोपाल गुप्त), पृ० 39-40
7. डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय : कविता की राह; प्रवेश, पृ० 5-6
8. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; वृत्ति सर्ग, पृ० 31
9. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'पत्नी', पृ० 55
10. शतदल : पवन गया नीली घाटी में, पृ० 29
11. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; 'विश्लेष' सर्ग, पृ०-45
12. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'ब्याज स्तुति', पृ० 45
13. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'श्रृंगार', पृ० 82
14. निदा फाज़ली : खोया हुआ सा कुछ; 'दिल में न हो जुर्अत', पृ० 68
15. गुलाब खण्डेलवाल : हर सुबह एक ताजा गुलाब; 31, पृ० 39
16. दिनेश नन्दिनी डालमिया/रश्मि मल्होत्रा : सृजन के झरोखे से; 'बड़ी होती लड़की', पृ० 157
17. धर्मवीर भारती : कुछ लम्बी कविताएँ; 'घाटी का बादल', पृ० 33
18. ज्ञानेन्द्रपति : गंगातट; 'नदी और साबुन (एक)', पृ० 19-20
19. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; छद्म सर्ग, पृ० 22
20. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; छद्म सर्ग, पृ० 16
21. डॉ० जितेन्द्र नाथ पाठक : खामोशी भयानक है (सं० रणजीत); 'जंगल', पृ० 12-13
22. मनोहर प्रभाकर : लय (सं० माधव हाड़ा); 'नशा गुलाबी गहराया फिर', पृ० 96
23. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'एक वृक्ष की हत्या', पृ० 54-55
24. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम सत्य; 'फागुन के आते ही', पृ० 104
25. विजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'पकना', पृ० 17

26. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'रहस्य', पृ0 22

27. ई0बी0 रयूटर : समाजशास्त्र (एस0एम0 कपूर/बी0एस0 ग्रोवर); समाज की प्रकृति, पृ0 3

28. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'करवा चौथ', पृ0 36

29. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'हन्त्या', पृ0 40

30. केशव प्रसाद बाजपेयी : संवाद भारती; 'भ्रष्टाचार', पृ0 23

31. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'पाठा की बिटिया', पृ0 33-34

32. नईम : लिख सकूँ तो; 'अपने बूते', पृ0 18

33. लीलाधर जंगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'हत्यारा', पृ0 8

34. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'आज फिर वह आया', पृ0 91

35. अशोकचन्द्र : धरती ने दिए है बीज; 'बुद्धि जहाँ भी हो उनकी हो', पृ0 72

36. माधवीलता शुक्ला : तृष्या; 'देह माटी की महकती हो गई चन्दन', पृ0 3

37. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेलाः 'रचनाकार', पृ0 15

38. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेलाः 'महाकाल', पृ0 27

39. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'दादी माँ का विश्वास', पृ0 91

40. गिरिजा कुमार माथुर : पृथ्वीकल्प, 'नि-सर्ग', पृ0 37

41. हरिश्चन्द्र पाण्डेय : एक बुरूँश कहीं खिलता है; 'अपना समय', पृ0 64

42. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'प्रश्न पत्र', पृ0 41-42

43. त्रिलोचन : मेरा घर; 'कोई नही जानता; पृ0 54

44. डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; वृत्ति सर्ग, पृ0 30-31

45. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'यह सुख किसका है', पृ0 64

46. बिजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'पहले तुम्हारा खिलना', पृ0 10

47. डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; चर्या सर्ग, पृ0 1

48. डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; विश्लेष सर्ग, पृ0 38

49. विजय बहादुर त्रिपाठी 'रसनायक': श्रीरामचरित रामाश्वमेध; नवमविशोध्याय, पृ0 261

50. बोधिसत्वः सिर्फ कवि नहीं; 'यह पृथ्वी', पृ0 18-19

51. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'क्रेमलिन संग्रहालय', पृ0 43

52. केदारनाथ अग्रवाल : जो शिलाएँ तोड़ते हैं; 'निरौनी का गीत', पृ0 110

53. लक्ष्मी प्रसाद गुप्तः लाल बहादुर शास्त्री; 'विकास' सर्ग, पृ0-32

54. केशव तिवारी इस मिट्टी से बना; 'बाँदा', पृ0 31

55. ओंकारनाथ त्रिपाठी : अभिनवा; 'सोमनाथ मन्दिर के प्रति', पृ0 32

56. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'भविष्य घट रहा है', पृ0 10

57. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'अपने आप', पृ0 12

58. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'इक्कीसवीं सदी का एक विज्ञापन', पृ0 111

59. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'प्लास्टिक युग में' पृ0 47

60. नरेश मेहता : देखना एक दिन; 'आज यदि', पृ0 41

61. नईमः लिख सकूँ तो; 'करतूतों जैसे ही सारे काम हो गये', पृ0 12

62. नईमः लिख सकूँ तो; 'किस कदर होकर निहत्थे', पृ0 29

63. नन्द चतुर्वेदीः उत्सव का निर्गम समय, 'योद्धा', पृ0 82

64. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'करेला', पृ0 36

65. नन्द चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय; 'संकल्प', पृ0 16-17

66. नरेश मेहता : देखना एक दिन; 'आत्मसमर्पण', पृ0 20

67. धर्मवीर भारती : कुछ लम्बी कविताएँ; 'कविता की मौत', पृ0 70

68. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'धुरी' पृ0 70

69. केशवप्रसाद बाजपेयी : संवाद भारती; 'इच्छाशक्ति का अभाव', पृ0 17

70. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'चाँद का चेहरा', पृ0 17

71. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'बड़ा हो जाने दो जन को', पृ0 17

72. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'अनेकान्त', पृ0 28

73. वीणा घाणेकर : पता है नहीं भी; 'मनुष्यता', पृ0 20

74. गोपालदास 'नीरज' : नीरज दोहावली; 'दोहा संख्या 192, पृ0 43

75. जुगमन्दिर तायल : लय (सं0 माधव हाड़ा); 'जिन्दगी', पृ0 28

76. हरीशचन्द्र पाण्डेय : एक बुरूँश कहीं खिलता हैं; 'वहाँ कोई बच्ची नहीं थी', पृ0 56

77. राजा जुत्शी : मैंने कहाँ गगन माँगा था; पृ0 38

78. दिनेश नन्दिनी डालमिया/रश्मि मल्होत्रा : सृजन के झरोखे से; 'मानवता करे पुकार', पृ0 21

79. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'महानगर', पृ0 36-37

81. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'भट्ठहा', पृ0 25-26

82. राजा जुत्शी : मैंने कहाँ गगन माँगा था; 'अमर प्रकाश', पृ0 22

83. बशीर बद्र : उज़ाले अपनी यादों के; 'रेत भरी है इन आँखों में, पृ0 67

84. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'फिर मेरे पाँवों तले', पृ0 42

85. नईम : लिख सकूँ तो; 'आधी कटी कर्ज लेने में', पृ0 38

86. केशव प्रसाद बाजपेयी : संवाद भारती; 'नारी सम्मान', पृ0 43

87. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्गम समय; 'मृत्यु पर माँ की', पृ0 55

88. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'वह नारी', पृ0 24

89. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'माँ', पृ0 72

90. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'पाया नहीं', पृ0 22

91. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'दण्डक वन के राम', पृ0 120

92. पवन करण : स्त्री मेरे भीतर; 'गुल्लक', पृ0 55

93. निदा फाजली : खोया हुआ सा कुछ; 'बेसन की सोंधी रोटी', पृ0 39

94. कपूर चन्द कुलिश : लय (सं0 डॉ0 माधव हाड़ा); 'सिलविया नानावटी', पृ0 90

95. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'जब राह ही नशीली', पृ0 40

96. देवव्रत जोशी : राजस्थान पत्रिका; 'बाँचना है तो', 3 जुलाई 1994

97. नईम : राजस्थान पत्रिका; 'दो गीत', 5 नवम्बर 1995

98. त्रिभुवन चतुर्वेदी : राजस्थानी पत्रिका; 'बौराई हवा', 9 फरवरी 1994

99. निदा फाज़ली : खोया हुआ सा कुछ; 'गरज-बरस', पृ0 15-16

100. बशीर बद्र : उजाले अपनी यादों के; 'एक चेहरा साथ-साथ रहा, पृ0 21

101. बशीर बद्र : उजाले अपनी यादों के; गुलाबों की तरह दिल अपना', पृ0 77

102. लक्ष्मीकान्त वर्मा : नयी कविता के प्रतिमान; अहम्वादी प्रवृत्तियाँ और सामाजिक तत्त्व, पृ0 233

103. विजेन्द्रः लय (कविता संचयन); 'तिमिर में', पृ0 24

104. नंद चतुर्वेदी : लय (कविता संचयन); 'भय', पृ0 12-13

105. जय सिंह नीरज : लय (कविता संचयन); 'बेखबर नहीं; पृ0 14

106. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : खूँटियों पर टंगे लोग; 'अब कुछ ठीक नहीं', पृ0 67

107. नरेन्द्र पुण्डरीक : नंगे पाँव का रास्ता; 'पहचानो, पृ0 98-99
108. वीरेन्द्र गोयल : इस तरह से ये समय; 'पंजाब-1', पृ0 31
109. यादवेन्द्र शर्मा : सबसे सुन्दर लड़कियाँ, 'क्रिकेट', पृ0 91-92
110. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'ज्यादतियों की उपज', पृ0 100
111. पवन करण : स्त्री मेरे भीतर; 'हम पति अनाकर्षक पत्नियों के', पृ0 43
112. गिरिजाकुमार माथुर : पृथ्वीकल्प; देह यात्रा', पृ0 55
113. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'विदेशी आवाजों से बेहतर', पृ0 25
114. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना : खूँटियों पर टँगे लोग; 'कोट', पृ0 23
115. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'शिवानी के लिए', पृ0 39
116. डॉ0 बुद्धिनाथ मिश्र : 'जाल फेंकरे मछेरे'; हिन्दी अनुशीलन (त्रैमा0) सित0-दिस0-2000, पृ0 82
117. सत्यनारायण : हिन्दी अनुशीलन (त्रैमासिक); सित0-दिस0 2000, अंक-34, पृ0 82
118. वीरेन्द्र सिंह : हिन्दी अनुशीलन (त्रैमासिक); सित0-दिस0 2000, अंक 3-4, पृ0 82
119. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'कैप्स्यूल काव्य' (हाइक)', पृ0 79
120. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'रिव्यू', पृ0 69
121. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'बादल', पृ0 108
122. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'ग्राम चित्र', पृ0 60
123. भगवत रावत : 'एक अभिनन्दन समारोह से लौटते हुए'; उद्‌भावना, अक्टूबर 97-मार्च 98, पृ0 58।
124. विष्णु खरे : 'अपने आप और बेकार'; 'उद्‌भावना, अक्टूबर 97-मार्च 98, पृ0 58
125. कुँवर नारायण : 'बंटवारा'; उद्‌भावना कवितांक, अक्टू-97 मार्च 98 अंक, पृ0 10
126. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्गम समय; 'कविता तुम सार्थक रहो', पृ0 63
127. वंदना देवेंद्र : समय का हिसाब; 'भय', पृ0 138
128. मनोज शर्मा : बीता लौटता है; 'अब की', पृ0 29
129. मालम सिंह : इस सदीमें; 'अकेला आदमी', पृ0 49
130. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'चुप रहिए!', पृ0 49
131. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव ; 'प्लास्टिक युग में', पृ0 47

132. नरेन्द्र पुण्डरीक : 'टुनटुनिया पहाड़ और केन नदी के कवि', नागरी प्रचारिणी पत्रिका, अप्रैल-जून 2005, पृ० 60

133. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्गम समय; 'कविता तुम सार्थक रहो', पृ० 64

134. कुँवर नारायण : इन दिनों ; 'बाज़ारों की तरफ भी', पृ० 12

135. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'खुशी कैसा दुर्भाग्य', पृ० 88

136. अरूण कमल : 'नए इलाके में'; आलोचना-13, पृ० 45

137. मुकुट सक्सेना : 'समकालीन गीत का परिदृश्य (डॉ० वीरेन्द्र सिंह)'; मधुमती, मार्च-अप्रैल 2005, पृ० 107

138. देवीप्रसाद मिश्र : 'कविता'; आलोचना-86, जुलाई-सितम्बर 1988, पृ० 8

139. रमा तिवारी : हास्य व्यंग्यखण्ड; मधुमती, जनवरी 2006, पृ० 163

140. ईश्वर चन्द्र सक्सेना : 'ये हाथ'; मधुमती, अक्टूबर, 2005, पृ० 47

141. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'प्लास्टिक युग में', पृ० 47

142. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'चुप रहिए', पृ० 48

143. ब्रज श्रीवास्तव : तमाम गुमी हुई चीजें; 'सिर्फ एक आदमी', पृ० 29-30

144. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है, 'पनघट पर भगीरथ', पृ० 120

145. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'उत्तर', पृ० 44

146. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'सात दिन का सफर', पृ० 39

चतुर्थ अध्याय

सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता

4

सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता

कविता कवि की भावाभिव्यति की अंतिम परिणति है। आज की कविता हमारे भीतर रचे-बसे कोमल, मधुर और उत्कृष्ट के साथ-साथ अपने समय के यथार्थ और बेचैनी-भरे एकान्त हाहाकार को भी बड़ी सहजता से व्यक्त करती है। वह सुन्दरता को ही नहीं कुरूपता को भी बहुत ही प्रामाणिकता और बारीकी से रूपायित करती है।

सप्तकों के बाद की कविता आत्मसंघर्ष और आत्मालोचन की कविता है। वह जीवन और मृत्यु की दार्शनिक अवधारणाओं से जूझते विज्ञान और आध्यात्मिक सिद्धान्तों का समन्वित व सुलझा हुआ रूप प्रस्तुत करती है। आज की तीव्र अनियोजित प्रगति और सूचना विस्फोट के कारण चेतना की छटपटाहट के साथ-साथ आज की कविता में भावनाओं की बड़ी सुन्दर बनावट है।

भावनात्मकता ही कविता के पाठक या श्रोता के रागात्मक सम्बन्धों की रक्षा व निर्वाह करती है। भावनात्मकता कविता में सरलता, सहजता और भावाभिव्यक्ति के साथ-साथ लचीलापन, प्रवाह और गेयता भी भर देती है। सप्तकों के पश्चात की भावनात्मकता भी कवियों की समझ और दूरदर्शिता से उपजी है। सप्तकोत्तर कविता में समकालीन भावों और विचारों की अनुगूँज है। कवि के मन में अपने समय और समाज से अर्जित जो संस्कार सुप्तावस्था में होते हैं उन्हें कोई रचनात्मक उन्मेष जाग्रत करके सुसंगठित भावबोध का सृजन करता है। इधर का कवि संपूर्ण समाज की चिन्ता में डूबा हुआ एक जागरूक मनुष्य है। वह देश-देश के आर्थिक और सांस्कृतिक साम्राज्यवाद, पर्यावरण, मानवाधिकार, विकास और भ्रष्टाचार जैसे मामलों में जागरूकता पैदा करना चाहता है।

आज के कवियों ने आधुनिक मानव जीवन की विभिन्न गतिविधियों, भाव मुद्राओं, मानसिकताओं और हलचलों की छवि अपनी कविताओं में उतारने का सफल प्रयास किया है। कई कवियों ने परम्परागत पुराख्यानों और मिथक कथाओं का आधार ग्रहण करके भी उनके भावबोध को नवीन अर्थवत्ता प्रदान की है।

सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता का विश्लेषण निम्नलिखित पूर्वोक्त बिन्दुओं पर किया जा सकता है-

(क) व्यष्टिगत भावनात्मकता

(ख) समष्टिगत भावनात्मकता

(ज) दार्शनिक भावनात्मकता

(झ) ऐतिहासिक भावनात्मकता

(ग) मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता
(घ) सौन्दर्य-बोधक भावनात्मकता
(ङ) राष्ट्रवादी भावनात्मकता
(च) मानववादी भावनात्मकता
(छ) सैद्धान्तिक भावनात्मकता
(ञ) बौद्धिक भावनात्मकता
(ट) आधुनिक भावनात्मकता
(ठ) काल्पनिक भावनात्मकता
(ड) प्रेमबोधक भावनात्मकता

(क) व्यष्टिगत भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता में कवि स्वानुभूति से प्रेरित होकर काव्य-सृजन करता है। कभी उसकी चिन्ताएँ व्यष्टिगत हो जाती हैं तो कभी वह खुद के विकास-विस्तार और आदर्शों की रक्षा के लिए आत्मसंघर्ष करने लगता है। कहीं परम्परागत रूढ़ियों पर प्रहार करता है तो कहीं कवि के चिन्तन की मौलिकता का आग्रह उसे व्यष्टिवादी बना देता है। आज की कविता में वैयक्तिकता की बहुलता है जिसमें व्यक्तिगत प्रेम, प्रणय, रोमांस, निराशा, घुटन, कुण्ठा, पराजय एवं पलायन आदि की विवृत्ति हुयी है। जहाँ पहले व्यष्टिपरक काव्यधारा के कवियों की वैयक्तिकता व्यक्तिगत प्रणय एवं सुख-दुःख की खुली अभिव्यक्ति तक ही सीमित थी, वहीं सप्तकोत्तर कविता के कवियों की वैयक्तिकता सामाजिकता एवं युग-यथार्थ से जुड़ी हुई है। उसने अपने सुख-दुःख की अभिव्यक्ति खुलकर की है-

एक सौ चीखों को
अपने अंदर दबाए रखने
और उनका गला घोंटते रहने से
कहीं अच्छा है
एक बार पूरी ताकत से चीख लेना।[1]

आज का कवि अन्तर्मुखी होकर दुःखों में जीने का आदी नहीं है। वह सांसारिक दुःखों और विषमताओं से यथासंभव संघर्ष करने वाला श्रमजीवी नागरिक है। वह जानता है कि पीड़ा को दबाए रखने से उनका हल सम्भव नहीं है। आज के समय की माँग खुलकर अपनी बात कहने में है। समाज और बाजार में अपनी पहचान बनाने के लिए एक बार अपनी पूरी क्षमता के साथ प्रभाव बढ़ाने से ही व्यक्ति का समुचित विकास सम्भव है। अनिल गंगल ने 'अंततः' कविता में अपनी इसी भावना को व्यक्त किया है-

विकसित होते हिंसक सभ्य समाज में
मैं सीखता हूँ हर रोज

खुद को सुरक्षित रखने के उपाय।[2]

समाज में विज्ञान और विकास के बढ़ते कदमों ने सभ्यता और संस्कृति की सुरक्षा को प्रभावित किया है। वैज्ञानिक तकनीक के विकास ने अपराध और हिंसा को तेजी से बढ़ावा दिया है। महानगरीय जन-जीवन में असुरक्षा और आतंक का माहौल व्याप्त हो गया है। पुलिस और प्रशासन असहाय सिद्ध हो रहे हैं। ऐसी स्थिति में कवि की भावनात्मकता का आहत होना स्वाभाविक ही है-

सम्भव है तो बस इतना

कि किसी दारूण दुःख का

कोई उत्सव मना लें

या दुःखों की गरिमा के बखान के लिये

खोजने लगें

भाषा और शिल्प के नये तेवर।[3]

कवि जीवन की विषमताओं से आहत अवश्य होता है किन्तु दुःख से भयभीत होना उसकी नियति नहीं है। वह दारूण दुःख को भी उत्सव की भाँति जीना चाहता है। सुख के महत्त्व को समझने और वास्तविक आनन्द प्राप्त करने के लिए दुःख के मार्ग से गुजरना ही पड़ेगा। इस बात से आज का कवि भली-भाँति परिचित है, तभी तो वह कहता है-

उमड़ता ही रहेगा उत्तप्त ताज़ा लहू

धरती से अजस्र, अशेष, आती ही रहेगी धार,

यातना के बीच मेरा गर्व देता है चुनौती-

कौन छीजेगा प्रथम:

रिसती समय की रेत, या अनुभूति का यह क्षुब्ध पारावार।[4]

कवि की अनुभूति का यह क्षुब्ध पारावार भी उसके गर्व के सामने अक्षम हो जाता है। उसका गर्व यातनाओं के बीच पला-बढ़ा है जिसमें भावों की ऊष्मा और अनुभूति की तीव्रता विद्यमान है। उसे विश्वास है कि उसका गर्व शोधित और कालजयी है। गिरिजा कुमार माथुर की कविता 'कालदृष्टि' में उनका यह विश्वास द्रष्टव्य है-

और मैं हूँ कालजयी

मैं मरूँगा नहीं

क्योंकि मुझे जीना है

तमाम अगली शताब्दियाँ

अपनी प्रिया को बनाना है

अभी और सुंदर

अभी और मोहक

अभी और सार्थक।[5]

सप्तकों के बाद की कविता में आशावादी दृष्टि का यह विस्तार विज्ञान और अनुभव की व्यापकता के कारण सम्भव हुआ है। कवि की दृष्टि व्यष्टिवादी संकीर्णता से उबर कर समष्टि के सौन्दर्य और मोह में भी रमी है। व्यष्टि से समष्टि तक की कवि की इस अन्तर्यात्रा को देवीप्रसाद मिश्र की कविता 'परम्परा पाठ' में कर्त्तव्यबोध के रूप में दर्शाया गया है-

आज मैंने सीखा कि

जब यह तय हो जायेगा कि

मैं बहुत सीखा हुआ मरा तो

जो आगे आयेंगे उनके लिये

और अधिक सीखा हुआ जीना संभव होगा।[6]

जीवन के अनुभवों को सीखने का भाव आज के कवि में मौजूद है। वह मौन होकर भी अपनी निजी अनुभूतियों को लेखनी रूपी तूलिका से कविता रूपी रंगों के चित्रों में उकेरता है। यथा-

मौन मेरे प्राण का संगीत है,

मौन मेरे गीत का प्रिय भीत है।

मौन मनहर श्याम मनहर कल्पना,

मौन मेरे प्राण मेरी अर्चना।[7]

कवि के गीत, संगीत, कल्पना और अर्चना सभी मौन हैं। उसका वैयक्तिक चिन्तन भी यहाँ मौन है। परन्तु मौन चिन्तन की दीर्घकालिक अवस्था उसके मौन भाव को तोड़ती है और उसे स्पष्ट और खुलकर चिन्ता करने की जरूरत महसूस होती है। कभी-कभी उसकी यह चिन्ता उसे इतना बहिर्मुखी बना देती है कि सामाजिक आलोचनाओं के साथ-साथ वह ईश्वर को भी अपनी तीखी आलोचना का शिकार बनाने में नहीं हिचकता। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य अपराधिता में अंबा के द्वारा अपनी नियति से रुष्ट होकर नियंता ईश्वर को तथा नियति को कठोर वचनों से सम्बोधित करती हुई ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

सतत् धिक्कार है कपटी, कुटिल निष्ठुर विधाता को

बनी मैं ग्रास जिसकी कौतुकी दुर्नीति के मुख की।

सतत धिक्कार मेरे दुष्ट, वंचक, भाग्य कुत्सित को

मुझे घेरे चतुर्दिक आज दारुण जल्पना दुख की।[8]

ईश्वरीय नियमों के बन्धनों में बँधा हुआ मनुष्य अनचाहे और आकस्मिक दुःखों में पड़ने पर भाग्य और ईश्वर को निर्दयी और कुटिल-कपटी तक कह डालता है। उपरोक्त पंक्तियों में भीष्म के द्वारा अपहृत और शाल्व के द्वारा तिरष्कृत अम्बा के कोप का वर्णन रामेश्वर शुक्ल 'अचंल' ने किया है। सप्तकोत्तर कवियों ने संयोगजन्य या वियोगजन्य निजी अनुभूतियों को भी अपनी कविताओं में बहुत से स्थानों पर दर्शाया है-

मेरी जिदंगी है बुझी-बुझी, मेरे दिल का साज उदास है

कभी इसको ऐसी खनक तो दे, तेरे घुँघरुओं पे मचल सके।[9]

प्रेमिका के प्रेम की प्राप्ति में तत्पर अनुरागी नायक को नायिका के अतिरिक्त अन्य कुछ भी सुख प्रदान करने वाला नहीं हैं।वह नायिका के घुंघरुओं की मधुर ध्वनि के संगीत में अपने सुखों को खोजता है। इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने निजी तथा व्यष्टिपरक भावनाओं का स्वत्व तथा समत्व दोनों विचारधाराओं के परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया है।

(ख) समष्टिगत भावनात्मकता

सप्तकों के बाद का कवि न खुद से काटकर समाज को देखता है, न समाज से काटकर खुद को। इस तरह वह समग्रता में जीता और रचता है। किसी व्यक्ति या परिस्थिति विशेष का गायन अथवा वृत्ति-विशेष का निरूपण या सिकुड़ सिमट कर संकुचित विचार धारा का पोषण आज के युग के स्वच्छंद्तावादी कवि को अभीष्ट नहीं है। अतएव युगीन दृष्टिकोण से प्रभावित विकास के प्रति आकृष्ट आज के सप्तकोत्तर कवि ने भी समष्टि के प्रति अपने कर्त्तव्य का निर्धारण किया है। आज का कवि मनुष्य, पशु और वस्तुओं के साथ-साथ प्रकृति के प्रति भी भावनात्मक लगाव रखता है। वह नित्य नूतन भावों का रचयिता है। सांसारिक पुरानेपन को नवीनता प्रदान करने की भावना को अंशु मालवीय ने 'अभिनव' कविता में प्राकृतिक प्रतीकों का प्रयोग करके व्यक्त किया है-

कुछ हो

जो कि चल रहा है रुक जाये

बदल जाये

धानी सूरज

गुलाबी आसमान

वासन्ती पेड़ों को देखकर

दुनिया पुनर्नवा हो जाये![10]

दुनिया को पुनर्नवा करने की कवि की चाह आज के युग और मनुष्य की माँग भी है। सूरज, आसमान और पेड़ों के रंगों को बदलने से कवि का आशय पुरानी मान्यताओं का नया संस्कार करने और दुनिया को सदी के बदले हुए रूप का आभास कराने से है। वह सूरज बनकर मात्र दिवस को चमकने की अपेक्षा नन्हा दीपक बनकर रात्रि का गहन अन्धकार दूर करना अधिक श्रेयष्कर समझता है। उसकी चाह धरती पर हमेशा ज्ञानरूपी प्रकाश के विस्तार की है-

रात भर तो जला किन्तु सन्तोष है,-

कर सका दूर जितना अँधेरा, किया;

और, बुझ भी रहा, तो यही साध है-

'इस धरा पर हमेशा उजाला रहे।[11]

सजग और चिन्तनशील कवि की दृष्टि पृथ्वी पर फैले अन्धकार में केन्द्रित तो है ही पर साथ ही वह विश्व की सबसे बड़ी और विध्वंसक समस्या 'परमाणु युद्ध की विभीषिका' के भय से ग्रसित है। आए दिन हो रहे परमाणु परीक्षणों और रक्षा समझौतों के फलस्वरूप दुनिया भर में बढ़ता परमाणु जखीरा और अमरीका, इंग्लैण्ड जैसे तानाशाह राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीतियाँ विश्व एकता के लिए खतरा बनते जा रहे हैं-

क्या होगा उस दिन

मेरा और तुम्हारा

मत सोचो।

क्या होगा उस दिन

भारत और पाकिस्तान का?

अमरीका और रूस का?

जनतंत्र और समाजवाद का?

मत पूछो।

क्योंकि इन सबका तो नामो-निशान भी न बचेगा।[12]

युद्ध की विभीषिका से आक्रान्त आम-आदमी अस्थिरता और असुरक्षा की भावना से भर जाता है। विश्व बाजार पर कुछ गिने-चुने देशों का आधिपत्य और जीवन-मूल्यों में आयी गिरावट ने विश्व-बन्धुत्व की भावना को आहत किया है। इस विषम परिस्थिति में भी कविता अपनी संजीवनी से सामाजिक संस्कारों को अमरत्व प्रदान करती है। कवि पृथ्वी को अपना घर बनाकर, तारों को सहचर बनाकर और हाथों में वायु तथा आँखों में आकाश लेकर कहता है-

लम्बी साँस लेकर

बैठ जाता हूँ और

ऊँचे स्वर में

बोल पड़ता हूँ मैं

सर्वे भवन्तु सुखिनः[13]

'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की यह कामना प्राचीन भारतीय संस्कृति का अंग है। तब से लेकर आज तक यह प्रेम और सौहार्द की भावना कविता और समाज में बनी हुई है। संसार के सभी सम्बन्ध प्रणियों को स्नेह और ममता प्रदान करते हैं। पारिवारिक एकता और राष्ट्रीय एकता का व्यापक स्वरूप वैश्विक एकता है। कवि जगत प्रसाद द्विवेदी की 'नेह भरे रिश्ते' कविता की ये पंक्तियाँ विश्व प्रेम का सन्देश देती है-

प्यार जगाने नेह लुटाने, भू में सब रिश्ते आये हैं।

हम भी आये तुम भी आये, फिर मन क्यों छोटा करते हैं?

मन निर्मलता में हर निधि है उगें पाप-पुण्य मन भावों पर।

जब-जब मन गहरे में डूबे, औ' सोचे इन जग रिश्तों पर।।[14]

मनुष्य का जन्म विश्व में प्रेम, स्नेह को फैलाने और पुण्य कर्मो के करने हेतु हुआ है। मन की गहराइयों में डूबकर जब कवि सांसारिक सम्बन्धों के बारे में सोचता है तो धीरे-धीरे उसका हृदय निर्मलता और पुण्य भावों से भर जाता है। आज के कवि की दृष्टि में धरती-आसमान और देव-दानवों का मिलन भी समष्टि भावना का तथा सत्यान्वेषण का प्रतीक है-

देव और दानव मिलें या न मिलें

उनकी साझेदारी है सागर के मन्थन में

विष कुम्भ या सुधा कलश कोई भी पी जाये,

लक्ष्य तो है, अमरत्व के अन्वेषण चिरन्तन में।[15]

यहाँ पर दुराचारी दैत्यों को भी अमरत्व के अन्वेषण सरीखे कल्याणकारी कार्य से जोड़कर कवि ने अपनी विशद एवं सामंजस्यपूर्ण चिन्तन शैली का परिचय दिया है। ग्लोबलाइजेशन की प्रक्रिया के चलते समस्त विश्व का विस्तार लघुता में परिवर्तित होता जा रहा है। दूरियाँ कम हो रही हैं, व्यापार बढ़ रहे हैं। एक देश दूसरे देश की प्रगति और बढ़ती शक्ति से चिन्तित है। आतंकवादी तथा घुसपैठ की घटनाएँ आपसी मतभेद व युद्ध की भूमिका का निर्माण कर रही हैं-

कब तक नादिरशाहों, हिटलरों, बुश क्लिंटन व

सद्दाम हुसेनों की झक का भार ढोती रहेगी यह धरती

कब तक उनकी क्रूरता के पहिये तले

निर्दोष, निरीह मनुष्य जाति रहेगी मरती।

कहीं फिर हिरोशिमा, नागासाकी

न बन जाये खाड़ी देशों की धरती।[16]

इसी क्रूरता का परिणाम सद्दाम की गिरफ्तारी, भीषण खाड़ी युद्ध और नाभिकीय प्रदूषण में हुई वृद्धि से प्रभावित एशियाई जलवायु है। सप्तकोत्तर कवि की नजर में समय की हर बड़ी चुनौती हमें अपनी छिपी ताकत को पहचानने की दृष्टि और सामर्थ्य प्रदान करती है। कवि की यह जिद है कि वह आदमी के गौरव की रक्षा हर हाल में करेगा। उपर्युक्त सभी उदाहरण कविता के उस परिप्रेक्ष्य को प्रस्तुत करते हैं जिसमें समष्टि के भिन्न रूप तथा संदर्भ पुराने तथा नए रूपाकारों या अनुभव बिम्बों के द्वारा काल के गतिशील रूप को, जो अतीत वर्तमान तथा भविष्य की सापेक्षता को व्यंजित करते हैं उन्हे आज की कविता समष्टि के किसी न किसी रूप में अर्थ देने में संलग्न है। कवि के शब्द गहन अधंकार में जगाने और दिशा देने वाले होते हैं-

वे वाहक है ज्ञान और विज्ञान के

संस्कृति और दर्शन के।

बिना किसी वसीयतनामे के

वे हस्तान्तरित होते हैं पीढ़ी-दर पीढ़ी,

क्योंकि वे व्यष्टि की नहीं

समष्टि की सम्पत्ति होते हैं

और हर व्यवस्था में वे

सामाजिक ही बने रहते हैं।[17]

यहाँ 'शब्द' को आज की परिस्थितियों में पूर्णता देने का प्रयास किया गया है। इस प्रकार की कविताएँ अपनी पूर्ववर्ती कविताओं से हटकर हैं, यहाँ एक मिला-जुला-सा सभी को समेटने का आग्रह अधिक है। कवि ऐसी प्रतिरोधी शक्ति, खंडन और विरोध की अपेक्षा करता है ताकि असत् और अनाचार को धकेल कर गिराया जा सके। यही प्रतिरोधी शक्ति समष्टि के गौरव को तथा विस्थापित संस्कारों को पुनः प्राप्त करने के लिए संघर्षरत है।

(ग) मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता मनुष्य के उदात्त मनोभावों की विशद अभिव्यज्जना करती है। कवियों ने आधुनिक मानव के मनोविकारों का सूक्ष्म चित्रण जगह-जगह पर किया है। आज के मनुष्य के निराशा, कुण्ठा, जीवन-जगत के प्रति दुविधा और बेचैनी, जीवन-मूल्यों में गिरावट आदि प्रमुख चिन्तनपरक मनोभावों को आज का कवि अपनी रचना में साग्रह स्थान देता है। साथ ही उन्हें हल करने का प्रयास भी करता है। वह घटनाओं के वर्णन में उतने आनन्दित नहीं हुए हैं जितना कि मानसिक प्रवृत्तियों के विश्लेषण में। निराशा, जड़ता, चिन्ता, क्षणवादिता, दुःखवाद, अपूर्ण अहं, स्वार्थपरता इत्यादि मनोभाव भावनात्मकता के प्रवाह में सम्मिलित होकर कवि को आनन्दवाद की प्राप्ति कराते हैं। डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' की निम्नलिखित पंक्तियों में कवि बनने के लिए मूल प्रेरणा, मनोभूमि एवं सात्विक विकारों की आवश्यकता पर जोर दिया गया है-

मूल-प्रेरणा के अभाव में

कोई कवि कैसे हो पाये?

मनोभूमि के बिना शून्य में

कोई कैसे बीज उगाये?

मूल-ग्रन्थियों से जकड़े हैं-मौलिक ग्रन्थ

अछूते पन्ने

समीकरण के हल क्या होंगे

आदिम और अनादिम युग के?[18]

यहाँ कवि संज्ञान और निर्दिष्ट दशाओं का अन्तरीक्षण विधि से चेतन और अचेतन स्तर पर विश्लेषण करता है। युग समीकरणों का उलझना और नवीन व मौलिक भावों का अनैतिकता व मानसिक ग्रान्थियों में जकड़ा जाना मनुष्य और संस्कृति दोनों के लिए अहितकर है। पृथ्वी को विशद और सुंदर बनाने के लिए लघुता में प्रभुता की आवृत्ति आवश्यक है-

लघुता में प्रभुता की आवृत्ति

विशद बना पावन जगती तल!

सुंदरता की ज्योति प्रज्वलित

जाग उठी चेतना महीतल

विस्मित मन लघु बीज निरखकर

सूक्ष्म महा रूपों में अविकल।[19]

चेतना की जाग्रति एक ओर सुखद है, दूसरी ओर अस्तित्व की चिंता और द्वन्द्व से भरी हुयी। आज के कवि में बुद्धि की जड़ता नहीं चेतना की उत्पत्ति होती है। उसने कविता के मर्म को, भावना के छन्द को जीवन की मनोभूमि से लेकर संचेतना के विस्तृत आकाश तक फैलाने का काम किया है। कविता उसके लिए विशिष्ट चेतना और समर्पण का प्रतीक है–

वाह्य आवरण के आवर्त्तन में

अंतर न कभी खुल पाता

महापुरूष नित सोया मन में

उद्वेलित कर छिप कब जाता?

महाविकट की छाया घन के

नन्हे शिशु का भोलापन

अंतरतम में ज्योतिपुंज–सा

आलोकित करता मेरा मन।[20]

अंतर्मन की अनुभूतियों को सक्रिय करने के लिए वाह्य आवरणों को हटाना आवश्यक है। प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर एक महान पुरूष निरन्तर सोया हुआ है। व्यक्ति को अपने ज्ञान को विस्तृत करके उस सोये हुए महान भाव को जगाना होगा। देशकाल को भी गतिमान बनाने वाला वह महान व्यक्तित्व सभी जीवों में चेतना का संचार करता है-

यह विपरीत का आकर्षण

सब अर्धपंगु का स्वीकारमय आस्वादन

चेतन का यह संचरण

सृष्टि का अन्वितियों में अतिरंजन

–गोल गोल घूम रहा

चाक अंधकार का

गतियों में बदला

अडोल देशकाल का।[21]

उपरोक्त पंक्तियों में गिरिजा कुमार माथुर ने पृथ्वी की निस्पन्द किंतु अत्यन्त सूक्ष्म गति से उत्पन्न आकर्षण-विकर्षण और चुम्बकत्व से प्रभावित चेतन-अचेतन के विरोधाभासी स्वरूप को दर्शाया है। जीवन के बदलते रूपों से साक्षात्कार करता हुआ कवि मन अनेकानेक मानसिक दबावों और आघात-प्रत्याघातों को सहन करता है। बुद्धि की इस भागमभाग में कभी-कभी वह थक कर बेचैनी का अनुभव भी करता है। मोहन कुमार डहेरिया के अनुसार-

ऐ मनोवैज्ञानिक, समाजशास्त्री

ओ दार्शनिक

कौन सी बीमारी है मुझे

ये सचमुच की बीमारी ही है

या जीवन का नया शिल्प।[22]

यहाँ कवि का दर्द, समय के पार भविष्य में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का जो आकलन कर रहा है वह रूमानियत से दूर विवेकजन्य है। यह दृष्टि कवि की काव्य चेतना को समय के पार झांकने को प्रेरित कर रही है-

खण्डित सूर्य का रक्त

अभी न जाने कितने युगों तक

हमारी भूमि को रक्तिम बनाता रहेगा।

उसका घाव न जाने कितनी सदियों तक

हमें दर्दाता रहेगा।

और आधी रात को इस सूरज-तले

हम न जाने कितने कल्पों तक

अंधेरा पीते रहेंगे, पीते रहेंगे।[23]

देश और मनुष्य की समस्याएँ बहुत हैं, दर्द बहुत हैं। चारो तरफ निराशा और दुःख के बादल घिरे हुए हैं। परिस्थितियाँ सोचने और संघर्ष करने के लिए विवश करती हैं। सच और झूठ के बीच कर्त्तव्य पालन की दुविधा में फँसा हुआ कवि अपनी अन्तरात्मा का आंकलन करता है-

अल्पकालिक,

या

जीवन पर्यन्त

आत्मा से दूर

मस्तिष्क के आत्मबोध से

ग्रसित

मिटते फासलों की

गहराइयाँ

या

तन्हाई एक चिरपरिचित सी।[24]

साहचर्य की खोज में भटकता कवि मन जीवन पर्यन्त एक अज्ञात प्रिय की खोज में लगा रहता है। यह साहचर्य भाव आवश्यक नहीं कि ईश्वरीय ही हो। यह भाव माँ, बहन, पिता, बन्धु, मित्र और प्रेमी के सामीप्य के लिए भी उत्पन्न हो सकता है। आत्मीय-जनों से पृथक होने पर हृदय के किसी भाग में खालीपन की अनुभूति होने लगती है। खालीपन के कारण मनुष्य की सोच प्रभावित होती है-

मुझे सोचना है कि

मुझे सोचना है।

मुझे सोचना है कि

दूसरों का सोचा काम नहीं आता।

मुझे सोचना है कि

बगैर सोचे रहा नहीं जा सकता।

मुझे सोचना है कि

सोचना जरूरी है।[25]

यही सोच कवि की मनोविश्लेषणात्मक दृष्टि का विकास करती है। जीवन के मर्म की व्याख्या विकास के विभिन्न स्तरों पर करना आज के कवि को समीचीन लगता है। संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकोत्तर कविता में भावना और मनोविज्ञान के सम्बन्ध को जितनी बारीकी और गम्भीरता से चित्रित किया गया है, उतना पहले की कविता में नहीं।

(घ) सौन्दर्यबोधक भावनात्मकता

आज की कविता यद्यपि सजगता और संघर्ष की कविता है तथापि सौन्दर्यानुरागी कवि उस सजग भाव में तथा संघर्ष के क्षण में भी सौन्दर्य की अनुभूति व सृष्टि करता है। बहुत से कवियों ने प्रकृति व नारी के सौन्दर्य की अभिव्यञ्जना अपने भावनात्मक गीतों में की है। आज के कवि ने चेतन-अचेतन सब में सौन्दर्य देखा है। उसके नारी-दर्शन में स्थूलता और नग्नता नहीं है। उसकी नारी स्वस्थ सौन्दर्य से ओत-प्रोत एवं सात्विक गुणों से परिपूर्ण सौन्दर्य की अक्षय और अन्नत निधि है। उसे देखने के लिए एक दार्शनिक की आँखें और कवि का हृदय चाहिए-

उस खिलखिलाती लड़की की

तस्वीर कैद कर लो

अपनी आँखों के कैमरे में।

उस लड़की की अल्हड़ता

उस लड़की की हंसी

उस लड़की का शर्माना

कैद कर लो अपनी यादों में।[26]

कविता केवल ऐंद्रिय संवेदन ही नहीं देती, वह इंद्रियेतर संवेदन की अनुभूति भी कराती है। सौन्दर्य मन-बुद्धि द्वारा ग्राह्य होता है। रस की अनुभूति में आत्म-विस्मृति और तल्लीनता की कुछ न कुछ आवश्यकता अवश्य ही होती है। सौन्दर्यग्राही हृदय में जब स्वयं ही सौन्दर्य या रस की उत्पत्ति होती है तब व्यक्ति को सौन्दर्यानुभूति होती है। सौन्दर्य एक स्वतन्त्र सत्ता है, उदाहरणार्थ-

और सौन्दर्य ?

अमराइयों की जमीनदारी नहीं।

सौन्दर्य पर

सुन्दर-से सुन्दर चीजों का

अधिकार नहीं होता।[27]

वस्तु का अधिकार सौन्दर्य पर नहीं होता अपितु वह सौन्दर्य के प्रकाश से प्रतिभासित होती है। सौन्दर्य की भावना एक अनन्त सत्ता की उपस्थिति और व्यापकता का अनुभव कराती है। कवि जब सौन्दर्यपूर्ण हो जाता है तब उसके हृदय में पड़ने वाली वस्तु का प्रतिबिम्ब कविता की भूमि तैयार करता है। विवेकी राय की कविता 'सौन्दर्य' में इस प्रकार के सौन्दर्य बिम्बों के दर्शन होते हैं-

झीम-झीम उठते हैं नभ दीप, पुहुमी के,

मौक्तिक में झलमल प्रतिबिम्ब पड़ते।

झीना पट, छन छन पाटव सुकान्ति आती-

ऊषा की, नीहार साथ सौरभ हैं झड़ते।[28]

प्रकृति के सौन्दर्य से कवि प्राचीनकाल से ही अभिभूत होता रहा है। अनुराग और आनन्द की अनुभूति में प्रकृति के सौन्दर्यपरक चित्रों और रंगों का विशेष महत्त्व है। रात-दिन, फूल-पत्तियाँ, नदियाँ-पर्वत और सूरज-चन्द्रमा की उपस्थिति से सुशोभित होने वाली समष्टि भाँति-भाँति के बिम्बों की सृष्टि करती है, यथा-

सुरभि से सुमन सब भरे हैं, मधुर गीत गाते मधुप हैं।

फलों से लदी सब डालियाँ, खेत में झूमती बालियाँ।।

सरो में तैरते हंस हैं, थपथपाती लहरें उन्हें हैं।

खिली है जलज की पंक्तियाँ, हवा में सुरभि बह रही है।।[29]

पुष्पों की सुगन्ध, मधुर गुँजार करते भ्रमर, फलदार डालियाँ, लहलहाती फसलों की बालियाँ और तालाबों में तैरते हंस इत्यादि प्रकृति के मोहक दृश्य किसी भी सहृदय और भावुक मनुष्य को आनन्दित करने वाले हैं। नारी का सौन्दर्य पुरुषों को आकर्षित करता है। सौन्दर्य ग्राह्य होने के साथ-साथ नितान्त स्वच्छन्द भी नहीं है। प्रत्येक सुख और सुन्दरता की पृष्ठभूमि एक कष्ट से, एक दुःख से बनी होती है। लीलाधर जगूड़ी की 'कष्टसाध्य' कविता में-

दुनिया में बार-बार फूटता है कष्टसाध्य सौंदर्य

लुभाता है एक स्त्री की तरह

सौंदर्य माँगता है बड़ी से बड़ी मेहनत

मेहनत करते हुए सुंदर तो वह दिखती ही है

पर जब आराम कर रही होती है तो कहीं ज्यादा सुंदर दिखती है।[30]

जीवन, कविता और सौंदर्य में से कोई भी चीज आज के कवि के लिए आसान नहीं है; कहीं सरल रेखाएँ नहीं हैं; प्रत्युत उलझे हुए रास्ते और तीखे मोड़ है जिन पर चलते हुए आगे नए रास्ते और नए मोड़ ही दिखते हैं। लगभग एक-सी और एकआयामी हो रही कविता के वर्तमान समय में सौंदर्यबोध की ये कविताएँ भावना के अनेक आयामों के साथ कुछ रोमांचित करती हैं, कुछ चकित करती हैं और कुछ इस तरह से आकृष्ट करती हैं कि पाठक या श्रोता के बीच भी एक प्रक्रिया शुरू

हो सके। आज का कवि सौन्दर्य-बोध के नए-नए रूपों का चितेरा है वह सौन्दर्यवादी धारणाओं से जुड़े उन नवीन प्रश्नों को उठाता है जिनके हल अभी तक प्राप्त नहीं किए जा सके हैं। रहस्य की अज्ञात परतों को उठाने का काम आज का कवि बड़ी ही बारीकी से करता है -

जिन्दगी मन्दाकिनी

धूमिल हुई कब प्यार से

कौन कब दूषित हुआ है

स्नेह निर्मल धार है

गगन वन्दनवार क्या है?

स्मित मधुर मधुपान क्या है?

सुमन का शृंगार क्या है?

भ्रमर का मृदुगान क्या है?[31]

कोई वस्तु सबको सुंदर दिखायी देती है, यह सौंदर्य का वस्तुनिष्ठ विधान है। क्योंकि सौंदर्य में सामान्यीकरण के तत्त्व होते हैं। इसी सौंदर्य को हम आत्मानुभूति के रूप में ग्रहण करते हैं जिससे उसमें आत्मनिष्ठता उत्पन्न होती है। भावना हमें सौन्दर्य में डुबोकर आत्मविस्तार के लिए उद्यत करती है। सौन्दर्य की अनुभूति के लिए आशावादी और रागात्मक होना आवश्यक है। मुक्तिबोध ने सौंदर्यशास्त्र को एक विचित्र मूल्य-शास्त्र और आदर्श-शास्त्र कहा है। सौंदर्यशास्त्र मूल्यशास्त्र होने के कारण मुख्यतः प्रणालियों के समवाय के रूप में प्रस्तुत होता है। सप्तकीय कवियों ने भी रस को त्यागने की अपेक्षा उसका संवर्द्धन और पुनर्नवीनीकरण करना उचित बताया है। सौंदर्य के सही मूल्यांकन में आत्मसंघर्ष की स्थिति से गुजरना भी युक्तिसंगत है। आत्म संघर्ष की परिणति ही रचनाकार की कुशलतम कृति है, उसकी सौन्दर्य भावना है-

अनवरत नयनों से

तुम्हारे मुख के रहस्यवादी पृष्ठों को

घंटो निहारता हूँ,

सुध-बुध खो जाता हूँ

बड़े मनोयोग से-

तुम्हारे सौन्दर्य का अनुशीलन करता हूँ।

शायद तुम कोई ग्रंथ हो

अपने रचनाकार की कुशलतम कृति हो।[32]

सौंदर्य भावना का जाग्रत होना और उसके प्रभाव से मनुष्य का अनेक रहस्यमय मनः स्थितियों में उलझना अपने आप में एक कौतूहल का विषय है। कवि इसी रहस्य से प्रेरित होकर निरन्तर परिवर्तनशील जीवन-मूल्यों के सौन्दर्य को देखता है और उनकी स्थापना का दायित्व निर्वहन करता है।

(ङ) राष्ट्रवादी भावनात्मकता

राष्ट्रीय भावना की रचना किसी विशेष परिस्थिति एवं परिवर्तन के बीच उस समय लिखी जाती है जब देश संकट अथवा संक्रमण काल से गुजर रहा होता है। वर्तमान समय में राष्ट्रीयता की सीमा नये आविष्कारों एवं चिंतन-दर्शनों की चेतना से सम्पृक्त होकर काफी व्यापक हो गयी है। आज का कवि कहीं आधुनिक समाज में युद्ध की समस्या, स्वतंत्रता के बाद असंतोष, दुःख, दरिद्रता एवं राजनीति का विरोध करता है तो कहीं व्यंग्य, विनोद, ओज एवं मिठास से भरी शैली के माध्यम से राष्ट्र निर्माण के प्रश्न तथा सामाजिक विषमताओं को पूरी गंभीरता एवं ओजस्विता के साथ उपस्थित करता है। उदाहरणार्थ कवयित्री सावित्री डागा की ये पंक्तियाँ -

मेरा देश, जो कभी

स्वराज व स्वतंत्रता का जन्मसिद्ध अधिकार था

आज सांस्कृतिक, मानसिक गुलामी में कैसे जकड़ गया है

प्यार से व्यापार कैसे बन गया है!

मेरा देश, इतना कैसे बदल गया है![33]

कवयित्री की चिन्ता स्वतंत्र राष्ट्र के बढ़ते सांस्कृतिक प्रदूषण के कारण है। जहाँ कभी प्रेम ही सबसे बड़ी पूजा थी, वहीं प्रेम को व्यापार बनाकर विश्वास और सम्बन्धों को आहत कर दिया गया है। केशव प्रसाद बाजपेयी की 'स्वार्थान्धता' कविता में इन्हीं भारतीय संस्कारों के ह्रास पर गम्भीर चिन्ता की गयी है -

यह दानवी उन्माद है मानव-जनित यह व्याधि है,

इसके घृणित स्पर्श से सब व्यर्थ योग-समाधि है,

है राष्ट्र पीड़ित हो रहा इस स्वार्थ के आपात से,

अब सोचना, कैसे बचे इस रोग के उत्पात से।[34]

मनुष्य के द्वारा उत्पन्न की गयी स्वार्थ रूपी व्याधि के प्रभाव से स्वयं मनुष्य पीड़ित हो रहा

है। इस असाध्य व्याधि के उत्पात से सम्पूर्ण समाज और राष्ट्र सांस्कृतिक संकट से जूझ रहा है। ऐसे संकटकाल में कवि अपने दायित्व का निर्वाह पूरी आस्था के साथ करता है। वह सम्बोधित करता है -

जो अनिश्चित जगह पर

अपनी पृथ्वी को बचाने के

निश्चय के साथ अडिग खड़े हैं

उन तमाम उद्विग्न, संशय-ग्रस्त

लोगों के साथ

मेरे देश

मैं तुम्हें सम्बोधित करता हूँ।[35]

देश की सुरक्षा और सेवा में तत्पर बहुत से लोग आज भी आन्तरिक एवं वाह्य संकटों से देश की अस्मिता को बचाये हुए हैं। कवि राष्ट्र के युवाओं को निरन्तर देश-प्रेम और देश सेवा का संदेश कविता के माध्यम से देता है। त्रिलोचन की ये पंक्तियाँ जीवन संग्राम में उतरने वाले तरुणों के लिए प्रेरणादायक हैं -

तरुण,

तुम्हारी शक्ति अतुल है

जहाँ कर्म में वह बदली है

वहाँ राष्ट्र का नया रूप

सन्मुख आया है।[36]

देश के तरुणों में अपार शक्ति है। इस ऊर्जा को सत्कर्मों में लगाने से समाज और राष्ट्र का विकास होगा। विकसित राष्ट्र में सभ्यता और संस्कृति का समुचित पोषण और विकास होगा-

जन-जन में जागे राग

देश की वाणी हो एक

समता ममता के पथ पर

संस्कृतियाँ हो पोषित अनेक।[37]

जाति, धर्म, शिक्षा और सभ्यता में सर्वोत्तम भारत-वर्ष की संस्कृति को विलुप्त होने से बचाने के लिए जन-जन की भावनाओं को समता और ममता के पथ पर अग्रसर करना सप्तकोत्तर कविता

का प्रथम लक्ष्य है। राष्ट्र-प्रेम की भावना से आप्लावित होता कवि हृदय अपने देश को ही सर्वस्व समझता है-

मेरी कजरारी

सीपी-सी आँखों में

जमा है

मेरे गाँव का नक्शा

मेरा गाँव

मेरा देश है

मेरा देश

मेरी बपौती है।[38]

कवि राष्ट्र, समाज, मानव-समुदाय, विविध-प्राणियों तथा समस्त प्राकृतिक सम्पदा की रक्षा के साथ वर्तमान एवं भावी प्रकाश-पुंज के लिए दिशा देता है। वह वर्तमान की समस्याओं को उजागर करके भविष्य के लिए कल्याणकारी संदेश देता है-

पूरब का देश जहाँ

धरती आकाश दोनों

मिल के हुए है एक

लालिमा उकसती।[39]

भारतवर्ष का सदैव से ही यह उद्‌देश्य रहा है, समस्त विश्व को ज्ञान और प्रेम की शिक्षा प्रदान करना। यहाँ पर समय-समय पर महान योद्धाओं और महापुरुषों ने जन्म लेकर अपने महान कार्यो से सम्पूर्ण विश्व में भारत वर्ष का नाम फैलाया। देशभक्ति की भावना जब-जब आहत होती है, तो शिवाजी, लक्ष्मीबाई, महात्मा गाँधी जैसे आदर्शो का स्मरण आना स्वाभाविक है-

नारी नहीं सिंहनी थी वो,

लक्ष्मीबाई रानी थी।

भारत माता के चरणों में,

उसे वीर गति पानी थी।[40]

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में भाग लेने वाले सेनानियों से आज भी जन-जन का भावनात्मक लगाव है। देश की आन-मान व गौरव की रक्षा में अपने प्राणों की आहुति देने वाले असंख्य

क्रान्तिकारियों और देशभक्त शहीदों को कवि बार-बार नमन करता है। श्यामनारायण श्रीवास्तव 'श्याम' की कविता 'उन्हे कोटिशः नमन' में सीमा पर डटे हुए जवानों के साहस और पराक्रम का वर्णन इस प्रकार किया गया है-

जिनकी नसों में रक्त वह बहता है अभी भी,
जो मातृभूमि के लिये मरता है अभी भी,
हुंकार हर अन्याय पर भरता है अभी भी,
हाथों में ले मशाल, देश आन-बान की,
निर्भीक हर कलुष का जो करने चले शमन,
उनको नमन विनम्र, उन्हें कोटिशः नमन।।[41]

मातृभूमि के लिये मरने वाले वीर सिपाही सदैव से ही अपनी बहादुरी का झण्डा हिमालय की चोटियों पर फहराते रहे हैं चाहे वह भारत-पाकिस्तान के मध्य हुए तीन भीषण युद्ध हों चाहे विभिन्न आतंकवादी संगठनों से जूझते हुए अपने प्राणों को मातृभूमि के कदमों में न्यौछावर करके। युद्धरत सैनिक के त्याग और बलिदान की भावना कवि को कविता से भी अधिक प्रिय है। युद्ध में डटे हुए वीर सैनिक की आँखों में आज का कवि कविता के दर्शन करता है-

मगर
इससे भी मुकम्मल और अच्छी कविता
युद्धरत-सैनिक की आँख में बसी होती है
अबोध किलकारी की शक्ल में
जिसे वह
घर की चौखट पर छोड़ आता है।[42]

सारे नेह-नाते त्यागकर एकमात्र मातृभूमि को ही अपना सर्वस्व मानकर देश का नौजवान सैनिक रणभूमि में शत्रुओं का सामना करके अपने सपूत होने का प्रमाण देता है। देश की लाज ही उसकी लाज है। स्पष्टतः कहा जाय तो सप्तकोत्तर-कविता की राष्ट्रवादी भावनात्मकता में इतिहास, वर्तमान, भविष्य और मानवीय मूल्यों से समन्वित राष्ट्र निर्माण के स्वर सुनाई देते है।

(च) मानववादी भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कवि अपने कवि-धर्म को जानता है, इसीलिए वह सिर्फ घटनाओं पर आँसू नहीं

बहाता, बल्कि टूटी-बिखरी, सहमी समूची मानवता के बीच ऐसी प्राणवायु को संचरित करने का प्रयास करता है, जिससे उसकी टूटती आस्था को बचाकर उसमें नवीन आशा का भाव जगाया जा सके। वह मनुष्य के मनुष्यत्व और कवि के व्यक्तित्व की रक्षा के प्रति पूरी तरह से ईमानदार है। भारतीयता शेष मानवता से इसी अर्थ में भिन्न है, कि हमारी विकास-यात्रा हिंसा से घोर अहिंसा की ओर रही है। भारतीयता ने जड़ को चेतनत्व प्रदान किया है जबकि शेष ने मनुष्य को भी जड़ बना देने का उपक्रम किया है। रूढ़ियों एवं मिथ्या परम्पराओं के आक्रोश और जाति एवं वर्गगत जड़ता से ऊपर उठकर विश्व मानवता का जयघोष सप्तकोत्तर कविता में मिलता है। आज की कविता में मानवतावादी दृष्टिकोण विविध रूपों में व्यक्त हुआ है। त्रिलोचन ने 'गीत' कविता में मानवीय गुणों को अपनाने हेतु प्रेरित किया है -

हर्ष को बाँट दो

खाइयाँ पाट दो

और सन्देह को

मूल से काट दो

पाँव की छाप छोड़ो न भूलों भरी।[43]

आज प्रत्येक व्यक्ति मानवता के गिरते मूल्यों के प्रति चिन्तित है। वह आधुनिक शिक्षा-पद्धति वैज्ञानिक विकास के खतरों और बाजारवाद के बढ़ते प्रभाव को मनुष्य के अन्दर देख रहा है। यह चिन्ता किसी एक जगह की नहीं अपितु समूचे मानव समुदाय की है। परस्पर मिल-जुल कर रहने से ही सारे कार्य सफलतापूर्वक सम्पादित किए जा सकते हैं, यथा-

आओ जानें कि हम क्या पढ़ा रहे हैं

ब्रह्मांड में रहने के कैसे तरीके बता रहे हैं

मिल-जुल कर रहना सिखाना होगा

मानव का सच्चा अर्थ बतलाना होगा।[44]

नयी शिक्षा नीति में मानवता के प्रतीकों को समाहित करने की आवश्यकता है। विज्ञान के तेजी से बढ़ते कदमों ने मानवता के विकास को अवरुद्ध कर दिया है। नये-नये आविष्कारों ने, नयी-नयी मशीनों के निर्माण ने, असंख्य मजदूरों को बेरोजगार कर दिया है और श्रमशील मनुष्य को विलासिता की दौड़ में शामिल कर दिया है-

कभी जल था, जंगल, वनस्पतियाँ, वातावरण

और अब सिर्फ़ जहाँ

धूसर चट्टान है निरापद, निर्जन

मर चुकी मनुष्यता

नष्ट हो गयी न जाने कब

और

और अधिक सभ्य होने के

चक्कर में।[45]

पहले से भी अधिक विकसित और सभ्य कहलाने के चक्कर में नये युग के मानव ने जंगल, वनस्पतियाँ, कुएँ, तालाब, बाग और पुराने संस्कारों को नष्ट करके वहाँ अपनी यान्त्रिक सभ्यता की नींव डाल दी है। नये-नये अस्त्र-शस्त्रों की खोज और बढ़ती मात्रा से सामाजिक शान्ति को भीषण खतरा उत्पन्न हो गया है -

आयुध अनुसंधान से, डरा शान्ति का ताज।

खतरे में अस्तित्व है, मानवता का आज।।[46]

कवि जानता है कि उसका वर्तमान समय ऐसे नग्न यथार्थ से भरा हुआ है जो उसकी अनेकानेक विवशताओं को रेखांकित करते हैं। जीवन-जगत् की बहुविध विषमताओं के बीच व्यक्ति अनेक मनोग्रंथियों का शिकार होता, पर सच्चा सर्जक तो वह है जो उनसे उबरकर; ऊपर उठकर कुछ नया रचता है। 'तुम एक इच्छा हो' में कवि रामप्रसाद दाधीच ने अपने इस दृष्टिकोण को, अपनी आकांक्षा को स्पष्ट शब्दों में व्यक्त करते हुए, पहले स्वयं की पहचान को तलाशने की बात की है। चेतना, राग, रस, गंध, दया, करूणा आदि कहाँ नहीं हैं? आवश्यकता इस बात की है कि इन जीवन-तत्त्वों को हम कहाँ तक अपने भीतर स्थान दे पाते हैं; तभी तो कवि कहता है -

अपने में कभी खुद शिनाख्त करो

अपनी महत्त्वाकांक्षा के

मकड़जाल को भेदकर

कभी उस तत्त्व को पहचानो।[47]

वर्तमान की विवशताओं और जीवन-जगत् की परिस्थितियों की त्रासदी के मध्य भी कवि मन-पाटल में भविष्य के सुन्दर स्वप्न सँजोता रहता है। आज की कविता आदमी को आदमी बने रहने पर जोर देती है। मोह और माया के दुष्चक्र में फँसा हुआ मनुष्य शून्यता और दुःखद अन्त तक

पहुँचाने वाली इच्छाएँ अपने भीतर पालता है-

इच्छायें मनुष्य को कुछ बनाती नहीं हैं

सम्भवतः उसे

क्षण-क्षण क्षार करती हैं

शून्य और रिक्त रहना

मनुष्य की नियति है....

मनुष्य भरता है क्षणिक सुखाभासों से

फिर रिक्त होता है, रेत रह जाता है.....

यही काल का शाश्वत क्रम है।[48]

कवि चाहता है कि हम अपनी असलियत को पहचानें क्योंकि सारी समस्याओं के मूल में यह एक तथ्य है कि व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर के मनुष्य को उसकी असलियत को, उसके वास्तविक चेहरे को या तो पहचानता नहीं या पहचानकर नज़रअन्दाज कर जाता है। कवि चाहता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपने अन्दर के आदमी को पहचाने -

अगर

आदमी को

आदमियत का लहू समझो

तो समझ सकते

आदमियत की रगों में बह रहा है

विषैला रक्त

जिसे शरीर से बाहर

निकाल दिया जाना चाहिए।[49]

इस प्रवृत्ति के उद्घाटन के पीछे कवि की यही धारणा रही है कि वह मानव की दुर्बलताओं एवं सबलताओं दोनों को प्रकट कर उसको नयी दिशा की ओर मोड़े। शोषितों के यथार्थ के चित्रण के प्रति भी कवि का मूल उद्देश्य जनता को उसकी दयनीय स्थिति से परिचित करा; उसमें नयी प्रेरणा एवं शक्ति भर, शोषकों के विरूद्ध खड़ा करना है। उसका विश्वास अडिग है -

तुम्हारे निवेदन में अधिकार की तीव्र गंध है

रीढ़ काठी-सी सीधी है

बैत-सी लचीली नहीं।

हठीली है तुम्हारी अस्मिता.........

सहायता का दान देखकर

तुम ललचाते नहीं।

छीन झपटने को आकुल-व्याकुल होते नहीं!

दान लेने में भी फैलाते नहीं हाथ।

झुकाते नहीं माथ।[50]

हर युग में गरीब किसान ही शोषकों का सबसे अधिक शिकार हुआ है। गरीब की दयनीय और गिरी हुई स्थिति को देखकर कवि के धैर्य की सीमा टूट जाती है तथा वह क्षुब्ध हो उठता है -

हम अपने देश के

रक्तखोरों को

जुबान देते हैं कि

हम लड़े बगैर नहीं मरेंगे....

कि हर हालत में

धधकाये रखेंगे

मजदूरा औरतों की छाती की आग।[51]

सप्तकोत्तर कवि शोषित मानव, समाज एवं नारी के प्रति अपनी गहरी सहानुभूति प्रकट करता है तथा उनके यथार्थ एवं दयनीय स्थिति को उजागर कर लोगों को उनके प्रति सजग व चिन्तनशील बनाता है। इतना विकास होने पर भी नारियों के गिरे हुए सामाजिक स्तर और वेश्यावृत्ति में जरा भी कमी नहीं आयी अपितु वृद्धि ही हुई है। अंशु मालवीय ने 'वेश्या' कविता में उसकी दीनता का वर्णन इस प्रकार से किया है-

आसमान तक बढ़ा कर

हाथ के पास से

तोड़ दी गयी पंतग की तरह

वेश्या

ऐसी संज्ञा है

जो सम्बन्धवाची नहीं हो पाती

जिसमें विशेषण नहीं लगते।[52]

वस्तुतः सप्तकों के बाद के कवियों ने पूँजीवादी शोषक वर्ग, जीर्ण-शीर्ण पुरातन मान्यताओं एवं रूढ़ नैतिकताओं का विरोध करते हुए मानवता के लिए एक अनुपम एवं कल्याणकारी शासन एवं समाज व्यवस्था की स्थापना हेतु अपनी वाणी मुखरित की है।

(छ) सैद्धान्तिक भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता हमारी सोच और दृष्टि का परिष्कार करके हमें रास्ता दिखलाती है। वह मनुष्य, जीवन और समाज के लिए कुछ उपयोगी सूत्र प्रस्तुत करती है। वह साहित्यिक और सामाजिक सिद्धान्तों का अनुपालन करती है। साहित्य में चलाये गये विभिन्न वादों, अहं, कुण्ठा, पीड़ा, क्षणवाद और गाँधीवाद का प्रभाव आज की कविता में परिलक्षित होता है। इन सभी सिद्धान्तों का प्रभाव आधुनिक समाज में किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा है। किसी परिवेश के सिद्धान्तों और संस्कारों का प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव उसमें रहने वाले व्यक्ति पर पड़ता है। सिद्धान्तों का सीधा सम्बन्ध सच से है। प्रत्येक सिद्धान्त जीवन के किसी न किसी सच से होकर गुजरता है। भगवान स्वरूप कटियार की कविता 'ईश्वर पर पुनर्विचार' में जीवन में सच के महत्त्व को सिद्ध करने का प्रयास कवि ने किया है -

सोचो क्या आदमी कभी सिर के बल चलेगा
या मुँह की बजाय खायेगा किसी और अंग से
यदि नहीं मुमकिन है यह सब तो
कैसे खारिज हो सकता है भला सच जिन्दगी से।[53]

मनुष्य के जीवन में बहुत से मीठे और कड़वे सच हैं, जिनके बिना जीवन की यथार्थ भूमि पर खड़े रहना असम्भव है। सत्य की अनुभूति से व्यक्ति नैतिकता के पथ पर सहस्रों विघ्नों को पार करते हुए कर्म करता है। कवि का मानना है कि जिन सिद्धान्तों और सच्चाइयों को अपनाने और व्यवहार में लाने की अपेक्षा हम दूसरों से करते हैं, उन पर पहले हमें स्वयं ही चलना होगा-

हम दूसरों से चाहते जो सत्यनिष्ठ विचार हैं,
यह देख लें पहले कि कैसे रख रहे आचार हैं,
जीवन परस्पर की क्रिया आदानयुक्त प्रदान है,
इसके लिये सिद्धान्त-पालन ही सटीक निदान है।[54]

सुखों का आदान-प्रदान ही मानव जीवन का सर्वोच्च सिद्धान्त है। दूसरों के सुख के लिए

अपने सुखों का त्याग करना ही मानवता है। मानवता का यह गुण उन्हीं विरले लोगों में पाया जाता है जो अपने जीवन को आदर्शों और कठोर नियमों का पालन करने में समाप्त कर देते हैं। सत्य और सिद्धान्त की रक्षा के लिए भावनात्मकता का होना अनिवार्य हैं। कवि रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के 'अपराधिता' काव्य के भीष्म सर्ग में आजीवन ब्रह्मचर्य का व्रत लेने वाले महामनस्वी भीष्म की मनः स्थिति का चित्रण इस प्रकार से हुआ है-

रहूँगा बन्द मैं आजन्म जकड़ा एक पत्थर में

मुझे घेरे रहेगी घोर निग्रह की कठिन कारा,

सुनूँगा मैं न जीवन में किसी के प्यार की धड़कन

बहेगी विश्व में मेरी यही अभिशप्त यश-धारा।[55]

पूर्व जन्म के शाप के प्रभाव से भीष्म को घोर निग्रह को स्वीकार करना पड़ता है। उनकी दृष्टि दाम्पत्य प्रेम से हटकर राष्ट्रप्रेम की ओर उन्मुख होती है। वास्तव में सैद्धान्तिक भावना से परिपूर्ण व्यक्ति के लिए प्रकृति और नियति के नियमों का जो महत्त्व होता है, वह किसी अन्य के लिए नहीं। कवि जानता है कि जब तक धरती में समता और ममता के उचित बीज नहीं बोये जाएगे तब तक यह वसुंधरा फल नहीं प्रदान करेगी -

बिना गुठली रखे धरती में

कैसे उगेंगे पौधे आम के?

भले ही

मैं कहता रहूँ धरती बड़ी उर्वर

जहाँ रखे खुरदरे..........कठोर पत्थर

लुप्त है धारा।[56]

कर्मवाद का अधिष्ठाता कवि विश्वास की टूटती दीवारों में स्वयं को सुरक्षित नहीं महसूस करता है। परन्तु उसका विश्वास भी पूरी तरह से नहीं टूटता है। वह अपने अन्तःकरण में कहीं-न-कहीं आशा की ज्योति जलाये ही रहता है। हर स्वर्गिक वस्तु का एक न एक दिन अन्त होता है और यही अन्त सब की नियति है-

उसने नहीं देखा था

वह सफेद पारदर्शी पवित्रता का

बवंडर में ऊपर बहुत ऊपर जाना

क्योंकि वह देखता रहा है

हर स्वर्गिक चीज का गिरना।

गिरना ही उसकी आंखों की

मूल बनावट की नियति है।[57]

मृत्यु जीवन का शाश्वत सत्य है। जन्म के साथ ही उत्थान-पतन, जय-पराजय और सुख-दुःख का क्रम चलायमान हो जाता है। युद्ध हो या जीवन में आने वाली छोटी-छोटी समस्याएँ मनुष्य नियति कभी हार न मानने वाली होती है। यहाँ तक कि केदारनाथ सिंह के कवि को भी हारना स्वीकार नहीं है -

दो आँखों में आन सिमटता

विस्तृत सब संसार

बहुत कठिन है हार

लाख बुझाओ, लाख मनाओ

मन को कब स्वीकार ?[58]

हार को स्वीकार न करना और जीत के लिए सतत् प्रयत्नशील रहना मनुष्य का स्वभाव होता है। पराजय उसे दुःख अवश्य प्रदान करती है, किन्तु यह दुःख उसे हिम्मत न हारने और कुछ नया रचने के लिए प्रेरित करता है -

दुःख के लिए ही लिखी है

हिम्मत न हारने की सूक्ति

दुकानों की सजावट से

मालूम होने लगता है

कितने प्रकार के दुःख देखने हैं

मुझको और देश को[59]

हिम्मत न हारना आज के कवि की आदत है। वह नया रचता है और नया रचते समय अपनी पुरातन संस्कृति व आदर्शों को नहीं भूलता है। उसका सिद्धान्त अहिंसा, समता और उदारता को अपने जीवन में उतारना है। अशोक चन्द्र की कविता 'लोग पूछते हैं' में-

आदमी

जना नहीं गया था इस हेतु।

मकसद उसका कभी नहीं रहा

हत्या।

उसे तो सिखाया गया था

जन्मते ही,

छुटपन से

अहिंसा परमो धर्मः

और सर्व धर्म समभाव.........।[60]

सभी धर्मो के प्रति समान आदर का भाव, अहिंसा को सबसे बड़ा धर्म मानकर तथा दया-प्रेम जैसे गुणों को अपनाकर मनुष्य अपनी आत्मनिष्ठा को सुरक्षित बनाए रख सकता है। प्रेम इस विश्व को एकता और शान्ति के अखण्ड सूत्र में बाँधता है। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, तारे इत्यादि सभी नेह के आकर्षण से ही बँधे हुए हैं। ब्रह्माण्ड का अस्तित्व प्रेम से ही है। प्रेम कभी नष्ट नहीं होता -

छुरी झोंकी गई

कटार भोंकी गई

बरछी भोंकी गई

तलवार भोंकी गई

प्यार जिन्दा रहा फिर भी।[61]

प्रेम मानवीय प्रकृति है, सृजन का सिद्धान्त है। प्रेम अपने आप में अनूठा है। सहृदय व्यक्ति के अन्दर प्रेम का अथाह सागर उमड़ता रहता है। पेड़-पौधे, पशु-पक्षी, दैत्य-दानव सभी कवि की दृष्टि में प्रेम करने वाले हैं -

कुमुदनी वृथा जन्म लेती जगत में,

सुधाकर उसे यदि नहीं प्यार देता;

निखरता न यौवन कभी भी धरा का

अगर मेघ उसको न जलधार देता;[62]

प्राकृतिक उपादानों के माध्यम से यहाँ कवि ने मानवीय प्रेम की सैद्धान्तिक अभिव्यञ्जना की है। समग्रतः सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने अनेकानेक साहित्यिक, सामाजिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को अपनी भावनात्मकता के रस से अनुप्रणित कर जीवनोपयोगी बनाया है।

(ज) दार्शनिक भावनात्मकता

आज के कवि में मात्र कविता में चमत्कार उत्पन्न करने की प्रवृत्ति ही नहीं अपितु गहन दार्शनिकता और सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि भी है। सप्तकोत्तर कविता की दृष्टि पैनी, अभिव्यक्ति स्पष्ट और दिशा निश्चित है। इसीलिए यह कविता आम-आदमी, फूल-पत्तियों, सांसारिक प्रवृत्तियों और मानवीय हृदय का गहन विश्लेषण करती है। आध्यात्मिक दर्शन से लेकर सांसारिक दर्शन और उससे भी परे मनुष्य की सूक्ष्म वृत्तियों का गहन विवेचन आज की कविता में सर्वत्र विद्यमान है। कविता में पीड़ा या दर्द की दार्शनिक व्याख्या प्राचीनकाल से ही होती रही है, किन्तु, आज के कवि का यह दर्द उसके व्यक्तित्व का परिष्कार करता है, उसकी आत्मा का परिष्कार करता है श्रीमती वीणा घाणेकर की कविता 'पता है, नहीं भी' में द्रष्टव्य है -

हम टूटी पतंग की मानिन्द........

सुखों का छोर लूटने.......

भागते हैं...

अपने जीवन के मूल्यों की डोर...

छूटती जाती है कहीं.......

लूटकर कौन ले जाता है ?

हमें पता है भी।

हमें पता नहीं भी।[63]

सुखों की प्राप्ति के लिए मनुष्य चारो तरफ बेतहाशा भागता रहता है। इस दौड़ में जीवन-मूल्यों को त्यागना भी उसे अनुचित नहीं लगता है। उसे पता नहीं चलता कि कब उसके मूल्य, उसके आदर्श उससे छीन लिए गए और क्यों छीन लिए गए। अपने अस्तित्व की रक्षा के लिए वह ऊँचाइयों में जाना पसंद करता है, किन्तु कवि की दृष्टि में अस्तित्व का सही अर्थ जीवन की गम्भीरता में ही ढूँढ़ा जा सकता है -

सच मानो

अस्तित्व का सही अर्थ

ऊँचाई में नहीं

गहराई में है।[64]

समृद्धि और ऐश्वर्य की ऊँचाइयों को प्राप्त करने की आकांक्षा व्यक्ति के मन में सदैव बनी

रहती है। सप्तकोत्तर कविता का कवि मनुष्यता की साधारण सतह से ऊपर उठकर कुछ अलग और नया रचने को उद्धत है। वह अपना जीवन दूसरों के लिए समर्पित करना चाहता है। वह लाचार और विपन्न लोगों की खुशी के लिए मरने को भी तैयार है -

किसी दिन मर भी सकता है वह

उनकी खुशी के लिए

जो मरे-से रहते हैं।

कवियों का कोई ठिकाना, नहीं,

न जाने कितनी बार वे

अपनी कविताओं में जीते और मरते हैं।[65]

सांसारिक दर्शन से उत्पन्न भावनात्मकता का स्वच्छन्द और सुस्पष्ट रूप आज की कविता में देखा जा सकता है। कविता जीवन-जगत के साथ गहराई से जुड़े कवि का मौलिक चिन्तन है। जीवन के सूक्ष्म से सूक्ष्म पहलुओं को जितनी समझ के साथ कवि व्यक्त कर सकता है उतनी समझ के साथ साधारण व्यक्ति नहीं। कवि कहता है -

बांचना है तो

नदी की आँख जाकर बांच

निर्जला है जो।

इन किताबों में नहीं है जिन्दगी

वह हाँफती

उस भीड़ में खोई मिलेगी,

खून से तर-हर सुबह/हर साँझ

हर कली की पांखुरी

रोई मिलेगी।[66]

जीवन की वास्तविकता को देखने के लिए दुनिया की भीड़ में प्रवेश करके उसके सत्य से साक्षात्कार करना होगा। गन्दी बस्तियों की गन्दी गलियों में भूख से बिलबिलाते ठंड से कंप कंपाते नंग-धड़ंग बच्चों की ललचाई हुई आँखों में झाँकना होगा। जीवन के हर भयावह रूप को देखना होगा। तभी जीवन के प्रति सकारात्मक और भावनात्मक सोच पैदा हो सकती है। जिन्दगी की विद्रूपता का वर्णन केदारनाथ सिंह की 'चीखने को जिन्दगी लाचार' कविता में इस प्रकार से किया गया है -

रौंदती है जिन्दगी को जिन्दगी।

काट खाती चूस जाती रक्त।

पीर जगती व्यक्त या अव्यक्त।

टूटता आकाश बारम्बार ।

चीखने को जिन्दगी लाचार।[67]

कवि के मन में जीवन के प्रति सदैव जिज्ञासा बनी रहती है। आधुनिक युग सांस्कृतिक संघर्ष एवं सम्मिलन का काल रहा है। आस्था-अनास्था, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य के प्रश्न भी इस युग में सर्वाधिक उभरकर सामने आए हैं। डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' के अभिशप्त शिला काव्य में गौतम -अहल्या की दार्शनिक चिन्तनपरक वार्त्ता के माध्यम से कवि ने सत्य और असत्य का दार्शनिक विश्लेषण बड़े सुन्दर ढंग से किया है-

झूठ क्या है? आज है जो कल नहीं है

सत्य क्या है? जो कहीं चंचल नहीं है

तो प्रिये! क्या सत्य को तुम जानती हो?

सत्य के आवर्त्त को पहचानती हो?

सत्य है जो दिख रहा है सूर्य-जैसा

सत्य के विपरीत सब छलना यहाँ है

भूत का विस्तार ही भौतिक जगत है।[68]

जो जड़ है, स्थिर है, वही सत्य है। जो चलायमान और परिवर्तनशील है, वह असत्य है। जीवात्मा और जगत् ब्रह्म के साथ एक ही चेतना से अनुस्यूत होने के कारण एक ही है। आत्मा और भूतत्व दोनों में से किसी एक का निषेध दर्शन-जगत् को अभीष्ट नहीं। दोनों में मात्र आवरण और विक्षेप के कारण भेद हो गया है। जड़ में चेतन तत्त्व, इसी विक्षेप, जो तमस् के रूप में परिव्याप्त है, उसके अवचेतन में प्रसुप्त है। ब्रह्म की चेतन-किरण जब उसको अपना स्पर्शदल देती है तो वह तमस् नष्ट हो जाता है और जड़ में अतंर्निहित चैतन्य जागृत हो जाता है-

लय से बदलती ध्वनि

ध्वनि से गति

बाँधना इन सबको

इक सूत धागे में

जीवन के सार को पाना ही

तपोमय क्रिया है

कवि की।[69]

जीवन की लय, गति और संगीत को निर्बाध रूप से एक धारा में मोड़कर आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत करना ही आज के आशावादी कवि को अभीष्ट है। आत्मतत्त्व विकसित होता हुआ अर्द्धचेतन से चेतन जगत् में पहुँचता है। सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने अध्यात्मिक चिन्तन की सरणी में अपनी निष्काम भावना को डुबोने का प्रयास किया है -

जो बीज की तरह सचल है

जो नींव की तरह ओझल है

जो है लेकिन जो दिखता नहीं

जो मौत के सन्नाटे में आत्मा की तरह धड़कता है

मैं उस तक पहुँचना चाहता हूँ।[70]

यहाँ कवि की ईश्वरीय सत्य तक पहुँचने की भावना व्यक्त हुई है। गाँधी और अरविन्द का दर्शन भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के मध्य के मार्ग की तरफ इशारा करता है। आधुनिक काल की सबसे अधिक चर्चित प्रतिष्ठित एवं क्रांतिकारी चिंतन-धारा मार्क्सवाद है। किसी विचारधारा को व्यावहारिक रूप दिये जाने की बात सर्वप्रथम कार्लमार्क्स ने प्रस्तुत की। वर्ग-संघर्ष मार्क्स का मूल दर्शन है। मार्क्सवादी कवि केशव तिवारी की कविता 'यह सुख किसका है' में यही नूतन अन्तर्द्वन्द्व परिलक्षित होता है -

धीरज यह किसका है कि

इतने दुःखों में भी नहीं दरकती है

मेरी छाती

साहस यह किसका है

कि मैंने टूटी-सी नाव पर बैठकर

ललकार दिया है सागर को।[71]

कहा जा सकता है कि सप्तकोत्तर कविता में भावनात्मकता के विभिन्न रूपों के साथ-साथ भारतीय एवं पाश्चात्य दर्शन से युक्त भावनात्मकता का कविता के भावपक्ष का निर्धारण करने में अत्यन्त विशिष्ट योगदान रहा है।

(झ) ऐतिहासिक भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता मात्र समकालीन घटनाओं या आन्दोलनों की कविता नहीं है। वह समूची मानवता के ऐतिहासिक आयाम को खोजने परखने एवं चित्रित करने वाली कविता है। डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय के शब्दों में "वह सिर्फ पंजाब, कश्मीर, असम, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, अयोध्या जैसी घटनाओं से नियंत्रित या संचालित नहीं होता। वह तो मानवता पर घिरते संकट और अपने भीतर उमड़ते भावों एवं विचारों से बार-बार झकझोरा जाता है..........इसी लिए हम पाते है कि इसमें समय का सच है, युग का मनुष्य, उसका इतिहास है, वर्तमान की चिन्ता है, भविष्य के प्रति सोच है और इन सभी स्तरों पर वह किसी न किसी रूप में संघर्ष करती दिखाई पड़ती है। इस प्रकार वह युग और, युगबोध से हमेशा जुड़ी रही है।"[72] भारतीय इतिहास की प्रवृत्ति पहले से ही आदर्शोन्मुखी रही है। यहाँ के अधिकांश लोग आत्मचिन्तन में ही अपना जीवन व्यतीत करते थे। उनके समक्ष भौतिकतत्व गौण थे। इस दृष्टि से हमारे पुराण भी एक प्रकार से इतिहास की कोटि में आते हैं। रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' के काव्य 'अपराधिता' में अंबा की करूण त्यक्तावस्था तथा भीष्म के अंतरंग और बहिरंग के आत्मविरोध को रेखांकित किया गया है। अपनी ही की हुई प्रतिज्ञा तथा अंबा के कठोर आग्रह से व्यथित होकर भीष्म की भावाकुल स्थिति इस प्रकार की हो जाती है -

रहेंगी भोगती वे आमरण पतिहीन ऋषि का वर
मरूँगा मैं नहीं मानव जिजीषा से सहज-प्रेरित,
रहूँगा देखता संताप मैं तीनों तरूणियों का
वियुक्ता और मृतवत्सा जननि के साथ आशंकित।[73]

अम्बिका, अम्बालिका युवावस्था में ही विधवा हो जाती हैं। अम्बा शाल्व के त्यागने और भीष्म के व्रत के कारण अविवाहित रह जाती है। अपहरण करने वाले भीष्म को क्या पता कि नियति का यह कलंक उनके मस्तक पर लगने वाला है। भीष्म आजीवन इसी दुःख से संतप्त होते रहते हैं। लक्ष्मीप्रसाद गुप्त के द्वारा रचित लाल बहादुर शास्त्री प्रबन्ध काव्य में पं० नेहरू के पश्चात् लाल बहादुर शास्त्री जी को कांग्रेस का नेता चुना जाता है और समस्त देशवासी हर्षित हो उठते हैं-

हुए सुसम्मानित शास्त्री जी
दल के निर्विरोध नेता।
मिला राष्ट्र को आदर्शों में
व्यवहारों का समचेता।[74]

आज के कवि की भावना भारतीय इतिहास के ऐसे परोपकारी, क्रान्तिकारी देशभक्त नेताओं के साथ जुड़ी है, जिन्होंने देश की रक्षा के रक्षा अपना सम्पूर्ण जीवन क्रान्ति और सत्य के पथ पर चलकर उत्सर्ग कर दिया है। भारत और चीन में गौतम बुद्ध के धर्म का जितना प्रचार हुआ उतना अन्यत्र नहीं। भारत और चीन कभी गहरे मित्र थे किन्तु पाकिस्तानी सरकार के षड़यन्त्र के फलस्वरूप भारत-चीन का भीषण युद्ध हुआ जिसमें भयंकर नरसंहार हुआ। इस हिंसा से आहत कवि नंद चतुर्वेदी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं -

तुम भारत से अपरिचित नहीं हो ह्वेनसाँग

उसका आकाश अभी भी स्वच्छ और नीला है

लेकिन भविष्य की अनेक पीढ़ियों की शिराओं में

यह जो घृणा का रक्त बहेगा

उसका दायित्व कौन संभालेगा

दुःख है, ह्वेनसाँग जब बन्दूकें उठती हैं

लोग बुद्ध को भूल जाते हैं।[75]

बुद्ध को लोग प्रणाम तो करते हैं, उनके धर्म का अनुकरण भी करते हैं, किन्तु, जब स्वार्थ और अज्ञान से ग्रस्त होते हैं तो अहिंसा और प्रेम के सिद्धान्तों को भूल कर युद्ध का वातावरण निर्मित कर देते हैं। जापान के हिरोशिमा और नागासाकी शहरों पर अमेरिका के द्वारा परमाणु बम फेंककर किया गया भीषण ध्वंस और भोपाल गैस त्रासदी जैसी ऐतिहासिक घटनाएँ मानवता पर किए गए अत्याचार के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं-

विवर्ण हो जाती सहसा

सोच हिरोशिमा का विध्वंस

भयावह त्रासदी भोपाल के

गैस रिसाव की

छिपी है क्रोड़ में जिसके

अनुत्तरदायी विध्वंस की

निरंकुशता आणविक युद्ध विस्तार

प्रस्तावित नभ का अनियंत्रित स्टार वार।[76]

परमाणु युद्ध के दिन-प्रतिदिन बढ़ते खतरे और अतीत में हुए तमाम युद्धों ने मानवता की

धज्जियाँ उड़ा कर रख दीं। सम्पूर्ण विश्व की भावनाएँ आहत हुई और अस्थिरता व असुरक्षा का भाव व्याप्त हो गया। यह चिन्ता सप्तकोत्तर कविता में प्रमुखता से उभरी है -

यह हजारों वर्ष का इतिहास जो घायल पड़ा है

युद्ध के प्रक्षेप से, हिंसा घृणा से,

आदमी का आज वह व्यक्तित्व बौना हो गया।[77]

भारतीय इतिहास के लगभग सभी परिवर्तन युद्धों पर आधारित रहे हैं। अपने बाहुबल से युद्ध जीतने वाला महारथी ही सदैव दिल्ली की गद्दी पर बैठता रहा है। भारत में स्वतंत्रता के पश्चात् लोकतंत्र की स्थापना होने पर भी आतंकवाद और बाजारवाद के खतरों से प्रत्येक व्यक्ति भयभीत है। कवि के अनुसार आज भी कुरूक्षेत्र, पानीपत और प्लासी के रक्तसने मैदानों की प्यास कम नहीं हुई है। उसे स्वयं योद्धा बनना होगा और नकाबपोश शत्रुओं का सामना करना होगा -

भारी मन से मुझे लौटना है

उसी कुरूक्षेत्र-उसी पानीपत-उसी प्लासी के

रक्त सने धूसर मैदानों से

एक थके हुए योद्धा की तरह खाली हाथ।[78]

प्रत्येक हिंसा का, प्रत्येक युद्ध का एक दिन अन्त होता है। और उस अन्त के साथ ही इतिहास के गर्त्त में अनेक भाषाएँ, अनेक संस्कृतियाँ और अनेक प्रजातियाँ लुप्त हो जाती हैं -

इतिहास के गर्त्त में

खो गई कितनी भाषायें

मिट गई कितनी संस्कृतियाँ

लुप्त हो गई

कितने ही जीवों एवं वनस्पतियों

की पहचान।[79]

प्रत्येक ऐतिहासिक घटना का साक्षी वह नगर होता है, जहाँ की संस्कृति और सभ्यता पर उसका प्रभाव पड़ता है। प्रयाग और काशी जैसे पौराणिक व धार्मिक स्थलों का इतिहास के आइने में अत्यधिक महत्वपूर्ण योगदान है। बहुत से क्रान्तिकारी राजनेता और साहित्यकारों को अपनी गोद में दुलारने वाले इन नगरों का भारतीय जन-मानस से गहरा जुड़ाव है। इसका उदाहरण है रमानाथ अवस्थी और अष्टभुजा शुक्ल की ये पंक्तियाँ-

'निराला', महादेवी पन्त औ, फिराक',

बच्चन', भारती और डाक्टर 'रसाल'

इन सबकी कर्मभूमि था यही नगर,

इनकी निकटता पा हुआ मैं निहाल।[80]

और

रात का कालिख धोकर सूर्य

प्रतिदिन बनारस के मुँह में चन्दन लगा देता है

इस तरह बनारस

अपना अण्डा अपने माथे पर सेता है

बनारस गलियों में जीता है।[81]

स्पष्ट है कि स्वतत्रंता प्राप्ति के पश्चात् भारतीय इतिहास के अन्वेषण की दिशा में किए गए विभिन्न प्रयासों और खोजों के फलस्वरूप कवियों ने कल्पना के साथ इतिहास को समान महत्त्व देकर कविता की भावनात्मकता को यथार्थ स्वरूप तथा दृष्टिकोण प्रदान किया।

(ञ) बौद्धिक भावनात्मकता

आज का कवि बुद्धि पक्ष से प्रभावित रचनाकर्म के प्रति सजग है। बौद्धिकतायुक्त भावना ही उसे संघर्षशील और युगान्तरकारी कविताएँ लिखने के लिये प्रेरित करती है। परिवर्तन की प्रक्रिया के चलते हर युग में आन्दोलनों एवं संघर्ष की स्थितियों के बीच विविध विचारधाराएँ और अनेकानेक दृष्टिकोण भी सामने आते हैं। आधुनिक कवि रचनात्मक दृष्टि से इनके उलझे रूपों को सुलझाने का पूरा प्रयास करता है। विज्ञान और साहित्य से गहराई तक जुड़े हुए अध्ययनशील कवि अज्ञेय की कविताओं में बौद्धिकता का प्राधान्य मिलता है। उनके आगे की कविता में बुद्धितत्त्व की अधिकता मिलती है। यह बौद्धिकता हृदय के तारों से जुड़ने वाली और अनुभूति को साथ लेकर चलने वाली बौद्धिकता है। आज की कविता 'क्षण' में 'अखण्डकाल की सत्ता' को प्रतिष्ठित करने वाली कविता है और सच तो यह है कि वह चिन्तन को अनुभूति में परिवर्तित करने वाली और पुनः 'अनुभूति के विशिष्ट स्वरूप' को प्रस्तुत करने वाली कविता है। बुद्धि मौन रहकर भी बहुत कुछ कहने वाली है, यथा-

वैसे रखा रहने दो

हमारे बीच

यह मौन

न हो भाषा, फूल तो है।

यही क्या कम है

एक सुगन्ध

भाषा बनी

हममें मौन है।[82]

भावों की सुगन्ध भाषा के रूप में बिखेरने वाला आज का कवि अपनी कविता के विकास के लिए करता है। उसकी कविता निर्भीक और निष्पक्ष निर्णय लेने वाली कविता है। गहन बौद्धिकता से उपजी क्रान्तिकारी कविताओं को रचे जाने से रोकना या भावनात्मकता से दूर करना किसी के वश की बात नहीं, उदाहरणार्थ -

दुनिया की कोई भी व्यवस्था

आज तक नहीं ईजाद कर सकी है

कोई जेल

जो कविता के लिए हो।[83]

कविता एक स्वच्छन्द विधा है। आज की कविता में तीव्रता और दृढ़ता दोनों मौजूद हैं। बुद्धि के प्रभाव से रची गयी कविता में इन दोनों तत्त्वों की ही प्रधानता होती है। आज का कवि प्रेम सम्बन्धी अनुभूति को केवल भाव से ही नहीं अपितु बुद्धि से नियंत्रित करता है -

लेकिन मैं कहता हूँ कि प्रेम अमूल्य है

उसका अहसास अवर्णनीय

बहुत गहरा सम्बन्ध है प्रेम का देह से

दरअसल प्रेम का बचना ही देह का बचना भी है

प्रेम बचा रहता है तो देह भी बची रहती है अपने विश्वास में।[84]

यहाँ कवि की बुद्धि यथार्थ से साक्षात्कार करती हुई प्रेम और देह के सनातन सम्बन्ध तथा प्रेम के मूल्य को व्यक्त करती है। प्रेम की रक्षा होने पर देह की पवित्रता भी बनी रहती है। सप्तकोत्तर कविता का कवि भावुक तो है ही परन्तु उसकी भावना कभी बुद्धि के प्रभाव से मुक्त होकर काव्य-जगत में विचरण नहीं करती है। कवि जीवन मूल्यों के प्रति आज के मनुष्य की आस्था पर प्रश्नचिह्न भी लगाता है, जैसे-

कि समय आ गया है

कि हम स्थगित कर दें

अपनी विचारधारा और सरोकार

और पता करें कि

हम जिन मूल्यों और आदर्शों के लिए

लड़ते रहे जीवन भर

उनके प्रति कितने आस्थावान और वफादार रहे।[85]

हमें अपने रूढ़िवादी विचारों और सामाजिक सरोकारों को बदलना होगा। समय की बदलती माँग और परिवर्तित होते जीवन-मूल्यों के अनुरूप ही जीवन शैली का निर्धारण करना आज के समय की महती आवश्यकता है। कवि अपने आप को नये युग के अनुकूल ढालने को कटिबद्ध है-

जो हुआ नहीं

होना चाहता हूँ अब से

हुआ करे कोई खुदा

क्या मजाल कि वह नचाए

और भरमा दे।[86]

इस युग का कवि भावनाओं के प्रवाह में बहने वाला या किसी प्रवृत्ति विशेष में ही रमने वाला भावुक व्यक्ति नहीं है। वह सुख और दुःख दोनों में समान रूप से जीने का आदी है। यह युग पूँजी और बाजार का युग है। उपभोक्तावाद और विकासवाद के इस कठिन दौर में मनुष्य का स्तर गिरता जा रहा है। मनुष्य-मनुष्य के लिए संकट बनता जा रहा है-

हो सकता है

पर हो सकता है आदमी ही

गड़ गया हो काँटे को।[87]

जिस समाज में लूट, हत्या, दंगे, हड़ताल, बलात्कार आदि का बोलबाला हो, वहाँ कविता की दृष्टि उस पर न पड़े भला यह कैसे हो सकता है। नियति-बद्ध व्यक्ति के जीवन में एक ऐसा भी समय आता है जब वह लाचार कगार की भाँति कट-कटकर समय के प्रवाह में गिरने लगता है, पर कवि अपने दमित स्वाभिमान को जाग्रत करके काल की राजाज्ञा को भी ठुकरा देता है-

प्रारम्भ तुम्हारा था, मध्य भी तुम्हारा था

अब अंत मेरा है

सुनो नियति

अपनी कथा का

अन्तिम परिच्छेद अब मैं ही लिखूँगा।[88]

इस प्रकार कवि रचना-दृष्टि सामाजिक संसक्ति और मनुष्यता की मुक्ति के प्रति अदम्य लालसा से युक्त तथा बौद्धिकता के आग्रह से पूर्ण दिखायी पड़ती है। अतः कहा जा सकता है कि कवि की बुद्धि व्यापक फलक पर संचरण करती है और विविध आयामों से अपना नाता जोड़ती है।

(ट) आधुनिक भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता का रचनाकार आधुनिक परिवेश में जीने वाला आम-आदमी है। बेहतर की आकांक्षा और विश्वास से युक्त आज का कवि हताशा में नहीं जीता। वह जानता है कि यह साँस्कृतिक प्रदूषण का युग है परन्तु साँस्कृतिक प्रदूषण के खतरों के प्रति वह सचेत है। इसलिए हताश न होकर वह विरोधी प्रवृत्तियों को समाप्त करने की बात खुलकर कहता है। बंगलों, कोठियों में पलता बढ़ता ऐश्वर्य विलासिता और कृत्रिमता अपनी ऊँचाईयों की चरम स्थिति में पहुँच रही है, पर इसी अनुपात में असहाय निरूपाय निर्धन जिंदगी झोपड़ियों से लेकर सड़कों-फुटपाथों, यहाँ तक कि कूड़ेदानों तक बिखरी पड़ी है। इस यथा-स्थिति का कवि ने बहुत समीप से अवलोकन किया है। यही कारण है कि कवि की भावनात्मकता आधुनिक युग की सामाजिक विद्रूपताओं और विवशताओं के चित्र प्रस्तुत करती है। सप्तकोत्तर कविता का कवि अपने परिवेश एवं वातावरण से पूरी तरह परिचित रहा है तथा उसके आस-पास की साहित्यिक, राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक परिस्थितियाँ एवं उनसे उत्पन्न चेतनायें उन्हें बराबर आंदोलित करती रही हैं। वह तमाम वैज्ञानिक चेतनाओं को अपने में आत्मसात करता गया है, फलतः उसकी चेतना एवं दृष्टि भी परिवर्तित हुयी है। डॉ० वीणा घाणेकर की कविता 'युगानुरूप व्यवसाय' में बाजारवाद का प्रभाव दर्शाया गया है-

हमारा

फूलों के प्रति आकर्षण

अब इसलिए है सिर्फ-कि

उसका बाजार भाव क्या है?

व्यापारिक पूछ-परख कितनी है?

आयात-निर्यात की क्या सम्भावनाएँ है।[89]

आधुनिक समाज में तेजी से बढ़ रहे बाजारवाद का प्रभाव बाजार की वस्तुओं से लेकर भावनात्मक सम्बन्धों और उनसे जुड़े प्रतीकों तक जा पहुँचा है। विश्वास और नैतिकता भी पूँजी के घेरे में दम तोड़ रहे हैं। विजेन्द्र ने 'ऋतुएँ बदलती हैं' कविता में लिखा-

विश्वास का पेड़

मरूस्थल में मुरझाया खड़ा है।

नैतिकता ने अपनी आँखे खोदी हैं।[90]

आधुनिकता की अंधी दौड़ में मनुष्य अपना सब कुछ पीछे छोड़ता चला जा रहा है। गरीबी तथा देशी शोषण के चलते अभाव, दुःख, दर्द एवं पीड़ा इत्यादि समाज से हटने का नाम नहीं लेते। और इन सबका कारण है स्वार्थी होता जा रहा मनुष्य। कवि कहता है-

अगर कभी आपको वाकई शैतान मिले

आदर दें उसकी कच्ची निरामिष शैतानी को

बाज आयें बताने से कि कितना पिछड़ गया वह।[91]

देश के नेता जिन्होंने बीसवीं सदी में भारत की बागडोर सँभालकर गाँधी के रामराज्य की कल्पना को साकार करने के वायदे किए वे ही स्वार्थलिप्सा एवं देश के शोषण में लगे रहे। बीसवीं सदी को आधुनिक कवि की दृष्टि इस प्रकार से देखती है-

समय

देखता रहा जलते फूलों और उजड़े बागों को

अभिशप्त है यह सदी उन्माद के शाप से

और शर्मिन्दा भी

अपने चेहरे को-खूनी खरोंचों को देखते।[92]

सरकार और शोषक वर्ग की कारगुजारियों से देश की सामान्य जनता के साथ ही कवि-वर्ग को भी बड़ी निराशा होती है। यही निराशा उसे ईश्वर से विमुख भी कर देती है। आज के कवि में किसी ईश्वरीय वरदान या मोक्ष की कामना नहीं है। उसे मानवीय सुख-दुःख सहने का इतना अभ्यास हो चुका है कि मोक्ष का सुख उसे अधूरा-सा लगता है-

प्रेम करने की ताकत और

शाप देने का जोर ढह जायेगा

क्रोध करने का ताप नहीं रहेगा

तुम जो मुझसे प्रसन्न हो उठे तो

अरे देवताओ! क्रुद्ध हो जाओ

मोक्ष पाकर इतना अक्षम

मैं नहीं होना चाहता।[93]

सप्तकोत्तर कविता का कवि सामाजिक विषमताओं से संघर्ष करने की प्रेरणा आम-आदमी को तो देता है साथ ही वह खुद एक संघर्षशील व्यक्ति के रूप में आततायियों के विरूद्ध अदम्य आकाँक्षा के साथ जूझता है। इतना ही नहीं आज के कठिन परिवेश में दो चेहरों के साथ जी रहे अपनों के साथ कवि भी विवशता से ग्रसित है, उदाहरणार्थ-

फिर क्या

मेरे भीतर एक मंच

आलोकित होगा

जहाँ तुम्हारे दोनों चेहरों के साथ

पात्र बनकर मैं खड़ा होऊँगा

और भूमिका निभाऊँगा एक साथ

प्रेमी और व्यभिचारी की।[94]

आधुनिकता की भावना अतीत का पुनर्निर्माण भी करती है। इसका अर्थ यह है कि यह अतीत के उन तत्त्वों को भी साथ लेकर चलती है जो शाश्वत है। उन तत्त्वों के प्रति एक नया विश्वास भी उत्पन्न किया जाता है। यह परम्परा की यथाविधि स्वीकृति ही नहीं है, बल्कि चुनाव की एक बौद्धिक प्रक्रिया है। ऐसे तत्त्वों के प्रति एक नया विश्वास बोधिसत्व की 'यह समय' कविता में देखा जा सकता है-

आँखों में आँखें डालकर

चाहत में डूब जाने का

बसन्त और मृत्यु के बीच

तकलीफों से लड़ने का

उम्मीद की पलकें चूमतें हुए

मर जाने का समय है यह।[95]

तात्पर्य यह है कि प्राचीन और मध्य का जो कुछ गत्यात्मक है, वह भी आधुनिक ही है।

आधुनिक भावनात्मकता वस्तुतः बौद्धिकता से निर्मित होने वाली नितान्त नयी और रचनात्मक अनुभूति है। आधुनिक कवि समय के पट पर समय सापेक्ष और शुद्ध भावों को उकेरने वाला सफल कलाकार है।

(ठ) काल्पनिक भावनात्मकता

कविता भावना के सुकुमार पंखों पर आरूढ़ होकर कल्पना लोक में सर्वत्र विचरती है। कल्पना और भावनात्मकता का संबंध आदिकाल से ही रहा है किन्तु आज की भावनात्मकता कोरी कल्पनाओं से उत्पन्न न होकर यथार्थ की भूमि पर पैदा हुई है। कल्पना कविता के लिए स्नेह का काम करती है। ठीक वैसे ही जैसे दीपक को जलते रहने के लिए उसमें तेल का होना आवश्यक है। काल्पनिकता ही कवि की मौलिकता की उद्भावना करती है। केदारनाथ सिंह के शब्दों में "जो कल्पना मिट्टी में उगे हुए सोआ- पालक के पौधों के भीतर सौन्दर्य देखती है, वहीं स्वर्ग और भूतल की मिलन-रेखा के समीप दूरता के गर्भ में छिपे रहस्य परक सौन्दर्य-बिम्बों का आविष्कार भी करती है।"[96] कल्पना अर्थात् मानसिक प्रतिभास और बाह्य वस्तु के सम्बन्ध को लेकर दर्शन के क्षेत्र में अनेक अलग-अलग मत और सम्प्रदाय उठ खड़े हुए हैं। चूंकि कल्पना बाह्य वस्तु की तरह जड़ और निष्क्रिय नहीं होती अतः उस में वस्तु से अधिक प्रभावी शक्ति होती है। इतना ही नहीं कवि शतदल की कल्पना तो प्राणवान है जो आकाश में उड़ती है-

दिन ढले,

अरूणिम हुए आकाश में

कल्पनाओं के पखेरू

उड़ गए।[97]

कविता में सर्वाधिक महत्त्व कल्पना का है। कवि के मन में किसी समय जैसी कल्पना उत्पन्न होगी वह वैसी ही कविता की रचना करेगा। कल्पना तत्त्व ही परिपक्व होकर भाव तत्व या भावनात्मकता का रूप ग्रहण करती है। कवि अपनी कल्पना को स्वच्छन्द और प्रवाहपूर्ण बनाये रखना चाहता है -

जिंदगी भर लिखा, किन्तु सन्तोष है-

लेखनी पर कभी दर्प लादा नहीं;

और, रूक भी रहा तो यही साध है-

कल्पना के भवन पर न ताला रहे।[98]

आज का कवि कल्पना को किसी ताले के अन्दर नहीं बन्द रखना चाहता है। कल्पना सुखजनित भी हो सकती है और भयजनित भी। प्रेमी हृदय की कल्पना कुछ और होगी तो द्वेषपूर्ण मन में उत्पन्न होने वाली कल्पना कुछ और, उदाहरणार्थ -

कल!

कल क्या होगा?

आँखों में प्रेम नहीं

दहशत होगी।

फूलों से सुगन्ध

और सूरज से तपिश

रूखसत होगी।[99]

सौन्दर्यपूर्ण दृश्य जगत का प्रभाव कल्पना में सर्वाधिक पड़ता है। जीवन-जगत के रहस्यों तथा मनुष्य की स्वातन्त्र्य भावना का प्रभाव भी कल्पना में पड़ता है। कल्पना ही विभिन्न स्वप्न चित्रों तथा बिम्बों का सृजन करती है। कल्पित भावों का गुंफित रूप ही स्वप्नचित्र है। जादुई पहाड़ और उस पर अंधेरी गुफा में बजता अज्ञात संगीत, ये रहस्यवादी कल्पना की ही रसानुभूति है-

हर निशा में

यह सुनहली, झिलमिलाती रागिनी,

कल्पना के देश में

जादुओं वाले पहाड़ों की अंधेरी कंदरा में

बांसुरी की तान-सी

गूँजती है रात भर आकाश में।[100]

छायावादी कविता में प्रकृति का सौन्दर्य, नारी के सौन्दर्य तथा अन्य वस्तुओं के सौन्दर्य की अपेक्षा कवि की कल्पना को अधिक प्रभावित करता रहा है। उनकी दृष्टि में नारी आधी कल्पना थी और आधी मानवी। सप्तकोत्तर कविता प्रकृति और नारी के सौन्दर्य पर रीझने वाले कवि की कविता नहीं है, अपितु जीवन के भयावह रूपों और हृदय के सूक्ष्म चित्रों को कल्पना की तूलिका से रंगमयता प्रदान करने वाली सचेष्ट व एकाग्र प्रवृत्ति है। कल्पना और विचार सदैव मनुष्य के साथ रहते हैं -

कभी नहीं मिटता विचार,

हर कोई इसका शिकार!

जो भी सोच रहा जैसा,

बनता भी है वह वैसा।

सोच यहाँ सबका अपना,

जैसे नींद और सपना।[101]

स्वप्नावस्था में तर्क, विवेक और संकल्प शक्ति के लिए कोई स्थान नहीं होता, वह पूर्णतः उपचेतन के अधीन होता है जबकि कल्पना में तर्क, विवेक और संकल्प शक्ति का विशेष महत्त्व होता है। यदि कवि का जीवनानुभव समृद्ध और गहन है अर्थात् बोधपक्ष व्यापक है, तो उसकी कल्पना भी संश्लिष्ट और गहरी होगी। केदारनाथ सिंह की निम्नलिखित पंक्तियों में कल्पना का यह गहन और संश्लिष्ट रूप देखा जा सकता है-

वही ऊर्जा

अभी जो है रखे

परमाणु को जिन्दा

छिटककर चाहती उड़ना

नये परमाणु को गढ़ना।[102]

स्मृतियाँ अतीत से जुड़ी होती हैं, वाह्य वस्तुएँ जड़ और निष्क्रिय होती हैं जबकि कल्पना अतीत और भविष्य दोनों से जुड़ी हुई व प्रवाहपूर्ण होती है। हमारी कल्पना हमारी इच्छा के अनुरूप ही विकसित होती है। कल्पना भावात्मक विद्रोह के रूप में जीवन और जगत् की नयी छवियों का उद्‌घाटन करती है तो उसे स्वच्छन्द कल्पना कहते हैं। केशव तिवारी की 'और अमर हो जाऊँगा' कविता स्वच्छन्द कल्पना का उदाहरण उपस्थित करती है-

मैं तुम्हारी भूख पर

कविता लिखूँगा

और कवि हो जाऊँगा

तुम्हारी मौत पर मर्सिये

गाऊँगा और

चर्चा में बना रहूँगा[103]

सप्तकोत्तर कविता के रचनाकार का जीवनानुभव बौद्धिकता एवं भावानुभूति से समृद्ध है। वह विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से अपनी काल्पनिक भावना को व्यक्त करने का प्रयास करता है -

खड़े हुए आतंक घेर कर

उलझन और अजान हुए दिन।

X X X X

चढ़े हुए दिन रक्तचाप से,

मुझको मार रहे हैं लकवे।

रखकर हाथ हिये पर कह दे,

किसको सुलझे हुए मिले दिन ?[104]

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता की भावनात्मकता कवि की कल्पना के विविध रूपों एवं बहुतेरे रंगों को शब्दों के चित्रों में भरकर बहुआयामी तस्वीरें प्रस्तुत करती है। यह कल्पना आधुनिक युगबोध से उपजी हुई परिवर्तित तथा विकसित कल्पना है।

(ड) प्रेमबोधक भावनात्मकता

सप्तकोत्तर कविता आज के कवि की प्रेम सम्बन्धी विचारधारा का पूर्ण प्रतिनिधित्व करती है। प्रेम केवल विनिमय की वस्तु नहीं है। प्रेम समर्पण और उत्सर्ग की भावना है। आजकल प्रणय सम्बन्धों एवं प्रेम की भावना के उत्तरोत्तर घटते जाने का कारण है वासना और स्वार्थ के संकुचित घेरे में सिमटता आदमी। परन्तु आज की कविता विशेषतः प्रेमगीत इसके अपवाद हैं। उनकी प्रणयानुभूति में भावात्मक तीव्रता उन्नत आध्यात्मिक स्तर पर भी पायी जाती है। प्रेम विश्वास और धैर्य की धुरी पर टिका हुआ संवेदनशील कल्पतरू है। आज के कवि की प्रेम संबंधी भावना देश-काल की सीमाओं को तोड़कर विश्व-प्रेम की प्रतीति कराने वाली कविता की सर्जना करती है -

सृष्टि का सौन्दर्य मन को खींचता है,

ज्यों तरणि को खींचता जल पर पवन।

बादलों के संग मन उड़ता हुआ,

भूल जाता है, असीमित है गगन!![105]

प्रकृति एवं सृष्टि प्रेम की भावना में शारीरिक उपभोग का भाव न होकर मानसिक परितोष का भाव अधिक होता है। कभी-कभी सृष्टि या प्रकृति के प्रति कवि की यह प्रेम भावना रहस्य से पूर्ण होकर ईश्वरोन्मुख हो जाती है। फिर भी आज का कवि प्रेम के यथार्थ रूप को महत्त्व देने वाला है। उसका प्रणय सुख-दुःख की अनुभूति करने वाला लोकोत्तर प्रणय है। कभी-कभी तो उसका प्रेम इतना मर्यादित हो जाता है कि उसे प्रिय से मिलन में व्यक्तित्व नाश के भय से गुजरना पड़ता है-

मैं प्रणय-पंथ का वह पथिक हूँ जिसे

प्रीति का प्राण! उपहास भाता नहीं,

जिन्दगी तिलमिलाती रहे पर उसे

क्रूरता का कुटिल-हास आता नहीं,

युगों-युगों तक जवानी पिपासित रहे,

किन्तु मर्याद को नाँघ सकती नहीं,[106]

तो कभी-कभी करुणा, विरह और वेदना के भावों की अधिकता उसे प्रिय के सामीप्य को प्राप्त करने के लिए व्याकुल कर देती है। फिर उसे प्रेयसी के सुकोमल हाथों का स्पर्श और मेघ सदृश सघन कुन्तलों की छाया ही संसार में सबसे अधिक सुखद प्रतीत होती है-

वहीं पर होती है

कोमल स्निग्ध हाथों वाली धूप

क्योंकि वहाँ सब अच्छा और

सब सुन्दर होता है

जहाँ हम प्यार कर रहे होते हैं।[107]

कवि को प्रेम में जलना, जागना, व्याकुल होना अच्छा लगता है, क्योंकि यह प्रिय से सम्बन्धित होता है। एक अनुभूति ऐसी भी होती है, जिसमें एक ओर सुख, हृदय में भ्रमित आह्लाद होता है तो दूसरी ओर अत्यधिक पीड़ा। उस मीठी और तीखी अनुभूति की प्रेम या प्रणय की संज्ञा दी जाती है। कविता का आधार भी प्रेम और सौन्दर्य है और उद्देश्य भी प्रेम तथा सौन्दर्य के संसार की रचना करना है -

मैं तुम्हारी तूलिका हूँ,

तुम सजन अद्भुत चिंतेरे

भावनाओं में तुम्हारी-

रंग भरते प्राण मेरे। ।[108]

भावना की कोमलता उपरोक्त पंक्तियों में द्रष्टव्य है। प्रेम की यही कोमल भावना कवि को उसके प्रिय से साक्षात्कार के लिए व्याथित करती है। प्रेम सभी बन्धनों से मुक्त है उसे किसी सीमा के अन्दर संकुचित नहीं किया जा सकता है। लौकिक प्रेम की तीव्रता कवि रामचन्द्र शुक्ल ने 'सूर्य और शाम' के प्रतीकों को लेकर प्रस्तुत की है -

निः स्तब्ध निशा के

केश खोले

नयन में अनुराग घोले

प्रिया के कर कंज पसार

कर रहा काम सिंगार

चाँदनी के स्फटिक दर्पन में

बाँध लो प्रिय इस छन में।[109]

प्रेम गीतों में जहाँ रूप माधुरी, वयःसौन्दर्य एवं मांसलता के प्रति कवि का आकर्षण रहा है वहीं प्रकृति के नित नवीन परिवर्तनों एवं उससे संबंधित उद्दीपनों के प्रति भी दृष्टि अछूती नहीं रही। विभिन्न ऋतुओं के वर्णन में चित्रात्मकता का सुन्दर रूप सर्वत्र उपलब्ध है। जहाँ नायिका अपनी सुकुमार वृत्तियों भावनाओं को मन में संजों कर संस्मृतियों के उच्च्य शिखर पर विचरण कर रही होती है, तब लगता है -

संस्मृतियों के उच्च्य शिखर पर जब कोई बदली चढ़ जाये,

नील-कमल जैसे नयनों की बरबस याद और बढ़ जाये,

सावन का मन भावन मौसम,

तुम बिन प्रियतम बीत न पाये।[110]

विरहानुभूति की तीव्रता में प्रेम की यह अवस्था होनी स्वाभाविक ही है। नारी प्रकृति है और पुरूष उसकी चेतना। प्रकृति का चेतन रूप ही प्रणय की अनुभूति कराता है। कवि को प्रकृति की यही चेतनता भावनात्मक और रागपूर्ण बनाती है। प्रेयसी का सौन्दर्य उसके अन्तःकरण के भेदो को खोलता है -

आज जैसे खोलती है

भेद सारे खोलती है

बोलती संसार की छवि

साँवली सूरत तुम्हारी।[111]

प्रेम के मार्ग में अनेक कठिनाइयाँ आती हैं, किन्तु प्रेम के तीव्र प्रवाह में वे सब बहकर दूर हो जाती हैं। प्रेम में इतनी तीव्रता और प्रवाह गहन साधना के फलस्वरूप ही आते हैं। सात्त्विक प्रेम मनुष्य को सत्य, सौन्दर्य और शिवत्व तक ले जाने वाला है -

शाम

कुछ इस तरह

उतरती है मेरे भीतर

जैसे कोसों दूर

धड़कता तुम्हारा मन

नेह की डोरी लिए

आ पहुँचा है बाँधने

सात फेरों का बंधन।।[112]

सप्तकों के बाद का कवि प्रेम और स्नेह के शुद्ध भाव का उपासक है। वह छल, छद्म और अस्थायी प्रेम को, कभी स्वीकार नहीं करता है। नया कवि मनोजगत का उन्नयन तथा काम चेतना का परिष्करण करके प्रेम के सरल मार्ग को ग्रहण करने वाला सजग रचनाकार है। वह युगों-युगों से प्रेम से जुड़ी कुरीतियों की भर्त्सना करता है-

राधा तुम गुमनाम और अंधेरी जिन्दगी

कैसे और कब तक जीती रहीं

कोई नहीं जानता

हाँ पर तुम्हारा छला जाना

आज भी जारी है।[113]

संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने प्रेमबोधक भावनात्मकता को व्यक्त करने के लिए जिन परंपरागत तथा आधुनिक तथ्यों को अपनी अनुभूति का अंग बनाया है वे वर्तमान परिवेश में व्यवहृत प्रेम के आशावादी एवं दार्शनिक सिद्धान्तों के गहन चिन्तन से उपजे हैं।

निष्कर्षतः कहा जाये तो सप्तकोत्तर कविता में कवियों की भावनात्मकता व्यष्टि, समष्टि, राष्ट्रीयता, मानवीयता, सिद्धान्त, दर्शन, बुद्धि, कल्पना, प्रेम, इतिहास, मनोविज्ञान, सौन्दर्य एवं आधुनिकता इत्यादि से सम्पृक्त है। यह इन सभी से उत्पन्न अनुभूति को अपनी वैचारिकता एवं रसात्मकता से अभिसिंचित करके अपनी कविता में शब्दाकार करता है और उन्हें मानवीय संवेदना के स्तर तक ले जाता है।

सन्दर्भ सूची

1. अजय कुमार नागपाल : आओ बन जाएँ; 'चीखें', पृ० 71
2. अनिल गंगल : एक टिटिहरी की चीख; 'अतंतः', पृ० 63
3. अशोक चन्द्र : धरती ने दिए हैं बीज; 'दुःख' पृ० 74
4. विजय देव नारायण साही : संवाद तुमसे; 'विषकन्या के नाम', पृ० 69
5. गिरिजा कुमार माथुर : पृथ्वीकल्प; 'काल दृष्टि', पृ० 87
6. देवीप्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; 'परम्परा पाठ', पृ० 20
7. माधवीलता शुक्ल : तृष्या; 'मौन', पृ० 61
8. रामेश्वर शुक्ल 'अचंल' : अपराधिता; 'अंबा', पृ० 33
9. गुलाब खण्डेलवाल : हर सुबह एक ताजा गुलाब; 'कभी दो कदम', पृ० 10
10. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'अभिनव', पृ० 43
11. राजेश दीक्षित : गीत भागीरथी; 'रात भर तो जला', पृ० 19
12. डॉ० रणजीत : खामोशी भयानक है; 'संसार हत्या का षड़यन्त्र', पृ० 17
13. त्रिलोचन : मेरा घर; 'मेरा घर', पृ० 13-14
14. जगत प्रसाद द्विवेदी : प्रेरक झरने; 'नेह भरे रिश्ते', पृ० 35
15. ओंकारनाथ त्रिपाठी : अभिनवा; 'अन्वेषण चिरन्तन', पृ० 2
16. सावित्री डागाः शताब्दी की सरहद पर; 'युद्ध', पृ० 60
17. डॉ० प्रेमचन्द विजयवर्गीय : देश का दर्द; 'शब्दों का उजाला', पृ० 35
18. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; 'विश्लेष' सर्ग, पृष्ठ 40-41
19. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'बीज', पृ० 37
20. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'अंतर मंथन', पृ० 56
21. गिरिजा कुमार माथुर : पृथ्वीकल्प; नि-सर्ग, पृ० 29
22. मोहन कुमार डहेरिया : कहाँ होगी हमारी राह; 'महामारी', पृ० 69-70
23. डॉ० प्रेमचन्द विजयवर्गीय : देश का दर्द; 'आधी रात का सूरज', पृ० 46
24. प्रदीप गंगल : मुखौटे; 'कभी तुमने', पृ० 33-34
25. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'मुझे सोचना है', पृ० 25
26. गोविन्द माथुर : उस लड़की की हंसी', लय (कविता संग्रह) सं० डॉ० माधव हाड़ा पृ० 47

27. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज, बाँका सूरज; 'अधिकार नहीं होता', पृ० 49

28. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'सौन्दर्य', पृ० 106

29. जगत प्रसाद द्विवेदी : प्रेरक झरने; 'बसन्त सुषमा', पृ० 38

30. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'कष्ट साध्य', पृ० 89

31. ओंकारनाथ त्रिपाठी : अभिनवा; 'सुमन का श्रृंगार क्या है', पृ० 30-31

32. सतीश जोशी : कुशलतम कृति (कविता); मधुमती (मासिक पत्रिका), मई जून 2005, अंक 5-6, पृ० 80

33. सावित्री डागा : शताब्दी की सरहद पर; मेरा देश, पृ० 83

34. केशव प्रसाद बाजपेयी : संवाद भारती; 'स्वार्थान्धता', पृ० 20

35. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय; 'तुम्हारे लिए मैं नहीं लिखूँगा सोने की चिड़िया', पृ 77

36. त्रिलोचन : मेरा घर; 'तरूण से', पृ० 25

37. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'एक और अनेक', पृ० 97

38. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'मेरा देश', पृ० 34-35

39. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'पूरब का देश जहाँ'; पृ० 35

40. भगवान सिंह भास्कर : 'स्वर्गादपि गरीयसी जननी'; राष्ट्रीय काव्यांजलि (काव्ये संग्रह), सं० डॉ० किशोरी शरण शर्मा, पृ० 160

41. श्यामनारायण श्रीवास्तव श्याम : 'उन्हें कोटिशः नमन'; राष्ट्रीय काव्यांजलि, पृ० 63

42. जितेन्द्र सिंह सोडी : हाजिर है समन्दर; 'अच्छी कविता', पृ० 20-21

43. त्रिलोचन : मेरा; 'गीत', पृ० 31

44. प्रदीप गंगल : मुखौटे; 'सुबोधनी', पृ० 112

45. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'अनेकान्त', पृ० 27-28

46. सुरेश कुमार शुक्ल 'संदेश': सपनों के प्रासाद; 'यहाँ न प्यार' पृ० 23

47. रामप्रसाद दाधीच : तुम एक इच्छा हो; 'तुम एक इच्छा हो', पृ० 3

48. रामप्रसाद दाधीच : तुम एक इच्छा हो; 'यही नित्य होता है', पृ० 16

49. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'पीली पड़ती जा रही-आदमियत', पृ० 131

50. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'गरीब', पृ० 14

51. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'मजदूरा औरतें', पृ० 67-68

52. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'वेश्या', पृ० 22

53. भगवान स्वरूप कटियार : जिन्दा कौमों का दस्तावेज; 'ईश्वर पर पुनर्विचार', पृ० 17

54. केशवप्रसाद बाजपेयी : संवाद भारती; 'नैतिक-ह्रास', पृ० 10

55. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : अपराधिता; भीष्म सर्ग, पृ० 21

56. विजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'लुप्त है धारा', पृ० 114

57. ऋतुराज : लय (कविता संग्रह) : 'कवि', सं० डॉ० माधव हाड़ा, पृ० 34

58. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'दो आँखों में आन सिमटता', पृ० 95

59. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्गम समय; ' दुःख जब नजर आने लगता है', पृ० 29

60. अशोक चन्द्र : धरती ने दिये हैं बीज; 'लोग पूछते हैं', पृ० 44

61. दफैरून : पेड़ अकेला नहीं कटता; 'ईश्वर कभी मरता है क्या ?, पृ० 21

62. राजेश दीक्षित : गीत उन्मादिनी; 'नियति में नियम से', पृ० 13

63. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'पता है, नहीं भी', पृ० 18-19

64. राजीव पांडे : तुम्हारे वो शब्द : 'ऊँचाई; सात कविताएँ', पृ० 63

65. कुँवर नारायण : इन दिनों ; 'दूसरों की खुशी के लिए', पृ० 75

66. देवव्रत जोशी : 'बांचना है तो'; लय (कविता संचयन), पृ० 94

67. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'चीखने को ज़िन्दगी लाचार', पृ० 18

68. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; 'चर्या' सर्ग, पृ० 7

69. विजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'भिन्न मुझसे', पृ० 105

70. देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; 'जो बीज की तरह सचल है', पृ० 9

71. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'यह सुख किसका है', पृ० 64

72. डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय : कविता की राह; साहित्य की हैसियत और समकालीन हिन्दी कविता का सच, पृ० 30-31

73. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : अपराधिता; 'भीष्म' सर्ग, पृ० 24

74. लक्ष्मी प्रसाद गुप्त : लाल बहादुर शास्त्री; 'नवम सर्ग (उत्कर्ष), पृ० 158

75. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय; 'आह! ह्वेनसाँग', पृ० 52

76. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'राजपथ', पृ० 60

77. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला', विश्लेष' सर्ग; पृ० 38

78. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'फिर मेरे पावों तलें', पृ 42

79. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'अनुबंध', पृ0 86

80. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'इलाहाबाद', पृ 75

81. अष्टभुजा शुक्ल : दुःस्वप्न भी आते हैं; 'यह बनारस है', पृ0 72

82. नरेश मेहता : 'देखना, एक दिन'; 'मौन', पृ0 93

83. नरेश मेहता : 'देखना, एक दिन'; 'काली कविता', पृ0 107

84. पवन करण : स्त्री मेरे भीतर; 'एक खूबसूरत बेटी का पिता', पृ0 20-21

85. अशोकचन्द्र : धरती ने दिये हैं बीज; 'इस सदी का अंतिम विमर्श', पृ0 32

86. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'और कुछ नहीं तो', पृ0 86

87. केदारनाथ सिंह : बाघ; 'छह', पृ0 22

88. रामप्रसाद दाधीच : कविता एक प्रणाम है; 'नियतिबद्ध मैं', पृ0 16

89. डॉ0 वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'युगानुरूप व्यवसाय', पृ0 33

90. विजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'ऋतुएँ बदलती हैं', पृ0 54

91. ओम भारतीः जोखिम से कम नहीं; 'यदि कभी मिल जाये शैतान', पृ0 43

92. रश्मि रमानी : बीते हुए दिन; 'इतिहास में बीसवीं सदी', पृ0 96

93. देवीप्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; 'मोक्ष के विरूद्ध', पृ 28

94. सर्वेश्वर दयाल सक्सेनाः खूँटियों पर टँगे लोग; 'नाटक', पृ0 110

95. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'यह समय', पृ0 107

96. केदारनाथ सिंह : आधुनिक हिंदी कविता में बिम्ब विधान; बिम्ब विधान का विकास, पृ0 133

97. शतदल : पवन गया नीली घाटी में; 'दिन ढले', पृ0 72

98. राजेश दीक्षित : गीत भागीरथी; 'रात भर तो जला', पृ0 21

99. प्रदीप गंगलः मुखौटे; 'क्या होगा.....प्रयास', पृ0 41

100. विजयदेव नारायण साही : संवाद तुमसे; ' इलाहाबाद-आधी रात', पृ0 12

101. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'विचार', पृ0 38

102. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज, बाँका सूरज; 'कि जैसे क्षोभ से भरता', पृ0 53

103. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'और अमर हो जाऊँगा', पृ0-90

104. नईम : लय (कविता संचयन); 'दो गीत', पृ0 115

105. माधवीलता शुक्ला : तृष्या; 'सृष्टि का सौन्दर्य', पृ० 37

106. राजेश दीक्षित : गीत उन्मादिनी; 'कष्ट मेरे लिए तुम उठाओ तनिक', पृ० 35

107. नरेन्द्र पुण्डरीक : सातों आकाशों की लाड़ली; 'जब हम प्यार कर रहे होते हैं', पृ० 76-77

118. माधवीलता शुक्ला : तृष्या; 'प्रकृति और पुरूष', पृ० 13

119. रामचन्द्र शुक्ल : अरुणिमा; 'सूर्य और शाम', पृ० 67

110. शिवकुमार सिंह 'कुँवर' : स्नेहिल बन्धन टूट गये तो; 'पावसी गीत', पृ० 19

111. त्रिलोचन : मेरा घर; 'साँवली सूरत तुम्हारी', पृ० 32

112. सुरंजन : सूरज का सातवाँ जन्म; 'मैं रंक हो जाता हूँ', पृ० 41

113. स्वरांगी साने : शहर की छोटी-सी छत पर; 'राधा सुनो', पृ० 20-21

पंचम अध्याय

सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशीलता

5

सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशीलता

आलोच्य युग के कवियों ने अपने-अपने ढंग से समय के सच को सम्पूर्णता में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है, और इस प्रयास में उनकी रचनात्मक ईमानदारी एवं संवेदनात्मक सघनता को भी देखा जा सकता है। मानवीय अस्तित्व को रक्षा प्रदान करने तथा उसे गरिमा प्रदान करने का भाव ही संवेदनशीलता है। काव्यात्मक संवेदना के सहारे जीवन में गहरे उतरकर कवि जो मुक्ता खोजता है उनमें सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ को ढूँढ़ने वालों को भले ही कोई विशेषता न दिखायी दे, परन्तु जो कविता को भावाकुल क्षणों की वाणी मानकर उसमें अपने हृदय की निगूढ़ झंकार सुनते हैं, उन्हें तो काव्य की यह शाश्वत रस माधुरी ही अपेक्षित है। जीवन की सहज, मार्मिक अनुभूतियों पर आधारित कविता ही साहित्य में स्थायी महत्त्व पाती है। अन्याय, असमानता, शोषण और विद्रोह जैसी बातें हमारी संवेदनाओं को प्रभावित करती हैं। जीवन के प्रति गहरे रागात्मक दृष्टिकोण ने ही आज के कवि को मानवीय जीवन के कटु-तिक्त यथार्थ के प्रति सहज संवेदनशील बनाया है और उनकी रचना-दृष्टि ने इन्हीं सबके बीच व्यापक आयामों को छुआ है।

सप्तकोत्तर कविता में ऐसी अग्रगामी-संवेदनशील और एक अर्थ में क्रान्तिकारी दृष्टि है जो इससे पहले की कविता में देखने को कम ही मिलती है। जहाँ 'हंस अकेला', 'मेरा घर', 'इस मिट्टी से बना', 'खूँटियों पर टँगे लोग, 'बसन्त में प्रसन्न हुई धरती' जैसी रचनायें जन-मन की संवेदनशीलता को प्रेरित करती हैं वहीं 'देखना एक दिन', 'नवगीत दशक', 'संवाद तुमसे', 'अभिशप्त शिला', 'तृष्या', 'अपराधिता' जैसे काव्यों की लयात्मकता मानवीय संवेदना का पोषण करती है।

आधुनिकतावाद, भौतिकवाद, वैश्वीकरण के विचारों ने आधुनिक विश्व की आध्यात्मिक परंपराओं व सांस्कृतिक मूल्यों को पीछे छोड़ दिया है। एक तरफ पूँजीवादी व समाजवादी विचारधाराएँ टकरा रही हैं तो दूसरी तरफ हिन्दूवादी, इस्लामिक व ईसाई विचारधाराओं में एक दूसरे पर आधिपत्य स्थापित करने की प्रक्रिया तेज हुई है। आज के युग में देश, काल व विचारधारा के अनुरूप स्वतंत्र चिंतन विकसित करने की आवश्यकता है। कोई कितना ही समृद्ध व शक्तिशाली क्यों न हो यदि वह संवेदनहीन है तो उसके विकास की प्रक्रिया सदैव अवरूद्ध रहेगी। सप्तकोत्तर कविता के कवि न कबीर की भाँति यौगिक क्रियाओं से सम्पृक्त आत्मा एवं परमात्मा के मानवीय प्रेम सम्बन्ध को अपनाकर चले हैं न सूफी कवि जायसी की

भाँति प्रेमजन्य आत्मानुभूति तथा प्रिय के चिरंतन विरह को लेकर चले हैं न मीरा की भाँति माधुर्य मात्र में लीन होकर प्रणय निवेदन को लेकर चले हैं, अपितु, उन्होंने चिर संतप्त जगती के मानवों का करूण क्रन्दन किया है। अतः उनकी संवेदनशीलता मानवता के अन्तर्गत व्याप्त सर्वात्मवाद के दर्शन कराती है। सप्तकों के बाद के प्रेम गीतों में उत्कृष्टम मानव संवेदनाओं का प्रस्फुटीकरण तथा सुमधुर चित्रण एक नयी प्रवृत्ति के रूप में उभरकर सामने आता है।

सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशीलता का विश्लेषण निम्नलिखित पूर्वोक्त बिन्दुओं के आधार पर किया जा सकता है-

(क) प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता
(ख) स्वाभाविक संवेदनशीलता
(ग) परिवेशगत संवेदनशीलता
(घ) यथार्थपरक संवेदनशीलता
(ङ) समाजपरक संवेदनशीलता
(च) दृष्टिपरक संवेदनशीलता
(छ) विषमतापरक संवेदनशीलता
(ज) न्यायपरक संवेदनशीलता
(झ) कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता
(ञ) व्यंग्यपरक संवेदनशीलता
(ट) लौकिक संवेदनशीलता
(ठ) अलौकिक संवेदनशीलता
(ड) सर्जनात्मक संवेदनशीलता

(क) प्रकृतिजन्य संवेदनशीलता

प्रकृति अनादिकाल से ही मानवीय संवेदना को प्रभावित करती रही है। आज के कवि के प्रकृति चित्रण की यह नवीनता है कि वह प्रकृति-चित्रण के जाल में उलझकर समाज एवं मानव जीवन की यथार्थताओं एवं विषमताओं को भुला नहीं बैठता अपितु प्रकृति और मानव-जीवन के बीच सामंजस्य बैठाने की कोशिश करता है। वह प्रकृति की प्रतिष्ठा के साथ-ही-साथ मानवीय संवेदना का भी हमेशा ध्यान रखता है। कहीं वह प्रकृति में अपार सौन्दर्य देखता है तो कहीं मानवीय सौन्दर्य को ही सर्वोपरि मानता है। आज की कविता में आधुनिक संवेदना से प्रेरित नये, अपरिचित और स्वच्छन्द प्राकृतिक बिम्बों की सृष्टि की गयी है। आज का कवि नक्षत्र, सौरभ, हिमकण, मधुप गुंजार और पुष्पों में ही सौन्दर्य का साक्षात्कार नहीं करता, अपितु मलिन बस्तियों में फैली गन्दगी के बीच भी सौन्दर्य का आभास पाता है। मनुष्य के द्वारा रची गयी प्रत्येक कृति में प्रकृति के रंग-बिरंगे चित्रों का होना स्वाभाविक है। कविता और प्रकृति में आधाराधेय सम्बन्ध है। दोनों ही एक दूसरे के बिना निष्प्राण और निष्पन्द हैं। प्रकृति का अज्ञात आकर्षण कवि के भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर उसकी चेतना को तन्मय कर देता है। जब

प्रकृति मानव के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी प्रतीत होती है, तब उस स्थिति में प्रकृति को संवेदनशील माना जाता है। ऐसे अवसरों पर प्रकृति सचेतन हो जाती है-

लेकिन खतरा है अब

नहीं करेगी सहन

प्रकृति अपना शोषण

सोच ले अब।[1]

मनुष्य के जीवन में प्रकृति का अत्यधिक महत्त्व है। मनुष्य की लगभग सभी आवश्यकताएँ प्रकृति के द्वारा ही पूर्ण होती हैं। परन्तु जब मनुष्य की बढ़ती महत्त्वाकांक्षाओं और स्वार्थी प्रवृत्तियों के कारण प्राकृतिक संकट उत्पन्न होता है, तो उसका आन्दोलित होना स्वाभाविक ही है। प्रकृति प्रत्येक रूप में सृष्टि में संवेदना का संचार करती है। कभी तो वह जीवन के लिए संघर्ष करती हुई-सी दिखाई देती है-

फैली प्रकृति मरुस्थल की

सब ही तो हैं संघर्ष लीन

करते जीवन को

समयहीन

अक्षुण्ण, अनवरत, अन्तहीन।[2]

तो कभी मनुष्य को नियमानुकूल, चलने की प्रेरणा प्रदान करती है। पर्वत, नदियाँ, आकाश और पशु-पक्षी सभी प्रकृति की अज्ञात रहस्यमय सत्ता से ही संचालित होते हैं। यही अज्ञात सत्ता आदि-काल से नैतिकता और सदाचार का संदेश देती रही है-

उस पेड़ पर अपना

घोसला बनाती चिड़िया से

मैंने घर बनाना सीखा

उस पेड़ के जरिये मुझे

किसी का संसार

न उजाड़ने की सीख मिली।[3]

कवि की यह सार्थक कल्पना उसके कविकर्म को भी सार्थक बनाती है। उसकी सार्थक सोच और सांसारिक दर्शन ही कविता को सर्वदेशीय और सर्वग्राह्य बनाते हैं। आज का कवि प्रकृति के पौराणिक

महत्त्व को अस्वीकार नहीं करता, किन्तु, वह प्रकृति के गर्भ में छिपे हुए वैज्ञानिक तथ्यों को उजागर करना अपना अभीष्ट समझता है। अतीत में खोए हुए प्रकृति के सौन्दर्य को तलाशता हुआ कवि कहता है-

क्यों नहीं अब हृदय में आशा के

अंकुर फूटते

कहाँ गई वह उर्वरा भू

धूप जो थी फागुनी।[4]

कवि प्रकृति की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य के दर्शन करता है। प्रकृति आदिकाल से ही मानव की सहायिका रही है। जहाँ मानव है, वहाँ प्रकृति है, जहाँ प्रकृति है वहाँ मानव है। प्रकृति और मानव का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। प्रकृति की ममता भरी गोद में बैठकर मानव माँ जैसा स्नेह प्राप्त करता है, यहाँ तक कि वह सब कुछ भूल जाता है। प्रकृति की ममता भरी गोद में बैठकर वह जिस शान्ति का अनुभव करता है वह शान्ति अन्यत्र दुर्लभ है। यद्यपि आज के मनुष्य की आर्थिक समस्याएँ उसे नगर के कृत्रिम वातावरण में रहने को बाध्य करती हैं, तथापि यदा-कदा वह इस नकली वातावरण को छोड़कर प्रकृति से मिलने के लिए विवश हो जाता है। इससे स्पष्ट है कि प्रकृति के प्रति मानव का विशेष अनुराग है और इसीलिए मानव द्वारा रचित काव्य में प्रकृति से उत्पन्न संवेदना के दर्शन होते हैं-

मुझे बुलाया है

आँगन के चिड़ियों भरे उदास नीम ने

तुलसी पर झुके

माँ के भीगे हुए चेहरे ने।[5]

आज की कविता में संवेदना और कोमलता का भाव इतना प्रबल है कि कवि संवेदना और कोमलता का निर्वाह करने के लिए सम्पूर्ण प्रकृति में ही नारी का रूप देखने लगता है। कहीं-कहीं पर तो कवि स्वयं नारी बनने लगता है। इसका कारण यह है कि नारी विधाता की सुन्दरतम और सर्वाधिक संवेदनशील कृति है। नारी का हृदय सदैव कोमल भावनाओं से आपूरित रहता है। नारी के कोमल और परजन्य रूप में प्रकृति के दर्शन कराने वाली केशव तिवारी की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

नीम की गझिन

छाया थी माँ

जिसके सनेह के फूल

झरते ही रहे हमारे ऊपर

सदानीरा नदी थी माँ

जो बहती रही

पितृ-संस्कृति के

पहाड़ों के बीच।[6]

सप्तकों के बाद के कवि की सुरूचि इतनी कोमल और संवेदनशीलता इतनी तीव्र है कि वाह्य यथार्थ का हलके से हलका आघात भी उसकी कल्पना को क्षुब्ध कर देता है। उसकी संवेदना अर्थात् काव्य की मूलभूत वस्तु और कल्पना अर्थात् उसको रूपायित करने वाली सृजनात्मक शक्ति, इन दोनों के बीच की दूरी कम हुई है। आज का कवि प्रकृति और संसार की सुरक्षा के प्रति सजग और संवेदनशील है। उदाहरणार्थ वंशी माहेश्वरी की ये पंक्तियाँ-

कितनी बार

उजड़ती दुनिया के सिरहाने

खड़े होकर सोचा जाता है

इस की उजाड़ता

बदलते बदलते बच जाती है संवेदना

छूट जाती हैं कई स्मृतियाँ

निहत्थी।[7]

इस प्रकार से प्रकृति के रमणीक दृश्यों के साथ-साथ मार्मिक एवं संवेदनशील दृश्यों को भी आज की कविता में प्रमुखता से स्थान दिया गया है। आज का कवि महानगरीय सभ्यता में पलने वाला और शुष्क व संवेदनहीन समाज में रहने वाला प्राणी है, जिसका प्रभाव उसकी कविताओं में भी दिखायी पड़ता है। फिर भी जब वही कवि प्रकृति के उन्मुक्त आँचल में अपनी कोमल भावनाओं को तलाशता है तो कविता में मर्मस्पर्शिता का भाव सहज ही आ जाता है। तात्पर्य यह है कि सप्तकोत्तर कविता में प्रकृति के विभिन्न रूपों में कवियों ने मानवीय संवेदना का अनुभव किया है। यही अनुभूति उसके विचारों, भावों एवं समझ को परिष्कृत करती है। इन कवियों की रचनाओं में प्रकृति संरक्षक, सहायक व शिक्षक के रूप में विद्यमान है।

(ख) स्वाभाविक संवेदनशीलता

कवि का एकान्त आन्तरिक जीवन और वाह्य सामाजिक सम्बन्ध उसकी स्वाभाविक संवेदनशीलता को प्रभावित करते हैं। उसकी गहरी अन्तर्दृष्टि से युक्त कल्पनाशक्ति देश और काल के जटिल सम्बन्धों के भीतर से संवेदनशील बिम्बों को एकत्र करती है। संवेदनशीलता कवि के चेतन विवेक और मर्यादा-बोध दोनों को जाग्रत करती है। प्रत्येक कलात्मक सृष्टि के पीछे कोई न कोई तीव्र मानवीय अनुभूति होती है। आज का कवि वाह्य यथार्थ के प्रति अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्व को अत्यधिक संवेदनशील बनाता है ताकि उसका मानसिक धरातल प्रत्येक वस्तु को देश और काल इन दोनों ही आयामों में प्रतिबिम्बित करने योग्य पर्युत्सुक और पारदर्शी हो जाये। उसकी सूक्ष्म आलोचनात्मक शक्ति प्रत्येक खोज के खरे-खोटेपन की तत्काल परीक्षा करती है। संवेदनशील कवि की समस्त संचित स्मृतियाँ एक लम्बी मानसिक प्रक्रिया से गुजरकर कविता का विषय बनती हैं। आज की कविता में अनुभूतिजन्य आवेग की प्रधानता है, संवेदनशीलता है और यह इच्छा-आकांक्षा, सुख-दुःख, पर-कातरता, देश-भक्ति, करूणा, वेदना आदि से ओत-प्रोत है। आज के कवि का मन निरन्तर व्यक्तिगत पीड़ा को लोक व्यापक बनाने एवं सुख-दुःख में सामञ्जस्य स्थापित करने की ओर प्रयत्नशील रहा है। उसकी संवेदना वैयक्तिक अहं, पीड़ा, कुंठा, क्षणवाद, आस्था-अनास्था तथा सौन्दर्य की अनुभूति से उपजी है। आधुनिकता और बाजारवाद की लम्बी दौड़ में आज का आदमी कितना विवश है, इसका उदाहरण कुमार अंबुज की 'दौड़' कविता में देखा जा सकता है-

हद यह है कि मैं बिलकुल नहीं दौड़ना चाहता

एक धावक की तरह पार नहीं करना चाहता यह छोटा-सा जीवन

नहीं लेना चाहता हाँफती हुई साँसें

हद यही है कि फिर भी मैं अपने आपको दौड़ता हुआ पाता हूँ।[8]

इस दौड़ में शामिल होना आज के कवि की मजबूरी है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति तेजी से भागते बाजार का हिस्सा बनता जा रहा है, और जो भी इस दौड़ से अलग एकान्तिक होने का प्रयास करता है उसका सामाजिक अस्तित्व संकटापन्न हो जाता है। स्वतन्त्र अस्तित्व को चाहने वाला आज का कवि इस विषमता से सर्वाधिक त्रस्त है। वह भली-भाँति जानता है कि इस अंधी दौड़ में शामिल होने का मतलब है अपने स्वाभिमान और गौरवबोध को आहत करना। स्वार्थ और लोभ के दलदल में फँसकर अपने कवि-धर्म को त्यागना आज के संवेदनशील कवि को अपेक्षित नहीं है-

मैं मृत्यु से नहीं डरता

और अमरत्व में मेरा विश्वास नहीं

लेकिन मैं नहीं चाहता प्रतिदिन मरना

थोड़ा-थोड़ा।[9]

वह जीवन को पूरी गंभीरता और सजग भाव से जीने का आदी है इसीलिए वह पूर्ण गौरव और आत्मनिष्ठा से युक्त है। कवि के अन्दर तमाम अभावों के बीच भी कहीं-न-कहीं यह विश्वास मौजूद है कि उसे कभी न कभी इन सामाजिक विषमताओं से मुक्ति अवश्य प्राप्त होगी और समाज में सत्य, प्रेम, अहिंसा और विश्वास की स्थापना हो सकेगी। कवि का आत्मविश्वास इतना दृढ़ है कि उसके लिए तिनका ही आश्रय देने के लिए पर्याप्त है-

यदि तुम तिनका हो

तो पर्याप्त हो

क्योंकि मुझे डूबना नहीं है अभी।[10]

कवि का यह विश्वास ही आज की कविता की वास्तविक पहचान है। संवेदनशील कवि जानता है कि जहाँ किसी अच्छी महत्त्वपूर्ण बात करने के मार्ग में अपने या अपने-जैसे लोग और पराये लोग आड़े आते हों वहाँ सांसारिक समझौते से ज्यादा विनाशक कोई चीज नहीं। मनुष्य की इच्छाएँ अनन्त हैं और वह निरन्तर इन्हीं इच्छाओं की पूर्ति में लगा रहता है। इसके बावजूद आज का कवि इसके विपरीत सोचता है-

शायद वह लौटना चाहेगी

फिर एक बार पहली इच्छा की तरफ

रास्ते में मिलने वाली

कामनाओं की अछोर भीड़ से बचती हुई

वह पार करेगी एक जीवन का बीहड़।[11]

वह कोई काम करता है तो सिर्फ़ इसलिए कि एक बार कोई काम हाथ में लेने पर उसे अधिकारी ढंग से भलीभाँति कर ही डालना चाहिए। उसे अपनी असफलता, नामहीनता और आकारहीनता की कतई परवाह नहीं है। उसके लिए किसी की यशस्विता चुनौती बनकर सामने नहीं आती अपितु अपने आदर्शों और सिद्धान्तों की रक्षा करना ही उसकी सबसे बड़ी चुनौती है। मनुष्य के लिए थोड़ी-बहुत सांसारिक

सफलता की इच्छा रखना स्वाभाविक ही है। मोहन कुमार डहेरिया की कविता 'विस्थापन' में सीमित सम्भावनाओं में अस्तित्व की तलाश करते कवि की इच्छा इस प्रकार से व्यक्त हुई है-

रहे नमी इतनी

नष्ट न हो जाएं संवेदनाएँ

निकल सके दुःख में बूंद-दो बूंद आँसू

एक और छोटी सी इच्छा है मेरी

आत्मा रहे, आत्मा की तरह

न जड़े अंगूठी में हीरे-सा कोई।[12]

कवि मानवीय संवेदना को बचाये रखने के लिए प्रतिबद्ध है। सुख से आनन्दित होना और दुःख में वेदना का अनुभव करना ही मनुष्य का स्वभाव है। कवि अपने महत्त्व को बढ़ाने या असाधारण बनाने के प्रयास में मनुष्य की सहज व प्राकृतिक प्रवृत्तियों को नहीं त्यागना चाहता है। वह भी साधारण मनुष्य की भाँति सुखों में अत्यधिक आनन्दित होना चाहता है और दुःखों में रोना चाहता है, परन्तु उसकी संवेदनशीलता सदैव ही साधारण मनुष्य की सी नहीं रहती है। कभी-कभी उसे उस सामान्य भाव-भूमि से हटकर कुछ अधिक संवेदनशील व्यक्ति के रूप में एक विशिष्ट सामाजिक की भूमिका का निर्वाह करना पड़ता है। जैसे कुमार अंबुज की कविता 'इस दौर में' में -

मैं छिपना चाहता हूँ मगर बहुत-से काम हैं

जो बाहर आए बिना नहीं किए जा सकते

आत्मा छिपाने के इस दौर में मुझे बार-बार अपनी आत्मा

दूसरों की हथेली पर रख देनी पड़ती है।[13]

किसी भी कवि के किसी भी अनुभव का एक हिस्सा उसके अपने प्राकृतिक स्वभाव से उत्पन्न होता है और यदि उसका यह अनुभव सार्वजनिक हो, आम हो, तो उसमें यथार्थ की मात्रा बढ़ जाती है। व्यक्ति का अनुभव सदैव देश-काल से निर्मित होता है। आज हम इक्कीसवीं सदी में आ पहुँचे हैं। इस सदी में ज्ञान-विज्ञान और सांस्कृतिक चेतना के नये-नये प्रतिमान गढ़े जा रहे हैं, मानवीय मूल्य परिवर्तित हो रहे हैं। विकास के विभिन्न आयामों के साथ-साथ यह सदी त्रासदी से भी भरी हुई है। रोज-रोज होती हत्याएँ, आत्महत्याएँ, सामूहिक बलात्कार, बम-विस्फोट, आंतकवादी हमले, इन सभी से मानवीय चेतना का ह्रास हुआ है। इन सभी समस्याओं का प्रत्यक्ष या परोक्ष प्रभाव कहीं-न-कहीं कवि और कविता की संवेदना

पर भी पड़ा है-

क्या किसी ने हमारी मानवीय चेतना का

छुप कर खून तो नहीं कर दिया।

लाशें, इतनी लाशें

हि हमारी संवेदना उनके बोझ तले दबती-दबती

निःस्पंद व जड़ तो नहीं हो गई ?[14]

मानवीय चेतना, विवेक और संवेदना की पड़ताल करने का कवि का यह आग्रह उसकी स्वाभाविक संवेदनशीलता का परिचय देता है। वह अपनी वैज्ञानिक बुद्धि और तटस्थ भावों के अनवरत प्रयोगों द्वारा अपने व्यक्तित्व का सफल वैज्ञानिक विश्लेषण करता है। उसकी आस्था एक सीधे-सादे, निश्छल और ईमानदार स्वभाव वाले आम आदमी में है। आज का कवि वैसा ही बनना चाहता है और वह ऐसे ही संसार का स्वप्न भी देखता है।

(ग) परिवेशगत संवेदनशीलता

सप्तकोत्तर कविता तक आते-आते कवियों का रुझान आँचलिक या परिवेशगत तथ्यों की ओर बढ़ता गया। केदारनाथ अग्रवाल की कविताओं में परिवेशगत संवेदनशीलता के अनेक उदाहरण देखने को मिलते हैं। अपने परिवेश के नागरिक जीवन तथा आधुनिक समाज की समस्याओं, परिस्थितियों एवं वर्ग-विषमताओं के चित्रण के लिए आज का कवि अपनी संवेदना को व्यापक नवीनता के साथ प्रस्तुत करता है। ग्रामीण जीवन के यथार्थ, सजीव एवं स्वाभाविक चित्र सप्तकोत्तर कविता में देखने को मिलते हैं। इन कवियों ने अपने परिवेश के सामान्य मानव, दीन-हीन, कृषक, विधवा, अशिक्षित नारियाँ, दर-दर भटकती भिखारिणी तथा निम्न जातियों के लोगों को अपनी कविता का विषय बनाया है। डॉ० यतीन्द्र तिवारी की 'विडम्बना' कविता में उच्चवर्गीय विलासी जीवन और दीन-हीन यंत्रणायुक्त श्रमिक जीवन का मार्मिक चित्रण इस प्रकार से हुआ -

वे। जो, किसी पांच सितारा भवन के

कँटीलें तारों वाली सीमा के पास

बसी बस्ती में

अपनी नारकीय जिन्दगी जीने

और/अज्ञान के अँधेरों को

भेदने के लिए आकुल-व्याकुल हैं।[15]

मानवीय परिवेश का ही एक विद्रूप हिस्सा ये नारकीय यंत्रणापूर्ण जीवन जीने वाले लोग हैं, जो अपना सारा जीवन गन्दगी से भरे हुए घरों-गलियों में और अशिक्षा व अज्ञान के अन्धकार में घिरे रहकर व्यतीत करते हैं। बाढ़, भूकम्प इत्यादि से बेघर हुए लोगों का जीवन तो और भी दयनीय और दुःखदायक हो जाता है। भुज में गणतन्त्र दिवस के दिन ही आए विनाशकारी भूकम्प का हृदयविदारक दृश्य कवि ने इस प्रकार से प्रस्तुत किया है-

मलबे में दबे स्कूली बच्चों के

छटपटाते नन्हें पाँव

कर रहे हैं कदमताल

गणतन्त्र-दिवस की शहीदी परेड

और सलामी ले रहे महाकाल।[16]

प्राकृतिक आपदाओं से होने वाले सामूहिक नरसंहार की ऐसी मार्मिक घटनाएँ इन ढाई दशकों में बहुतायत में हुई हैं। मानवीय विनाश के इस दौर में मनुष्य की बढ़ती भूमिका भी आज की मुख्य चिन्ता है। आधुनिकता की संवेदनहीन और अंधाधुंध दौड़ में भागता आदमी अपनी मूलभूत पहचान और संस्कारों को भूलता जा रहा है। आधुनिक परिवेश एक कहानी या सिनेमा के नाटकीय घटनाक्रमों से युक्त है। युद्ध, घृणा, संहार, स्वार्थ जैसी विनाशकारी प्रवृत्तियाँ आज के जन-मानस में अपना विस्तार करती जा रही हैं। टेलीविजन के विभिन्न समाचार चैनलों और क्षेत्रीय अखबारों में प्रतिदिन दिखायी जाने वाली रोंगटे खड़े करने वाली आपराधिक वृत्तियाँ तथा आपराधिक गिरोहों का भण्डाफोड़ जैसे ढेरों समाचार मानवीय संवेदना को तार-तार करने वाले हैं। भारतीय संस्कारों व आदर्शों की दृढ़ परिधि में बँधे हुए पारिवारिक सम्बन्धों का विघटन आज की सबसे बड़ी समस्या है-

आँख नहीं भरी, भर आया गला

टूटा इस तरह घर

घर के टूटने के कारण दबे पड़े हैं भीतर

कोई एक नहीं जानते हैं सब, टूटा कैसे घर

कहानी किस्सों के घर की तरह होता चला जा रहा है,

अपना घर

फिल्मों की तरह एकदम।[17]

मानवीय परिवेश में निरन्तर होते बदलाव व्यक्ति की दिनचर्या और अनुभूतियों को भी बदलते रहते हैं। कवि के लिए यह तीव्र परिवर्तन कौतूहल का विषय है। वह सांसारिक सुख-दुःख का मात्र मूक दृष्टा ही नहीं है, अपितु एक तटस्थ की भूमिका का निर्वाह करते हुए संघर्षशील व्यक्तित्व का निर्माण भी करता है। उसने भूख-प्यास और निर्धनता को बहुत समीप से देखा है-

महलों वाले समझ न पाये

भूख-प्यास कैसी होती है!

कई बार देखा है मैंने

कैसे निर्धनता रोती है![18]

आज के मनुष्य की अपने समीप रहने वाले मनुष्यों, पशुओं और यहाँ तक कि पेड़-पौधों के प्रति उदासीनता कवि को और भी अधिक संवेदनशील तथा क्षुब्ध बनाती है। मशीनी युग में और वैज्ञानिक परिवेश में रहने वाले मनुष्य को हृदय की मधुर स्वर लहरी में भटकने का अवसर ही नहीं है।वह तो पूर्णतः बौद्धिक और यान्त्रिक जीवन जीने का आदी हो चुका है। शहरी सभ्यता से प्रेम, परोपकार, पेड़-पौधे और शुद्ध हवा-पानी गायब-से होते चले जा रहे हैं। केदारनाथ अग्रवाल की 'लौट जायेगा' कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

उदास हो जायेगा निर्जन नगर में घूमते-घूमते।

जंगल लौट जायेगा

हरियाली का दोना लिये हाथों में,

मौन,

थका-थका

सर को झुकाये।[19]

आज की अन्धाधुन्ध उत्पादन और उपभोक्ता प्रक्रिया को देखा जाय तो सर्वत्र अपव्यय का आभास होता है- जो किसी भी ऊर्जा के संचित कोश के आकस्मिक विस्फोट के समान भयावह है। चीजों की बहुलता मानवीय अर्थों में तो हमें समृद्ध बना रही है,किन्तु,वास्तव में इससे हमारे बीच की दूरियाँ बढ़ रही हैं। ऐसे में आज के कवि को गहरे आत्मपरीक्षण की जरूरत महसूस होती है-

जब-जब

सिटी बस के सहयात्रियों के स्पर्श से

उनके पसीने की गंध

मेरे कपड़ों में समा जाती है

लगता है

मैं अकेली नहीं

मेरे देश की गरीब जनता मेरे साथ है।[20]

यह गंध भारतीय मजदूरों के कठिन श्रम और ईमानदारी से बने शुद्ध रक्त और पसीने की है, जिसमें संवेदनशील कवि को अपनेपन और ममत्व की अनुभूति होती है। हमारी पहली जरूरत यही है कि हमारे आपसी संबंधों में उदारता और विश्वास बढ़े। हमें अपने अन्दर झाँककर देखना होगा और एक ऐसी सच्चाई से सामना करना होगा जिसके सान्निध्य में हम प्रतिक्षण रहने को बाध्य हैं, और जिसकी न तो हम अनदेखी कर सकते हैं, न ही धोखा दे सकते हैं। आज के कवि की यही एक विनम्र कोशिश रही है कि उसके संवेदनों की परिधि संकुचित न होने पाए -

क्या तुमने देखी हैं

वह माँएँ

जो निस्सन्तान हो गयीं ?

माँएँ कभी उदास न हों

यदि जनन की जवाबदेही से

छूट सकें।[21]

घर-परिवार और परिवेश के प्रति मनुष्य की जबावदेही हमेशा से ही रही है। इस जबावदेही ने कवि की चेतना को बार-बार झिंझोड़कर उसकी आन्तरिक अनुभूतियों को जगाने का कार्य किया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि सप्तकोत्तर कविता में मानवीय परिवेश के धरातल की जो व्यापकता देखने को मिलती है वह पूर्ववर्ती किन्ही अन्य धाराओं में दृष्टिगत नहीं होती। सत्य तो यह है कि इस युग का परिवेश एवं मानव समाज की सापेक्षता में ही विकसित हुआ है। सप्तकों के बाद का कवि जहाँ एक ओर मानव परिवेश की यथार्थताओं एवं विद्रूपताओं को प्रकट करता है वहीं दूसरी ओर ग्राम्य जीवन के उल्लास तथा विषमतापूर्ण जीवन के उद्घाटन में भी अग्रणी है।

(घ) यथार्थपरक संवेदनशीलता

कविता में यथार्थ और समकालीनता का अपना विशिष्ट महत्त्व होता है। यथार्थ और समकालीनता का फलक काफी व्यापक होता है, क्योंकि यथार्थ और समकालीनता की बुनावट में विज्ञान, राजनीति,

समाज, दर्शन, साहित्य, संस्कृति आदि का ताना-बाना होता है। प्रत्येक युग के कवि की संवेदना, उसका यथार्थबोध अलग ढंग का होता है, क्योंकि परिवर्तित परिस्थितियाँ एवं घटनाएँ उसकी संवेदना में भी बदलाव करती हैं। कवि अपने युग-परिवेश की व्यापक एवं तत्त्वपूर्ण संवेदनाओं को अपने से अलग इसलिए भी नहीं रख सकता, क्योंकि कवि-व्यक्तित्व का विकास जीवन-जगत् की अनेकानेक सम-विषम स्थितियों एवं संघर्षों के बीच ही होता है। सप्तकोत्तर कविता जीवन-जगत् की ठोस वास्तविकताओं से सीधे साक्षात्कार करती और कराती है। आज का कवि अपने व्यापक परिवेश का मात्र यथातथ्य चित्रण नहीं करता, अपितु उसका मूल्यांकन एवं विश्लेषण भी करता है। प्रेम, विश्वास, आनन्द, उत्कंठा, आस्था, अनास्था, जय, पराजय, सफलता, असफलता, विनाश, विकास, निर्माण, ध्वंस इत्यादि यथार्थ-स्थितियों एवं जीवन-जगत् की कठोर वास्तविकताओं से जो टकराता है वही अपने सच्चे कवि-धर्म का पालन करता है। आज की कविता जीवन के आदर्शों, संस्कारों और यथार्थपरक मूल्यों का आग्रह लिये हुए है-

माँ के साथ

खत्म हो रही वह पीढ़ी

जो चावल मेराने से पहले

उसे धोती चुनती है

जो गेहूँ पिसवाने से पहले

आकाश में सूर्य की साँस

कितनी ही कमजोर होने के बावजूद

जरूर से जरूर

धोकर सुखाती है।[22]

प्रत्येक कवि मूलतः संवेदनशील होता है, इसलिए जीवन-जगत् की कठोर वास्तविकताओं से सामाजिक भावबोध से, सामयिक परिवेश से पूर्णतः निरपेक्ष हो ही नहीं सकता। वह जिस संसार में रहता है उसमें सुख और दुःख दोनों का निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। इस संघर्ष की स्थिति में सजग भाव से रचनाकर्म करना किसी संवेदनशील कवि के द्वारा ही सम्भव है। इसी स्थिति से होकर वह जीवन की यथार्थ परिभाषा को प्रस्तुत करता है-

जीवन है

विनत, लचीला

हरी घास-सा,

नर्म, संवेद्य

नवनीत-सा।[23]

वस्तुतः प्रत्येक युग के जीवन का यथार्थ,उसकी सामयिकता भिन्न तरह की होती है, लेकिन वह हम सबके और जन-जन के जीवन का यथार्थ होता है जिसे कवि शब्दों का आकार और वाणी देता है। कवि अपने समय की परिस्थिति एवं यथार्थ को चित्रित करने एवं अभिव्यक्त करते समय अपनी रचनाधर्मिता से समन्वित कर उसे देश, काल, समाज एवं जीवन की सम्पूर्णता प्रदान करके उत्कृष्ट और प्रामाणिक यथार्थ बना देता है-

एक भी देखा न ऐसा फूल इस जग में,

जो नहीं पथ पर चुभा हो शूल बन पग में

सब यहीं छूटा पिया घर जब चली डोली

एक आँसू ही रहा बस साथ दृग मग में,

किसलिए फिर अश्रु का अपमान?

अश्रु जीवन में अमृत से भी महान।[24]

ये आँसू झूठी भावुकता और नाटकीयता से निकले हुए आँसू नहीं हैं अपितु शुद्ध और सच्चे हृदय की गहरी संवेदना से निकले हुए आँसू हैं। कवि सांसारिक असारता का यथार्थ चित्रण करते हुए अपने आध्यात्मिक दर्शन को प्रस्तुत करता है। कवि धनञ्जय अवस्थीकृत शबरी काव्य में मतंग मुनि की आश्रिता शबरी अभिशप्त हो जाती है। शबरी के मतंग मुनि के पास जाकर मुक्ति की याचना-करने पर मुनि द्वारा इन सार्वकालिक एवं सार्वजनीन शब्दों में सम्बोधित किया जाना देश-काल की सीमा से बहुत आगे की कवि की सोच का प्रतिफल है-

बेटी !

जो बैंठ गए, हो निराश, जीवन में।

होता उपलब्ध नहीं, लक्ष्य उन्हें त्रिभुवन में।

जीते वे,

जिनका विश्वास जिया करता है।

जिसका विश्वास मरा

वही मरा करता है।[25]

वे शबरी के हृदय में जीवन के प्रति आस्था और विश्वास जगाते हैं। शबरी इसी यथार्थ को अपने जीवन का मूलमंत्र बनाती है। 'शबरी' कवि की संघर्ष की भावना का प्रतीक है। वह कोरी कल्पनाओं के मकड़जाल को काट-छाँट कर यथार्थ के मार्ग को प्रशस्त करता है। उसकी चिन्ता समकालीन सोच को वहन करती है। डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय के अनुसार "निस्सन्देह कविता कवि के अनुभवों में जन्म लेती है, उसकी संवेदना से संस्कारित होती है और भाषा के माध्यम से रचनात्मक रूप ग्रहण करती है परन्तु इन सबके बीच यथार्थ और सामयिकता का कलात्मक संयोग होता है, जिससे कविता जीवन्त एवं सार्थक तो बनती ही है साथ ही युग-धर्म की कविता के रूप में भी सामने आती है।"[26] इस प्रकार आज की कविता विकास और समृद्धि के झूठे नारे नहीं लगाती बल्कि नकाब के पीछे छिपे चेहरों को उजागर करती है-

रोटियों के गोल मुखड़े मोहते हैं,

स्वप्न भस्मीभूत होकर सो गए हैं,

कल्पना के पंख काटे जा चुके हैं,

गीत के अंगूर खट्टे हो गये हैं।[27]

कविता में समय और समाज के हर सच को अपने अन्दर समेटने की प्रवृत्ति होती है। कविता चिरकाल से जाग रहे संघर्षचेता कवि की ललकार है। वह कवि यथार्थ के ऊबड़-खाबड़ धरातल पर सजगता और आशावादी सोच के साथ चलता है। आज का कवि मृत्यु से भयभीत नहीं होता अपितु उसे एक विराट सत्य की भाँति स्वीकार करता है-

किन्तु मृत्यु का भय मेरा भय नहीं

क्योंकि वह परम सत्य है

मैं तो जग के इस विराट में

अपनी दुनिया खोज रहा हूँ

जिसे रचा था मैंने अपने ही हाथों से।[28]

इस विराट सत्य में कवि जीवन के यथार्थ तथ्यों को ढूँढता है। असम्भव क्षणों में भी कुछ सम्भावनाएँ तलाशना आज के कवि की विशेषता है। वह जीवन के अनगढ़ रूप से दूर नही भागता अपितु

उसे तराशकर सुन्दर बनाता है। इस कार्य के लिए उसे एक लम्बी अभ्यास की पंरपरा से गुजरना पड़ता है-

शुरू से अब तक जोड़ूँ तो एक दिन में नहीं आया

दुःख सहकर सुख पाने का सलीका

एक रात में नहीं जीत लिए गए रहस्यों के दुर्गम किले

यह सब अभ्यास की एक लंबी परंबरा है

मैं इसी परंपरा का एक जरूरी हिस्सा हूँ

रोज-रोज अभ्यास करता हुआ।[29]

सांसारिक बन्धनों में जकड़े और घिरे हुए जीवन के रहस्यों को भेदकर यथार्थ की तलाश करना किसी विशाल तिलिस्म के जादुई प्रश्नों को हल करने के समान कठिन है। सप्तकों के बाद का कवि प्रायः इसी तिलिस्म में घुसकर अनेकानेक खतरों से जूझता हुआ भविष्य की बेहतरी के लिए सतत संघर्ष करता हुआ दिखायी देता है। संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकोत्तर कविता जीवन और समाज के यथार्थ को पहचानने और मानवीय धरातल पर प्रतिष्ठित करने के लिए अपनी पूरी संवेदना के साथ तत्पर है।

(ङ) समाजपरक संवेदनशीलता

आज का कवि अपने जीवन तथा समाज के वर्तमान एवं भविष्य के प्रति आस्थावान है। वह अपनी वैयक्तिकता इतनी व्यापक बनाता है कि उसमें समाज की सारी आवश्यकताएँ समाहित हो जाती है। वह अपनी व्यक्ति-चेतना को समष्टि चेतना के साथ मिलाने की आकांक्षा रखता है। कवि मानव के भीतर सामाजिक आस्था का भाव पैदा करना चाहता है। सप्तकोत्तर कविता में व्यापक सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ कवि के लघु व्यक्तित्त्व में धैर्य, साहस एवं आत्म विश्वास के दर्शन होते हैं। व्यापक सामाजिक संवेदना को काव्य-सृजन का आधार बनाने के कारण ही सदियों से शोषित, प्रताड़ित एवं उपेक्षित नारी के प्रति एक नवीन एवं वृहद दृष्टिकोण आलोच्य युग के कवियों और उनकी कविताओं में प्रकट होता है। आज का कवि धर्म, राजनीति या लैंगिकता के प्रश्नों से गहराई और साहसिकता से जूझता है। आज का समाज सांस्कृतिक प्रदूषण एवं अनास्था के दौर से गुजर रहा है। साहित्य, धर्म, अर्थ, राजनीति सबके सब इस प्रदूषण एवं अनास्था के शिकार हैं। जीवन-जगत् के बीच, मनुष्य-समाज के बीच, धर्म एवं राजनीति के बीच जो कुछ भी अच्छा-बुरा घटित होता है उन सब पर कविता की नज़र होती है। ''सच तो यह है कि जब सब सो जाते हैं तब भी कविता जागती है, जब सब अवसाद से भर उठते हैं तब भी कविता सजग होती है, जब लोग पलायनोन्मुख हो जाते हैं तभी कविता संघर्षचेता के रूप में सामने आती है। इस प्रकार कविता टकराती है, साक्षात्कार करती है अपने समय से, अपने समय की चुनौतियों

से और उम्मीद को बनाये रखती है।"[30] आज का सामाजिक जीवन-बहुत-सी उम्मीदों नाउम्मीदों के बीच पल रहा है। मनुष्यता पर बार-बार प्रश्नचिह्न लगाने वाला कवि कहता है-

गिड़गिड़ाता हुआ मनुष्य

मनुष्यता की अंतिम निर्धारित सीमा पार कर

अकेले ही एक गहरे अतल में उतर रहा है

जबकि मनुष्यों के चेहरे सजाये अनेक लोग

एक-दूसरे के कंधों पर हाथ रखे

उसके पतन की रोमांचक पराकाष्ठा की प्रतीक्षा में हैं।[31]

सामाजिक विघटन के इस दौर में मनुष्य ही मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु बनता जा रहा है। जो भी सशक्त है वह सम्पन्न है और जो हीन-दुर्बल है वह निरपराध होकर भी अपराधी कहलाता है। जो पारदर्शी छवि वाले हैं उन्हें कलंकित करना और जो स्वाभिमानी हैं उन्हें अपमानित करने का एक चलन-सा हो गया है-

हमारे समाज में आदमी को अपमानित करने की

कई हजार तकनीकें विकसित कर ली गयी हैं

समाज में इतने सारे लोग इतने सारे तरीकों से

अपमानित किये जा रहे हैं कि लगता है

जो बहुत सम्मानित है, वह संदिग्ध है।[32]

आज के समाज की यह एक विषम परिस्थिति है कि जो गिरे हुए नीच प्रवृत्ति वाले लोग हैं उन्हें स्वच्छ चरित्र वाले व्यक्ति में भी अपने अवगुण दिखायी देने लगते हैं। ऐसे नीच व्यक्ति के गुणहीन चरित्र के निर्माण में, उसकी भाषा को शुष्क व संवेदनहीन बनाने में समाज के कुछ नकारात्मक तत्त्व उत्तरदायी हैं-

भाषा समाज की

ऐसी हो गई है

और तुम्हारी आकांक्षाएँ इतनी निष्फल

कि जब तुम कुछ कहना चाहोगे

तो हर शब्द पर

तुम्हारी जुबान अटक जायेगी।[33]

मनुष्य की आशाएँ निराशाओं से टकराती हुई प्रायः असफलता प्रदान करती हैं। जीवन की वास्तविक छवियाँ कविता से लुप्तप्राय होती जा रही हैं। वस्तुओं का मूलरूप यहाँ-वहाँ हो गया है। उपभोक्तावाद की दौड़ में संवेदनाएँ सूखने लगी हैं-

नई गुलामी की चमचमाती जंजीरों की आवाज

उसने सुनी नहीं है

उसे खबर नहीं कि पतीली और काँच के छोटे से गिलास की

उसकी ललछौंही चाय उससे छीन लेने के लिए

दुनिया के सबसे बड़े लोकतंत्र के मठों में चर्चा चल रही हैं।[34]

विकसित राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीतियों ने विकासशील राष्ट्रों की विकास प्रक्रिया में दखल देकर उनमें शंका और असुरक्षा की भावना उत्पन्न कर दी है। इतिहास, वस्तु और रिश्तों का क्रम भंग हो गया है। सप्तकोत्तर कविता में कवि नयी पीढ़ी के अस्तित्व और संवेदना की रक्षा की मांग को उठाता है-

उनकी कैद में बंदी अस्तित्व

कराहता है, पर विद्रोह के नाम पर

केवल करवट बदल पाता है

बौने हँसते जा रहे हैं

और वह चाहते हुए भी

कुछ कर नहीं पाता है।[35]

समाज में अपने स्वतंत्र अस्तित्व के लिए कवि बौद्धिकता और विरोधाभासी भावों को महत्त्व देने लगता है। मानवीय सम्बन्धों के भीतर बनते मोड़ों को बारीकी से अनुभव करता है। वह सामाजिक विद्रूपता की खुली व्यंजना करता है-

लोग जितने डरे थे

उससे भी अधिक

भूख से बेहाल थे

बंदिश से परेशान थे

उससे भी अधिक

उनकी आत्मा में

घुन लग रहा था।[36]

भारत को आजाद हुए लगभग साठ वर्ष होने जा रहे हैं। किन्तु तब से लेकर आज तक गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा और साम्प्रदायिक हिंसा में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखायी देता। समाज़ में हिंसा, पारिवारिक विघटन, अलगाववाद और क्षणवाद जैसी कुरीतियाँ घातक रूप धारण करती जा रही हैं। प्रेम, स्नेह, विश्वास और कर्तव्य तो नयी पीढ़ी के लिए अपवाद बनते जा रहे हैं-

किंतु जब वे देखते हैं

उसका पथरीला सख्त चेहरा

उन्हें लगता है

वह एक पारदर्शी केबिन में बैठा है

और वे बाहर से बार-बार पूछ रहे हैं

में आई कम इन सर

में आई कम इन सर

और वह अपनी ऐनक ही ऊपर नहीं उठाता है।[37]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने एक पिता के संघर्ष, कर्त्तव्य और आशावादिता के बदले में पुत्र के द्वारा मिलने वाली उपेक्षा का मार्मिक चित्रण किया है। यह दुःखद अवस्था आज के समाज में प्रायः सभी परिवारों में देखने को मिलती है। सप्तकोत्तर कविता में इन सामाजिक विषमताओं में भी आशावादी सोच के साथ तथा सुनहरे भविष्य की कल्पना के साथ जीने का विश्वास मौजूद है-

हम मस्जिद में पूजा करेंगे

इस देश में

हम एकता के प्रतीक बनेंगे

इस देश में

हम एकता का प्रदीप जलायेंगे

इस देश में।[38]

इस प्रकार स्पष्ट है कि सप्तकोत्तर कविता में सामाजिक संवेदनशीलता को काव्य-सर्जना का मानदण्ड स्वीकार करने के फलस्वरूप ही आज के कवि के दर्शन में व्यापकता आयी है और उसी के फलस्वरूप वह व्यष्टि से समष्टि की ओर उन्मुख हुआ है।

(च) दृष्टिपरक संवेदनशीलता

आधुनिक यथार्थ प्रतिदिन इतनी तेजी से बदलता जा रहा है कि आज जो दृश्य या चित्र अपनी विषयवस्तु के कारण नया जान पड़ता है वह निरन्तर बदलती हुइ पृष्ठभूमि के बीच कल पुराना पड़ जा सकता है। नये कवि ने हर दिन रंग बदलती कई चेहरों वाली दुनिया को बहुत नजदीक से देखा है। उसने आज की भौतिक सभ्यता के बीच अपने आप को नितान्त अकेला अनुभव किया है और एक हद तक असहाय भी। आरोपित दर्शन अथवा गृहीत विचारों की अपेक्षा साक्षात् अनुभव को वस्तुज्ञान की पहली और अन्तिम कसौटी मान लेने के कारण कवियों के दृष्टिकोण में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ। आज की कविता में 'भावना' के स्थान पर 'संवेदना' और धारणात्मक सूक्ष्म' के स्थान पर 'प्रत्यक्षात्मक ठोस' को महत्त्व प्रदान किया गया है। आज का कवि जब किसी भावनात्मक दृश्य को देखता है तो उस तक संवेदना की अनेक दिशाओं से एक साथ पहुँचने का प्रयास करता है। सप्तकोत्तर कविता ने कुछ विशुद्ध आधुनिक मानव-मूल्यों को ध्वनित करने वाले बिम्ब भी दिये हैं जो अब धीरे-धीरे प्रतीक बनते जा रहे हैं। दृष्टि के द्वारा ही वस्तुओं का चित्र और आकार ग्रहण किया जाता है। उसी आकार या चित्र के अनुरूप ही मनुष्य में भावों की उत्पत्ति होती है और भावों की मार्मिकता या प्रगाढ़ता उसमें संवेदनशीलता पैदा करती है, यथा-

एक कोण से देखें तो लगता है

मुस्करा रहे हैं बुद्ध

दूसरे कोण से वे दिखते है

कुछ विषादित विचार मग्न

तीसरे कोण में है

जीवन्मुक्ति की सुभगता

एक अविचल शान्ति।[39]

बुद्ध के चित्र या मूर्ति को देखकर कवि के मन में उनका सम्पूर्ण जीवन और उनके सिद्धान्त मूर्त भाव में उपस्थित हो जाते हैं। एक चित्र अहिंसा की साक्षात् मूर्ति का सांसारिक हिंसा को देखकर विषादमग्न होता हुआ है तो दूसरा चित्र दुःख और तृष्णा से मुक्त होने के विश्वास से ओत-प्रोत है। कवि के अन्दर उत्पन्न होने वाली दृष्टिपरक संवेदना उसके शब्दों और भाषा को जन्म देती है-

यह दृष्टि ही जन्म देती भाषा को

जिसमें उतरकर हम रचते खुद को

एकांत में।[40]

कविता के लिये कवि की दृष्टि जितनी व्यापक होगी, भावों को समाहार करने की जितनी कला होगी, तथा भाषा को भाव के अनुरूप संग्रथित करने की जितनी अधिक शक्ति होगी उसकी रचना उतनी ही संवेदनशील, प्रौढ़ और व्यापक होगी। अहमदाबाद की सड़कों पर हाथगाड़ियों और उन्हें खींचते स्त्री-पुरुष मजदूरों को देखकर कवि नरेश चन्द्रकर की संवेदना मजदूर स्त्री-पुरुषों तक ही सीमित नहीं रहती अपितु उन्हें काष्ठनिर्मित हाथगाड़ियों में भी प्राण और ऊर्जा के साथ-साथ भावों के निदर्शन होते हैं-

हम सिर्फ गाड़ियाँ ही नहीं है हाथ की

आदमी है हमारे पीछे

अपनी पत्नी-बच्चों सहित

यह बहुत मामूली है

हमें देखना सिर्फ गाड़ियों की तरह।[41]

निर्जीव और संवेदनहीन वस्तुओं में भी संवेदनशीलता का आरोपण कवि की उदार और आदर्श दृष्टि का ही मर्मस्पर्शी चित्र है। किसी दुःखी और विषादमग्न प्राणी को देखकर हृदय में खालीपन का अनुभव होना स्वाभाविक है-

सामने आता है जब कोई

उसके साथ पूरा कालखण्ड चला आता

दुखों की एक दीर्घ परंपरा

किसी की आपबीती सुनते हुए

खामोश ही रहा करता मैं।[42]

आज का कवि छोटी या बड़ी प्रत्येक वस्तु को अपनी सूक्ष्म दृष्टि से देखता है और उसमें जीवन-मूल्यों को तलाशता है। समाज में उपेक्षित और लाचार दीन-दुखियों के प्रति भी उसकी दृष्टि सम्मानपूर्ण और सोच आशावादी है। गए-गुजरे लोगों को देखकर कवि की निराशा कम हो जाती है-

देखता हूँ इन गए-गुजरे लोगों की ओर

निराशाएँ कम हो जाती हैं

शक्ति का एक बीहड़ जंगल लहराता है

रोज़ खूँखार सवाल पैदा होते हैं।[43]

कवि हर दशा में अपने को विराट से जोड़ना चाहता है। अपनी संवेदनाओं और विचारों से वह जितनी दूर तक सहमतित्व स्थापित कर सके उतनी दूर तक जाना चाहता है। उसकी दृष्टि व्यक्ति से लेकर समष्टि तक प्रकृति के प्रत्येक तत्त्व में एक कौतूहल के दर्शन करती है। बसन्त ऋतु के हरे-भरे सौन्दर्य को देखकर कवि के हृदय में एक अज्ञात सत्ता के प्रति आकर्षण का भाव उत्पन्न हो जाता है और वह प्रश्न कर उठता है-

तुम दिखते हो केवल बसन्त में

कोपलों की सुगन्ध में

x x x x

फसलें कट रही होती है

नया खून छलांगें मारता है

चौंक उठती है सृष्टि

तितलियाँ चूसती हैं फूल

तुम कौन हो।[44]

प्रकृति में हरे-भरे पेड़-पौधों और रंग-बिरंगे फूलों पर इतराती तितलियों को देखकर कवि के मन में उस अलौकिक सौन्दर्य के अन्दर छिपे रहस्य को जानने की उत्सुकता उत्पन्न हो जाती है। प्रकृति दर्शन की भाँति ही सौन्दर्य प्रेमी कवि की दृष्टि नारी के सौन्दर्य से प्रभावित होती है और वह कहता है-

इधर आओ,

मैं तुम्हारी पुतलियों को देर तक देखूँ:

यही है वह चिर-पराया व्योम ! जिसमें खिंचा

छूटे बान-सा हर दर्द उड़ता जा रहा है।[45]

प्रेयसी के नेत्रों के सौन्दर्य को देखकर उसमें कवि अपरिमित आकाश की कल्पना करता है तथा उसी नेत्राकाश में प्रवेश करके अपनी समस्त पीड़ाओं को भूल जाता है। सौन्दर्य को देखकर उसके मन में एक तन्मय उन्माद उमड़ता है जो धीरे-धीरे उसके पूरे शरीर पूरी आत्मा पर छा जाता है। सप्तकों के बाद का कवि प्रकृति और नारी के सौन्दर्य में ही मुग्ध रहने वाला रीतिकालीन कवि नहीं है। वह समाज और परिवेश की समस्याओं को भी उतनी ही संवेदना के साथ देखता है-

फिर लिखा नदी ने

विनाश का एक और पृष्ठ

नहीं बचा पाया राधे

वर्षों का जुहाया

बिटिया के ब्याह का सामान

बह गई सबके सामने से

कपड़ों से भरी संदूक।[46]

अभावों से जूझते गरीब व्यक्ति के ऊपर जब कोई दैवीय आपदा आती है तो उसकी दयनीय स्थिति को देखकर किसी भी सहृदय में संवेदना उत्पन्न होना साधारण बात है। संक्षेप में कहा जाय तो सप्तकोत्तर कविता में पहले की कविता की अपेक्षा आयी अधिक सजगता और नवीनता संवेदनशील कवि की दृष्टि में आयी व्यापकता व सूक्ष्म निरीक्षण शक्ति के कारण ही सम्भव हुई है।

(छ) विषमतापरक संवेदनशीलता

सप्तकोत्तर कविता में कवि ने वर्तमान की विषमता की पीड़ा को अनुभव करने के पश्चात दलित वर्ग के आशामय भविष्य की ओर दृष्टिपात किया है और समाज के टूटते हुए परम्परागत मूल्यों और खण्डित होते हुए आदर्शों के बीच यह अनुभव किया है कि सुस्त, जीर्ण और पिछड़े हुए युग का अन्त निकट है। यह अनुभव उसकी कविता में एक आक्रोश अथवा नव-निर्माण की आकांक्षा के रूप में व्यक्त हुआ है। वह अपनी बात को एक उग्र वक्ता की भाँति विद्रोहात्मक एवं क्रान्तिकारी ढंग से कहने में ही अपने कवि-कर्म की चरम सफलता समझता है। वैज्ञानिक और यन्त्र युग की विशिष्टता को सूचित करने वाले बहुत से बिम्ब और प्रतीक सप्तकोत्तर कविता में पहली बार आये जो आधुनिक जीवन के अन्तःसंघर्ष, टूटन, निराशा और नीरसता को ध्वनित करते हैं। औद्योगिक विकास के कारण जहाँ एक ओर नगरीय जीवन की समृद्धि बढ़ी है वहीं दूसरी ओर शोषण, निराशा और विघटनशील तत्त्वों में वृद्धि हुई है। आज का मनुष्य कहने को तो सभ्य एवं सुसंस्कृत है, किन्तु, वास्तव में उसने मुखौटे-दर-दर मुखौटे चढ़ा रखे हैं जो उसकी असलियत को प्रकट नहीं होने देते। विभिन्न प्रतीकों के माध्यम से कवियों ने आज के भ्रमित बौद्धिक मानव के थोथे एवं झूठे अहंकार का चित्रण तथा उसकी भ्रमपूर्ण स्थिति का आंकलन किया है-

वे मनुष्यता की असफलताओं और राजनीति की

महत्त्वाकांक्षाओं से पैदा हुए हैं

इन्हें पहचान पाना कई बार कठिन होता है

हो सकता है वे इतिहास के हत्याकांड के फरार मुजरिम हों

नरभक्षियों की कई आदतें राजनीतिज्ञों से मिलती हैं।[47]

आधुनिक युग में समाज में विषमता फैलाने में प्रमुख भूमिका राजनेताओं की है। लगभग सभी राजनेता भ्रष्टाचार के दलदल में धँसे हुए हैं। सत्ता और पद के लालच में नेता जनता को झूठे आश्वासनों और नारों से भ्रमित करके अपना उल्लू सीधा करते हैं यहाँ तक कि आज कल की राज्य सरकारों में प्रायः सभी मंत्री, हत्या, बलात्कार और घोटालों के दोषी हैं। लोकतंत्र के लिए भयंकर खतरा बनते जा रहे ये नेता आदमखोर जानवरों से भी अधिक भयानक चरित्र वाले हैं। आज का कवि उनकी इस सच्चाई से भलीभाँति परिचित है कि-

नहीं चाहता राजा

जनता रहे शांत-प्रसन्न

सोचने लगे भूख-बेरोजगारी के बारे में।[48]

यह वर्तमान व्यवस्था की एक ऐसी कटु सच्चाई है जिसे कवि ने वाणी दी है। आज जबकि कवि चारो ओर देखता है कि अन्याय, शोषण, अत्याचार, विनाश की लीला का ही विस्तार होता चला जा रहा है और आम आदमी उस विनाश-लीला को भोगने एवं सहन करने के लिए विवश हो गया है तो कवि व्यथित हो उठता है-

नहीं यह समय एक समुद्री प्रेत है

जो मन के जल में छोड़ता है विष

और तड़फड़ा उठती हैं

इच्छाओं की छोटी मछलियाँ।[49]

वह जानता है कि समूचे समाज में एक अजीब किस्म के भय को भरकर उसे संघर्ष से दूर करने का षड्यंत्र रचा जा रहा है। मनुष्य को निरर्थक वादों में उलझाकर उसकी विचारशीलता और संवेदना को छीनने का प्रयास किया जा रहा है। कवि इन सब विषमताओं से पूरी ताकत के साथ जूझने को तैयार है-

इसी से चाहती हूँ

आत्मा से छीलकर, खुरचकर फेंकना;

जगत के सारे आडंबर

ईर्ष्या, छल व बनावट के

नकली मुखौटों के

असली मुखड़े।[50]

समाज में चारो ओर निर्मित होने वाली विषम परिस्थितियों के लिए समाज के साथ-साथ कहीं-न-कहीं हम भी उत्तरदायी हैं। आज का कवि इस सच से भलीभाँति परिचित है इसीलिए वह आत्मा को भी खुरच-खुरचकर स्वच्छ व पारदर्शी बनाना चाहता है। वह विषमता को मिटाने वाली आग उत्पन्न करना चाहता है-

आग है यह विषमता को

मिटाने की आग है

आग है यह दनुजता को

मिटाने की आग है

दुश्मनों के वास्ते ये

रक्तरंजित फाग है।[51]

हिंसा तथा कामुकतायुक्त भ्रष्टाचार ने समाज में सर्वत्र भय और अशान्ति का वातावरण उत्पन्न कर दिया है। कोई भी अपनी बात खुलकर कहने से डरता है क्योंकि अच्छाई की तुलना में बुराई की मात्रा बहुत अधिक बढ़ चुकी है-

आदम जहाँ कह गया खुल के

उसके बीज न जन्मे कुल के

नयी पौध को लील रहा है

कामुक भ्रष्टाचार।[52]

समाज में जो संवेदनशून्यता की स्थिति बन गयी है उस स्थिति पर भी कवि क्षुब्ध है। संवेदनशून्यता की स्थिति ने समाज को इस तरह से जकड़ लिया है कि बड़ी-से-बड़ी घटना का भी उस पर कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता, गरीब मजदूरों की तो बात ही क्या-

हाड़तोड़ मेहनत मजदूरी

भूख गरीबी, मजबूरी

दर्द से दुःखता

बदन का पोर-पोर

अपमान भरी जिन्दगी।[53]

जहाँ एक ओर कवि समाज की आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थिति पर अपनी दृष्टि डालता है वहीं दूसरी ओर समाज की एक बहुत बड़ी आवश्यकता और उसके बिगड़ते रूप के प्रति भी वह चिन्तित दिखाई देता है। पूँजीवादी युग में आकर मनुष्य इतना स्वार्थी और लालची हो गया है कि उसके लिए मनुष्य का जीवन धन से अधिक मूल्यवान नहीं है-

सिक्कों का मूल्य यहाँ सब जानते हैं

मनुष्य का मूल्य कोई नहीं जानता।[54]

जिस समाज में लूट, हत्या, बलात्कार, दंगे, हड़ताल, स्वार्थ आदि का ही बोलबाला हो वहाँ मनुष्य का मूल्य भला क्या हो सकता है। विदेशी पूँजी निवेश और विदेशी अपसंस्कृति में डूबा हुआ समाज कवि की संवेदनाओं को निरन्तर आहत करता है-

जहाँ बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ

हमारी आँत में छिपे कीड़ों की तरह रहती हैं

और सिर्फ अपने ट्रेडमार्क से

हमारे निर्मित जूते को

हमें ही महँगे दामों में बेच देती हैं।[55]

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविताएँ आधुनिक भाव-बोध से जुड़कर अपनी गहरी संवेदनशीलता के साथ सामाजिक विषमताओं के विरूद्ध लामबन्द होती दिखाई देती हैं। इन परिस्थितियों में भी कवि का आत्मविश्वास वैचारिक दृढ़ता से युक्त है।

(ज) न्यायपरक संवेदनशीलता

आलोच्य युग की कविता मनुष्य विरोधी माहौल का विरोध करने वाली है। उसका उद्देश्य कानून और न्याय के प्रति निष्ठा को बनाए रखना तथा मानवता का कल्याण करना है। सप्तकोत्तर कविता में कवि अपनी न्यायपूर्ण संवेदना को प्रकट करता है। न्याय पाने का इच्छुक कवि विषम परिस्थितियों से लड़ने के लिए अपने भीतर की आग का सही इस्तेमाल करता है। आज जबकि चारो ओर कवि देखता है कि अन्याय, अत्याचार, शोषण, विनाश की लीला का ही विस्तार होता चला जा रहा है और

आम-आदमी उस विनाश-लीला को भोगने एवं सहने के लिए विवश हो गया है तो कवि व्यथित हो उठता है। सामाजिक संवेदनशून्यता की स्थिति में कवि की पीड़ा उसे संघर्षशील तथा विद्रोही बनाती है। फलतः कवि कभी तो इन विषम-परिस्थितियों के निर्माण का सारा उत्तरदायित्व आधुनिक राजनैतिक व्यवस्था पर डालता है तो कभी स्वयं को ही बराबर का जिम्मेदार मानता है। वह इस बात को भली-भाँति जानता है कि यह समय तटस्थ और असहाय बनकर रहने का नहीं अपितु खुलकर अपनी क्षमता को प्रदर्शित करने का है, तभी उसे उसका हक़ मिल सकेगा-

आएगी

कभी वो रात भी आएगी

फुलझड़ियाँ छूटेंगी

सिर अनाज से फूटेंगे

हाथ पैरों के धुएं के साँप

बढ़ेंगे

ढहेंगे आसमान के महल।[56]

मनुष्य के मन में आजीवन यह विश्वास बना रहता है कि उसे कभी-न-कभी जीवन की जर्जर व्यवस्था से मुक्ति मिलेगी और शान्ति का सूर्य उगेगा। कविता में भी यह विश्वास पूरी आस्था के साथ मौजूद है। परन्तु जब कभी समय के सच और उसकी अनेकानेक विसंगतियों से कवि को जूझना पड़ता है तो वह कहता है-

हे ईश्वर तुम इंद्रियों के आचरण में हो या मन के उच्चारण में ?

हे ईश्वर तुम सदियों से यहाँ क्यों नहीं हो

जहाँ तुम्हारी सबसे ज्यादा और प्रत्यक्ष जरूरत है।[57]

धर्म और न्याय व्यवस्था के विकृत होते स्वरूप को देखकर कवि के हृदय में ईश्वर की शरण में जाने का भाव उत्पन्न होता है। युद्धों की विभीषिकाओं को झेलता हुआ विस्थापित मनुष्य जहाँ भी जाकर अपनी रोजी-रोटी को तलाशना प्रारम्भ करता है उसे वहीं से कभी विदेशी घुसपैठिये तो कभी आंतकवादी की संज्ञा देकर खदेड़ दिया जाता है। ऐसे विस्थापितों की संख्या भारतवर्ष में लाखों में है, यह एक चिन्ता का विषय है। तब कवि का चिन्तित होना नितान्त स्वाभाविक है-

नहीं मांगता तुसमें कुछ ज्यादा

थोड़ी सी जगह दे दो भाई

नहीं चाहिए धरती की यह विशाल थाती

न भास्कर का पूरा प्रकाश

हो मात्र इतना उजाला

चीन्ह सकूँ स्याह अंधेरे में भी शब्दों को ठीक-ठीक।[58]

विश्व समाज में आज स्त्रियाँ, पुरुषों के साथ प्रत्येक क्षेत्र में कंधे से कंधा मिलाकर चल रही हैं। चाहे विज्ञान के क्षेत्र में हो चाहे साहित्य के क्षेत्र में या फिर राजनीति के क्षेत्र में, सभी जगह महिलाओं ने अपनी सहभागिता एवं उपयोगिता को भली-भॉति सिद्ध किया है। इन सबके बावजूद भी भारतीय पुरुषप्रधान समाज में नारी को दोयम दर्जे से ऊपर उठने में पुरुषों की अपेक्षाकृत कहीं अधिक जोर लगाना पड़ता है-

दिहाड़ी में वह अपने काम के भुगतान को लेके

झगड़ती पायी जाती थी

उसे चाहिए थी मर्दों बराबर तनख्वाह

कि किया उसने भी बराबर काम।[59]

परिवार और बच्चों का पेट पालने के लिए मजदूर स्त्री सुबह से लेकर शाम तक कठोर परिश्रम करके दो वक्त का खाना जुटाती है उस पर भी दैनिक मजदूरी में महाजनों के कटौती करने पर उसका आक्रोशित होना उचित ही है। समाज में बढ़ते भ्रष्टाचार ने गरीब जनता की न्याय प्राप्ति की आशाओं पर कुठाराघात किया है। पाखंडी लोग धर्मगुरू बनते जा रहे हैं और राजनेता मौकापरस्त होते जा रहे हैं। आज के विषमतापूर्ण समाज में धर्म, राजनीति और विकृत होती अर्थव्यवस्था ने कवि समाज में अकुलाहट पैदा कर दी है-

यह कैसा उलटफेर है माँ।

कि जो प्रेम करना चाहते थे

रह गए फटेहाल

जिसने होना चाहा पेड़

बना दिया गया ठूँठ।[60]

आज का कवि समाज में फैलते अन्याय का विरोध करता है और बढ़ती जा रही है बुराइयों से संघर्ष भी करता है। वह छल-प्रपंच से मुक्ति चाहता है। उसे चिन्ता है अपने परिवेश और समाज में

बढ़ते अन्याय और अंतर्विरोधों की। इस प्रकार सप्तकों, के बाद की कविताएँ अपने समय की अनेकानेक विसंगतियों, विडम्बनाओं और पीड़ाओं से संघर्ष करती हुई, आम-आदमी के जीवन को सँवारती हुई तथा न्यायपूर्ण समाज की स्थापना का प्रयत्न करती हुई संवेदनशील कविताएँ हैं।

(झ) कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता

आज का मानव नगरीय सभ्यता के कृत्रिम आकर्षण से बँधा हुआ है। शहर के कृत्रिम वातावरण और कृत्रिम वस्तुओं के प्रति उसका मोह बढ़ता ही जा रहा है। कृत्रिमतापूर्ण माहौल में रहने के कारण उसकी प्रकृति भी कृत्रिमतायुक्त होती जा रही है। आजकल विवाहों की बढ़ती हुई विफलता का मूल कारण यह है कि उद्‌दाम यौवन के उफनाते हुए वासना प्रवाह में प्रेमी युग्म एक दूसरे के रूपाकर्षण के मादक प्रभाव में आकर स्वप्न-लोक की अयथार्थ मेघ-मालाओं में ही सोते-जागते हैं। स्थूल शरीर सुख-सुविधाओं की माँग अनवरत रूप से करता रहता है, ज्ञानेन्द्रियाँ अपने-अपने विषय की ओर दौड़ते रहने के कारण मन को चैन से बैठने नहीं देती है। मानवीय भाव और संवेदना जैसी मर्मोद्‌घाटक प्रवृत्तियों में कृत्रिमता का आभास होना राह में भटकाव और जीवन-मूल्यों में अभूतपूर्व गिरावट का प्रतीक है। कृत्रिमता के चलते मानवीय जीवन की कड़वाहट बढ़ती जा रही है। आधुनिक युग की इस विषमता से आहत होकर नया कवि कुंठा निराशा और अवसाद की स्थिति में जीने लगता है। सप्तकोत्तर कविता में संवेदनशील कवि मन की इस अकुलाहट को साफ तौर पर देखा जा सकता है। वह कृत्रिमतायुक्त जीवन जीने वालों से सावधान रहने की बात कहता है-

मैं यह सब इसलिए कह रहा हूँ कि कम से कम आप

ऐसे लोगों से सावधान रहें क्योंकि उनके दिल और

दिमाग का दरवाजा कोई खटखटा नहीं सकता

वे सपने में भी अपनी कोई खिड़की

खुली नहीं छोड़ते।[61]

इक्कीसवीं सदी तक आते-आते मानव-समाज में बहुत से परिवर्तन हो चुके हैं। नीरस और उबाऊ जीवन जीते-जीते आम आदमी में लगभग संवेदनशून्यता की-सी स्थिति बन चुकी है। उसका व्यवहार एक अजनबी के साथ तो अजीब है ही, जिन्दगी की इस भागमभाग में अपने घनिष्ठ मित्रों एवं सम्बन्धियों के साथ भी उसका व्यवहार बिलकुल कृत्रिम हो चुका है। मनुष्य आज इतना स्वार्थी हो गया है कि असफलताओं या असफल व्यक्तियों से उसका भय अत्याधिक बढ़ गया है और वह केवल कोई बड़ी

सफलता प्राप्त कर चुके नामचीन व्यक्तियों को ही अपना मित्र बनाना चाहता है-

उसने सुने

पुराने चटपटे प्रकरण

नए चुटकुले

लेकिन उसके इस्त्री किए चेहरे पर

एक भी नहीं उभरी सिलवट

उसके पतलून की तरह।[62]

इक्कीसवीं सदी तो पूरी तरह से कृत्रिमता से युक्त समाज और व्यक्ति की सदी है। इधर की कविता में भी कहीं-कहीं इंद्रियबोध और भाव को क्रीड़ा-कौतुक से स्थानापन्न कर देने से कृत्रिमता उत्पन्न हो गयी है। अच्छाई यह रही कि विजेंद्र, विष्णुचंद्र शर्मा, कुमार विकल, कुमारेंद्र, ललित,नीरज जैसे कवियों ने अपने अनुभव संवेदना, आत्मीयता और अभिव्यक्तिगत सहजता से कविता को नवरीतिवाद से बचाया। अनिल कुमार सिंह की 'हिकारत भरा समय' कविता की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

यहाँ तक कि कवि जब अपनी कविता में

चीखते हैं कि उन्हें जीवन से

प्यार है तो इसका मतलब भी वही नहीं होता

हो सकता है वे अपनी घृणा को

छुपाने के लिए ऐसा कह रहे हों।[63]

मार्मिकता या सरसता के अभाव में कविता की सघन विचारात्मकता का कोई प्रयोजन नहीं होता। कविता में कभी-कभी इंद्रियबोध एवं भाव दोनों की सघन उपस्थिति होते हुए भी उसमें भावशून्यता की स्थिति पैदा हो जाती है-

पूरी मानव सभ्यता के विकास की

बुनियाद में

मिलेंगे हमारे ही जिस्म

आखिर ईश्वर को भी

हमने ही गढ़ा है

ईश्वर मनुष्य का ही मानस पुत्र है।[64]

कृत्रिम संवेदना आज कल के नेताओं में सर्वाधिक देखने को मिलती है। चुनाव के पूर्व जनता को झूठे आश्वासन देना और अपने आपको अत्यधिक दयनीय दर्शाकर लोगों की संवेदना बटोरने का कार्य ये बड़ी ही कुशलतापूर्वक करते हैं-

वह पिशाच सत्ता का स्वार्थों का पुतला

भीतर आबनूस बाहर बगुला उजाला,

हरदम असुर शक्ति के करतब दिखलाता

कँपता मायामहल वज्र के फेरे में

जूझ रहे है दो-दो हाथ

घिरे हैं उसके घेरे में।[65]

किन्तु आज के युवा कवि ने इस झूठ को समझते हुए क्रान्ति का मार्ग अपना लिया है। युवा कवि ने जीवन के सच और सुंदर की ही रचना कविता का प्रयोजन माना है। वह कहता है कि-

मगर अब नहीं। अब वह

काफी समझदार बना है

सच और झूठ की सामयिक

मान्यताएँ और राजनीति को

समझ गया है।[66]

तात्पर्य यह है कि सप्तकोत्तर कविता में विश्व एवं समाज की संवेदना में कृत्रिमता के हो रहे मिश्रण को उजागर करके उसे समय और समाज से दूर करने का सार्थक प्रयास किया गया है। आज का कवि अपनी कविता में सच्चाई और जागरूकता को महत्त्व देता है। वह बचपन से ही जिस झूठे व्यापार में फँसा रहा है उसे एक कवि के रूप में कभी स्वीकार नहीं करता है अपितु उसका विरोध करता है।

(ञ) व्यंग्यपरक संवेदनशीलता

हर युग की कविता अपने समय के सत्य को प्रामाणिक और सबल ढंग से व्यक्त करती है। सप्तकों के बाद की कविताएँ जीवन-जगत की विषमतापूर्ण स्थिति-परिस्थिति पर तथा समय के यथार्थ कारणों एवं परिणामों पर दृष्टि डालती हैं। आज का कवि लक्ष्यहीन होकर निरन्तर आगे बढ़ने की कल्पना में जीने वाले लोगों की मानसिकता पर व्यंग्य करता है, उनकी तुच्छ लालसाओं के प्रति अपनी संवेदना को प्रकट करता है। नगर जीवन को आरोपित सभ्यता का तांडव, नगर जनों के खौफनाक कारनामें,

संस्कृति के नाम पर साजिश आदि को आज के कवि ने करीब से देखा है और यह भी अनुभव किया है कि इन सब भयाकतनाओं के बीच में रहकर भी मनुष्य कुछ न करने को विवश है। इसी अवस्था के वर्णन में वे एक साथ साधारण मनुष्य की मजबूरी एवं युग की विद्रूपता को हल्के से व्यंग्य के साथ प्रस्तुत करते हैं। डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय के शब्दों में -''कवि को शिकायत है उस व्यक्ति से जो बाजार का गुलाम होकर रह गया है, उससे जिसके पास सोचने-समझने का न तो समय है और न ही धैर्य। कवि को शिकायत है उस व्यक्ति से जिसकी मनोवृत्ति व्यापारिक हो गयी है। कवि को शिकायत है उस व्यक्ति से जिसने अपनी आदमीयत, अपनी इंसानियत को छोड़ दिया है- चंद सुखों के लिए, चंद लालसाओं के लिए। आदमी को बिकाऊ माल के रूप में बिकते हुए देखकर संवेदनशील कवि को पीड़ा होती है। इसीलिए वह सीधे-सीधे शब्दों में चोट करता है- मनुष्य की मनोवृत्ति और सोच पर तथा उसकी ओढ़ी हुई नियतिबद्धता पर।''[67] मणिमोहन मेहता की 'गिरगिट' कविता में मनुष्य की इन्ही मनोवृत्तियों पर व्यंग्य किया गया है-

पता नहीं किस रंग में

चूमेगा अपने बच्चों को

जाने/किस/रंग में

घर लौट रहा है गिरगिट.....।[68]

बाजारवाद और पूँजीवाद ने प्रत्येक मनुष्य के जीवन को भी व्यापार बना दिया है। प्रेम, स्नेह, दया और सहानुभूति आदि मानवीय सद्‌गुणों को भी मनुष्य पैसों के लालच में छोड़ने को तैयार है। प्रत्येक वस्तु को बाजार में सजाने वाले नीच मनुष्यों पर कवि करारा व्यंग्य करता है-

जितना माल अंटी में

उतना अच्छा सामान

और तो और आज

रिश्ते भी सजे हैं

बाजार में।[69]

मूल्यहीनता और अपसंस्कृति से जूझते वर्तमान समय में मनुष्य की महत्त्वाकांक्षाओं ने उसकी आत्मा की आवाज को सुनना बन्द कर दिया है और अस्थायी सुखों की पूर्ति के लिए जब वह विदेशी संस्कृति का अनुकरण करता है तो कवि की संवेदना को चोट पहुँचनी स्वाभाविक है-

हो ही चुका था सिद्ध

प्रकृति से बड़ी है मनुष्यों की जरूरत

आत्मा से ऊँचा मशीनों का कद

संस्कृति से मूल्यवान हैं

विदेशी मुद्राएँ।[70]

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में नारियों की दशा आज भी शोचनीय है। समाज में रहने वाला आम-आदमी पश्चिमी सभ्यता के रंग में रंगकर भले ही नारी का सम्मान करना भूल गया हो परन्तु कवि की दृष्टि में नारी आज भी प्रेम और त्याग का प्रतीक है। संवेदनशील कवि ऐसे व्यक्तियों पर व्यंग्य करने से नहीं चूकता जो पुरुषत्व के मोह में डूबे हुए हैं-

मर्दानगी और मुहब्बत की

ऐसी तैसी होती है

हमारे देश में

इश्क और हुश्न के साथ

आए दिन भँड़ैती होती है

हमारे देश में।[71]

पूँजीपतियों के द्वारा दीन-हीन श्रमिकों के साथ अत्याचार करना आम बात है। वर्ग-व्यवस्था के प्रारम्भ से ही समाज में असमानता और सबल के द्वारा निर्बल का शोषण होता चला आ रहा है। असहाय लोगों का शोषण कवि के लिए चिन्ता का विषय बन जाता है और वह कहता है-

क्या तुमने नहीं देखी वह लाठी

जिससे हमारे एक कद्दावर जवान ने इस निहत्थे

काँपते बुड्ढे को ढेर कर दिया ?

वह लाठी हमने समय मंजूषा के साथ

गहराइयों में गाड़ दी है

कि आने वाली नस्लें उसे देखें और

हमारी जवाँमर्दी की दाद दें।[72]

स्वार्थ के लिए राजनीति करने वाले नेताओं पर भी कवि व्यंग्य करने से नहीं चूकता। और फिर

आज के समाज के सबसे बड़े विदूषक का कार्य यही राजनेता करते हैं जिनकी संवेदनाएँ मृतप्राय हो चुकी हैं-

सूअरों जैसे थूथनवाला वह खूसट

राष्ट्रीय विदूषक है निर्वीय

शासन की बागडोर हाथों में

है उसकी।[73]

तात्पर्य यह है कि सप्तकोत्तर कविता में सामाजिक समस्याओं से चिन्तित कवि -वर्ग ने शोषक वर्ग और विषम परिस्थितियों पर व्यंग्यपूर्ण कविताएँ भी लिखीं परन्तु इन कविताओं में व्यंग्य के साथ-साथ कवि की चिन्ता और मानसिक पीड़ा भी समान रूप से शामिल है। अर्थात् उनकी कविताओं में व्यंग्य के साथ-साथ भी संवेदनशीलता दृष्टिगत होती है।

(ट) लौकिक संवेदनशीलता

आलोच्य युग का कवि लोक-भावभूमि पर विचरण करने वाला सजग और संवेदनशील प्राणी है। वह जीवन की अनेकानेक उलझनों से संघर्ष करता हुआ अपने जीवन पथ में आगे बढ़ने की प्रेरणा प्रदान करता है। जब तक लोक-मंगल के तत्व की प्राप्ति उसको नहीं होती है तब तक वह अशान्त और असन्तुष्ट दिखायी देता है। उसके जीवन की यात्रा भी चलायमान रहती है तथा आनन्द की प्राप्ति में भी वह समान होती है। आनन्द की अवस्था में पहुँचकर मनुष्य के जीवन की समस्त दुराशा और क्षोभ शान्त हो जाता है। भेद-तत्त्व को दूर करने पर ही मंगल तत्व की उपलब्धि होती है। जब तक सांसारिक भेद बुद्धि दूर नहीं होती, तब तक लोक मंगल की कल्पना करना निरर्थक है। मानवीय संवेदना का प्रादुर्भाव परिवेशगत घटनाओं से होता है। भावों के परिमार्जन के साथ-साथ यह संवेदना पहले परिवार समाज और राष्ट्र से जुड़ती है। फिर परिपक्व होकर समस्त विश्व से जुड़ जाती है। लौकिक संवेदनशीलता की स्थिति प्रायः सहृदय कवियों में पायी जाती है। यद्यपि आज के अवसरवादी मनुष्य में इस प्रकार की संवेदना का अभाव होता जा रहा है। युद्धजनित भय ने मनुष्य की मनोवृत्तियों को अस्थिर और आक्रामक बना दिया है-

चढ़ बैठा बारूद पर, यह संसार-समग्र।

देख प्रलय सम्भावना, है धरती अति व्यग्र।।[74]

युद्धों और आतंकवाद की आंशका से ग्रसित विश्व में शान्ति स्थापित करने के लिए कवि तत्पर

है। वह कठिन परिस्थितियों में संघर्ष करने वाला है अतः उसका विश्वास अभी भी यथावत बना हुआ है। वह कहता है-

मानो कहता हो

मेरी स्लेट पर जब बन सकता है कबूतर

तो दुनिया के नक्शे पर

क्यों नहीं बन सकता कबूतर।[75]

बुद्ध और गाँधीजी ने भारतवर्ष को ही नहीं अपितु समस्त विश्व को अहिंसा,सत्य और शान्ति का संदेश दिया था। उन्होनें सम्पूर्ण जन-समूह की संवेदना को झकझोरा है। उनके दर्शन से प्रभावित होकर बहुत-से राजाओं और डाकुओं ने शस्त्र त्याग कर दिया और विश्व में प्रेम और अहिंसा का प्रचार करने लगे। आज की कविता के मूल में भी लोक जीवन से गहरा जुड़ाव परिलक्षित होता है-

उन्हें कौन समझाए कि सोते आदमी को जगाना

देश-द्रोह नहीं है

प्यासे आदमी तक पानी पहुँचा देना जरूरी है

मेरे देशवासियो।[76]

समाज की मुक्ति का मार्ग जितना स्वच्छ होता है, कविता की मुक्ति का मार्ग उतना ही प्रशस्त होता है। तुलसी और निराला की कविताएँ रूढ़ियों को तोड़कर नया संसार रचने वाली कविताएँ हैं। तुलसी, निराला और आज के युवा कवियों के बीच लम्बा अन्तराल है। पूरी दुनिया बदल गयी है। हर तरफ कसमसाहट, बेचैनी और उथल-पुथल मची है। आर्थिक असमानताएँ हैं, पर इन असमानताओं की शिलाओं को फोड़ना भी जारी है। कवि कहता है-

दुनिया महज एक स्वप्न है

और स्वप्न से हमें

जागना होगा।[77]

इस तरह हम देखते हैं कि इन तीन दशकों के कवि पारिवारिक संबंधों और संवेदनाओं का एक पूरा ताना-बाना लेकर उपस्थित हैं। यह ताना-बाना हमारी जातीयता और लोक-संस्कृति की सबसे बड़ी पहचान है। अतः गाँव में और जहाँ लोग महानगरीय आतंक से मुक्त हैं और अभी जिनके ग्रामीण या कस्बाई संस्कार जीवित हैं, वहाँ यह संवेदना अभी सुरक्षित है। उदाहरणार्थ दिनेश कुशवाह की ये

पंक्तियाँ-

किसी बालक का मुँह चूमकर

कोई भी जान सकता है

असली माखन तो चुराया था नन्द ने।[78]

हिन्दी कविता पर यह भारतीय संस्कृति का ही प्रभाव है कि वह अपनी परंपरा को बनाए हुए है। सामाजिक संस्कृति और परंपराओं की भाँति लौकिक संवेदना भी अनश्वर है। बहुत बार विदेशी आक्रान्ताओं और देसी आतंकियों ने इसे नष्ट करने की भरपूर कोशिशें कीं पर हमेशा ही असफल रहे। सप्तकोत्तर कविता में प्रायः हर कवि घर-परिवेश और मानव समाज के प्रति जागरूक और संवेदनशील है। सभी ने इन सबको अपनी कविता का विषय भी बनाया है। वह शान्ति का पुजारी है। उसके लिए सारी पृथ्वी उसका परिवार है-

मैं सच कहता हूँ

बिलकुल नहीं देखूंगा ललचाई नजरों से

सोना उगलती तुम्हारी इस वसुन्धरा को

तुम्हारे ये खेत, ये जंगल, ये कम्प्यूटर और ये मूर्खतापूर्ण संगीत

तुम्हें ही मुबारक।[79]

मानव जीवन के सुख-दुःख, हर्षोल्लास, विडम्बनायें, परम्परायें, संस्कृति, विपन्नताएँ, दैनिक जीवनचर्या, तथाकथित सभ्यसमाज के साथ उसके अन्तर्संबंध, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक शोषण, प्रकृति के साथ उसका अटूट भावनात्मक सम्बन्ध आदि तथ्यों को सप्तकोत्तर कविता में विस्तार से लिया गया है। आज का कवि कई ऐसी संवेदनाओं का अंकन भी करता है जो आम आदमी के चिन्तन से दूर हो चुकी हैं। वह आम आदमी में यही चिन्तन और संवेदनशीलता पैदा करना चाहता है-

इस दुनिया को

एक मुट्ठी में भर लेने के लिए बेचैन

किसी योद्धा की तरह नहीं

तुलसीदास की तरह

शव को यदि नाव बनाने की कला में तुम पारंगत हो

तो इसी बगैर नाव की गहरी नदी के बाद

एक सुलगती राह तुम्हें यहाँ तक लाएगी।[80]

इस संसार की विराट्ता और मानवीय तुच्छता को लेकर आम-आदमी में उदासीनता का फैलना आम बात है। मनुष्य सदैव से ही धरती और आकाश के विस्तार व सम्बन्ध के प्रश्नों में उलझता रहा है, साथ ही तर्कों से परे हटते सवालों के प्रति उसमें विस्मय भी उत्पन्न होता रहा है। कवि का समय की जटिलताओं के भीतर घुसकर उन्हें खोलने और लड़ने-भिड़ने-टूटने-बिखरने वाला व्यक्ति भी उनके लिए कम आश्चर्य उत्पन्न नहीं करता है-

तुम कह सकते हो उससे कि

कायर रोते हैं, कवि रोते हैं

जिनके मन में

बहुत धुंध और अंधेरा होता है

जो बादलों की तरह उदास और

बेघर होते हैं

दूसरों के दुःखों में वे रोते हैं।[81]

लोक भाव-भूमि पर विचरती हुई इन पंक्तियों में कवि की संवेदना विश्व दृष्टि से सम्पन्न और संचालित हैं। संक्षेप में कहा जाय तो अभिव्यक्ति की कुछ नई लोकाभिमुख प्रणालियाँ विकसित करने की इन कवियों ने निरंतर कोशिश की है। लौकिक संवेदनशीलता को ग्रहण करने के लिए किया गया संघर्ष वास्तव में एक नवीन प्रासंगिक कवि-दृष्टि तलाशने के इनके आत्म संघर्ष का ही दूसरा पहलू है।

वस्तुतः लौकिक संवेदनशीलता मानव की सहज उत्तरदायित्व की भावना के विस्तार से निर्मित होती है। आत्मसजगता, परिवार (माँ, बाप, भाई-बहन व संतति) के प्रति दायित्व-बोध, समाज और राष्ट्र की चिंताएं/चिंतनाएँ ही इसका आधार बनती हैं। व्यापक दृष्टिकोणों से युक्त इस युग की कविता में इन सबकी अधिकता है और इस युग का कवि बहुत ही संवेदनशील दिखाई पड़ता है जबकि संसार संवेदनहीनता के गर्त में डूबता जा रहा है।

(ठ) अलौकिक संवेदनशीलता

मानव अनादिकाल से ही भक्ति-भावना और अलौकिक सत्ता से प्रेरित रहा है। मानव ने जब आँखें खोलीं तब सृष्टि के कार्य व्यापार में कुछ ऐसी शक्तियों को कार्यरत होते देखा कि वह सृष्टि के रहस्य से प्रभावित हो उठा और विचार करने लगा, इस सम्पूर्ण कार्य के पीछे सत्ता किसकी है, बस उस सत्ता

की स्थिति के विषय में विचार कर उठा, उसे जानने-पहचानने का प्रयास करने लगा। आगे चलकर कविता में भी कवियों ने उस अज्ञात प्रियतम से मिलने की ऐसी अनुभूतियाँ प्रस्तुत कीं जो लोकोत्तर हैं। अलौकिक संवेदनशीलता की स्थिति में कवि अपनी आत्मा को चराचर विश्व को आवृत करने वाला विस्तार देकर भी अपनी प्रणयानुभूति को ऊर्जस्वित रूप देता है। उसके सुख-दुःख जड़ चेतन के सुख-दुख बनकट सारी प्रकृति पर छा जाते हैं। इस प्रकार की संवेदनशीलता के अन्तर्गत समस्त विश्व के सुख-दुःख की ही अनुभूति नहीं होती अपितु अपने सुख-दुःख में भी चराचर जगत् के सुख-दुःख की अनुभूति होने लगती है। अलौकिक संवेदनशीलता की स्थिति में शृंगार और प्रेम के चित्र लौकिकता की पवित्र भूमि से दूर दिव्यता की पावनता से युक्त हो जाते हैं-

प्रेम जब आता है तुम्हारी चौखट पर

तो जल्दी चले जाने के लिए नहीं।

उसे जाना होता है किसी पर्वत या घाटी की तरफ

समुद्र या नदी की तरफ

वह बिना किसी पूर्व योजना के आ निकलता है

तुम्हारे घर की तरफ

और जानना चाहता है

तुम उसके साथ डूबने चल रहे हो या नहीं।[82]

भावों की कोमलता और सहजता कवि की निजी संवेदना के धरातल पर जब उन्मुक्त रूप में अवतरित होती है तो उसमें हृदय लौकिक भाव भूमि से ऊपर उठ जाता है-

बींधते से मौसमी अहसास में खोकर

मंत्रमय आकाश के आयाम में होकर

चाहता है

उम्र भर यों चाहने का मन।[83]

प्रेम, भक्ति और साधना की गहराइयों में उतरकर आध्यात्मिक चेतना से सम्पृक्त हो सार्वकालिक और पावन बन जाता है। अलौकिकता से युक्त होने पर व्यक्ति साधारण मनुष्य और कवि के स्तर से भी ऊपर उठकर सन्त की कोटि में पहुँच जाता है। आज का कवि कभी-कभी इसी कोटि में पहुँचने के प्रयास में पूर्व और पुनर् के बीच उलझता हुआ दिखायी देता है-

बताना तो

यही है वह जन्म

अटक जाता है

जो

कभी-कभी

पूर्व और पुनर्

के बीच ?[84]

कवि विज्ञान से आध्यात्मिकता की ओर उन्मुख होता हुआ ईश्वरीय भावलोक का अनुभव करता है। वह उस असीम सत्ता के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता है जिसने उसको जीवन, स्मृति, समझ, कल्पना और मानवीय शरीर प्रदान किया -

हमें कृतज्ञ होना चाहिए उस गुंफन का

जिसने जन्म दिया जीवन दिया स्मृति दी

समझ दी कल्पना दी भाषा दी

जिसने आत्मा को कान दिये आँखे दीं

आत्मा को हाथ दिये पैर दिये।[85]

उस अलौकिक सत्ता के प्रति कवि में केवल विस्मय और कृतज्ञता का भाव ही नहीं है अपितु उसकी संवेदना भी उस दैवीय शक्ति को स्पर्श करती है। कवि उसे साकार रूप में अनुभव करना चाहता है, परन्तु उसकी छवि कवि के नेत्रों से अश्रु के रूप में छलक जाती है-

पलकों में बन्द तुम्हारी छवि

बन अश्रु नयन से ढुल जाती

मैं उसे बाँध रखना चाहूँ

लेकिन चुपचाप निकल जाती।[86]

ईश्वरीय भाव में आने का अर्थ है अपने आचरण को सुधारना, स्वार्थ और छल से दूर रहना। सप्तकोत्तर कवियों में भी भक्तिकालीन कवियों की भक्तिपरम्परा का निर्वाह करते हुए समस्त सृष्टि के कल्याण की कामना से ईश्वरीय वन्दना की है-

जीवन-पथ में स्वार्थ सकल है

विश्व जीव को नव बल दो

जीर्ण-क्षीण निश्छल जीवन में

मन्त्र एक निश्छल भर दो।[87]

भारतवर्ष प्राचीनकाल से अध्यात्म, संस्कृति और दैवीय गुणों से परिपूर्ण रहा है। यहाँ के वेद, उपनिषद, पुराण और अन्य दर्शन प्रधान ग्रन्थों में मानव का आत्मभाव से परमात्मभाव में आरोहण दिखायी देता है-

विभु की विभुता का अगम्य अवबोध यहीं से होता

रूद्र-भव्यता, चिर रहस्य का है यह निर्मल सोता।

ज्यों निद्रस्थ विराट् स्वयं परमात्म-रूप नभ मंडित-

अपनी विगलित करूणा से करता समुद्र को पुलकित।[88]

अलौकिक संवेदनशील के चित्र प्रायः हमें पौराणिक गाथाओं और भारतीय धर्म सिद्धान्तों की वर्णन करने वाली कविताओं में देखने को मिलते हैं। राम, कृष्ण और बुद्ध के जीवन-चरित्र और दर्शन से हिन्दी कविता सदैव प्रभावित होती रही है। कविता में उपस्थित पुराख्यानों में ऐतिहासिकता और कल्पना दोनों का समान समावेश होने से वह लोक भाव-भूमि से भी जुड़ी रहती है और पाठक की अन्तश्चेतना को आध्यात्मिक सोपानों में भी ले जाती है। कबीर का समाज सापेक्ष दर्शन इसी अन्तश्चेतना के विकास का परिणाम है। आज की कविता में भी कहीं-कहीं यह अलौकिक संवेदना देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए गोपाल दास 'नीरज' की ये पंक्तियां-

'चल औघट घाट प यार जरा क्या रखा है आलमगीरी में।

जो आये मजा फकारी में वो मस्ती कहाँ अमीरी में

अनजान सफर में जीवन के दुनिया ये मुसाफिर खाना है,

अपनी-अपनी बारी सबको इस भोग भवन से जाना है।[89]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने जगत को अव्यक्त की अभिव्यक्ति बताया है तो काव्य को इस अभिव्यक्ति की भी अभिव्यक्ति बताया है। उनके अनुसार- ''जगत् की विघ्न बाधा, अत्याचार, हाहाकार के बीच ही जीवन के प्रयत्न सौंदर्य की पूर्ण अभिव्यक्ति तथा भगवान की मंगलमय शक्ति का दर्शन होता है। अतः जो आँख मूँदकर काव्य का पता जगत् और जीवन से बाहर लगाने निकलते हैं वे काव्य के धोखे में या उसके बहाने से किसी और ही चीज के फेर में रहते हैं। इसी प्रकार जो लोग ज्ञात या अज्ञात

के प्रेम, अभिलाषा, लालसा या वियोग के नीरव सरव क्रंदन अथवा वीणा के तार झंकार तक ही काव्यभूमि समझते हैं उन्हें जगत् की अनेकरूपता और हृदय की अनेक भावात्मकता के सहारे अंधकूपता से बाहर निकलने की फिक्र करनी चाहिए।''[90] आज के भावुक कवि की कविता में समस्त चराचर में एक असाधारण हृदय की मार्मिक अनुभूति का जो तीव्र और पूर्ण उन्मेष मिलता है वह तुलसी, सूर और मीरा की लोकोत्तर अनुभूतियों से मिलता-जुलता है-

आया फिर, लौट आज

'शबरी' का

मधु-यौवन

सत्य का विराट तत्त्व

आत्म-सात् कौन करे ?

प्रेम के अनूठे क्षण,

किसको बलिहार करे ?

'बिन्दु'-

विकल, होने को लीन,

आज, सिन्धु में।[91]

भगवान राम के दर्शनों से अभिभूत होकर शबरी की वर्षो की साधना फलीभूत हो उठी और वह अपने सर्वस्व प्रभु को सामने देखकर अपने समस्त दुःखों को भूल गयी। संक्षेप में कहा जा सकता है कि सच्चा कवि ही अलौकिक संवेदनशीलता का निर्वाह कर सकता है और वही जीवन और प्रकृति के वास्तविक रहस्य को भी समझ सकता है, क्योंकि उसका दर्शन लौकिकता की सभी सीमाओं को लाँघ कर आत्मा के स्वच्छ व पारदर्शी स्वरूप का दर्शन कराता है।

(ड) सर्जनात्मक संवेदनशीलता

जब विचार या विचारधारा रचनाकार के भाव बोध में रमकर आती है तब वह सृजन के लिए शक्ति का कार्य करती है। सप्तकों के बाद की कविता अधिक गंभीर, संवेदनशील और रचनाशीलता के अनेक आग्रहों को स्वीकारती है। आज के कवि के समक्ष मात्र कविता के लालित्य और वर्णनात्मक सीमाओं की रक्षा का मामला नहीं है अपितु मनुष्य और मनुष्य के बीच के सम्बन्धों को हर तरफ से फिर से मजबूत करने की विशाल चुनौती है। वह कविता के यथार्थ स्वरूप को बचाए रखने और उसे मानवीय

जीवन-मूल्यों से युक्त बनाए रखने के लिए चिन्तित है। ओम-भारती की 'अंजीर की पत्ती एक' कविता में अतीत के मूल्यों को बचाए रखने की यह चिन्ता साफ तौर पर दिखाई देती है-

आने वाले समय में बची रहे कविता यदि

और बची रहे यह कविता

तो इसे अमूर्त्त कहा जाएगा, या शायद रहस्यमय

संभवतः पढ़ने वाले मुग्ध भी होंगे बीसवीं सदी की

इस बेचैन कविता पर

कहेंगे कि कितने अशरीरी

अलौकिक से अज्ञात विषय को उठाया है कवि ने।[92]

सप्तकों के बाद का कवि अपनी रचनात्मकता पर किसी भी प्रकार की टिप्पणी नहीं करता है। वह जो कुछ भी लिखता है, अपनी आत्मा के केन्द्र से उपजा हुआ लिखता है। वह सर्जना अथवा कविता के स्थापित अर्थो को बदलता है और मनुष्य की विलुप्त, छीजती हुई पहचान को बचाने की अथक कोशिश करता है। तभी तो उसकी कविता में उसकी बेचैनी साफ झलकती है-

इसलिए

कविता से बचो मत

हो सकता है

कविता पढ़कर

दिल दिमाग में

गूँजने लगे समय

उठने लगें प्रश्न

और तुम बेचैन हो उठो।[93]

आज का कवि कविता की अनेक सीमाओं से परिचित है और उन सीमाओं से निराशा भी है। वह धरती के प्रत्येक व्यक्ति से जुड़ना चाहता है, उसमें अपनी रचनाओं से, गैर-बराबरी और उत्पीड़न के खिलाफ उमंग भरना चाहता है-

मेरी धरती छवि बन जाए

मैं धरती का कवि बन जाऊँ

धरती मुझको छंद सिखाए

मैं धरती को गीत सुनाऊँ।[94]

जन-जन की पीड़ाओं को महसूस करने वाले कबीर और निराला सरीखे क्रान्तिकारी कवियों की रचनाएँ बहुत दिनों बाद और बहुत दूर से देखने पर भी लालित्यपूर्ण और संवेदनशील दिखायी देती हैं-

शिलाएँ तोड़ती

बहती है

कबीर की बानी

हृदय से उमड़कर

प्रवहमान है

उसका दमदार पानी।[95]

कभी-कभी रचनाकार को अत्यधिक बेचैनी, ऊब और जड़ता से अन्तरालों को भी भुगतना पड़ता है। अनुभवों के बदलाव के साथ-साथ ये अंतराल भी आते-जाते रहते हैं। बहुत से अनुभवों को कवि अपनी कविता का विषय बना लेता है और कुछ अनुभवों को समय के प्रवाह में पीछे छोड़कर आगे बढ़ जाता है। फिर भी उसकी प्रत्येक कविता मनुष्य के लिए ही होती है-

कवि

चाहता है

कि उसकी हर कविता

मनुष्य से शुरू हो।[96]

आज का युवा कवि इस कोलाहलपूर्ण समय में भी अपने दायित्व को भूलता नहीं है। वह भलीभाँति जानता है कि 'आदर्श कविता क्या है और एक आदर्श कविता की रचना के लिए उसे किन-किन तत्त्वों की जरूरत पड़ेगी-

मुझे मालूम है कि यह एक आदर्श

कविता की इबारत नहीं भी है

मुझे शायद मालूम है कि एक

अच्छी कविता की संरचना में

क्या-क्या होना चाहिए।[97]

कविता की विमुक्ति संहार, दासता, लालच और धर्मोन्माद को दुनिया से विस्थापित करने के पश्चात ही सम्भव है। कविता ने सदैव मानवीय संवेदना की सुरक्षा का प्रयास किया है, इसीलिए वह हर क्षण, सुंदर और सत्य की तलाश करता है। जीवन सिंह के शब्दों में "यह कहा जाय तो गलत नहीं होगा कि युवा कविता ने इसी परम्परा का विकास किया है। उसमें आज जो सहजता, आत्मीयता, रागात्मकता और सच्चाई देखने को मिल रही है, वह उनके इंद्रिय बोध के विस्तार तथा भावों में दृष्टि के सही विनियोजन से संभव हुआ है।"[98] रामदरश मिश्र की 'कविता का जन्म' कविता में कवि की संवेदना उसके आँसुओं के रूप में प्रकट होती है और यह संवेदना क्रान्तिकारी दृष्टि से परिपूर्ण है-

आँधी के खिलाफ

छोटे-छोटे पौधे तन जाते हैं

मार खायी आँखों के आँसुओं में

धीरे-धीरे आग के चित्र बन जाते हैं

क्या मेरे भीतर किसी कविता का जन्म हो रहा है?[99]

वस्तुतः आज की कविता कवि और उसकी रचनाशीलता से टकराते वादों एवं अन्तर्विरोधों को समूल नष्ट करने की एक प्रतिक्रिया है जिसमें देश और दुनिया की जनता की मुक्ति भी समाहित है। यही संवेदनशीलता आज की कविता और जीवन का सच्चा एवं सुदृढ़ सम्बंध दिखलाने लिए बेचैन है। प्रसिद्ध गांधीवादी कवि भवानीप्रसाद मिश्र संवेदनाओं के कवि हैं जिनकी लगभग 56 वर्ष (1930 से 1985 ई० तक) की काव्य-यात्रा ने सर्जना के अनेक आयाम तय किए हैं। उनकी कविताओं में सर्जनात्मक संवेदना के अनुपम उदाहरण मिलते हैं। उनका मानना है कि सर्जना इस प्रकार की होनी चाहिए जो शीतलता और उष्णता दोनों ही समेटे हुए हो। समसामायिक परिस्थितियों की विचारणा के साथ-साथ समस्या के निदान की प्रतिबद्धता कविता के सौन्दर्य को बढ़ाती है। उनकी 1984 ई० की एक कविता का अंश देखिए-

सवाल यह है कि

जो आग छुपी है

शब्दों में उसे हम

इस अन्धेरी रात में

सुलगा सकते हैं कि नहीं अपने प्राणों की फूँक से

चाहे जहाँ

धधका सकते हैं कि नहीं

ज्वाला

शब्द को अब मैं

तरल चाहता हूँ

पानी की तरह नहीं

उठती हुई लपट की तरह।[100]

सर्जनात्मक दृष्टिकोण की स्पष्टता कवि की संवेदना को निखारती है। अन्य साहित्यिक रचनाओं के प्रति सकारात्मक और सहिष्णुतापूर्ण दृष्टि भी संवेदना के विकास का आधार बनती है। सर्जन की सफलता चिंतन की गहराई पर निर्भर होती है, इसलिए शब्दों की सत्ता के प्रति आस्था का भाव अपेक्षित है। थोथापन और निरर्थक भाव कविता को चटपटी तो बना सकते हैं, किन्तु उसे अमरत्व नहीं प्रदान कर सकते। इसलिए सर्जनात्मक संवेदनशीलता अनिवार्य है और यही हमें सप्तकों के बाद के कवियों में उल्लेखनीय दृष्टि से दिखाई पड़ती है। समग्रतः सप्तकोत्तर कविता में प्रकृति, स्वभाव, मानवीय परिवेश एवं समाज, यथार्थ, विषमता, न्याय, कृत्रिमता, व्यंग्य, लौकिकता, दृष्टि, अलौकिकता और सर्जना से सम्बन्धित संवेदनशीलता दिखायी देती है जिसमें बौद्धिक अभ्यास एवं जीवन के सुख-दुःख की बिलकुल कमी नहीं है। सप्तकों के बाद के कवि की संवेदनाओं का ज्ञानात्मक आधार विस्तृत व्यापक और अद्यतन है इसलिए उसकी दृष्टि उपरोक्त समस्त कारकों से उसके अन्तःकरण में एक नवीन वातावरण निर्मित करती है।

संदर्भ सूची

1. किशन सिंह अटोरिया : धरती मुस्करायेगी; 'विकास के नाम पर', पृ० 41
2. हरिराम मीणा : हाँ चाँद मेरा है; 'मारवाड़', पृ० 131
3. पवनकरण : इस तरह मैं; 'उस पेड़ की याद करते हुए', पृ० 22
4. पद्मनाथ तिवारी : भावार्थ; 'हृदयान्त', पृ० 70
5. एकान्त श्रीवास्तव : अन्न हैं मेरे शब्द; 'माँ का पत्र', पृष्ठ 52
6. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'माँ', पृ० 56
7. वंशी माहेश्वरी : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'हरी भरी होती रहती है पृथ्वी', अंक-47-48 (अक्टू० 97-मार्च 98)
8. कुमार अंबुज : क्रूरता; 'दौड़', पृ० 32
9. विनोददास : वर्णमाला से बाहर; 'अंतिम इच्छा', पृ० 111
10. सुनीता जैन : कातर-वेला; 'काल', पृ० 89
11. आशुतोष दुबे : असम्भव सारांश; 'आखिरी इच्छा', पृ० 57
12. मोहन कुमार डहेरिया : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'विस्थापन', अंक-47-48, पृ० 233-234.
13. कुमार अंबुज : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'इस दौर में', अंक 29-30, दिसम्बर 94-मार्च 95, पृ०-111
14. सावित्री डागा : शताब्दी की सरहद पर; 'शताब्दी की सरहद पर', पृ० 37
15. डॉ० यतीन्द्र तिवारी : सूली पर आकाश, 'विडम्बना', पृ० 14-15
16. अग्नशेखर : कालवृक्ष की छाया में; 'भूकम्प के बाद भुज', पृ०-100
17. नीलेश रघुवंशी : पानी का स्वाद; 'घर', पृ० 20
18. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'मत कहिए', पृ० 61
19. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'लौट जायेगा', पृ० 79
20. सावित्री डागा : शताब्दी की सरहद पर; 'जुड़ाव', पृ० 15
21. केदारनाथ सिंह : आँका सूरज बाँका सूरज; 'कहाँ आया हमें', पृ० 138
22. प्रेमरंजन अनिमेष : मिट्टी के फल; 'माँ के साथ', पृ० 100

23. रमेश कुमार त्रिपाठी : सार्थक कुछ; 'जीवन', पृ० 75

24. गोपालदास नीरज : बादर बरसगयो; 'कफन है आसमान', पृ० 29

25. धनंजय अवस्थी : शबरी; 'साधना', पृ० 86

26. डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय : कविता की राह; 'काव्य में यथार्थ और सामयिकता : सन्दर्भ समकालीन कविता, पृ० 44

27. केदारनाथ अग्रवाल : बसन्त में प्रसन्न हुई धरती; 'पेट की फरियाद', पृ० 135

28. भगवत रावत : सदी के अंत में कविता (सं०अजेय कुमार); 'ऐसी कैसी नींद', अंक-47-48, पृ० 58

29. कुमार अंबुज : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई), अंक-29-30, 'अभ्यास', पृ० 104

30. डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय : कविता की राह; 'काव्य में यथार्थ और सामयिकता : सन्दर्भ समकालीन कविता', पृ० 43

31. अनिल गंगल : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'भिड़भिड़ाता हुआ मनुष्य', अंक-47-48, पृ० 215.

32. देवी प्रसाद मिश्र : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'अपमान', अंक-29-30, पृ० 58

33. पंकज चतुर्वेदी : एक सम्पूर्णता के लिए; 'जब तुम कुछ कहना चाहोगे', पृ० 14-15

34. कुमार वीरेन्द्र : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'महकती चाय का गीत', अंक-47-48, पृ० 278

35. कमलेश भारतीय : युवा कवि नये हस्ताक्षर (सं० बलदेव वंशी); 'अस्तित्व संकट में', पृ० 64.

36. भारत यायावर : हाल बेहाल; 'आदमी की आवाज', पृ० 20-21

37. विनोद दास : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'मे आई कम इन सर', अंक-29-30, पृ० 18-19

38. पी०पी० जगमोहन : समुद्र के तट पर; 'एकता', पृ० 18

39. पंकज चतुर्वेदी : एक ही चेहरा; 'एक ही चेहरा', पृ० 13

40. अग्निशेखर : कालवृक्ष की छाया में; 'दृष्टि', पृ० 122

41. नरेश चंद्रकर : बातचीत की उड़ती धूल में; 'हाथ गाड़ियों की कथा', पृ० 61

42. नरेन्द्र जैन : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'आप बीती अंक-47-48, पृ० 119

43. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है, 'गए-गुजरे', पृ० 59

44. चम्पा वैद : सदी के अंत मे कविता (सं० अजेय कुमार); 'केवल बसन्त में', अंक-47-48, पृ० 167

45. विजय देव नारायण साही : संवाद तुमसे; 'विषकन्या के नाम', पृष्ठ 67

46. केशव तिवारी : इस मिट्‌टी से बना; 'बाँके', पृ० 94

47. स्वप्निल श्रीवास्तव : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'नरभक्षी', अंक-29-30, पृ०-31

48. शहंशाह आलम : गर दादी की कोई खबर आये; 'राजा पियानो बजा सकता है', पृ० 15

49. संजय कुन्दन : कागज के प्रदेश में; 'समय पर बहस', पृ० 71

50. कविता वाचक्नवी : मैं चल तो दूँ; 'समिधा शेष', पृ० 76

51. प्रेमशंकर रघुवंशी : सतपुड़ा के शिखरों से; 'ये आमजन की आग', पृ० 57

52. रमेश रंजक : पतझर में बसंत की छवियाँ; 'हमें ले डूबे खेवनहार', पृ० 28

53. रंजना श्रीवास्तव : सक्षम थीं लालटेनें; 'दुःखों का अलाव', पृ० 38

54. एकान्त श्रीवास्तव : बीज से फूल तक; 'मूल्य', पृ० 23

55. विनोद दास : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई), अंक-29-30, जूते काट रहे हैं, पृ० 22

56. इन्दु जैन : कितनी अवधि; 'रात-15', पृ० 45

57. लीलाधर जगूड़ी : अनुभव के अकाश में चाँद; 'ईश्वर का प्रश्न', पृ० 69

58. मोहन कुमार डहेरिया : सदी के अंत में कविता; 'विस्थापन', अंक-47-48, पृ० 233

59. लीलाधर मंडलोई : काल बाँका तिरछा; 'कस्तूरी', पृ० 54-55

60. हरिओम राजोरिया : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'उलटफेर', अंक-29-30, प० 276

61. भगवत रावत : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'अच्छा यह है कि ज्यादातर लोग ऐसे नहीं हैं', अंक-47-48, पृ० 57

62. विनोद दास : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'मित्र', अंक-29-30, पृ० 24

63. अनिल कुमार सिह : पहला उपदेश : 'हिकारत भरा समय', पृ० 69

64. भगवानस्वरूप कटियार : हवा का रुख टेढ़ा है; 'मसीहा की आवाज', पृ० 48

65. डॉ० रवीन्द्र भ्रमर : धूप दिखाए आरसी; 'जूझ रहे हैं', पृ० 63

66. डॉ0 बलभीम राजगोरे : मोर्चे में अकेला; 'जो सच होता है', पृ0 49-50

67. डॉ0 कौशलनाथ उपाधय : कविता की राह; 'समकालीन सोच की कविता : 'कोई दूसरा नहीं', पृ0 50-51

68. मणिमोहन मेहता : कस्बे का कवि और अन्य कविताएँ, 'गिरगिट', पृ0 78

69. अंजु दुआ जैमिनी : सदियों तक शायद; 'बाजार', पृ0 78

70. मोहन कुमार डहेरिया : उनका बोलना; 'घेरा', पृ0 12

71. केदारनाथ अग्रवाल : कुहकी कोयल खड़े पेड़ की देह; 'मर्द का बच्चा', पृ0 198

72. धर्मवीर भारती : सपना अभी भी; 'मुनादी', पृ0 74

73. अनिल कुमार सिंह : पहला उपदेश; 'सत्ताधीश', पृ0 60

74. सुरेश कुमार शुक्ल, 'संदेश' : सपनों के प्रासाद; 'यहाँ न प्यार पराग', पृ0 23

75. नासिर अहमद सिकंदर : जो कुछ भी घट रहा है दुनिया में; 'बच्चे की स्लेट; पृ0 57

76. मत्स्येन्द्र शुक्ल : हवाएँ दे रही हैं संदेश'; 'मेरे देशवासियो-3', पृ0 19

77. विवेक गुप्ता : वसुधा (सं0 हरिशंकर परसाई); 'तथागत के लिए नव-बौद्ध की प्रार्थना' अंक 29-30, पृ0 264

78. दिनेश कुशवाह : वसुधा (सं0 हरिशंकर परसाई); 'यह पृथ्वी बच्चों के लिए है', अंक-29-30, पृ0 201

79. मोहन कुमार डहेरिया : सदी के अंत में कविता (सं0 अजेय कुमार); 'विस्थापन', अंक-47-48, पृ0 234

80. कृष्णमोहन झा : सदी के अंत में कविता (सं0 अजेय कुमार); 'मुझे मत जलाओ', अंक-47-48, पृ0 239

81. बोधिसत्व : वसुधा (सं0 हरिशंकर परसाई); 'वह कौन सी जगह है', अंक-29-30, पृ0 176

82. गगन गिल : यह आकांक्षा समय नहीं; 'हर प्रेम', पृ0 45

83. ओम निश्चल : शब्द सक्रिय हैं; 'डूबने का मन', पृ0 18

84. गगन गिल : यह आकाँक्षा समय नहीं; 'यह रहा उसका घर', पृ0 73

85. 'लीलाधर जगूड़ी : अनुभव के आकाश में चाँद; 'इस दुनिया में आने के लिए', पृ0 104

86. नीरजा माधव : प्रस्थानत्रयी; 'भटक कर आओ लौट', पृ0 54

87. रमेश पोखरियाल 'निशंक' : मातृभूमि के लिए; 'हे दिव्य शक्ति', पृ० 73

88. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : ध्रुवान्तर; 'आरोहण', पृ० 10

89. गोपालदास 'नीरज' : वंशीवट सूना है; 'चल औघट घाट', पृ० 22

90. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल : चिन्तामणि भाग-2; 'काव्य में रहस्यवाद', पृ० 37

91. धनंजय अवस्थी : शबरी; 'बोध' सर्ग, पृ० 95-96

92. ओम भारती : वह छठवाँ तत्व; 'अंजीर की पत्ती एक', पृ० 56

93. अजित पुष्कल : पत्थर पर बसंत; 'जब कवि चुप रहता है', पृ० 81

94. केदारनाथ अग्रवाल : बसन्त में प्रसन्न हुई धरती; 'मेरी धरती और मैं, पृ० 86

95. केदारनाथ अग्रवाल : कुहुकी कोयल खड़े पेड़ की देह; 'कबीर', पृ० 163

96. वेणु गोपाल : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'कवि दिल्ली में है, अंक-47-48, पृ० 54

97. देवी प्रसाद मिश्र : सदी के अंत में कविता (सं० अजेय कुमार); 'राष्ट्र निर्माण की राजनीति, अंक-47-48, पृ० 184

98. जीवन सिंह : वसुधा (सं० हरिशंकर परसाई); 'समकालीन कविता में युवा पीढ़ी की निजता', अंक-29-30, पृ० 207

99. रामदरश मिश्र : शब्द सेतु : 'कविता का जन्म', पृ० 24

100. भवानी प्रसाद मिश्र : नीली रेखा तक, 'ज्वलन्त शब्द', पृ० 11-12

षष्ठ अध्याय

सप्तकोत्तर कविताओं के आलोक में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में साम्य और वैषम्य

6

सप्तकोत्तर कविताओं के आलोक में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में साम्य और वैषम्य

पिछले दो अध्यायों में हम सप्तकोत्तर कविताओं में भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता के विभिन्न आयामों पर विचार कर चुके हैं। दूसरे अध्याय में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का सैद्धान्तिक विश्लेषण भी किया जा चुका है। इस अध्याय में पहले हम भावनात्मकता और संवेदनशीलता में व्युत्पत्तिपरक विभेद करेंगे तत्पश्चात् उनके विभिन्न रूपों में साम्य और वैषम्य स्थापित करेंगे।

भावना और संवेदना के विभिन्न अर्थों को विद्वानों ने शब्दकोशों में स्थान दिया है। वामन शिवराम आप्टे के 'संस्कृत हिन्दी कोश' में 'भाव' शब्द के भावना, रस, संवेग और मनोविकार आदि अर्थ बताये गये हैं। 'भावना' शब्द के कल्पना उत्प्रेक्षा, विचार, धारणा इत्यादि अर्थ बताये गये हैं। उन्होंने संवेदनम् (संवेदना) शब्द के प्रत्यक्ष ज्ञान, जानकारी, तीव्र अनुभूति, भावना, अनुभूति, आत्मसमर्पण करना इत्यादि अर्थ बतलाये हैं। गोविन्द चातक के द्वारा सम्पादित 'वृहत हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश' में 'भाव' शब्द के चित्तवृत्ति, स्वभाव, मनोवृत्ति, भावना, विचार, संवेग, अभिप्राय, प्रयोजन इत्यादि अर्थ बताये गये हैं जबकि 'भावना' शब्द के विचारणा, स्मृति, ध्यान, स्फुरणा, कल्पना और चिंतना आदि अर्थ दिए गए हैं। इसी प्रकार 'संवेदना' शब्द के तीव्र अनुभूति, चेतना, भावना, वेदना, ज्ञान और बोध आदि अर्थ दर्शाये गये हैं। श्री शरण के द्वारा सम्पादित 'दिनमान हिन्दी शब्दकोश' में भाव को विचार और मनोविकार कहा गया है तो भावना को चित्तवृत्ति और इच्छा कहा गया है। संवेदना के अनुभव और अनुभूति आदि पर्याय दिए गये हैं। आचार्य रामचन्द्र वर्मा के द्वारा सम्पादित 'संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर' में 'भाव' शब्द के सत्ता, अस्तित्व, अभाव का उल्टा, मन में उत्पन्न होने वाली प्रवृत्ति, विचार, ख्याल, अभिप्राय, तात्पर्य, मुखचेष्टा, आत्मा, जन्म, चित्त, पदार्थ, प्रेम, मुहब्बत, कल्पना, प्रकृति, भावना, विश्वास, दशा, आदर, ईश्वर, देवता आदि के प्रति होने वाली श्रद्धा या भक्ति, नायक या नायिका के मन में उत्पन्न होने वाला विकार इत्यादि अर्थ बताये गए हैं। इसी प्रकार 'भावना' शब्द के ध्यान, विचार, चित्त का एक संस्कार जो अनुभव और स्मृति से उत्पन्न होता है, इच्छा, चाह, साधारण विचार या कल्पना, पुट आदि अर्थ दिए गए हैं। इसी शब्दकोश में आचार्य रामचन्द्र वर्मा ने 'संवेदन' शब्द के अनुभव करना, सुख-दुःख आदि की प्रतीति

करना, ज्ञान, जताना, प्रकट करना इत्यादि अर्थ बताये हैं जबकि 'संवेदना' शब्द के किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दुख और सहानुभूति आदि अर्थ बताये हैं। आचार्य रामचन्द्र वर्मा के द्वारा ही सम्पादित 'मानक हिन्दी कोश' में भावना और संवेदना को निम्नवत् पारिभाषित किया गया है-

भावना-भावना शब्द स्त्रीलिंग है (भू+णिच्+युच्+अन्+टाप्)

1. मन में किसी बात का होने वाला चिंतन, ध्यान।

2. मन में उत्पन्न होने वाली कोई कल्पना, भाव, विचार या ख्याल।

विशेष- दार्शनिक दृष्टि से यह चित्त का एक संस्कार है जो अनुभव, स्मृति आदि के योग से उत्पन्न होता है।

3. कामना, चाह, वासना।

4. वैद्यक में औषध आदि को किसी प्रकार के रस या तरल पदार्थ में बार-बार मिलाकर घोटना और सुखाना जिसमें उस औषध में रस या तरल पदार्थ के कुछ गुण आ जायँ। पुट।

5. चिन्ता, फिक्र।

संवेदना- संवेदना संस्कृत स्त्रीलिंग का शब्द है जिसकी व्युत्पत्ति सम् उपसर्ग पूर्वक विद् धातु में ल्युट प्रत्यय करके बना है।

1 मन में होने वाला अनुभव या बोध। अनुभूति।

2. किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दुःख। किसी की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना। सहानुभूति (सिम्पेथी)।

3. उक्त प्रकार का दुःख या सहानुभूति प्रकट करने की क्रिया का भाव (कन्डोलेन्स)।

इस प्रकार से भावना और संवेदना को वाह्यतः देखा जाए तो इनमें कोई विशेष अन्तर दिखाई नहीं देता है। बहुत से लोग इनको प्रायः एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त कर देते हैं। फिर भी, इनमें व्युत्पत्तिपरक भेद करने पर पर्याप्त विभिन्नताएँ भी प्राप्त होती हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है-भू धातु में णिच् और ल्युट प्रत्यय लगाने से भावना शब्द की रचना होती है। जबकि सम् उपसर्ग पूर्वक विद् धातु में ल्युट प्रत्यय लगाने से संवेदना शब्द की व्युपत्ति होती है। ये दोनों ही शब्द संस्कृत में स्त्रीलिंग हैं। भावना और संवेदना दोनों ही संज्ञा शब्द हैं जबकि भावनात्मक और संवेदनशील विशेषण शब्द हैं। भावनात्मकता और संवेदनशीलता दोनों पुनः संज्ञा बन जाते हैं। भावना दार्शनिक दृष्टि से चित्त का एक संस्कार है जो अनुभव, स्मृति आदि के योग से उत्पन्न होता है जबकि संवेदना किसी को कष्ट में देखकर मन में होने वाला दुःख या किसी की वेदना देखकर स्वयं भी बहुत कुछ

उसी प्रकार की वेदना का अनुभव करना है। अंग्रेजी का इमोशन शब्द भावना का जबकि अंग्रेजी का ही सिम्पैथी शब्द संवेदना का पर्याय है। अनुभव करना या सुख-दुःख आदि की प्रतीति करना संवेदना है जबकि चित्त का वह संस्कार जो अनुभव और स्मृति से उत्पन्न होता है भावना कहलाता है।

द्वितीय अध्याय में मैंने भावना और संवेदना से सम्बन्धित जो भी सैद्धान्तिक पक्ष प्रस्तुत किए हैं उन्हीं के आधार पर अध्याय में इन दोनों का विश्लेषण नये ढंग से करना आवश्यक हो जाता है। निरीक्षण, प्रेक्षण, अनुभूति में या पढ़ने-सुनने में पहले संवेदना उत्पन्न होगी तत्पश्चात् भावना का सृजन होगा या उसकी कोटियाँ निर्धारित होंगी। इसी प्रकार से लेखन या विशेषकर कविता सृजन में लेखक या कवि के अन्दर पहले भावनाएँ उत्पन्न होंगी और वे गुम्फित होकर वेदना के रूप में व्यक्त होंगी जिससे संवेदना की उत्पत्ति होगी। भावना वैयक्तिक है जबकि संवेदना निर्वैयक्तिक है। इसी तरह से भावना स्वाभाविक है जबकि संवेदना परिवेशगत है। सम्यक् विश्लेषण करने पर उपरोक्त दोनों स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अर्थात कहीं भावना की निर्मिति पहले होगी तो कहीं संवेदना प्रथम ग्राह्य होगी।

सप्तकोत्तर कविताओं में भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों में समानता और विषमता का आकलन निम्नलिखित तीन रूपों में किया जा सकता है-

- वैचारिक
- व्यावहारिक
- संरचनामूलक

वैचारिकता का भावना और संवेदना से सम्बन्ध-

आचार्य रामचन्द्र वर्मा के द्वारा सम्पादित 'लोकभारती प्रामाणिक हिन्दी कोश' में 'विचार' शब्द के मन में सोचा या सोचकर निश्चित किया हुआ तत्त्व या बात, संकल्प, मन में उत्पन्न होने वाली बात, भावना, ख्याल, किसी बात के सब अंग देखना या सोचना समझना, मुकदमे की सुनवाई और फैसला इत्यादि अर्थ दिए गए हैं जबकि वैचारिक शब्द के विचार-सम्बन्धी, न्याय-विभाग और उसके विचार या व्यवहार-दर्शन से सम्बन्ध रखने वाला, जैसे वैचारिक व्यवहार इत्यादि अर्थ दिए गए हैं।

रसात्मक वाक्य होने के कारण कविता का मूल रूप रागात्मक या भावनात्मक है, किंतु उसमें भी भावना का वैचारिकता से, जिसका बुद्धितत्त्व से विशेष सम्बन्ध है, नितान्त विच्छेद नहीं रहता। साहित्य में जहाँ शब्द और अर्थ के सहित होने का भाव रहता है वहाँ रागात्मक-तत्त्व-प्रधान भावों और बुद्धितत्त्व-प्रधान विचारों का भी मिश्रण रहता है। विचारों में कुछ न कुछ रागात्मकता अवश्य

रहती है, इसी प्रकार भावनात्मकता के साथ विचार भी संयुक्त रहते हैं। दार्शनिक की सृष्टि शुद्ध वैचारिक होती है, किंतु कवि या साहित्यिक की सृष्टि विचारात्मक होने के साथ-साथ भावनात्मक भी होती है। कवि भाव-प्रेरित दृष्टि से ही जीवन को देखता है और उसके भावों के केन्द्र-बिन्दुओं के सहारे विचार इकट्ठे होने लगते हैं। वे विचार कवि के जीवन के प्रति रागात्मक प्रतिक्रिया के फल होते हैं। आज-कल की कविता में उद्देश्य को तात्त्विक प्रधानता दी जाती है और उद्देश्य का सम्बन्ध विचारों से है।

प्रतिबद्ध कवि को अन्तर्विरोध और द्वंद्वपूर्ण स्थितियाँ अभिव्यक्ति के दौरान घेरे रखती हैं और कवि उत्साहातिरेक में उन्हें नकार नहीं सकता। पर यह सीमा नहीं है और संवेदनशील और विचारवान कवि इसे सीमा के तौर पर कबूल भी नहीं कर सकता जब वह अपनी सच्चाई को बाहरी और बड़ी सच्चाइयों के सन्दर्भ में देखना शुरू करता है। यह अन्तर्विरोधों और विसंगतियों भरी प्रक्रिया ही है जहाँ से कवि के मन का असन्तोष और आक्रोश फैलना शुरू होता है। यही वह बिन्दु भी है जहाँ से अच्छे और बड़े कवि की पहचान के संकेत और सबूत मिलने शुरू होते हैं- वह स्थिति की हामी नहीं भरता, उससे टकराता है, उसे चुनौती देता है, उससे संघर्षरत होता है और निर्णयों को झलकाना शुरू करता है। संवेदन विचार में ढलता है, स्थितियों की वीभत्सता, फूहड़ता उनमें अन्तर्निहित विसंगतियाँ और विडम्बनाएँ कवि को निर्णयात्मक रवैयों तक ले जाती हैं। आज की कविता में निराशा, हताशा, उदासी, अवसाद, अकेलेपन और मृत्यु आदि का चित्रण हुआ है, पर यह अस्तित्ववादी ढर्रे और लहजे में नहीं है। यह चित्रण न आत्मगत है न भाववादी अपितु आर्थिक, सामाजिक सन्दर्भो की उपज है। छोटे-छोटे एहसासों, स्वादों और मनोदशाओं में से कवि विचारों को तानता है। वह उनका चित्रण नहीं करता, बयान नहीं देता, पर संवेदन और विचार में कुछ ऐसा ताल-मेल बिठाता है कि यथार्थ पूरी तल्खी से कौंधता है।

कविता की यह विशेषता होती है कि इसमें बहुत-सी चीजें, अनेक मनोदशाएँ, भाव और विचार एक के बाद एक चले आते हैं और भावों, विचारों, मनोदशाओं की कड़ियाँ एक ही शृंखला में बिछी रहती हैं। ये कड़ियाँ कविता को संश्लिष्ट और विश्वसनीय बनाती हैं। आज की कविता में दो तरह की मनोदशाएं, दो तरह के रवैये स्पष्टतः दिखायी देते हैं। एक है अवसाद, बेबसी, निरुपायता और उदासी का, दूसरा जूझने और संघर्षरत होने का। सप्तकोत्तर कवियों की कविताओं में अकेलापन, मृत्यु, अवसाद आदि भावों को आर्थिक, सामाजिक सूत्रों से जोड़कर देखा गया है और वहीं से अन्ततः फूटा है उनकी कविताओं में विद्रोह और संघर्ष का संकल्प। यह संकल्प है स्थिति को जानने-समझने

के बाद का और निहत्थे हो जाने वाली स्थिति से। निरूपायता की स्थिति में भी विद्रोह और संघर्ष करने का कवि का साहस सप्तकोत्तर कविता में भावना और संवेदना को वैचारिकता के ताने-बाने में बुनता है।

पाठक या श्रोता के अन्दर भावनाएँ या संवेदनाएँ उत्पन्न होंगी तो उसकी विचार-यात्रा दूसरे ढंग की होगी। यदि कवि की भावना या संवेदना वैचारिक होगी तो अलग प्रकार की होगी। किंतु दोनों सिरे से बात कविता के सौन्दर्य की ही होगी। विचार कवि को उत्तेजित करके क्रियावान बना देते हैं। कभी-कभी वह विचारों को तुरन्त संवेदनाओं में परिणत कर देता है फिर उन्हीं संवेदनाओं के चित्र बनाता है। उसके विचार संवेदन में ढलते हैं और संवेदन चित्रों में। कविता, एक संगीत को छोड़कर, अन्य सब कलाओं से अधिक अमूर्त्त है। वहाँ जीवन-यथार्थ केवल भाव बनकर प्रस्तुत होता है, या बिम्ब बनकर या विचार बनकर। कवि के विचारों में एक विचित्र प्रकार की उत्तेजना होती है। वे इतनी शीघ्रता से अपनी शाखा-प्रशाखाएँ विकसित करते हैं कि उसके संवेदना और भाव कविता रचते समय एक साथ गुम्फित हो जाते हैं। उस समय उन विचारों को कविता में उसी रूप में उतारना कठिन कार्य होता है। जब कवि में वैचारिकता उत्पन्न होती है तो उसके भाव और संवेदनाएँ अनुशासन में रहते हैं जबकि आम आदमी में ऐसा नहीं होता है। अनुभव-संवेदन और अनुभव प्रक्षेपण दोनों साथ-साथ नहीं चलते, किंतु कवि का मन मूलतः सर्जनशील और कल्पना प्रवण है। उसकी सर्जनशील कल्पना-प्रवणता निरन्तर चलती है जो भावना या विचार उठे उसको उसी अनुपात, में उसी मात्रा में प्रस्तुत करना कवि की व्यक्तिगत ईमानदारी है। जो भाव या विचार जिस स्वरूप को लेकर प्रस्तुत हो उसको उसी रूप में प्रस्तुत करना कवि का धर्म है।

निष्कर्षतः विचार एक समुच्चय है और भावना व संवेदना इसके अवयव हैं। मनुष्य एक विचारशील प्राणी है, इसीलिए उसके अंदर भावना और संवेदना का वास है। विचारों के माध्यम से वह अपनी भावना और संवेदना को अधिक सुगमता से व्यक्त कर पाता है। आमने-सामने होने पर तो एक मानव दूसरे की भावना व संवेदना को हाव-भाव एवं आचार-व्यवहार से भी जान सकता है जबकि भौतिक दूरी में यही कार्य शब्दों पर आरूढ़ होकर विचार करते हैं। भावना व संवेदना की वैचारिकता को व्यक्त करने की सबसे उपयुक्त विधा कविता है और यही इनके आपसी संबंधों की कसौटी है।

व्यावहारिकता का भावना और संवेदना से सम्बन्ध

किसी बात या विचार को कार्य के रूप में लाना या सामाजिक सम्बन्धों में औरों के साथ किया जाने वाला आचरण या बरताव व्यवहार कहलाता है। बहुत दिनों से चली आई हुई और अब तक चलती हुई प्रथा या परिपाटी को भी व्यवहार ही कहा जायेगा। किसी चित्र को कविता या गद्य में उकेरकर उसके माध्यम से किसी गुण, कर्म अथवा प्रवृत्तियों को अपने जीवन में दर्शाना व्यावहारिकता है। मानवीय क्रिया-व्यापार अथवा सामाजिक सम्बन्धों में होने वाली पारस्परिक आदान-प्रदान की क्रिया व्यावहारिकता ही है। कविता में जब कवि समाज में व्यवहृत होने वाले धार्मिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक या साहित्यिक तथ्यों का मानवीय जीवन शैली या अपने जीवन से तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास करता है तो इसे कविता में व्यावहारिकता का चित्रण करना कहते हैं।

मानवीय व्यवहार में जब भावना और संवेदना अपने किसी न किसी रूप में एक साथ उत्पन्न हो जाएँ या विद्यमान हों तो वहाँ व्यावहारिकता भावनात्मकता और संवेदनशीलता से संश्लिष्ट हो जाती है। कारण यह कि उस समय भावना और संवेदना प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष तौर पर वस्तु से व्यक्ति में अथवा व्यक्ति से व्यक्ति में संचरित हो रही होती है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि व्यावहारिकता की स्थिति में कवि या व्यक्ति की भावना और संवेदना नितान्त वैयक्तिक नहीं हो सकती उसका अपने परिवेश या समाज से जुड़ाव आवश्यक है। संयोग-वियोग, विकास-विनाश या विभिन्न प्रकार के लेन-देन के क्षणों में प्रायः मनुष्य का संवेदनशील होना और उसमें भावनाओं का उत्पन्न होना स्वाभाविक है।

कुशल कवि प्राचीन समाज की व्यवस्थाओं और आधुनिक समाज तथा विश्व की रीति-नीति का युगीन परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण करता है। उसके इस विश्लेषण में भावना और संवेदना दोनों ही मनुष्य के व्यावहारिक पक्ष से जुड़ी हुई प्रतीत होती हैं। प्रत्येक घटना या सामाजिक परिस्थिति कवि में अनेक भावों और संवेदनों का प्रस्फुरण करती है और वही भाव और संवेदना जो उस घटना से जुड़े व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं वे सब कविता और कविता से पाठक तक सम्प्रेषित होते हैं। उस घटना के किसी पात्र के त्याग, कष्ट, सहिष्णुता आदि गुणों का वर्णन करने में कवि भावनात्मकता और संवेदनशीलता की अनुभूति करता है। लोकहृदय और लोक व्यवहार की सही पहचान करना और सामान्य धरातल पर भावनाओं और संवेदनाओं में साम्य स्थापित करना एक कुशल कवि का कर्म है। वह किसी चित्र, बिम्ब या कल्पना के द्वारा भी मानवीय गुणों को ग्रहण करने का प्रयास करता है और उन्हें अपने जीवन में व्यवहृत करता है। सहृदय पाठक या श्रोता भी उन्ही भावों और संवेदनों का

अनुभव करता है और उन्हें अपने व्यवहार में भी लाता है।

मनुष्य द्वारा जीवन में जो जिया या भोगा जाता है, उसमें बहुत अधिक तत्त्व हैं- सुबह से लेकर शाम तक मन पर उन तत्त्वों का इतना अधिक संवेदनात्मक प्रहार होता रहता है कि उत्तेजित हो-होकर मस्तिष्क की रगें, मस्तिष्क के तन्तु, अपने आराम के लिए उन तत्त्वों को टाल देते हैं, भूल जाने की कोशिश करते हैं और मन जान-बूझकर अपने में शून्य का निर्माण कर लेता है। कवि के मन में निरन्तर एकत्र होते इन तत्त्वों का इतना बोझ होता है और उसके पास इतना कम अवकाश है कि उसके अन्दर भावशून्यता या संवेदनशून्यता की स्थिति पैदा हो जाती है।

पारिवारिक आदर्शो या मूल्यों के लिए किया जाने वाला संघर्ष आज की कविता में प्रमुखता से विद्यमान है। यदि परिवार में ही यह व्यावहारिक प्रक्रिया चले तो जीवन में भावना और संवेदना का सामञ्जस्य बना रहेगा। किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत भावना या संवेदना जब सार्वजनिक अनुभवों से गुजरे तो उसमें सत्यता की मात्रा बढ़ जाती है। तभी वह मानव-सन्दर्भो में व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत होती है। दिन भर कवि जिस दुनिया में प्रवेश करता है वह एक स्वप्न-कथा या एक विशाल उपन्यास का ही रूप है। वह एक चित्र कथा है। उसमें कितने ही भावनात्मक, मनोहर, सुकुमार,भयंकर तथा विषादपूर्ण दृश्य हैं। व्यावहारिक जीवन जीते समय संवेदनात्मक अनुभव करना और कविता में उसी अनुभव के कल्पना चित्र प्रक्षेपित करना एक कुशल कवि का कर्म है। कवि यदि सचमुच व्यावहारिक जीवन का गहरा और व्यापक ज्ञान रखता है तो वह प्रसंग-स्थिति में बद्ध मनुष्य की भावनात्मक या संवेदनात्मक प्रतिक्रियाओं को ही महत्त्व नहीं देगा वरन् उस स्थिति से सम्बन्ध रखने वाले, जो वस्तु सत्य हैं, उनको बनाने वाले तत्त्वों पर अर्थात् व्यक्ति-स्वभाव की विशेषताओं, वास्तविकता की पेचीदगियों इत्यादि पर अवश्य ही ध्यान देकर, इस प्रसंग स्थिति के वस्तु-सत्य के सारे ताने-बाने प्रस्तुत करेगा। और इस प्रकार व्यक्ति समस्या को मानव-समस्या बनाकर एक व्यापकतर पार्श्वभूमि में उसे उपस्थित करेगा।

कविता का यथार्थ और जीवन का यथार्थ दो भिन्न वस्तु नहीं हैं, भले ही वे कविता में चाहे जितने व्यापक और सर्जनात्मक हो उठें। इसलिए व्यावहारिक जीवन से साक्षात्कार, कविता के सामाजिक और मानवीय होने की पहली शर्त है। अमर कवि संसार को विषमताओं से भरा देखता है तो उसे दो छोर दिखाई देते हैं, वह किस छोर को पकड़े कि उसके कवि और मनुष्य की संवेदना को सार्थकता मिले ? स्पष्ट है यह कमजोर का पक्ष होगा-वह पक्ष जो लांछित, अपमानित, शोषित, पस्त और बेसहारा है। न्याय संगत कविता का काम यही है- ऐसी पक्षधरता जो एक ओर संवेदना हो, और

दूसरी ओर उस तमाम व्यवस्था, व्यक्तियों, समूहों, विचारों, आदि के विरोध में खड़ी हो, जो मनुष्य के बुनियादी और न्यायसंगत अधिकारों को कुचलती और उसे चूसती है। कविता संवेगों की दुनिया का नाजुक मामला है। जब कविता जीवन से समग्र साक्षात्कार करती है तो वह पाती है कि संसार में वैविध्य बिखरा है। स्वयं मनुष्य का मन ही अनेक ग्रंथियों, मनस्तापों; अनुभवों, संवेदनों का समुद्र है। विकल्प, कुंठा, उद्वंग, संशय, मनस्ताप, आत्मद्वंद्व, रिक्तता, आशंका, मोह, आग्रह, आस्था, करूणा, प्रेम जैसी असंख्य छटाएँ मन की हैं और हर एक में अनेक कथ्य और स्थितियाँ छिपी है। कई बार कविता व्यक्तित्व के एकांतता से निकलती है; लेकिन सृजन-प्रक्रिया के दौर में या अंत में पहुंचकर वह नितांत सामाजिक हो जाती है।

व्यावहारिक स्तर पर भावनात्मकता और संवेदनशीलता के उदाहरणार्थ अज्ञेय की 'असाध्य वीणा' को लिया जा सकता है। राजा-रानी से लेकर समाज के हर वर्ग की भावनाओं और संवेदनाओं का मनोहरी चित्रण इस कविता में किया गया है। आरंभ में तो कविता में आदर्श स्थिति दिखाई देती है किन्तु उत्तरोत्तर यह व्यावहारिकता और अनुभूति से भरपूर होती जाती है। मुक्तिबोध की 'अँधेरे में', भवानीप्रसाद मिश्र की 'दो टुकड़े देस : दस टुकड़े जनम दिन' आदि भी इसी प्रकार की कविताएँ है। सन् 1979 के बाद की भी अनेक कविताएँ इसी रंग की हैं। तात्पर्य यह है कि व्यावहारिकता निजता से सामाजिकता और सामाजिकता से निजता, दोनों ही दिशाओं में प्रवाहित होती है।

संरचना का भावना और संवेदना से सम्बन्ध

संरचना स्त्रीलिंग का शब्द है जिसका अर्थ है अनेक अवयवों वाली रचना। कविता की संरचना का सवाल और उसके भावना और संवेदना से संबंधों का सवाल कविता के सम्पूर्ण अस्तित्व का और इससे भी आगे तत्कालीन समाज की संरचना का सवाल है। कविता कितनी ही हवाई लगती हो किन्तु वह हवा में पैदा नहीं होती, इसलिए कविता का संरचनाशास्त्र और समाज का संरचनाशास्त्र भी परस्पर प्रतिबिम्बित होता है और होना भी चाहिए। एक युग विशेष में एक समाज की संरचना में हो रहे परिवर्तनों की झलक उसकी भाषा में मिलती है और भाषा में आ रहे परिवर्तन सबसे पहले कविता में आते हैं। कविता की संरचना के माध्यम से न केवल समाज को समझा जा सकता है, बल्कि बदलते भावों और संवेदनाओं का भी आभास मिल जाता है।

रचना-मन एक जीवन-प्रक्रिया है जिसमें स्मृतियाँ, संस्कार, भाव, विचार, प्रसंग, घटनाएँ और परिस्थितियों के प्रति बिम्ब एक दूसरे की सन्निधि में अपनी सक्रिय उपस्थिति जतलाते रहते है। रचना-क्षण में इन्हीं में से कुछ बिम्ब उभरकर सामने आते हैं और एक संयोजन का-सा आभास देते

हैं। रचना-मन उन सबके साथ जूझता-टकराता हुआ परिवेश के साथ क्रिया-प्रतिक्रिया में नियोजित रहता है। रचना-मन को आन्दोलित करने वाले मूल भाव या विचार की द्वन्द्वपरक प्रक्रिया अभी समाप्त भी नहीं होती कि प्रतीकान्वेषण की प्रक्रिया शुरू हो जाती है। प्रतीक कविता की वह केंद्रीय रचना इकाई है जिसमें हम अनुभव को आकार लेते हुए देखते हैं, जिसके इर्द-गिर्द भाव, विचार, संवेदना और अन्य सन्दर्भ बरबस लिपटे चले आते है।

कवि की अंतर्दृष्टि वह मूलभूत तत्त्व है जो एक भाषा को काव्यभाषा और एक शब्द-संरचना को काव्य-रचना का रूप देता है। कवि अपने भावों और संवेदनों को जब शब्द देता है तभी काव्यकला का अस्तित्व रूपायित होता है। कला के इस प्रस्तुतीकरण में कवि भाषा के स्वीकृत प्रतिमानों को तोड़ता है, नई संरचनाएँ बनाता है। भाषा के विस्तृत शब्द-समूह में से कवि उपयुक्त प्रभाव वाले शब्दों का चयन करता है। कथ्य को पूर्ण अभिव्यक्ति देने के लिए वह ऐसे शब्दों को भी संरचना में सहयोगी बना लेता है जो व्यावहारिक जगत् में संभव नहीं होते। कवि हृदय की अमूर्त्त-अगोचर, सूक्ष्म रागात्मक अनुभूतियों और उसके मन-मस्तिष्क में उमड़ने-घुमड़ने वाले विचार-द्वन्द्वों को भाषाशास्त्रियों ने अनेकानेक नाम दिए हैं, परन्तु उनका प्रत्यक्ष साक्षात्कार तभी हो पाता है जब काव्य भाषा उन्हें किसी-न-किसी रूपाकार के बिम्ब से सम्पृक्ति प्रदान करती है। तब उस बिम्बायित भाव या विचार को एक नवीन सांकेतिक नाम मिल जाता है। कवि हृदय को जो बात स्पर्श करती है वही उसकी कविता में साकार होने लगती है। साकारता का यही प्रकल्प काव्य समीक्षा के क्षेत्र में प्रतीक के नाम से ज्ञात है। काव्य भाषा मानव-हृदय को शब्द परिधि में बाँधने के प्रयास में शब्दों की सामर्थ्य को दबाती चलती है। वह कम-से-कम शब्दों का उपयोग करते हुए अधिक-से-अधिक भावानुभूतियों अथवा विचारों का संप्रेषण करना चाहती है। कवि का संसार इस स्थूल-भौतिक जगत से अधिक व्यापक है, वह अनेक ऐसे विचारों से घटनाओं से, ऐसे सत्य से साक्षात्कार करता है जिनके लिए भाषा में सम्यक् शब्द नहीं होते, परिणामतः उसे प्रतीकात्मक प्रयोगों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। काव्यभाषा में प्रयुक्त प्रतीक सामान्य अभिधार्थ अथवा लक्ष्यार्थ के द्योतक होते हुए भी अपना एक अलग प्रभामंडल लिए रहते हैं जिसकी ऊष्मायुक्त ज्योति उनके प्रयोक्ता कवि के हृदय की भाव-ज्वाला का प्रत्यक्ष दिग्दर्शन करा देती है।

कविता का अधिकांश व्यापार कल्पना-प्रसूत रहता है। विम्ब हमारी संवेगग्राह्यता की प्रवृत्ति को एक-एक बिन्दु पर स्थित एवं केन्द्रित करके, उसके पूर्ण साक्षात्कार का अवसर प्रदान करते हैं जिससे अर्थहीन-सा प्रतीत होने वाला भाव-समूह भी एक अनूठी अर्थवत्ता का द्योतक हो उठता है।

बिम्ब-सी व्यापक अनुभूति-प्रसार-क्षमता प्रतीक में नहीं। मिथक केवल अतीतोन्मुखी होता है। उसका सत्य ऐतिहासिकता का आभास देते हुए भी, होता तो कल्पना का सत्य ही है। इसके विपरीत, बिम्ब कल्पना की नींव पर निर्मित यथार्थ का प्रासाद प्रस्तुत करता है। इस प्रकार बिम्ब-योजना काव्य भाषा की एक बहुत बड़ी शक्ति है। "जार्ज ह्वैली की मान्यता यह है कि बिम्ब एक अमूर्त्त विचार अथवा भावना की पुनर्रचना है.......... बिम्ब का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उसमें सादृश्यमूलक उपमान-योजना, भाषा की चित्रोपमता, रागात्मक संवेदनाओं की प्रत्यक्षानुभूति एवं विचारों का मूर्तीकरण सभी कुछ सन्निविष्ट है। इस दृष्टि से आई०ए० रिचर्ड्स द्वारा प्रस्तुत की गई बिम्ब की परिभाषा अधिक समीचीन है। उनके अनुसार बिम्ब एक दृश्य चित्र, संवेदन की एक अनुभूति, एक विचार, एक मानसिक घटना, एक अलंकार अथवा दो भिन्न अनुभूतियों के तनाव से बनी एक भावस्थिति कुछ भी हो सकता है।. ... दृश्यवस्तु, संवेदनात्मक प्रवृत्ति, मानसिक धारणा, अप्रस्तुत योजना, वैचारिक पुनर्रचना किसी भी माध्यम से बिम्ब का निर्माण संभव है।"[1] बिना संवेग और भावावेश के कोई भी पद्यात्मक दृश्य, काव्य बिम्ब नहीं हो सकता। कविता का बिम्ब वह शब्द चित्र है, जो अंतर्वेग और भावावेश से संचालित होता है। यहाँ चित्र से तात्पर्य केवल दृश्य से नहीं बल्कि संपूर्ण ज्ञानेन्द्रियों से प्राप्त संवेदन रूप से है। कवि पाठक तक अपनी भावनाओं या संवेदनाओं को प्रेषित करने के लिए बिम्ब को एक माध्यम बनाता है। यानी "काव्य-बिम्ब अखिल संवेद्यता का पारदर्शी ऐंद्रिय विधान है जो सर्जक और भावक को रूपगम्य अनुभूति से तदाकार करता है।"[2] कवि अपने संपूर्ण जीवन के संवेदनों से बिंब रचता है। प्रत्येक कविता और प्रत्येक कविता के प्रत्येक बिंब में निजी और अभ्यंतर भाव व संवेदन होते हैं, जो अपने द्वारा किसी मार्मिक जीवनानुभूति की ओर इशारा करते हैं।

इतिहास की अतीतगत सीमा जहाँ समाप्त होती है मिथक का लोक वहाँ से आरम्भ होता है। वह लोक ऐसे विश्वासों का लोक है जहाँ तथ्य अथवा तर्क का प्रवेश निषिद्ध है। 'मिथक' एक सार्वभौम संकल्पना की भाषिक परिणति है। वह समूचे मानव-समाज की सामूहिक अनुभूतियों का शब्दबद्ध मूर्त्त रूप है। प्रारम्भिक स्थिति में 'मिथक' की अवधारणा मानव और प्रकृति की अभेद चेतना से अनुस्यूत रहती है तथा कालान्तर में, उसमें धार्मिक-पौराणिक ऐतिहासिक प्रसंग अपना लाक्षणिक अथवा प्रतीयमान अर्थ भरकर उसे समृद्ध एवं विस्तीर्ण करते चलते हैं। मानव का जीवन-दर्शन इन्हीं मिथकीय संकल्पनाओं या अवधारणाओं की नींव पर विकसित होता है। काव्य-भाषा की सामान्य भाषा से विशिष्टता का एक पहलू भाव-तारल्य है तो दूसरा पहलू उसका अन्तः-वाह्य लयात्मक प्रवाह भी है। कवि-मानस की भावनात्मक तरंगों का अनुवर्ती बनकर' छन्द विधान विविध रूप धारण करता

रहता है। जिस प्रकार 'छन्द' कविता का व्याकरण था उसी प्रकार 'मुक्त छन्द' भावना का व्याकरण बन गया है और भावना के इस व्याकरण का सर्वोच्च सिद्धान्त है लय। प्रत्येक शब्द में अर्थ-रूप में कोई-न-कोई संवेदना रहती है जिसे हम वस्तु तथा भाव के अनुरूप प्रयोग करते हैं। इस प्रकार शब्द-तारतम्य संवेदना-प्रवाह को गत्यात्मक लय में बाँध देता हैं तब लय, काव्यभाषा के वाह्य प्रवेश-द्वार से भीतर की ओर अग्रसर होकर उसकी आन्तरिक संरचना की सामग्री बन जाती है।

कविता जब हमारे दैनन्दिन संघर्ष के करीब पहुँचती है तो वह जीवन की घटनाओं से ही टकराती है और घटनाओं में देश, काल, क्रिया, चरित्र, भाव-विचार सब समाहित होते हैं। इसलिए घटनामूलक कविता जीवन के यथार्थ के व्यापकतम परिप्रेक्ष्यों को समाहित किए चलती है, उसमें यथार्थ की पूर्णता रहती है। यथार्थ के तत्त्व परस्पर गुम्फित होते हैं, साथ ही पूरा यथार्थ गतिशील होता है। अभिव्यक्ति का विषय बनकर जो यथार्थ प्रस्तुत होता है वह भी ऐसा ही गतिशील है, और उसके तत्त्व भी परस्पर गुम्फित हैं।

कवि के पास संवेदना के साथ-साथ तटस्थ भाव भी रहते हैं और वह इनका अनवरत प्रयोग अपनी कविता में भी करता है। यही तटस्थ भाव भावनात्मकता के विभिन्न रुपों-स्वरूपों में परिवर्तित होते रहते हैं। परिवार और समाज में मानवीय आदर्श और मानवीय मूल्यों के लिए निरन्तर संघर्ष चलता रहता है। यही मूल्य और आदर्श जब संघर्षशील कविता में उतरते हैं तो कविता की संरचना में परिवर्तन होता है। यह परिवर्तन भाषागत भी हो सकता है। जीवन का गहरा और व्यापक ज्ञान रखने वाला कवि प्रसंग-स्थिति में बद्ध मनुष्य की संवेदनात्मक और भावात्मक प्रतिक्रियाओं के साथ-साथ उस स्थिति से सम्बन्ध रखने वाले तथ्यों को बनाने वाले सत्यों पर अर्थात् व्यक्ति स्वभाव की विशेषताओं आदि पर ध्यान देकर इस प्रसंग-स्थिति के तथ्य के सारे ताने-बाने प्रस्तुत करेगा। इस प्रकार व्यष्टि से समष्टि तक एक अनिवार्य तत्त्व के रूप में कविता में विभिन्न प्रकार के तथ्य उपस्थित रहते हैं।

"कला का प्रथम क्षण है जीवन का उत्कट तीव्र अनुभव-क्षण। दूसरा क्षण है इस अनुभव का अपने कसकते-दुखते हुए मूलों से पृथक हो जाना और एक ऐसी फैण्टेसी का रूप धारण कर लेना मानों वह फैण्टेसी अपनी ऑखों के सामने ही खड़ी हो। तीसरा और अन्तिम क्षण है इस फैण्टेसी के शब्दबद्ध होने की प्रक्रिया का आरम्भ और उस प्रक्रिया की परिपूर्णावस्था तक की गतिमानता।.... जो फैन्टेसी अनुभव की व्यक्तिगत पीड़ा से पृथक होकर अर्थात उनसे तटस्थ होकर अनुभव के भीतर की ही संवेदनाओं द्वारा उत्सर्जित और प्रक्षेपित होगी, वह एक अर्थ में वैयक्तिक होते हुए भी दूसरे अर्थ

में नितान्त निर्वैयक्तिक होगी। उस फैण्टेसी में अब एक भावात्मक उद्देश्य की संगति आ जायेगी। इस भावात्मक उद्देश्य के द्वारा ही वस्तुतः फैण्टेसी को रुप-रंग मिलेगा।''[3]

कवि के ज्ञान और बोध के आधार पर ही उसकी भावना की इमारत खड़ी होती है। यदि ज्ञान और बोध की बुनियाद गलत हुई तो भावनाओं की इमारत भी बेडौल और बेकार होगी। उसका असर काव्य-शिल्प पर भी होगा। काव्य की सर्जना-प्रक्रिया ही काव्य भाषा की संरचना प्रक्रिया है। इसलिए निश्चित तौर पर यह कहा जा सकता है कि कविता की संरचना ही भावनात्मकता और संवेदनशीलता के आयामों को रुपाकार प्रदान करती है।

भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में वैचारिक साम्य और वैषम्य

सप्तकोत्तर कविता भावनात्मकता और संवेदना के स्तर पर उभरते नूतन विचारों की कविता है। विचार सामाजिक भावभूमि से जुड़कर उसका हिस्सा बन गए हैं। जो विचार पहले की कविता में जनतंत्र उकसाते थे, भाव-प्रेरक थे अब वे जनतंत्र की भावात्मक व संवेदनात्मक स्वीकृति हैं। आज का कवि विभिन्न गतिरोधों और संकटों पर विचार करता है। वह समय से जुड़ने का प्रयत्न करता हुआ दिखायी पड़ता है। भारतीयता बनाम देश-प्रेम, जातीयता बनाम जातिवाद, समता बनाम मुक्त बाजार, राष्ट्रीय कम्पनियाँ बनाम बहुराष्ट्रीय कम्पनियाँ, देशी बैंक बनाम विश्व बैंक की बहस निरन्तर उसकी संवेदनाओं को झकझोरती है। संवेदनहीन उपभोक्ता ज्यादा दिन मनुष्य ही नहीं रह पाता। इसीलिए यह कविता संवेदना की बुनियाद को टटोलने का सहज प्रयास करती है। सप्तकोत्तर कविता मूलतः आज के आदमी के सहज बोध की कविता है। जीवन-यात्रा के सूत्रों से मर्म की ऊष्मा और वैचारिकता इस कविता में भिन्न अर्थबोध देते है। सांस्कृतिक साम्राज्यवाद के दौर में आज की कविता में फूलों बच्चों, औरतों, लड़कियों, आदमी, नदी-पहाड़, माता-पिता और सामाजिक सम्बन्धों को कवियों ने नये अनुभव से युक्त वैचारिक साँचे में ढाला है। वैचारिक अभिव्यक्ति के लिए आज का कवि भावनात्मकता और संवेदना के बने-बनाए साँचों या शास्त्रीय साँचों का अभ्यास नहीं करता है। वह जीवन की वास्तविक छवियों को सीधे तौर पर ग्रहण करता है और चीजों को एक क्रम में लाते हुए संवेदना और भावना की रक्षा करता है।

सप्तकों के बाद की कविता का सबसे व्यापक और सबल पक्ष है- जातीयता पारिवारिक सम्बन्धों पर जितना इस दौर में लिखा गया है, उतना पिछले किसी दौर में नहीं लिखा गया। सर्वत्र एक ताजगी, टटकापन, गहरी ऊष्मा और वैचारिकता हमें मिलेगी। इस ताजगी, टटकापन, ऊष्मा और

वैचारिकता का वास्तविक कारण यह है कि इन कविताओं में स्वयं कवि परिवार के एक सदस्य या सम्बन्ध के रूप में उपस्थित है। पारिवारिकता का अनुभव हर व्यक्ति का अपना अलग और निजी होता है। टटकापन स्वभावतः ही उसमें होता है। एक व्यक्ति के विचार या कल्पनाएँ इस मामले में दूसरे से नितान्त भिन्न होते हैं।

देश की बृहत्तर जनता के बीच एक अन्तःसलिला की तरह कुछ आंदोलन चुपचाप चला करते हैं। जिनसे समाज की अनेक अन्तर्क्रियाएँ मूल्य व मान निर्धारित होते हैं। इन मूल्य व मानों की प्रकृति कुछ ऐसी होती है कि समाज के सभी सदस्य इनसे अनुशासित होते हैं। ये मान-मूल्य मानवीय आधार पर सम्पूर्ण समाज के सफल संचालन की प्रक्रिया में स्वतः पर द्वन्द्वात्मक पद्धति से निर्मित होते चलते हैं। एक प्रकार से मनुष्य ने अपने स्वयं के जीवन-संघर्ष और अग्रगामी दृष्टि से, स्वयं के आत्म-साक्षात् में ये मूल्य अर्जित किए हैं। मनुष्य के अब तक के संघर्ष और विकास-यात्रा की ये सबसे बड़ी उपलब्धियाँ है। सत्य, प्रेम, समानता, न्याय, सह-अस्तित्व, प्रतिरोध, पुनस्सृजन इत्यादि ऐसे ही मूल्य हैं।

आज की कविताओं में भावना और संवेदना से उत्पन्न करूणा एक केन्द्रीय भाव की तरह उपस्थित है। यों करूणा का स्वभाव द्रवित करता है लेकिन आज का सजग और प्रखर कवि अपनी वैचारिकता से कविताओं को केवल भावुकता के स्तर पर घटित होने से बचाये रखता है। यह करुणा कविता के जरिये एक वेदना की तरह पहुँचती है- एक ऐसी वेदना जिसके मूल में मनुष्य के अभाव और दुःख हैं और जो मनुष्य को इन सबके विरुद्ध संघर्ष करने के लिए आवाज देती है। आज का कवि मनुष्य की वेदना, उसके संघर्षो और लोक जीवन को अपने संवेदनों के द्वारा पूरी मार्मिकता के साथ एक ऐसी लोकोन्मुखी कविता में बदलना चाहता है जो मानव और मानवता के पक्ष में सीधी खड़ी हो सके।

आज का कवि यह मानता है कि कविता इस संसार के बारे में एक संज्ञान, एक मुक्ति, एक ताकत और एक समर्पण है; वह आज भी दुनिया का विवरण देती है और एक वैचारिक व आध्यात्मिक अनुभव बन जाना चाहती है। कविता मनुष्य को एक संसार से दूसरे संसार में ले जाती है; वह आदमी को अकेलेपन का अहसास भी कराती है और उसे दूसरे की पीड़ाओं से भी जोड़ती है। सदी के अंतिम वर्षो में झूठ, उत्पीड़न, पाशविकता और बेइंसाफी को फैलाने वाले कुछ नयी तरह के खिलौने निर्मित हुए हैं। घटनाएँ-घटनाएँ नहीं, हादसे हादसों की तरह नहीं हैं। सब कुछ भीषण रूप से भव्य, लुभावना और उन्माद भरा। विध्वंस, जुल्म, बेबसी और क्रूरताओं के बेहद हंगामाखेज दृश्य।

सब कुछ बेहद तात्कालिक और क्षणिक। सब कुछ बेहद आक्रामक और संवेदनाविहीन। नृशंसताओं का एक नया रोमांच, लाचारियो की एक नयी सनसनी। और इस सच को दिखाने के पीछे एक पूँजी, एक बाजार, और एक नियंत्रणमूलक ताकत। यह सच एक रोग की तरह संवेदना तंतुओं के जाल में फैलता जाता है और आदमी विक्षिप्तता की-सी स्थिति में उसका शिकार बनता जा रहा है।

सप्तकों के बाद की कविता विचारों और कल्पनाओं के झरोखों को खोलती है और इस तरह मनुष्य को मनुष्य बनाने का प्रयास करती है। वह सपने को सम्मान देती है तथा वणिकवृत्ति को निरंकुश होने से रोकती है। उसके भीतर एक सुसंगत तर्क-पद्धति है। उसका राजनैतिक आशय बहुत महत्त्वपूर्ण होता है लेकिन वह उसकी अंतरतम संवेदना से तय होता है। इस कविता में हमारे समय की युवा पीढ़ी का भग्न संसार और फिर भी जीवित मनुष्य की तरह व्यवहार करने की दृढ़ इच्छा है।

विद्रोही कवि वह जो यथास्थिति को और रूढ़ियों को झकझोरता हुआ नये चिन्तन को उभारता है, नये विचारों का प्रवर्तन करता है और नये संवेदनों को नये ढंग की अभिव्यक्ति प्रदान करता है। विद्रोह को विचार से और विचार को विद्रोह से अलग नहीं कर सकते है। वे एक दूसरे के पूरक हैं। विचार विद्रोह की ओर ले जाता है और विद्रोह विचार को परिपुष्ट करता है। बिना विचार के जिस विद्रोह की कल्पना की जाती है वह विद्रोह की रोमानियत से आगे नहीं बढ़ पाता जबकि विचार का संबल लेकर हम विद्रोह को रोमानियत से यथासंभव बचाते हुए उसके सही क्षेत्र में दाखिल होते हैं। आज की कविता के बारे में विचार और अनुभव की बदली हुई प्रकृति और काव्यात्मक प्रतिफलन को लेकर बात करना जरूरी है। समकालीन काव्य वस्तु की अभिव्यक्ति के लिए अनुभव और विचार को एक साथ तानना जरूरी है। यह सच है कि अनुभव के आधार के बिना कविता सम्भव नहीं, पर यह भी सही है कि विचार के आधार के बिना कविता बड़ी और संवेदनशील नहीं बन सकती। अनुभव दो प्रकार के होते हैं-एक निजी या भोगा हुआ अनुभव दूसरा सम्पर्कीय अनुभव। निजी अनुभव खाद बन जाता है और कवि अनुभव को व्यापक फलक पर सामाजिक सच्चाइयों तक फैला देता है। यहीं अनुभव विचार से आ जुड़ता है और विचार अनुभव में ढल जाता है। विचार भौतिक जगत से, मानवीय भावनाओं से, मानवीय संवेदनाओं से, विभिन्न जीवन संदर्भो और प्रसंगों से हमारे संबंधों और टकरावों से पैदा होते हैं। हमारे चिंतन और सोच का एक सिरा जुड़ा है हमारे अन्तर्मन से, दूसरा सिरा जुड़ा है बाहरी जगत् से और जिन्दगी की ठोस हकीकतों, ठेठ जीवन-संदर्भो और व्यापारों से और दोनों के संघर्ष से पैदा होते हैं विचार।

कविता के लिए विचार तभी काम का होगा जब वह मानवीय संबंधों और आशयों को ध्वनित

करता हुआ अपनी सक्रिय उपस्थित से घेरेगा। विचार में संकल्पात्मक शक्ति और रचनात्मक सक्रियता तभी आती है जब उनके पीछे अनुभवों का ताप, जिन्दगी की हरकतें और भरी-पूरी दुनिया हो। विचार-तत्त्व के बिना उच्च कोटि की कविता सम्भव नहीं है। कविता का वैचारिक होना या ज्ञानात्मक होना कविता में विचार रखना भर नहीं है, विचार को उसका अविच्छिन्न हिस्सा बनाना है, विचार द्वारा उसे संयोजित और स्फूर्त करना है। उसके साथ मूल्यबोध और सौंदर्य-बोध के अनेक प्रश्न जुड़े हुए हैं। कविता की वैचारिक प्रक्रिया विचारों को धारण करने वाली, उनका विधान करने वाली मूल्य-सृजन प्रक्रिया ही है। विचार, मूल्य, भाव और संवेदनाएँ ठोस परिस्थिति से टकराव की हालत में ही सामने आती हैं और अभिव्यक्ति के दौरान रूपान्तरित होती हैं। जीवन स्थितियों से टकराव, संवाद और जिरह की पद्धति विचार को क्रियाशील और मूल्य-सृजन एवं अन्वेषण में समर्थ बनाती है। इसी से संवेदना सम्पन्न और ज्ञानात्मक बनती है और संघर्ष तथा लड़ाई के योग्य भी। उदाहरण के लिए नरेश मेहता की 'कवच' कविता की ये पंक्तियाँ-

मैं जानता हूँ तुम्हारा यह डर

जो कि स्वाभाविक ही है, कि

अगर तुम घर के बाहर पैर निकलोगे

तो कहीं वैराट्य का सामना न हो जाए,

तुम्हें भी कहीं

नदी की भाँति

निर्जन कान्तारों में चलना न पड़ जाए,

या तुम्हें कहीं

क्षितिज पर खड़ा करके

कन्धों पर

एटलस की भाँति आकाश न रख दिया जाए।[4]

यहाँ कवि ने सैद्धान्तिक पक्ष के माध्यम से सामाजिक यथार्थ की संवेदना को प्रकट करने का प्रयास किया है। सिद्धान्तों और आदर्शो को ग्रहण करके संकुचनशील परिवेश में साँस लेना और अपने वैराट्य का यथार्थ में विस्तार करना कवि को जोखिमपूर्ण कार्य प्रतीत होता है। उतना ही जोखिमपूर्ण उसे शाश्वत अविचल भाव से युक्त रहना भी लगता है-

क्या तुम जानती हो

दर्द मेरा

ओ हवा!

यदि कहूँ भी तो

समझ पाओगी

शाश्वत खड़े रहने का दर्द?[5]

कवि की यह पीड़ा स्वाभाविक ही है। मानवीय वृत्तियाँ कभी निरन्तर गतिशील तो कभी जड़वत् हो जाती हैं। इन परिस्थितियों में मनोभावों और संवेदनों में प्रायः एकरूपता हो जाती है-

नहीं कोई जघन्य कुकर्म पर-पीड़न सदृश जग में

इसे ही भूल कर मैने अनय का पंथ अपनाया,

करेगा ध्वस्त अपना ही कठिन प्रतिद्वन्द्व यह मुझको

किसी वन-कन्दरा में भी न होगी शान्ति की छाया।[6]

यहाँ पर भीष्म के द्वारा युवावस्था में अंबा तथा उसकी बहनों के अपहरण के दुःख से उत्पन्न अन्तर्द्वन्द्व का मनोवैज्ञानिक चित्रण रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' ने किया है। अपराध-बोध के कारण उत्पन्न लज्जा, ग्लानि और अशान्ति उसकी स्वाभाविक संवेदना को आहत करती हैं। अन्तर्द्वन्द्व और कुण्ठा की स्थिति में कवि जीवन और मृत्यु के रहस्यों की पर्त्तें को उलटने-पलटने लगता है-

मौत तुम्हें मेरी प्रतीक्षा है

या मुझे तुम्हारी संवीक्षा है

नियति की यह कैसी तितीक्षा है

यह तुम्हारी या मेरी इच्छा है

कुम्भकार की क्या शिक्षा है?

एहसासों की आग में तपना किसकी दीक्षा है?[7]

मृत्यु जीवन के दूसरे छोर का यथार्थ रूप है। नियति का सिद्धान्त इन दोनों पक्षों को संयुक्त करके जीवन रेखा खींचना है। विचारवान कवि इस सिद्धान्त को बखूबी समझता है और अपनी संवेदना को इस यथार्थ के समीप ले जाता है। नईम की इन पंक्तियों में यथार्थ से टकराने पर उत्पन्न छटपटाहट के स्पष्ट संकेत दिखायी देते हैं-

सच अपनी ही कसमें खाते

ज्यादातर जी लिया झूठ में,

आप हरापन खोज रहे, पर

क्या पाएँगे निरे ठूँठ में?

शामिल कभी न हो पाया मैं।

जात-पाँत या किसी वरण में।[8]

सिद्धान्तों और विचारों से ओत-प्रोत कवि मन का चिन्तन और सोच भावनात्मकता के चरम बिन्दु पर पहुँचकर यथार्थपरक संवेदना की अनुभूति उत्पन्न करते हैं। फलतः कवि कह उठता है-

कहाँ जाऊँ किसके साथ हो लूं

जो शख्स मेरी भूख में शामिल नहीं

उसके लिए कैसे फ़र्ज करूँ

वह मेरे विचार में शामिल होगा।[9]

अन्तर्द्वन्द्व की स्थिति में कवि की संवेदना स्वभावतः आहत मनोभावों को प्रकट करने लगती है। ये भावनाएँ उसके विचारों को पाखंड और आडम्बर से जूझने और नष्ट करने को प्रेरित करती है। आज का कवि दुःखों से हारकर मृत्युबोध से ग्रस्त होने वाला या पलायनवादी नहीं है। उसके अन्दर इस दुःख से मुक्त होने और यथार्थ के धरातल पर उठकर अपने गौरवबोध को बचाने की जिम्मेदारी है-

दुःख के अन्तिम दिनों में

फाँसी या आत्महत्या की

इच्छा नहीं होती

मुक्त होने या उठने की

इच्छा होती है।[10]

वर्गगत विषमता और सामाजिक जटिलताओं में वृद्धि करने वाले धर्माधिकारियों का दुष्प्रभाव सदैव ही मानवीय भावनाओं को तार-तार करता रहा है। सामाजिक व्यक्ति पर इन रूढ़ियों और अंधविश्वासों के प्रति अरूचि उत्पन्न होती जाती है, फलस्वरूप धर्म के प्रति भी उसकी संवेदना में परिवर्तन होता है-

सब कुछ बाँटा

किया विघटन में विकास

और अब देखो बाम्हन देव

इतना सब कुछ करते हुए

आज अकेले बचे तुम

अकेले.........और............अछूत।[11]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि की मानववादी भावना तथा समाजपरक संवेदनशीलता में वैचारिक साम्य दिखलाई पड़ता है। कालीन कारखानों में गर्द में लिपटे हुये मजदूर बच्चों की दयनीय स्थिति का चित्रण अंशु मालवीय ने इस प्रकार से किया है-

उनके नन्हें गुलाबी फेफड़े

गैस के गुब्बारों से थे,

उन्हें खुले आकाश में

उड़ा देने को बेचैन

मौत की चिड़िया

कारखानों में उड़ते रेशों से

उनके उन्ही फेफड़ों में घोंसला बना रही है।[12]

मानवीय परिवेश का यह संवेदनशील दृश्य कवि की मानववादी भावना से युक्त शुद्ध वैचारिकता से प्रभावित है। जिन नौनिहालों की शिक्षा व स्वास्थ्य के प्रति जागरूक रहनेकी उम्र है वे अपना बचपन ऊँची अट्टालिकाओं में रहने वाले धनाढ्यों की सेवा में नष्ट करते हैं। सप्तकोत्तर कविता मानवता की पोषक तथा आज के कवि की संवेदना न्याय की पक्षधर है। कवि कहता है-

तुम यदि जेल में हो

जो कि हो-

तो दुनिया की तमाम स्वतंत्रताएँ जेल में ही हैं;

नपुंसक गुलाम आजादी से

कहीं मूल्यवान है

तेजस्वी बन्दी स्वतंत्रता।[13]

कवि मानवीय स्वतंत्रता को अत्यन्त आवश्यक मानता है। वह भली-भाँति जानता है कि जब तक हर व्यक्ति को बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त नहीं होगी तब तक न तो उसका भावनात्मक विकास होगा और न ही उसकी प्रतिभा के साथ पूरा न्याय हो सकेगा। यह तभी सम्भव है जब व्यक्ति में वैचारिक

स्थिरता उत्पन्न होगी-

थिर होने का

सुख अलबेला

देखो तो सह कर।[14]

यहाँ कवि बहती हुयी जलधारा में ही सुखद अनुभूति प्राप्त नहीं करता, अपितु उसे स्थिरता में भी लहरों का आनन्द स्वाभाविक रूप से प्राप्त होता है। जीवन में स्थिरता मनोभावों में दृढ़ता होने पर ही प्राप्त की जा सकती है। आज का कवि अत्यधिक संवेदनशील और भावुक कवि है। इसीलिए वह बार-बार जीवन-मूल्यों और आदर्शों का प्रश्न उठाता है-

लगभग अन्त में एक संवेदनशील और भावुक कवि उठेगा

और घोषणा करेगा

कि समय आ गया है

कि हम स्थगित कर दें

अपनी विचारधारा और सरोकार

और पता करें कि

हम जिन मूल्यों और आदर्शों के लिए

लड़ते रहे जीवन भर

उनके प्रति कितने आस्थावान और वफादार रहे ?[15]

वर्तमान समाज में स्वार्थ और अहं के बढ़ते प्रभाव ने व्यक्ति को निर्मम और संवेदनहीन बना दिया है। वह प्रकृति के सौन्दर्य, प्रेम के संगीत और कविता की सुगन्ध से निरन्तर दूर होता जा रहा है। जबकि इन सबका उसके व्यक्तित्व निर्माण में तथा सामाजिक संगठन में महत्त्वपूर्ण स्थान है। कवि को विश्वास है कि एक दिन मानवता को इस षड्यन्त्र से मुक्ति अवश्य मिलेगी। वह कहता है-

तब वे अपने बच्चों से कहेंगे

एक बदमिज़ाज और ऐयाश वक़्त के क़िस्से

निर्दोष बालकों के हत्या प्रसंग

धर्मोन्माद के तंग और हरामी

षड्यन्त्रों की कहानियाँ।[16]

कवि का यही विश्वास उसकी समाज के प्रति संवेदना को अक्षुण्ण बनाए रखता है। समाज

में निरीहता और निर्बल हृदय के साथ जीने वाले व्यक्ति का सदैव शोषण और उत्पीड़न होता है। इस यथार्थ को संवेदनशील कवि इस प्रकार प्रस्तुत करता है-

विश्लेषण के बाद नतीजा निकला

जो मेहनत सिर झुकाये रहती है

और निरीह बनी रहती है वह

गधा बन जाती है।[17]

यहाँ कवि की वैचारिकता सैद्धान्तिक भावनात्मकता तथा यथार्थपरक संवेदनशीलता से युक्त है। सजग कवि ऐसी विद्रूपताओं पर व्यंग से नहीं चूकता है-

सोचकर देखिए कितनी ताकत है नकल में

कितने घरों को गिराकर बनता है

नकल में बना घर

कितनी जेबों को काटकर बनती है

नकल की पतलून

कितने विचारों की हत्या से आते हैं

नकल वाले विचार।[18]

बौद्धिक कवि मौलिकता का पक्षधर है। वह विचारों में, भावनाओं में और संवेदन में किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित नहीं होता। उसके भाव किसी की नकल या घिसे-पिटे विचारों से प्रेरित होकर उत्पन्न नहीं हुये हैं। उसकी बौद्धिक भावनात्मकता उसे अथक रूप से गतिशील रहने को प्रेरित करती है। वह निडर होकर उन सब बुराइयों पर प्रहार करता है जो उसे मनुष्य होने से रोकती हैं-

जो हुआ नहीं

होना चाहता हूँ अब से

हुआ करे कोई खुदा

क्या मजाल कि वह नचाए

और भरमा दे।[19]

आज के कवि की संवेदना समाज विरोधी और मानव विरोधी तत्त्वों पर जमकर व्यंग्य करती है। वह 'अहिंसा परमो धर्मः' और 'सर्व धर्म समभाव' के नीतिवाक्यों का प्रसार करने का अभिलाषी है। समाष्टिगत भावना से आप्लावित कवि हृदय सामाजिक विषमताओं से क्षुब्ध होकर वैचारिक व

संवेदनशील हो उठता है-

फिर कब उपजती है

हत्या की हिंस्र लपट

विचार ही हत्या करते हैं विचार की,

सोखते हैं शब्द,

और हो जाता है ठूँठ

एक हरा-भरा वृक्ष।[20]

बाजारीकरण और भू-मण्डलीकरण के दौर में उलझा हुआ मनुष्य अपनी मौलिकता और संस्कृति को बचाने का यथासंभव प्रयास करता है, परन्तु उपभोक्तावादी नारों में जकड़ा हुआ वह बौद्धिक जुगाली में तल्लीन हो जाता है। कवि हेमन्त कुकरेती का यह व्यंग्य कितना सटीक है-

कैसा विनिमय है चीज़ों का

गेहूँ कपास न हुआ सिन्थेटिक कपड़ा होकर बिकने लगा

बच्चे जिन बिस्कुटों के बदले राज़ी होते थे अपनी नींद

तोड़ने के लिए

वे रूमाल हो गये

फिर भी पैण्ट इतनी ऊँची हो गयी कि भूख जितनी ढीठ

कमीज़ें इतनी महँगी कि उन्हें पहनने की ज़रूरत ही नहीं रही।[21]

आज के पूँजीवादी युग में आदमी भी एक वस्तु बन गया है वह पैसे के पार देखने की शक्ति खोता जा रहा है। आधुनिकता की दौड़ में शामिल होकर वह अर्थ का गुलाम होकर रह गया है उसकी संवेदना कृत्रिमता से पूर्ण हो गयी है-

छोटे-बड़े सभी नर-मादा

अन्धी गतियों पर सवार हैं।

लगे पालकी में कबीर की

वाकई वो ठगुए कहार हैं।

लोग गलत साँचों में पड़कर

बाँके, तिरछे

मोड़ मुड़ गये।[22]

बेरोजगारी, असुरक्षा, अविश्वास, हिंसा और अपसंस्कृति के दुष्प्रभावों को आज का कवि आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में तेजी से पनपते और फैलते हुए देखकर चिन्तित होता है। उसकी भावनात्मकता कृत्रिमतापूर्ण सभ्यता के खतरे के प्रति उसे संवेदनशील बनाती है-

यह 'मुक्त' व्यवस्था है।

सम्वेदना से जिम्मेदारी से और भी

इस तरह के जितने पिछड़े शब्द हैं उन सबसे,

इसे खतरा है विश्वास से

विश्वास माने इन्सान

इन्सान होने की इच्छा न करें।[23]

मानवीय सभ्यता को कभी एक सुदृढ़ आधार प्रदान करने वाला देश और विश्व का बौद्धिक वर्ग आज अपनी ही छोटी-छोटी समस्याओं में उलझकर रह गया है। संस्कृति और समाज की सुरक्षा के दायित्व से मुक्त होकर वह विशिष्ट जनसमुदाय जब कर्त्तव्यच्युत होता है तो बौद्धिक कवि की संवेदना का आहत होना स्वाभाविक ही है-

आपस में जुड़े

जब खुलकर झगड़ते हैं नींव के पत्थर

लड़खड़ाकर ढहने लगते

हमारे ही ऊपर

हमारी सभ्यताओं के शिखर।[24]

विचार कवि के भावों और संवेदनों को संघर्ष के स्तर पर लाने का कार्य करते हैं। सप्तकोत्तर कविता में कवि की राष्ट्रवादी भावना समाज और मनुष्य के संघर्ष की परिणति है। वह भारतीय गौरव और संस्कृति की सुरक्षा के प्रति संवेदनशील है-

दरअसल कहीं नहीं है वह

फिर भी लगता है कि हर जगह वही है

नया-सा लगता कोई बहुत पुराना आदमी

किसी गुमनाम गली में

एक जले हुए मकान के सामने

खड़ा हैरान

कि क्या यही है उसका हिन्दुस्तान ?[25]

कवि मन अपने राष्ट्रप्रेम की भावना को गाँव, शहर और परिवेश में पल्लवित करता है। उसके लिए राष्ट्र का सबसे संवेदनशील हिस्सा गाँव सबसे महत्त्वपूर्ण है। कवि कहता है-

मेरी कजरारी

सीपी-सी आँखों में

जमा है

मेर गाँव का नक्शा

मेरा गाँव

मेरा देश है

मेरा देश

मेरी बपौती है।[26]

स्वतन्त्रता के पचास वर्ष बाद भी भारतीय जनता के लिए समस्याओं का अम्बार लगा हुआ है। ग्रामीण किसान दैवीय आपदाओं के साथ-साथ भूख, महँगाई और जातिगत हिंसा का शिकार होता है। अशिक्षा, गरीबी और अज्ञानता तो उसके लिए जीवन भर कष्टदायक सिद्ध होते हैं। आज का कवि इस आधुनिक विषमता को अपनी सर्जनात्मक संवेदनशीलता के साथ प्रकट करता है-

जब गणतंत्र में कम जानना या अधिक जानना नहीं बल्कि

भूख एक मुद्दा है और

विरोध एक जरूरत तो

मैं कम पढ़ा लिखा

और तुम अधिकतम पढ़े लिखे

एक साथ चलेंगे।[27]

भूख और विरोध से जूझते हुए गरीब और बौद्धिक वर्ग की स्थिति लगभग एक-सी है। दोनों को ही सामाजिक टकराव का सामना करना पड़ता है। सप्तकों के बाद का कवि अपनी दार्शनिक भावना को कभी प्रकृति के सौन्दर्य से तो कभी जगत् के क्रिया व्यापारों से अनुप्राणित करता है-

महा विकट की छाया घन के

नन्हे शिशु का भोलापन

अंतरतम में ज्योतिपुंज-सा

आलोकित करता मेरा मन

निश्छल मगन देख रहा मैं

जग जीवन का पटु व्यापार

कल-कल झल-मल प्रतिपल

लुकती-छिपती छवि साकार।[28]

कवि की दृष्टिपरक संवेदनशीलता उसकी दार्शनिक भावना को विकसित करती है और उसकी वैचारिकता संवेदना की गहराइयों में पहुँचकर उसे अलौकिकता की स्थिति में पहुँचाती है-

दुनिया है

यहाँ कोई

अक्षयवट नहीं है

आया सो जाएगा।[29]

रहस्यवादी दार्शनिक भावना से परिपूर्ण माधवीलता शुक्ला की निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रकृतिजन्य संवेदना व गहन वैचारिकता से उपजी हुई हैं-

जब कपासी ओढ़नों में

जिन्दगी बरबस दुबकती

रात सारी नील नभ से,

ओस बनकर मैं बरसती।[30]

लौकिक प्रेम की भावना का परिष्कृत रूप लोकोत्तर और अलौकिक की सीमाओं तक पहुँचाता है। प्रेम को एक ईश्वरीय प्रार्थना और साधना की भाँति और उसकी पीड़ा को ही लोक संवेदना की भाँति ग्रहण करके मनुष्य प्रेम को जान सकता है-

प्यार को / प्रार्थना जो नहीं मानते,

वे समझ लो / स्वयं को नहीं जानते;

पीर को राजरानी / बनाकर जहाँ

रख सकें हम / चलो वह शहर तय करें।[31]

प्रेमबोधक भावना का परिपक्व रूप लौकिक संवेदना से जोड़ता है। लौकिक प्रेम की पीड़ा को सहकर ही कवि संवेदनशील और विचारवान बनता है। सप्तकों के बाद का कवि अपकी कविताओं में संस्कृतिहीनता के संकट से उत्पन्न अवसाद, भूख, निरुपायता और निराशा के जलते हुए सन्दर्भो

की तल्ख संवेदना जगाता है। उदाहरणार्थ मंगलेश डबराल की 'दूसरे लोग' कविता में-

आग लगाने वालो

इससे दूसरों के घर मत जलाओ

आग मनुष्य की सबसे पुरानी अच्छाई है

यह आत्मा में निवास करती है और हमारा भोजन पकाती है।[32]

कविता में चीजों को छूने का और स्थितियों को आंकने का मंगलेश का ढंग अलग ही है। संवेदन कैसे विचार में ढलता है और विचार कैसे संवेदन में। यह मंगलेश की कविताओं में साफ तौर पर देखा जा सकता है। आतंकवाद और बाजारवाद की अनैतिक स्थितियाँ ही संवेदनात्मक और भावनात्मक क्षति पहुँचाने का कार्य नहीं करतीं बल्कि एक खराब कविता भी संवेदनशीलता को क्षति पहुँचाने का कार्य करती है। आज के परिवेश में अपने पड़ोसी से अनभिज्ञ रहकर अकेलेपन की कौन-सी सामाजिकता पनप रही है? समाज में नैतिकता का गिरता ग्राफ तथा बढ़ते उपभोक्तावाद की चिन्ताएं है। मनुष्य की पूरक प्रकृति है तथा उसके विध्वंस युद्ध हैं जिसके मूल में आर्थिक सम्प्रभुता की इच्छाएँ है। लीलाधर जगूड़ी 'युद्ध के लिए मौसम' कविता में लिखते हैं-

खनिजों ने कहा इच्छाएँ युद्ध हैं

आवश्यकताएँ युद्ध हैं

बाजार युद्ध हैं हम नहीं

जरूरत से ज्यादा युद्ध उपजाती है

युद्ध कराता है बहुराष्ट्रीय धन्धे की पहचान।[33]

अर्थजगत के तनाव जगूड़ी की वैचारिकता को विशेष रूप से आन्दोलित करते हैं अपने समय के अर्थतन्त्र को प्रतिबिम्बित करतीं ये पंक्तियाँ खुले बाजार की नीति के अन्तर्गत विश्व बाजार के दबाव को महसूसती हैं। इस प्रकार से विचार के स्तर पर भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों में एकरूपता या समानता की स्थिति दिखायी देती है। उदाहरण के लिए रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' की ये पंक्तियाँ-

न उत्तर दूँ किसी नव रश्मि की मादक प्रणति का मैं

विभा का वृत्त कोई भी न मुझसे ऊष्मा पाये,

रहूँ अवरुद्ध भावातीत मैं अपनी शिराओं में

बनूँ अंबुधि कभी जिसमें न कोई ऊर्मि उतराये।[34]

यहाँ कवि ने भीष्म की व्यक्तिगत भावनात्मकता का चित्रण बड़ी ही गहराई के साथ किया है। इन पंक्तियों में कवि का भावनात्मक चित्रण ही प्रमुख है जो कि पाठक के अन्दर भीष्म के जीवन के कटु यथार्थ के प्रति संवेदनशीलता उत्पन्न करता है। इसी प्रकार कृत्रिमतायुक्त और नाटकीय जीवन पर व्यंग्य करती हुई कवि की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

है जहाँ

अभीष्ट इष्ट,

जीवन का परम लक्ष्य-

कृत्रिमता,

अहं-तुष्टि,

नाटकीय सभ्यता।

तृण-सा जीवन अधीर

कौन सुने?

व्यर्थ पीर।[35]

आहत हृदय की पुकार को सुनने वाला और उसकी पीड़ा का अनुभव करने वाला आज कोई नहीं है। आधुनिक सभ्य समाज की इसी कुप्रथा पर संवेदनशील कवि व्यंग्य करता है। यहाँ पाठक या श्रोता के अन्दर आधुनिक समाज का चित्र निर्मित होता है जो बाद में भावनात्मकता में परिणत हो जाता है। अतः यहाँ विचार संवेदन में ढलकर तत्पश्चात् भावना में परिवर्तित होते हैं। डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' की निम्नलिखित पंक्तियाँ क्रमशः समष्टिगत भावनात्मकता और लौकिक संवेदना के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं-

यह इन्द्र का यान्त्रिक कहीं कर दे फिर निष्प्राण

संस्कृति को, कला को

अर्थ-धर्म-समष्टि को।[36]

और

है कामना विभु से यही, इस राष्ट्र आर्यावर्त्त में

ये आक्रमण आवर्त हिंसा से न फिर उद्दण्ड हों

संस्कृति शिखर आलोकमय-चैतन्य के उत्सर्ग से

शाश्वत प्रवाहित सृष्टि में

शिव-शक्ति रूप अखण्ड हों।[37]

पहला उदाहरण कवि की भावना के समष्टिगत रूप के धर्म, संस्कृति व कला के अनुरक्षण के प्रति सजगता को व्यक्त करता है जबकि दूसरा उदाहरण लौकिक संवेदना को बचाए रखने तथा आक्रमण, हिंसा इत्यादि से सृष्टि व संस्कारों की रक्षा करने पर जोर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों उदाहरणों में एक ही बात को भावना व संवेदना के साथ कवि ने वैचारिक ढंग से प्रस्तुत किया है। दार्शनिक भावना से पूर्ण डॉ० रामलखन सिंह परिहार 'प्रांजल' की ये पंक्तियाँ अवलोकनीय हैं-

अनल-अंगार से जलते प्रहर पर हम न घबरायें।

अमरता के लिये सन्देश विजयी गान को गायें।

वही फिर सूर्य-चन्दा की मनोरम रोशनी होगी।

वही स्वच्छन्दता ही प्रेम-रस से फिर सनी होगी।[38]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि का दर्शन आशावादी चिन्तन से ओत-प्रोत है। वह भावनात्मक दृढ़ता के साथ समस्त सृष्टि में अमरता और नवीन चेतना का संचार करना चाहता है। कवि की यही दार्शनिक भावना उसे लौकिकता से अलौकिकता की ओर उन्मुख करती हुई-सी प्रतीत होती है। अलौकिक संवेदनशीलता का चित्र डॉ० रामलखन सिंह परिहार 'प्रांजल' की इन पंक्तियों में गहन चिन्तन से सम्पृक्त है-

कौन मिलन के क्षण देकर मानस सन्तृप्त बनाये?

कौन विरह के संवेदन से अंग-अंग सुलगाये?[39]

कवि ने यहाँ ईश्वरीय सत्ता को ही मिलन और विरह की संवेदना जाग्रत करने वाला बताया है। जीवन के सुख-दुःख और समस्त समृद्धियाँ इत्यादि प्रदान करने वाली वही अद्वितीय सत्ता है। यही संवेदना परिपक्व होकर पाठक की दार्शनिक भावना को पुष्ट करती है। विचारों की तीव्रता के साथ-साथ कवि के अन्दर बौद्धिकता में भी वृद्धि हो जाती है फलस्वरूप उसकी संवेदना घनी हो जाती है और स्वाभाविक रूप से वह कह उठता है-

यह मेरा हृदय

एक द्वीप है

जिस पर बार-बार

निर्वासित होता हूँ मैं।[40]

बार-बार का यही निर्वासन आज के कवि की पीड़ा है। उसका हृदय एक बुद्धिजीवी और संवेदनशील कलाकार का हृदय है जिसमें कवि के कृत्रिम व्यक्ति को बार-बार निर्वासित होना पड़ता

है। यहाँ कवि का स्वभाव उसे उसके परिवेश से जोड़ता है तो उसकी बौद्धिकता उसे तटस्थ बनाए रखना चाहती है। आज के कवि की जीवन-दृष्टि एक स्वस्थ जीवन दृष्टि है। उसे गिरना तो स्वीकार है परन्तु गिरकर बिखरना बिलकुल नहीं-

बादल में कैसे बाँध के रखोगे मुझे

पानी की बूँद हूँ, गिरूँगी ही

पर गिरूँ तो काश-

किसी बच्चे की बंद आँखों पे गिरूँ

किसी चातक की आस भरी चोंच में गिरूँ

किसी खेत की प्यासी फसल पे गिरूँ-

गिरना तो किस्मत है मेरी

पर बिखरना मेरी मर्जी नहीं।[41]

अलका त्यागी की यह मनोवैज्ञानिक दृष्टि उनकी मानवीय चेतना की द्योतक है। समस्त समष्टि के कल्याण की भावना सप्तकोत्तर कविता में सर्वत्र बिखरी हुई है। ऐसी विशुद्ध भावनात्मकता का आज की विषमतापूर्ण परिस्थितियों में भी कविता में बने रहना और आम-आदमी तक पहुँचना अपने आप में एक बड़ी बात है। गहराई से देखा जाय तो उपरोक्त पंक्तियों में कवयित्री की लौकिक संवेदना उसे बिखरने से रोकती हुई-सी प्रतीत होती है। लगभग एक जैसी वैचारिकता को संजोये हुए प्रेम रंजन अभिमेष की ये दो कविताएँ संवेदना और भावना के पृथक-पृथक रूपों के उदाहरण प्रस्तुत करती हैं-

फूल रखने वाले

तो बहुत हैं

मैं करता हूँ

मुरझाए फूलों को समेटने का काम.....।[42]

और

गाँठ नहीं मेरी सोच में

रखता हूँ सँसरफाँस

लगती किसी की उँगली

और खिंचता खुलता जाता

अनायास.....।[43]

पहली कविता लौकिक संवेदनशीलता से युक्त है तो दूसरी कविता में कवि की व्यक्तिगत भावनात्मकता अधिक मुखर रूप में व्यक्त हुई है। उपरोक्त दोनों कविताएँ वैचारिकता के स्तर पर तो एक-सी प्रतीत होती है, किन्तु, भावनात्मकता और संवेदनशीलता के स्तर पर इनमें पर्याप्त वैषम्य है।

सप्तकोत्तर कविताओं के उपर्युक्त विश्लेषण से वैचारिकता के निम्नलिखित आधार निर्धारित किए जा सकते हैं-

वैचारिक साम्य के आधार-बिंदु

1. पारिवारिक सम्बन्ध।
2. वर्गगत विषमताएँ, रूढ़ियाँ तथा अर्थगत तनाव।
3. विद्रोह एवं संघर्ष।
4. सैद्धान्तिकता एवं आदर्शवादिता।
5. सामाजिक यथार्थ।
6. मानवीय मूल्यों की रक्षा।
7. आधुनिकता।
8. दार्शनिकता।
9. लौकिक तथा अलौकिक प्रेम की भावना।

वैचारिक वैषम्य के आधार-बिंदु

1. व्यक्तिगत पीड़ा, कुंठा और अंतर्द्वन्द्व।
2. सामाजिक विकृतियों को देखकर उत्पन्न हुई संवेदना।
3. आशावादी चिन्तन।
4. लौकिक संवेदना की रक्षा।
5. तटस्थता।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर वैचारिक साम्य और वैषम्य को निम्नवत सारणीबद्ध किया जा सकता है-

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में वैचारिक साम्य

वैचारिक बिंदु	भावनात्मकता	संवेदनशीलता
पारिवारिक सम्बन्ध	प्रेमबोधक भावनात्मकता	यथार्थपरक संवेदनशीलता
सामाजिक विषमताएँ	समष्टिगत भावनात्मकता	समाजपरक संवेदनशीलता

सैद्धान्तिकता एवं आदर्शवादिता	व्यक्तिगत तथा सैद्धान्तिक भावनात्मकता	यथार्थपरक संवेदनशीलता
मानवीय मूल्यों की रक्षा	मानववादी भावनात्मकता	समाजपरक संवेदनशीलता
आधुनिकता	आधुनिक भावनात्मकता	कृत्रिमतायुक्त संवेदनशीलता
लौकिक तथा अलौकिक प्रेम की भावना	प्रेमबोधक भावनात्मकता व दार्शनिक भावनात्मकता	लौकिक तथा अलौकिक संवेदनशीलता

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में वैचारिक वैषम्य

वैचारिक बिंदु	**भावनात्मकता**	**संवेदनशीलता**
व्यक्तिगत पीड़ा, कुंठा और अंतर्द्वन्द्व	व्यक्तिगत भावनात्मकता	सहृदय पाठक में यही विचार यथार्थपरक संवेदना को उत्पन्न करते हैं।
सामाजिक विद्रूपता	संवेदना वैचारिकतायुक्त होकर समष्टिगत भावना को उत्पन्न करती है।	समाजपरक संवेदनशीलता
आशावादी चिन्तन	दार्शनिक भावनात्मकता	दार्शनिक भावना विचारों में ढलकर लौकिक संवेदना का रूप ग्रहण करती है।
लौकिक संवेदना की रक्षा	स्वाभाविक संवेदनशीलता वैचारिक तीव्रता के साथ बौद्धिक भावना को उत्पन्न करती है।	स्वाभाविक संवेदनशीलता

पारिवारिक सम्बन्ध मूलतः भावनात्मक लगाव को दर्शाते हैं, किन्तु, उनकी जटिलताएँ भावनात्मकता के साथ-साथ संवेदनाओं उत्पन्न करती हैं। समाज में फैली वर्गगत विषमताओं, रूढ़ियों, अर्थगत तनावों से भावनात्मक स्तर पर जूझता व्यक्ति संघर्ष और विद्रोह को अपनाकर संवेदनशील हो उठता है और उसकी भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता कविता में एक सी प्रतीत होने लगती है। जीवन के आदर्शों एवं सिद्धान्तों को व्यक्ति भावनात्मक स्तर पर संचित करता है और जब उसके

आदर्श और सिद्धान्त सामाजिक यथार्थ की पथरीली भूमि पर सक्रिय होते हैं जो उनमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है। यह परिवर्तन यथार्थपरक संवेदना को उत्पन्न करता है। इसी प्रकार सिद्धान्तों और चिन्तन से परिपूर्ण भावनात्मकता वैचारिकता के चरमबिन्दु पर पहुँकर यथार्थपरक संवेदना की अनुभूति कराती है। मानववादी भावना के पोषक कवि की मानवीय परिवेश और समाज के प्रति संवेदनशीलता कविता में भावना और संवेदना के ऐक्य को दर्शाती है। आधुनिकता की भावना से ग्रसित आज के आम-आदमी के चित्रण में कवि उसकी कृत्रिम संवेदना को भी दर्शाता है। प्रेम की परिपक्व भावना के साथ लोक-संवेदना और विशुद्ध जीवन-दर्शन के साथ अलौकिक संवेदना के चित्र भी सप्तकोत्तर कविताओं में भावना और संवेदना के वैचारिक साम्य को दर्शाते हैं।

आलोच्ययुग की कविताओं में वैचारिक स्तर पर कहीं-कहीं भावनात्मकता अधिक स्पष्ट दिखाई देती है तो कही-कहीं संवेदनशीलता अधिक मुखर होकर उभरती है। कवि जब वैयक्तिक पीड़ा और कुंठा की भावना का वर्णन करता है तो वहाँ भावना ही प्रमुख होती है किन्तु सहृदय पाठक में वही पीड़ा और कुंठा यथार्थपरक संवेदना को उत्पन्न करती है। किसी सामाजिक चित्र को देखकर कवि के हृदय में संवेदना जागृत होती है जो कि विचारों में ढ़लकर कविता में भावनात्मकता का रूप ग्रहण कर लेती है। कवि का आशावादी चिन्तन उसकी भावनात्मक दृढ़ता को दर्शाता है। यही भावनात्मक दृढ़ता विचारों (कविता) में ढलकर लौकिक संवेदना में बदल जाती है। व्यक्ति की स्वाभाविक संवेदना उसे परिवेश से जोड़ती है तो उसकी बौद्धिक भावनात्मकता उसे तटस्थ बनाए रखना चाहती है। लौकिक संवेदना विचारों को बिखरने से रोकती है और उन्हें एकत्र करके समष्टिगत भावना का सृजन करती है।

संक्षेप में कहा जाये तो सप्तकोत्तर कविता में वैचारिक स्तर पर भावनात्मकता और संवेदनशीलता में कहीं-कहीं समानता दिखाई देती है तो कहीं-कहीं पर्याप्त विभिन्नता भी दिखाई देने लगती है।

भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में व्यावहारिक साम्य और वैषम्य

सन् ८० के आस-पास हिन्दी कविता एक नया मोड़ लेती है। राजनीति में भी और साहित्य की दुनिया में भी कई बड़ी घटनाएँ इस समय घटित होती हैं। सन् 75 से 77 तक का आपात् काल हमारी अब तक की पूरी राजनीतिक व्यवस्था पर एक बहुत बड़ा आघात था और उससे भी बड़ा आघात यह था कि आपातकाल के खात्मे के बाद जो तथाकथित 'दूसरी आजादी' हमें मिली थी, वह देखते-देखते धूल-धूसरित हो गई। ऐसी स्थिति में राजनीति के प्रति कवियों की सीधी रूचि और

सहभागिता की अब तक चली प्रवृत्ति और परिघाटी पर जैसे एक विराम लग गया।

सन् 1979-80 के आस-पास साहित्य की दुनिया में भी एक ऐसी घटना हुई जिसने नई पीढ़ी को गहरे प्रभावित किया। वह थी-हिन्दी की जन-जीवन से गहरे जुड़ी लोक-धर्मी काव्य-प्रणाली का उभरकर सामने आना और मुख्यधारा का रूप ले लेना। त्रिलोचन, नागार्जुन और केदारनाथ अग्रवाल की कविता न केवल रचना बल्कि आलोचना के जगत् में भी, प्रमुखता के साथ उभरी। ये तीनों ही कवि पार्टी या तथाकथित वामपंथी राजनीति से ज्यादा, आम जनता के दुःख-दर्द, आशा-आकांक्षाओं, प्रवृत्तियों और पम्पराओं से जुड़े थे। जन-जीवन की सबसे गहरी और ताजा पकड़ इनके पास थी। निराला के बाद जो काव्य-धारा टूटी हुई-सी जान पड़ती थी; इनके आते ही वह एक अनवरत प्रवाह में बदल गई और हिन्दी में जन-जीवन और लोक-जीवन की धड़कनें एक बार फिर जोरों से सुनाई दीं। इन तीनों ही कवियों ने अपनी कविता और अपने व्यक्तिगत आचरण से नई पीढ़ी को इतना आकृष्ट किया कि आने वाली कविता का पूरा कलेवर ही बदलता चला गया।

सप्तकोत्तर कविता के लगभग सभी कवि एक-जैसी चिंताओं से परेशान, उदास और गुस्सा हैं। सबके सरोकार लगभग एक-जैसे हैं। यह एक जैसापन; हो सकता है कहीं-कहीं उबाऊ हो, पर इस समानता से इस पूरी सप्तकोत्तर कविता का एक जन-पक्षधर और व्यापक लोकधर्मी सामान्य चरित्र उभरकर सामने आता है जो अपने अधिकांश स्वरूप में पिछली कविता से भिन्न है। लोक व्यवहार के धरातल से जुड़ी कविता रचने वाले कवियों की जो एक पूरी पीढ़ी निकलकर सामने आई है, वह अपनी अनेक सीमाओं और न्यूनताओं के बावजूद अपने समकालीन परिदृश्य, इतिहास और आगामी भविष्य के प्रति पर्याप्त सावधान है। उदाहरण के तौर पर, देवी प्रसाद मिश्र की एक कविता है-गणतंत्र। यह उनके 'परम्परापाठ' वाले हिस्से में है। गणतंत्र की परंपरा हमारे यहाँ बहुत पुरानी है। गणतांत्रिक व्यवस्था यहाँ बहुत पहले से रही है। यह इतिहास का एक सच है। लेकिन इसी इतिहास का एक सच यह भी है कि इस व्यवस्था में पहले भी प्रभु-वर्ग की ही तूती बोलती थी, जैसा कि वर्तमान काल में हम देखते हैं। इस गणतंत्र के नियम, कानून, व्यवस्थाएँ, प्रावधान सब अभिजन वर्ग को ध्यान में रखते हुए बनते थे। कवि लिखता है-

इस गणतंत्र के नियम

इस तरह नहीं बनते

कि जैसे जन भाषा बनती है

अभिजन जब सुरक्षाओं के लिये चीखते हैं

गणतंत्र के नियम-उसी दिन निर्मित होते हैं।[44]

इस गणतंत्र के नियम होते तो जनता के लिए ही थे पर वे अभिजन-वर्ग के काम ही आते थे। ये नियम लोक-कल्याण के नाम पर बनते थे पर वस्तुतः इनका कोई व्यावहारिक महत्त्व था ही नहीं। यह मात्र अतीत में ही नहीं था, आज भी लगभग ऐसा ही है। कवि की ऐतिहासिक भावनात्मकता वर्तमान यथार्थ की संवेदना को उपरोक्त पंक्तियों में सहज तरीके से व्यंजित करने में सफल हो जाती है। यह वर्तमान को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखना है। आज के कवि के समक्ष सिर्फ मनुष्य और उसका अतीत, भविष्य और वर्तमान हैं। न केवल वर्तमान यानी समसामायिक यथार्थ, बल्कि अतीत यानी इतिहास और भविष्य यानी उसके सपने, आकाँक्षाएँ, योजनाएँ आदि भी हैं। यहाँ मनुष्य जीवन की व्यापक चिंताओं के रूबरू, कवि, उत्साह और उल्लास के साथ खड़ा है। उदाहरणार्थ केशव तिवारी की कविता 'बेनी माधव' में-

फटी बंडी, उटंग धोती

पहने तुम

खींच रहे हो ठेलागाड़ी

जानते हो कब से साधे हो

इस शहर को अपने बूढ़े हाड़ों पर

X X X X X

इस पल-पल केंचुल

बदलते शहर के लिये

हमेशा ही एक चुनौती

रहोगे, बेनीमाधव।[45]

मनुष्य यहाँ अकेला नहीं है। उसके साथ उसके श्रेष्ठ मानवीय गुणों की तलाश में जुटा हुआ परिवेशगत और सामाजिक संवेदना से ओत-प्रोत कवि निरन्तर जुड़ा हुआ है। सप्तकोत्तर कविता के कवि पारिवारिक संबंधों और संवेदनाओं का एक पूरा ताना-बाना लेकर उपस्थित हैं। यह ताना बाना हमारी जातीयता और लोक-संस्कृति की सबसे बड़ी पहचान है। बड़े शहरों और महानगरों में छिन्न-भिन्न होते इस ताने-बाने से आहत होकर त्रिलोचन 'आदमी की गन्ध' कविता में लिखते हैं-

शहरों में आदमी को आदमी नहीं चीन्हता।

पुरानी पहचान भी बासी होकर बस्साती है।

आदमी को आदमी की गन्ध बुरी लगती है।
इतना ही विकास, मनुष्यता का अब हुआ है[46]

आधुनिकता के रंग में रँगा हुआ शहरी व्यक्ति दिन-प्रतिदिन इतना व्यस्त और स्वार्थी होता जा रहा है कि उसे कृत्रिमतापूर्ण जीवन जीने को विवश होना पड़ रहा है। कोई पुराना परिचित प्रिय मिलने पर आश्चर्य और खुशी प्रकट करने की बजाय वह उससे पीछा छुड़ाना चाहता है। कवि आधुनिक परिवेश की व्यक्ति की कृत्रिम संवेदनाओं पर लिखता है-

लेकिन कितने कम होते जा रहे हैं ऐसे भी लोग
जो बताना चाहते हों मन की कोई बात
जिंदगी चाहे कितनी ही कठिन होती जाती हो
और उसकी कहानियाँ और भी टेढ़ी उलझी हुई
जिन्हें कभी मिलने पर ही बताया जाये तो ठीक
हालांकि अब ऐसी तरकीबें आने को हैं
कि बात करते हुए चेहरा दिखता रहे
ताकि आवाज़ चेहरे को जानने में भूल न करे
और न चेहरा आवाज़ पहचानने में।[47]

उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि सप्तकोत्तर कविता अपने वृहदांश में जिस विडम्बना को उभारती है, वह अन्ततः आधुनिक मनुष्य के जीवन से सम्बद्ध है। आज आदमी आदमी से पीड़ित और शोषित है। आज की कविता न केवल मानवीय संवेदना से ओत-प्रोत कवि अपितु आम-आदमी के दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास भी करती है। उदाहरणार्थ हेमन्त कुकरेती की ये पंक्तियाँ-

मेरी जरूरतें कितना खातीं मेरा शरीर
अपनी जरूरतों के लिए मैं बन गया उनकी जरूरत
सोंचता था पैसे कभी रूपये बन जायेंगे
देखा कि पैसे के लिए मैं सिक्का बन गया
और दूसरों की लगायी कीमत पर चल गया।[48]

आज का कवि व्यक्तिगत रूप में प्रायः मध्य या निम्न मध्य वर्ग से जुड़ा है और अपने लेखन और व्यक्तिगत आचरण में इन्हीं वर्गों की विषमताओं का प्रतिनिधित्व करता है। और चूँकि समकालीन बृहत्तर जनता इन्हीं दो वर्गों में है अतः यही कविता में जनता का सही प्रतिनिधित्व है। निरन्तर बढ़ती

जरूरतें और धनाभाव मध्यमवर्गीय तथा निम्नमध्यवर्गीय व्यक्ति के सहज विकास में बाधक बनते हैं। कैलाश बाजपेयी रोटी और भूख की समस्या को सम्पूर्ण समष्टि की समस्या के रूप में प्रस्तुत करते हैं-

बड़ा जटिल जंगल है आदिम विश्वासों का

वासना-जिनकी पोशाक पहन

अलगाव को जन्म देती है

अपनों से दूर कर देती रोटी।[49]

यहाँ कवि की समष्टिगत भावना और भूख व अलगाव जैसी विषमतापरक संवेदनाओं में साम्य दिखलाई पड़ता है। उसे सिकन्दर, नैपोनियन, तैमूर और जापान पर बम गिराने वाले अमेरिका जैसे देश ये सभी तृष्णा और भूख के गुलाम दिखाई देते हैं। समानता और स्वतन्त्रता के पक्षधर आज के कवि की पैनीदृष्टि अपने परिवेश की घटनाओं से निरन्तर जुड़ी हुई है-

एक सवाल पैदा होता है

जब एक ही उम्र के

दो बच्चों में से एक

रज़ाई में दुबका

करता याद

स्कूल का पाठ

और दूसरा

फुटपाथ पर तापता

जलाकर टायर।[50]

इस प्रकार के मार्मिक और संवेदनशील दृश्यों का इधर की कविता में यत्र-तत्र दिखाई देना कोई आश्चर्य की बात नहीं है राजनीति की रोटियाँ सेंकने के लिए कश्मीर, गुजरात, पंजाब, बिहार जैसे राज्यों में राजनेताओं और धर्माधिकारियों के इशारों पर हजारों निरपराध लोगों को साम्प्रदायिक दंगों की आग में झोंक दिया जाता है-

वैष्णव जन

आखेट पर निकले हैं।

उनके एक हाथ में मोबाइल है

दूसरे में देशी कट्टा

तीसरे में बम

और चौथें में है दुश्मनों की लिस्ट।[51]

राष्ट्रवादी भावनाओं को छिन्न-भिन्न करने वाली ये सामाजिक घटनाएँ देश और काल के इतिहास को विद्रूप बनाती हैं। व्यावहारिक जीवन में कवि सदैव अपने देश की मिट्टी व संस्कृति से गहराई तक जुड़ा हुआ है। सिटी बस के सहयात्रियों के पसीने की गन्ध भी कवयित्री सावित्री डागा को भली लगती है। रेत भरे पैर और अनाथालय के व्यवस्थापक द्वारा भीख न ला पाने वाले बच्चों की पिटाई उनकी संवेदना को इस प्रकार प्रेरित करते हैं-

बहुत अपने लगते हैं उनके आँसू उनकी उदासी

उनके अन्तर की तरह ही जार-जार फटे

उनके कपड़ों की गन्ध, उनके सूखे से हाथ

फटे हुए जूतों से

अपराधियों की तरह झांकते उनके मैल चढ़े पाँव।

जी चाहता है उन्हे वक्ष में लगा लूँ

अपने अश्रु-सने आँचल में छिपा लूँ।[52]

उपर्युक्त पंक्तियों में कवयित्री समाज के टूटे-बिखरे और असहाय लोगों को अपनी पीड़ा और अपनत्व से जुड़ा हुआ पाती है। इन सब का हार कर भी संघर्ष करने का अटूट विश्वास इनकी अदम्य जिजीविषा का प्रतीक है। श्री प्रकाश शुक्ल की 'काँवरिये' कविता की इन पंक्तियों में काँवरियों की इसी जिजीविषा को दर्शाया गया है-

जब ये रुकते हैं

रुक जाती है समय की गति

आसमान में उठती है झाँय-झाँय की आवाज

और चिल्हकता है दूर कहीं

भगीरथ जैसा पुरखा![53]

अपने कंधों पर महज बाँस की एक टहनी पर काँवर लिए हुए मीलों पैदल चलने वाले काँवरियों का इतिहास कवि की भावनाओं और परिवेशगत संवेदनाओं को जीवन्त रूप प्रदान करता है। इस प्रकार आज का कवि कहीं सामाजिक यथार्थ का तटस्थ आकलन संयम और गंभीरता से करता

है तो कहीं वर्तमान व्यवस्था की खिल्ली उड़ा रहा है-

निर्गुणता का अबोध बोध

हमारी नई पौध............

कुछ अपराध-बोध कुछ-कुछ प्रतिशोध

अकारण क्रोध की काली परछाई

सहमे हैं हमारे अहं और अस्तित्व

सब कुचला जाकर भी

अपंग जी रहा व्यक्तित्व।[54]

उपरोक्त पंक्तियों में कवयित्री वीणा घाणेकर की खीझ और झुँझलाहट आज के परिवर्तित होते मानव-मूल्यों और परिवेश के प्रति ही नहीं है, अपितु मानवीय व्यवहारों आदर्शों और भ्रम में उलझे हुए मन की छटपटाहट भी साफ तौर पर देखने को मिलती है। यही छटपटाहट हेमन्त कुकरेती की 'दूसरे बच्चे' कविता में कुछ इस प्रकार से देखने को मिलती है-

वे फुरसत में

उस पर बहस करते हैं

कोई शब्द

उस बच्चे के खाली पेट

और रीती आँखों को नहीं देखता।[55]

अपने बच्चों के लिए खिलौने खरीदते और दूसरे गरीब बच्चों को मात्र अपनी कोरी बहस का विषय बनाने वाले सभ्य पिताओं पर आज का बौद्धिक कवि व्यंग्य किए बिना नहीं रहता। मानवीय व्यावहारिकता और संवेदनशीलता के गिरते स्तर कवि की चिन्ता को प्रमुखता से उभारते हैं-

आज के जटिल संग्राम में

रावण असंख्य हैं और राम दो चार

फिर कैसे राम बने कोई अदना-सा इंसान।

ना सही राम

राम की भूमिका से

कहीं ज्यादा मुश्किल है जटायु की भूमिका।[56]

इन पंक्तियों के माध्यम से कवयित्री सावित्री डागा ने आस्था और कर्त्तव्य की रक्षा करने वाले

और अनाचार का प्रतिकार करने वाले रामायण के अमर पात्र जटायु के माध्यम से आधुनिक सुसंस्कृत चतुर मनुष्यों और बुद्धिजीवी कुशल राजनीतिज्ञों की कथनी-करनी के अन्तर को स्पष्ट करते हुए आधुनिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। इसी आधुनिक व्यवस्था का एक अविभाज्य हिस्सा स्वयं कवि है। उसकी सर्जनात्मक संवेदनशीलता परिवेश और समाज के ऐसे पहलुओं को तटस्थ भाव से स्पर्श करती है और उसकी दार्शनिक भावना को समृद्ध करती है-

वह गया हुआ ओझल

रस्ते भर रही मेरे साथ वह मीठी धुन

जिसमें उम्मीदें थीं और खुशी थी

इस तरह महज एक रूपैये में मिली मुझे कविता

घर आकर मैंने वह धुन गायी मन में और रो पड़ा

कितना रहा अकारथ मेरा होना

कैसा विचित्र रात में यह रोना।[57]

यहाँ कवि की भावनात्मकता दिल्ली की भीड़ भरी बस में हारमोनियम बजाते भिखारी लड़के और उसकी चारेक वर्ष की बहन की दयनीय स्थिति से प्रभावित है। नाउम्मीदों और दुःखों के बीच पलने-बढ़ने वाले उस लड़के का आशा और खुशी का संचार करने वाला मार्मिक गीत कवि की संवेदना को अन्दर तक झकझोर देता है।

परिवार हमारी सामाजिक अन्त संरचना का सबसे प्रतिनिधि क्षेत्र है। एक व्यक्ति को मानवीय मूल्यों और व्यावहारिकता की पहचान परिवार के स्तर पर ही सबसे पहले होती है और परिवार इस लौकिकता की प्रयोग भूमि है। पारिवारिक संबंधों में, सप्तकोत्तर कवियों में, माँ पर प्रायः हर कवि ने लिखा है। माँ यहाँ उस उज्ज्वल जातीय परम्परा की प्रतीक के रूप में उपस्थित है, जो हमारी संस्कृति के साथ पली है-

जो भी कुछ

कर रही हो माँ,

इस वक्त

कुम्हलाते जाने के बाद भी

उजास से भरी माँ

जब भी हँसेगी

बिखेर देगी, सूर्यमुखी आभा.........।[58]

अपने माता-पिता के लिए आज की युवा पीढ़ी (विशेषकर कवि वर्ग) में गहरा दर्द और सहानुभूति है। उसकी संवेदना लौकिक और भावानुभूति प्रेमबोधक समर्पण से मुक्त है। माँ-पिता के अलावा अन्य पारिवारिक सम्बन्धों की पहचान भी इस अवधि की कविता में हमें पर्याप्त गहराई से मिलती है। जैसे-काका (कुमार अंबुज), मौसी (विमल कुमार), भाई (एकान्त श्रीवास्तव), बहन (एकांत), पुत्री (बद्रीनारायण), इत्यादि। वृद्ध पीढ़ी के प्रति भी आज का युवा कवि सहानुभूतिशील और आत्मीय है। इस संदर्भ में कुँवर नारायण की 'दादी माँ का विश्वास' कविता की ये दार्शनिक पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

विचित्र था दादी माँ का

सन्तों में विश्वास

और भी विचित्र था

उनके विश्वास के रास्ते

घर में

सन्तों की दुआओं का असर।[59]

यहाँ दादी का धर्म-निरपेक्ष दार्शनिक भावना से परिपूर्ण तथा नाती-पोतों की दीर्घायु की कामना से मुक्त विशुद्ध हृदय दर्शाया गया है। उनका विश्वास अलौकिक सत्ता के प्रति इतना दृढ़ है कि यहाँ धार्मिक अवरोध अदने-से प्रतीत होते हैं। कवि की दृष्टि व्यावहारिक जीवन के साथ-साथ वियोगावस्था के एकाकी जीवन का भी सूक्ष्म निरीक्षण करती है और इस स्थिति में उसकी दार्शनिक भावना इस प्रकार से व्यक्त होती है-

एकाकी-जीवन की कितनी विषम व्यथाएँ

सृजनशीलता से अपनी वंचित होना है

चिन्ताओं से आतंकित कोना-कोना है।

उस अरण्य में

सामाजिक अनुबन्ध न होंगे

लय-आपूरित छन्द न होंगे

उस अरण्य में।[60]

गौतम ऋषि के द्वारा अहिल्या को जड़त्व का अभिशाप प्राप्त होने पर एकाकी जीवन की

विषमता का वर्णन डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' की इन पंक्तियों में किया गया है। प्रकृति का जड़त्व को प्राप्त करना ही सर्जना का अन्त है और यही पाषाण होना है। यहाँ कवि का दर्शन अलौकिक संवेदना से युक्त है।

औरतों के दुःखों, पीड़ाओं, उसकी नियति और अस्तित्व को लेकर इन कवियों की चिंता अलग से विश्लेषण की माँग करती है। उदाहरणार्थ पवन करण की 'यह आवाज मुझे सच्ची नहीं लगती' कविता में गुज़रात के दंगों की शिकार महिला की यह पीड़ा मानवता और समूची सामाजिक व्यवस्था पर सवाल उठाती है-

मुझे नहीं लगता दंगा खत्म हुआ है अभी

ये दंगा कभी खत्म होगा भी नहीं, मेरे और

मेरी देह के खिलाफ ये दंगा सदियों से जारी है

और जारी है इन दंगाइयों से बचकर मेरा भागना

जैसे मैं इन दिनों भाग रही हूँ गुजरात की सड़कों पर।[61]

समाज में आए दिन नारी के साथ होने वाली ऐसी त्रासदियाँ कविता से गहरे हस्तक्षेप की माँग करती है। बिलासपुरी मजदूर स्त्रियों की दयनीय स्थिति का चित्रण हरीशचन्द्र पाण्डेय की 'बिलासपुरी मजदूर' कविता में इस प्रकार से हुआ है -

यात्रा भर करती हैं बातें ये

बच्चों को

जी भर पीटती हैं

किसने छुआ अनजाने

किसने शरातन

किसने कितने फिकरे कसे

क्या-क्या अर्थ हैं उनके

बिलासपुरी औरतें

बनी रहती हैं अनजान-सी।[62]

पुरुष-प्रभुत्व वाले समाज में स्त्री का शोषण आज भी पूर्ववत् हो रहा है। न केवल मध्य वर्ग और निम्न वर्ग की स्त्रियों की यही नियति इस व्यवस्था में हो गई है, बल्कि तथाकथित आधुनिक और उच्च वर्ग की स्त्रियाँ भी इस अभिशाप से ग्रस्त हैं। कवि की संवेदनशील दृष्टि मानवीय मूल्यों की रक्षा

और स्वतंत्रता के लिए उपरोक्त विडम्बनाओं का जगह-जगह विरोध करती दिखायी देती है।

इस प्रकार से सप्तकोत्तर कविताओं में व्यावहारिक जीवन में भावनात्मकता और संवेदनशीलता का अध्ययन करने पर उनमें जगह-जगह पर एकरूपता की-सी स्थिति दिखाई देती है फिर भी कई स्थानों पर उनमें भिन्नता भी दृष्टिगत होती है। यह भिन्नता इस बात पर निर्भर करती है कि कविता पहले भावनात्मकता के स्तर पर ग्राह्य होती है या संवेदना के स्तर पर। उदाहरण के लिए केशव तिवारी की 'चौथ का चाँद' कविता में कवि की प्रेमबोधक भावना इस प्रकार व्यक्त हुई है-

दुनिया भर के संकटों से

मुझे बचाये रखने का

ये तुम्हारा मासूम प्रयास

एकटक आकाश पर इंतज़ार में

टिकी आँखें

पर जाने कहाँ बिलम गया है

ये मुआ चौथ का चाँद।[63]

प्राचीनकाल से समाज में प्रचलित लोक रीतियों और परम्पराओं का निर्वाह करती भारतीय नारी के प्रति कवि की प्रेम-भावना उपरोक्त पंक्तियों में देखने को मिलती है। यही भावना संवेदनशील व्यक्ति के अन्दर लौकिक प्रेम की अनुभूति पैदा करती है। दृष्टिपरक संवेदनशीलता का उदाहरण मंगलेश डबराल की 'बाज़ार' कविता में देखा जा सकता है-

और यह जो आप आपाधापी और कलह जैसी देखते हैं

वह मनुष्यों की दुनिया की ही तरह है

चीजें आपस में लगातार एक मैत्रीपूर्ण युद्ध में उलझी होती है

प्रकृति की तरह बाज़ार भी परिवर्तनशील है

उसका भूगर्भ भी कभी इधर कभी उधर करवटें बदलता हैं

भूकंप के झटके रोज़ ही यहाँ आते हैं

लेकिन उन्हें महसूस नहीं किया जाता।[64]

मानवीय जीवन को एक बाज़ार के रूपक द्वारा प्रस्तुत करने की कोशिश कवि ने इन पंक्तियों में की है। कवि की संवेदनशील दृष्टि बाज़ार के परिवर्तनशील माहौल में आज के मानवीय जीवन की विषमताओं को देखती है। यह दृष्टि उसकी बौद्धिकतापूर्ण भावना का परिचय देती है। इसी प्रकार नंद

चतुर्वेदी की अधोलिखित पंक्तियों में पहले बौद्धिक भावनात्मकता के दर्शन होते हैं और बाद में वही कवि की दृष्टिपरक संवेदना का ज्ञान कराती हुई प्रतीत होती हैं-

लगातार विरोध करते रहो

अन्याय और हिंसा का

उन दिनों भी जब

रिवाल्वर की मदद से

मन्त्री पद मिलता हो।[65]

यहाँ बुद्धिजीवी कवि आधुनिक राजनीति की व्यवस्था पर व्यंग्य भी कर रहा है साथ ही अन्याय व हिंसा का विरोध करने की बात भी पूरी गंभीरता व कठोरता के साथ कर रहा है। ऐतिहासिक भावनात्मकता को दर्शाती नरेश मेहता की ये पंक्तियाँ देखने योग्य हैं-

इतिहास जब

अपनी अभिव्यक्ति के लिए

किसी व्यक्ति को चुनता है

तो वह सबसे पहले

उससे उसका व्यक्ति ले लेता है

ताकि वह

संज्ञा से सर्वनाम हो जाए।

इसीलिए अब तुम

घर-परिवार की संज्ञा नहीं हो मंडेला।[66]

अफ्रीकी इतिहास में अपनी सशक्त भूमिका से सम्पूर्ण विश्वको एक नया संदेश देने वाले मंडेला का जीवन सम्पूर्ण लोक की संवेदना को प्रभावित करता है। यहाँ कवि की ऐतिहासिक भावना मंडेला के माध्यम से मानवतावादी मूल्यों की स्थापना के प्रति उसकी प्रतिबद्धता को दर्शाती है। आधुनिक युग की विषमताओं से क्षुब्ध कवि का नवीन सामाजिक व्यवस्थाओं पर यह व्यंग्य कितना सटीक है-

स्वर्गीय आनंदों की कामना में एक-एक कर मरने के अलावा

कोई रास्ता नहीं छोड़ा हमने

यहाँ तक कि हमने अपने सारे ईर्ष्या-द्वेष और प्रतिद्वंद्विताएँ।

भी स्वर्ग पहुँचा दीं वहाँ

भी होने लगे युद्ध और षड़यंत्र। दिए जाने लगे

अभिशाप। वहाँ भी होने लगे पतन।

वहाँ का हर सुख एक डर बन गया

किसी बड़ी यातना का।[67]

आधुनिक समाज में फैली ईर्ष्या, द्वेष, षड़यंत्रों और नैतिक पतन जैसी बुराइयों ने मानव समाज को खोखला और निष्प्राण बना दिया है। मनुष्य संवेदनहीन और भयग्रस्त होता जा रहा है। यह अपने भाग्य के निर्णय भी इसी जन्म में अपने हाथों ही कर लेना चाहता है क्योंकि ईश्वर से उसका विश्वास उठ चुका है। ऐसी स्थिति में संवेदनशील कवि का उसकी बार-बार की जाने वाली भूल पर व्यंग्य करना स्वाभाविक ही है-

काश! वे स्वर्ण मृग के पीछे नहीं भागते एक बार।

भूल एक बार की जब इतनी घातक होती है

तब

क्या होगा उनका

बस स्वर्णमृग ही बन गया हो जिनकी अंतिम मंजिल।

मान बैठे हों जो

उसी को चिर प्यास

जीवन की सार्थकता,

मुक्ति का द्वार![68]

इन पंक्तियों में कवयित्री सावित्री डागा की व्यंग्यपरक संवेदनशीलता अपने मुखर रूप में विद्यमान है। आज के समाज की कुप्रवृत्तियों पर किया गया यह व्यंग्य कवयित्री की संवेदनशीलता का परिचायक है। आगे चलकर यही संवदेना पाठक के अन्दर मानवता तथा बौद्धिकता से युक्त भावना को उत्पन्न करती है। आज की लोकतांत्रिक व्यवस्था पर कवि का यह व्यंग्य कितना सटीक है-

सरकारी भाषा में भी वह दे नहीं सका अंग्रेज मेहमान के

इस प्रश्न का उत्तर

कि अपनी गरीबी की गरमी से परेशान ये लोग

सड़कों पर सोकर क्या उसकी सरकार का विरोध कर रहे हैं

या उस व्यवस्था से विद्रोह

जिसमें उसका जन्म हुआ।[69]

उच्चवर्गीय मानसिकता से ग्रसित और कृत्रमिता पूर्ण जीवन जीने के आदी हो चुके व्यक्ति के खण्डित व्यक्तित्व पर किया गया कवि का व्यंग्य आज की पूरी उस व्यवस्था पर किया गया व्यंग्य है जिसमें पैदा होने वाले गरीबों को अपनी रातें फुटपाथ पर गुजारनी पड़ती हैं। मानवीय भावना का पोषक कवि इस व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता है।

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता में व्यावहारिकता का अध्ययन करने पर हमें निम्नलिखित बिन्दु मिलते हैं -

व्यावहारिक साम्य के आधार-बिंदु

(1) चिंता, गुस्सा, उदासी, परेशानी।

(2) समकालीन परिवेश के प्रति सजगता।

(3) लोक व्यवहार एवं लोक संस्कृति की रक्षा।

(4) राजनैतिक अस्थिरता, साम्प्रदायिकता, जातिगत हिंसा और साम्राज्यवाद।

(5) पारिवारिक सम्बन्धों की रक्षा।

(6) व्यक्तिगत आचरण और कृत्रिमतायुक्त जीवन।

(7) समानता, स्वतन्त्रता।

(8) पारिवारिक सम्बन्धों की गहराई।

(9) संघर्षरत आम आदमी।

व्यावहारिक वैषम्य के आधार-बिन्दु

(1) लोकरीतियों का निर्वहन।

(2) बाजारवाद में उलझा बौद्धिक मनुष्य।

(3) राजनतिक विद्रूपता एवं सामाजिक विद्रूपता पर व्यंग्य।

(4) ऐतिहासिक तथ्यों एवं महापुरुषों का वर्णन।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर व्यावहारिक साम्य और वैषम्य को निम्नवत सारणीबद्ध किया जा सकता है –

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में व्यावहारिक साम्य

व्यावहारिक बिंदु	भावनात्मकता	संवेदनशीलता
चिन्ता, गुस्सा, उदासी, परेशानी	समाष्टिगत भावनात्मकता	लौकिक संवेदनशीलता
समकालीन परिदृश्य के प्रति सजगता	बौद्धिक भावनात्मकता	परिवेशगत संवेदनशीलता
लोक व्यवहार का चित्रण	समाष्टिगत भावनात्मकता	लौकिक संवेदनशीलता
संघर्षरत आम आदमी	मानववादी भावनात्मकता	विषमतापरक संवेदनशीलता
लोक संस्कृति की रक्षा	मानववादी व ऐतिहासिक भावनात्मकता	लौकिक संवेदनशीलता
व्यक्तिगत आचरण और कृत्रिमतापूर्ण जीवन	बौद्धिक भावनात्मकता	व्यंग्यपरक संवेदनशीलता
राजनीतिक अस्थिरता, साम्प्रदायिकता, जातिगत हिंसा, साम्राज्यवाद	मानववादी भावनात्मकता	व्यंग्यपरक एवं न्यायपरक संवेदनशीलता

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में व्यावहारिक वैषम्य

व्यावहारिक बिंदु	भावनात्मकता	संवेदनशीलता
लोकरीतियों का निर्वहन	प्रेमबोधक भावनात्मकता	व्यक्ति से कवि में यही भावना लौकिक संवेदना को पैदा करती है।
बाजारवाद में उलझा बौद्धिक मनुष्य	बौद्धिक भावनात्मकता	पाठक या कवि में यही भावना विषमतापरक संवेदनशीलता को पैदा करती है।
राजनैतिक एवं सामाजिक विद्रूपता पर व्यंग्य	ये संवेदनाएं पाठक की बौद्धिक भावनात्मकता को प्रभावित करती है	समाजपरक एवं व्यंग्यपरक संवेदनशीलता

ऐतिहासिक तथ्यों एवं महापुरुषों का वर्णन	ऐतिहासिक भावनात्मकता	पाठक की लौकिक संवेदनशीलता को प्रभावित करती है।

सप्तकोत्तर कविता में कवि के समष्टि से जुड़े हुए चिन्ता, गुस्सा, उदासी, परेशानी इत्यादि भाव और उसकी लौकिक संवेदना एक साथ देखने को मिलते हैं। समकालीन परिवेश के व्यावहारिक चित्रण में कवि की बौद्धिक भावना और परिवेशगत संवेदना के चित्र एक से दिखाई देते हैं। लोक व्यवहार के चित्रण में भी लौकिक संवेदना और समष्टिगत भावना में समानता दिखाई देती है। विकृत सामाजिक व्यवस्थाओं और वर्गगत-विषमताओं से जूझते आम-आदमी के वर्णन में कवि की मानववादी भावना और विषमतापरक संवेदना एक साथ दृष्टिगत होती है। व्यावहारिक जीवन में मानवीय गुणों को तलाशती और लोक संस्कृति की रक्षा के लिए कृतसंकल्प कविता में मानववादी व ऐतिहासिक भावनात्मकता और लौकिक संवेदना एक साथ देखने को मिलती है। आधुनिक परिवेश में व्यक्ति के व्यक्तिगत आचरण और कृत्रिमतायुक्त जीवन शैली से उत्पन्न हुई कवि की व्यंग्यपरक संवेदना उसकी बौद्धिक भावना को अपने साथ-साथ विकसित करती है। विकसित राष्ट्रों की साम्राज्यवादी नीतियों, राजनैतिक अस्थिरता, साम्प्रदायिकता और जातिगत हिंसा का शिकार अविकसित देश का आम आदमी जहाँ कहीं भी कविता का मुख्य विषय बना है, वहाँ कवि की मानववादी भावना के साथ-साथ न्यायपरक तथा व्यंग्यपरक संवेदना में साम्य देखने को मिलता है।

इसी प्रकार समाज में प्रचलित लोकरीतियों और परम्पराओं के निर्वहन के समय व्यक्ति में प्रेमबोधक भावनात्मकता उत्पन्न होती है, किंतु, आगे चलकर कविता में कवि की यही भावना विकसित होकर लौकिक संवेदना में परिवर्तित हो जाती है। बाजारवाद में उलझे मनुष्य का चित्रण करने वाली कविताओं में कवि व्यक्ति की बौद्धिक भावना को दर्शाता है। पाठक में यही भावना विषमतापरक संवेदना को उत्पन्न करती है। स्वार्थी राजनेताओं और राजनैतिक विद्रूपता पर बौद्धिक कवि द्वारा किया गया व्यंग्य पाठक या श्रोता की सामाजिक संवेदना को प्रभावित करता है। कविता में ऐतिहासिक भावबोध को दर्शाने वाले महापुरुषों और उनके जीवन चरित्र का वर्णन पाठक की अनुभूति का अंग बनकर उसकी लोक संवेदना को प्रभावित करता है। कविता में ऐतिहासिक भावबोध को दर्शाने वाले महापुरुषों और उनके जीवन चरित्र का वर्णन पाठक की अनुभूति का अंग बनकर उसकी लोक संवेदना का प्रभावित करता है। उपरोक्त सभीं व्यावहारिक उदाहरण भावनात्मकता और संवेदनशीलता के वैषम्य को स्पष्ट करते हैं।

भावनात्मकता एवं संवेदनशीलता में संरचनामूलक साम्य और वैषम्य

कविता अपना संस्कार सरंचना के स्तर पर ही करती है और उसी स्तर पर उसकी सही पहचान हो सकती है। सप्तकोत्तर कविता अपनी गहरी संवेदनशीलता व शिल्प दक्षता के साथ-साथ सरलता की तहों में लिपटी हुई लोक-भावभूमि की कविता है। अपने समय के दुःख और संघर्ष, क्षोभ और उद्वेग, प्रतिरोध, इनकार की छवियों के साथ-साथ मानवीय रागात्मकता और जीवन के सुंदर-सार्थक-मूल्यवान को बचाने की चिंताओं और कोशिशों को इधर की कविता अपने साथ लिए हुए है। इधर की कविताएँ स्वतः जीवन का कड़वा यथार्थ भोगती नजर आयी हैं, प्रतीक खुद-ब-खुद बोलने लगते हैं, शब्द मस्तिष्क पर छाते हैं और कथ्य हृदय को सहज ही स्पर्श करने लगता है। ये कविताएँ बहुत कुछ कहने वाले मौन की तरह मुखर है, जिनमें मानवीय भावनाएँ भी है, संवेदनाएँ भी हैं, विवशताओं का त्रिकोण भी और है इस नियति को अस्वीकार करती मनःस्थितियों का आक्रोश।

एक युग विशेष में एक समाज की संरचना में हो रहे परिवर्तनों की झलक उसकी भाषा में मिलती है और भाषा में आ रहे परिवर्तन सबसे पहले कविता में दिखायी देने लगते हैं। इसलिए कविता सामाजिक परिवर्तन का प्रथम उद्‌घोषणा पत्र होती है। अतः कविता की संरचना के जरिए न केवल समाज को समझा जा सकता है बल्कि एक समय में उपलब्ध कविता की विभिन्न संरचनाओं से उस समय में विद्यमान समाज के विभिन्न संरचनाओं का भी आभास मिल सकता है। सप्तकों के बाद की कविता में भावभूमि एवं संरचनात्मक दोनों ही स्तरों पर एक क्रमबद्ध विकास हुआ है। अपने संवेदनों को चमकाने-तराशने के बजाय उसे गहनतम और जीवन्त बनाने के लिए एक लगातार संघर्ष इस दौर के कवियों ने किया है, जिसके साक्ष्य ये कवि और इनकी कविताएँ है। युवा कवियों ने कविता के भाषा एवं शिल्प के स्तर पर भी अपनी पहचान बनाई है। भाषा के स्तर पर वे संस्कृत के अभिजात्य को लाँघकर हिन्दी के तदभव एवं देशज रूपों की ओर आकृष्ट हुए है। काव्य भाषा के मोर्चे पर इन कवियों ने गहरा श्रम और प्रज्ञा लगाई है। काव्य-भाषा के मामले में कुछ नया करने चालू घिस-पिट चुके मुहावरे को बदलने और अभिव्यक्ति की कुछ नई लोकाभिमुख प्रणालियाँ विकसित करने की इन कवियों ने निरंतर कोशिश की है। अपने संग्रहों की भूमिका में अपने इस संघर्ष की तरफ कई कवियों ने इशारा भी किया है। एक नई काव्य-भाषा का इनका यह संघर्ष दरअसल एक नई प्रासंगिक कवि-दृष्टि तलाशने के इनके आत्म संघर्ष का ही दूसरा पहलू है। कठिन दृश्यों को सरलता से खोलने की प्रक्रिया में यह कविता संप्रेषणीयता की समस्या से काफी-कुछ मुक्त हो जाती है। भाषा की प्रकृति और स्वभाव का निर्धारण कविता में निबद्ध कवि की जीवन-दृष्टि से होता है। दृष्टि अपने

आधार-केन्द्र और माध्यम स्वतः तलाश लेती है। दरअसल यही वह प्रक्रिया है जिसमें कथ्य और शिल्प में कोई द्वैत नहीं रहता, संप्रेषण की समस्या नहीं पैदा होती। सप्तकोत्तर कविता की भाषा अपनी प्रकृति में स्वतः लोकधर्मी है क्योंकि कवि का अपना स्वभाव लोकधर्मी है।

जहाँ पहले की कविता में आत्मस्फीति, ठहराव और सीमित भावभूमि पर लिखी कविताएँ मिल जाती हैं, वहीं दूसरी ओर सप्तकोत्तर कविता की भाषा यथास्थिति और यथार्थ के गतिरोध को तोड़ने वाली है और हालात में जोरदार दखल देने की सामर्थ्य भी रखती है। अपने ग्राम-अंचल की सुंगध भी इसमें है और देशज शब्दावली का यथावश्यक प्रयोग भी यहाँ है, विविध प्राकृतिक दृश्य चरित्र और सौंदर्यजनित वैविध्य ये सब मिलकर सप्तकोत्तर कविता के जीवंत-स्वरूप की संरचना करते है। इसमें बहुआयामी संजीवन क्रियाओं तथा कार्य व्यापारों के बीच से रचनाकार के निजी-वैशिष्ट्य की ठोस एवं वास्तविक या आश्वस्तिकारक प्रस्तुति मिलती है। इस कविता में अर्थगर्भ सांकेतिकता को पाया जा सकता है जो कथ्य की गरिमा तथा शिल्प की सहजता के साथ मौजूद रहती है। सघन इन्द्रिय-बोध और बिम्ब-धर्मिता को इन कवियों ने खूब साधा है। कवि हर छोटी से छोटी बात को, बड़े से बड़े विचार को बिम्बों में रच रहा है। बिम्ब के साथ ही वर्णनात्मकता या विवरणात्मकता की इस अवधि की काव्यभाषा में हमें दिखाई देती है। कविता में चरित्र भी पर्याप्त मात्रा में है। चरित्र के माध्यम से कथा-तत्त्व कविता में आया है।

सप्तकोत्तर कविता का एक पहलू है और वह है संज्ञाओं और संज्ञाओं, संज्ञाओं और विशेषणों तथा संज्ञाओं और क्रियाओं के नये रिश्ते। वस्तुतः एक गर्द जमते समाज में, एक ढलती हुई व्यवस्था में संज्ञाओं, विशेषणों और क्रियाओं के रिश्ते भी ढल चुके होते है और कविता इन रिश्तों के सटीक से सटीक जोड़े ढूँढ़ने लगती है। तभी तुक और छंद की सजावट होने लगती है विशेषणों के अंबार जुटने लगते हैं, उनमें सधर्मता तलाशी जाती है, और कविता को 'औचित्य' से संवारा जाता है। बहुत से कवियों ने बहुत-सी कविताओं में बहुचर्चित संज्ञाओं और उनके अर्थो के बीच आई दूरी को देखा है और उन्हें नया अर्थ दिया है। इस कविता की संरचना का एक और तेवर यह है कि यह विचार की कविता भी मानी जाती है। स्थितियों और तथ्यों का विस्तृत ब्यौरा कथा साहित्य को जन्म देता है और निष्कर्षात्मक रूप कविता को। स्थितियों और तथ्यों का चिन्तनगत रूपान्तरण विचार ही पैदा करता है, किन्तु विचार और विचार-कविता में अंतर है। विचार एक चिन्तनगत निष्कर्ष की सपाट बयानी है उसमें निष्कर्ष पूर्व के कथ्यों की प्रस्तुति नहीं होती, वह वस्तु-निरपेक्ष होता है, जबकि विचार-कविता वस्तु से जुड़ी रहती है। सप्तकों के बाद की कविता स्थितियों, तथ्यों, दृश्यों और

घटनाओं की कविता है, किन्तु, इनके आगे भी, और पीछे भी, विचार ही जुड़ा हुआ है और यह विचार बहुत बार सतह पर आ जाता है तथा फिर डुबकी लगा जाता है। किन्तु जहाँ विचार स्वयं सतह पर आ जाता है, वहाँ वह स्पष्ट तो नहीं दिखता, किन्तु बिम्ब की आड़ में लुका-छिपी करता रहता है। विचार का स्पष्ट देखा जाना कविता की कमजोरी है, किन्तु बिम्ब के साथ उसकी लुका-छिपी बिम्ब को और सान्द्र तथा तेज कर देती है।

नई रचनाशीलता शब्द, रूप और वस्तु का ग्रहण अपनी परम्परा से करते हुए उसका विकास अपने ढंग से करती है। जिस भाषा-संवेदना की खोज सप्तकोत्तर कविता में देखने को मिलती है, उसके पीछे आधुनिकतावाद की प्रवृत्ति मुख्य है। उदाहरणार्थ कृष्ण कल्पित की ये पंक्तियाँ-

खोजना होगा स्वयं को रेत के विस्तार में।

ढूंढना होगा स्वयं को दोस्तों के प्यार में

यदि बच रहा वह।

रेत की नस-नस गिनूंगा

शायद भीतर हरी दूब कर सपना हो।

काटकर फेंक दूंगा।

रिसते हुए घाव को

चाहे वह कितना ही अपना हो।[70]

यहाँ कवि की शिल्पगत संवेदना उसके आधुनिक भावबोध की व्याख्या करती है। उसकी भाषा में आज की चिन्ता, तनाव, दबाव और अन्तर्विरोध मुख्य रूप से लक्षित किये जा सकते हैं। सरलता और सुबोधता सप्तकोत्तर काव्य भाषा के मूल में है। इधर के कवियों ने लाक्षणिक भाषा के स्थान पर अभिधात्मक भाषा-प्रयोग पर विशेष बल दिया है। अभिधा प्रधान भाषा का नमूना सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की कविता 'हंजूरी' में द्रष्टव्य है-

काम न मिलने पर

अपने तीन भूखे बच्चों को लेकर

कूद पड़ी हंजूरी कुएँ में

कुएँ का पानी ठण्डा था।

बच्चों की लाश के साथ

निकाल ली गयी हंजूरी कुएँ से

बाहर की हवा ठण्डी थी।

हत्या और आत्महत्या के अभियोग में

खड़ी थी हंजूरी अदालत में

अदालत की दीवारें ठण्डी थीं।[71]

प्रस्तुत कविता में कवि ने समाज की यथार्थ स्थिति को बड़े ही स्पष्ट एवं सरल भाषा में संवेदना के साथ उभार कर रखा है। उसकी मानववादी भावनात्मकता उसके आस-पास की घटनाओं और परिवेश से गहराई से जुड़ी हुई है। सरलता और सुबोधता के लिए इन कवियों ने कहीं संस्कृतनिष्ठ तत्सम एवं अर्द्धतत्सम शब्दों को सरल तथा सहज रूप में व्यहृत किया है तो कहीं ग्रामीण एंव आंचलिक, तद्‌भव तथा देशज शब्दों को भी काव्य में स्थान दिया है-

कम हो रहे हैं

धरती को सँवारने वाले हाथ

कवि कविताओं में चित्रकार चित्रों में फँसे हैं

आसमान के आइने में

ताक-ताक अपनी सूरत

जाने क्या बिसूर रही है धरती

जाने कहाँ बिला गये हैं

धरती को बचाने वाले हाथ।[72]

व्यावहारिक या रोजमर्रा के प्रयोग में आने वाले आंचलिक शब्दों में यथार्थपरक संवेदनशीलता दिखायी पड़ती है, जो कृत्रिमता से मुक्त होने का भरपूर प्रयास करती है। यहाँ कवि की बौद्धिक भावना साधारण से लगने वाले शब्दों को भी नवीन अर्थ गरिमा प्रदान करती है। इनके अतिरिक्त कवियों ने पैरा, कौड़ा, सानी, कथरी, टिकुली, चाउर, पगही आदि ग्रामीण अंचलों के प्रचलित शब्दों को भी काव्य भाषा के अन्तर्गत स्थान दिया है। बहुप्रचलित ग्रामीण अंचल के शब्द प्रयोग की दृष्टि से त्रिलोचन, केदार नाथ अग्रवाल, केशव तिवारी, मंगलेश डबराल, स्वप्निल श्रीवास्तव, निलय उपाध्याय और हरिओम राजोरिया की कविताएँ विशेष महत्त्व रखती है। रमानाथ अवस्थी की कुछ पंक्तियों को बतौर उदाहरण देखा जा सकता है-

भूल नहीं पाता मैं गाँव को कभी!

माटी के छोटे-छोटे प्यारे घर,

आँगन में बिरवा तुलसी मैया का!

बिछी हुई खटिया चौपाल में सदा,

काँधे पर लाल अँगौछा भैया का!

जैसे अँगौछे को धोया है अभी![73]

यहाँ कवि की ग्रामीण परिवेश में रची-बसी संवेदना बिरवा, माटी, खटिया और अँगौछे आदि ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से और भी अधिक संप्रेषणीय हो जाती है। इसके साथ-साथ यह परिवेशगत संवेदना कवि के अन्दर उसके पैतृक गॉव के प्रति प्रेमबोधक भावनात्मकता को भी व्यक्त करती है। लोक प्रचलित मुहावरों एवं लोकोक्तियों का भी यथावसर प्रयोग करने से युगीन कवि चूके नहीं हैं-

जीवन कागज का महल, उसका क्या विश्वास

एक हवा की फूँक का, है सब खेल खिलास।[74]

नीरज का यह दार्शनिक भावना से युक्त दोहा मानव जीवन का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता के कवियों ने लोक प्रचलित सरल, स्पष्ट एवं सुबोध शब्दों का प्रयोग कर भाषा को भावानुवर्तिनी बनाए रखने की कोशिश की है। अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, आदि के प्रचलित तथा दैनिक व्यवहार में प्रयुक्त होने वाले शब्दों का इन कवियों ने अपनी भावनात्मकता और संवेदना को व्यक्त करने के लिए जगह-जगह प्रयोग किया है-

वे जनेऊ का

और उनके पास अम्बेडकर की मूर्ति के हाथों में पकड़ी

संविधान की एक काल्पनिक प्रति का डिविडेंट है

कुछ भूर्तपूर्व विद्रोही

अच्छे और मानवीय मैनेजमेन्ट से

जनता की शोषण मुक्ति के आकर्षक इश्यू जारी करेंगे।[75]

अंशु मालवीय की उपरोक्त पंक्तियों में डिविडेंट, मैनेजमेन्ट, इश्यू आदि अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग कवि की बौद्धिकतायुक्त भावनात्मकता से परिपूर्ण व्यंग्यात्मकता को लक्षित करता है।

सप्तकोत्तर कविता में उद्‌बोधनात्मक, संलाप, संवाद, वर्णनात्मक, विश्लेषणात्मक, भावात्मक आदि अनेकानेक शैलियों का प्रयोग हुआ है, किन्तु, व्यंग्य-शैली की अधिकता दिखाई पड़ती है। संवाद-शैली की दृष्टि से विजयदेव नारायण साही की 'एक मेज-लैम्प के पास' कविता उल्लेखनीय है-

सब सो रहे हैं

एक मुझे चैन नहीं

दिन में देखे हुए दृश्य

चाहे वह बीमार बूढ़ा हो

या ठीकठी पर जाती हुइ लाश हो

या अन्धा भिखारी हो

बार-बार मेरी जिन्दगी के फैलाव में से

अपने हिस्से का टुकड़ा माँगते हैं।[76]

इन पंक्तियों में कवि की दृष्टिपरक संवेदना उसे लौकिकता से तदाकार करती है और उसकी दार्शनिक भावना का परिचय देती है। संलाप शैली की दृष्टि से देवीप्रसाद मिश्र की 'परम्परा पाठ' कविता को देखा जा सकता है। इसमें मन और बुद्धि के बीच के वार्तालाप को उद्‌घाटित किया गया है-

इन पंक्तियों में कवि की दृष्टिपरक संवेदना उसे लौकिकता से तदाकार करती है और उसकी दार्शनिक भावना का परिचय देती है। संलाप शैली की दृष्टि से देवी प्रसाद मिश्र की 'परम्परा पाठ' कविता को देखा जा सकता है। इसमें मन और बुद्धि के बीच के वार्तालाप को उद्‌घाटित किया गया है-

'आज तुमने क्या सीखा'

'आज मैंने सीखा कि

जब यह तय हो जायेगा कि

मैं बहुत सीखा हुआ मरा तो

जो आगे आयेंगे उनके लिये

और अधिक सीखा हुआ जीना संभव होगा।'[77]

यहाँ कवि की संवेदना सर्जनात्मक और भावना बौद्धिकता युक्त है। संलाप शैली के माध्यम से कवि अपनी गहन अनुभूतियों को भावी पीढ़ियों से जोड़ने की कोशिश करता है। नंद चतुर्वेदी ने 'कुछ तो होगा ही नागरिको!' कविता के माध्यम से जनता में नयी चेतना जगाकर उन्हें शोषक और उनकी समाज व्यवस्था के विरूद्ध लड़ने के लिए उद्‌बोधनात्मक शैली में प्रेरित किया है-

नागरिकों!

राजा अपना लबादा

छोड़कर भाग जाएगा

सेनापति अपनी वर्दी

अगर हम छोड़ दें

नर्म गद्दों पर सोना'[78]

समाजपरक संवेदना का उदाहरण प्रस्तुत करतीं ये पंक्तियाँ कवि की राष्ट्रवादी भावना का परिचय देती हैं। इसीलिए वह क्रान्ति का आह्वान करता है और अपने गौरव की रक्षार्थ कटिबद्ध रहने को प्रेरित करता है। प्रगतिवादी कविता में तेजी से उभरकर आने वाला व्यंग्यात्मक स्वर सप्तकोत्तर कविता में और भी मुखर हो उठा है। कवियों ने अभिव्यक्त विचारों,भावों एवं संवेदनों को व्यंग्य के माध्यम से और अधिक तीव्र-तीखा एवं प्रभावशाली बनाया है। 'तानाशाह' पर सुधीर रंजन सिंह का यह व्यंग्य दृष्टव्य है-

उसके होते हैं

एक जोड़ा बेलगाम पैर

एक जोड़ा हुकूमती आँखें

हँसने को बत्तीस दाँत

और आग की लकीर-सी लपलपाती

एक बेजोड़ जीभ।[79]

आज का बौद्धिक कवि असहाय और निर्बल जनता पर अपने झूठे और खोखले प्रदर्शन से प्रभाव जमाने वाले शासक वर्ग के वास्तविक चेहरे को भली-भाँति पहचानता है और निःसंकोच उसे उद्‌घाटित भी करता है। यहाँ तक कि ऐसे वर्ग के प्रश्रय में पलने वाले कवि-समुदाय पर भी व्यंग्य करने से संघर्षशील कवि नहीं चूकता है-

दोस्त तुमने कहा था कि,

किसी के आदेश पर तुम गीत नहीं गाते,

वैसे तुम गीत-गाते, गुनगुनाते, नहीं अघाते,

तुमने अपना संकल्प बताया था कि,

तुम फूल चुनते हो,

किसी और को खुश करने के लिये नहीं।

और उस दिन राज दरबार में,

जी हुजूरों की पंक्ति में तुम्हें अग्रणी पाया,

किसी की कृपा का ऋणी पाया।[80]

आधुनिक साहित्यिकों (विशेषतः चाटुकार कवियों) पर कवि का यह व्यंग्य कितना सटीक और यथार्थपरक है। कवि भावों और संवेदनाओं का स्रष्टा होता है और जब वही अनीति के समक्ष अपने आदर्शों को भूलकर नतमस्तक हो जाता है तो बौद्धिक और संवेदनशील कवि का चिन्तित होना स्वाभाविक ही है। वर्तमान शासन-व्यवस्था पर किये गये व्यंग्य की दृष्टि से वीणा घाणेकर की ये पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं-

पर अब...........

रक्तरंजित लाशें,

पुत्रों की, मित्रों की, भाई की, तरूणाई की।

माँ की, बेटी की, बहू की, शहनाई की।

जिन्हें ढोकर उठाना

नहीं है आसान।

जिनसे जुड़े दर्दनाक प्रश्न

शर्मनाक करते हैं हमें।

मौलिक अधिकारों की सांवैधानिक व्यवस्था

बेचैन करती है हमें।[81]

आधुनिक समाज और राष्ट्र में व्याप्त कुपोषण और आतंकवाद की भीषण समस्या से जलता हुआ आम आदमी हिंसा और लूटपाट की गतिविधियों को अपनाता है और तब सरकारी नीतियों की पोल भी खुलकर सामने आ जाती है।

आज के कवि की भाव-दृष्टि, सौन्दर्य चेतना एवं मानसिक स्थिति व्यापक रूप में बदल चुकी है और यह बदलाव कवि को नये उपमानों, बिम्बों और प्रतीकों की खोज तथा उसके प्रयोग के क्षेत्र में प्रवृत्त होने को प्रेरित करता है। बिम्ब जहाँ वस्तु के निश्चित स्वरूप का संकेत करते हैं वहीं प्रतीक सदैव अनिश्चित स्थिति की प्रधानता दर्शाते हैं। प्रतीक केवल संकेत करता है, जबकि बिम्ब उसे पूर्णतया प्रत्यक्ष या संवेद्य और ग्राह्य बना देता है। इसी प्रकार भाव-सौन्दर्य की वृद्धि के साथ-साथ

कथन की स्पष्टता व अनुभूति तत्वों की वृद्धि करने वाले शब्द उपमान कहलाते हैं। विद्वानों ने बिम्बों के ऐन्द्रिय, प्रस्तुत, अप्रस्तुत, मानस, भावात्मक, अलंकृत, सांस्कृतिक, उदात्त, यांत्रिक इत्यादि अनेक भेद बतलाये हैं। विवेकी राय की इन पंक्तियों में चाक्षुष बिम्ब का प्रयोग हुआ है-

भूखे अधनंगे नर

देखते प्रभात-पथ

मुँदी हुई आँखें फूल

कमल हुईं हुईं।[82]

ग्रामीण परिवेश में जीने वाले भूखे-अधनंगे मजदूरों के प्रति संवेदनशील कवि का विशेष लगाव रहा है। उसकी मानववादी भावना ऐसे करूण दृश्यों को चित्रित करने में अधिक रमी है। स्पर्श बिम्ब का उदाहरण रामचन्द्र शुक्ल की 'शरद यामिनी' कविता में देखा जा सकता है-

ओढ़े तमस का अलस मद भार

मेघों के कर पद पद्म परवार

आतप के पट झटक झट

प्रियतम के दृग रही निहार

सजल पावस की लघु भागिनी

शरद यामिनी।[83]

यहाँ कवि की प्रकृतिजन्य संवेदना विभिन्न प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से प्रेमबोधक अनुभूति को दर्शाती है। सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने भावात्मक बिम्बों का प्रयोग भी जगह-जगह पर किया है। इनमें भावनात्मकता व संवेदनशीलता की अधिकता होती है। उदाहरणार्थ विजेन्द्र की ये पंक्तियाँ-

उसे हर दाने में

अपनी आँख की चमक

झलकती है

बहुत से चित्र बने धुँधलाये

और लुप्त हुए

पर प्यार का आँक अभी ताजा है

जैसे टहनी पर

सुबह का ओस सना ताजा फूल।[84]

इन पंक्तियों में हमें दृष्टिपरक संवेदनशीलता के साथ-साथ दार्शनिकता का पुट देखने को मिलता है। कृषक महिला का धूप में तपा-झुलसा शरीर जिजीविषा और प्रेम से परिपूर्ण मनोभावों को अपने हृदय में समेटे हुए है। सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब का उदाहरण डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' की इन पंक्तियों में देखने योग्य है-

चाहती हूँ फिर नयन में बन्द कर लूँ

एक आदिम प्यार की मुद्रा तुम्हारी

दृश्य के अनुबन्ध जोड़ूँ, किन्तु

यह संचेतना ही आज हारी

भ्रंश की घटना हुई विध्वंशकारी

शून्य हो संवेदना से हो गयी यह वृत्ति पाषाणी हमारी।[85]

कवि की भाव-ऊर्मिया विराट् कल्पना की सहचरी बनकर चित्र रूप में भावानुभूति का विषय बन जाती हैं और साथ ही कवि की लौकिक संवेदना को व्यक्त करने में सहायिका भी। लीलाधर जगूड़ी की इन पंक्तियों में नवीन बिम्ब योजना को देखा जा सकता है-

जमीन के तहे-दिल से उस वृषभाकार बीज का एक सुई जैसा अंकुर उठा

जिसमें सबसे आगे जीभ का जोर, ऐंठी हुई पूँछ की कड़क और

सींगों का पैनापन था

नीचे की ओर खुरों से निकलकर धँसती हुई जड़ें थीं

जमीन भी पेट की तरह उठ रही थी।[86]

यहाँ बीज के अंकुरित होने को बैल के शरीर के अवयवों के रूप में बिम्बित किया गया है। जबकि बैल स्वयं शोषित वर्ग का प्रतीक है। इस प्रकार कवि की बौद्धिकता एवं लौकिक संवेदनशीलता को उपरोक्त पंक्तियों में देखा जा सकता है।

सप्तकोत्तर कविताओं में प्रायः कवियों ने अपनी भावनात्मक एवं संवेदनात्मक अभिव्यक्ति को बढ़ाने के लिए प्रतीकों का प्रयोग किया है। हरीशचन्द्र पाण्डेय की इन पंक्तियों में 'अजगर' और 'विषाक्त मच्छरों' को शोषक वर्ग के प्रतीक के रूप में प्रस्तुत किया गया है-

यहाँ धरती

अज़गरों की

और वायुमंडल

विषाक्त मच्छरों का है।[87]

आधुनिक समाज की पूँजीवादी व्यवस्था पर कवि का प्रतीकात्मक व्यंग्य यहाँ देखने योग्य है। कुँवर नारायण की निम्नलिखित पंक्तियों में मकड़जाले को आधुनिक राजनीति के प्रतीक के रूप में दर्शाया गया है-

सियासती मुआमलों के हवाले

ऐसे मकड़जाले

कि अपठनीय।[88]

प्रलोभनों और व्यक्तिगत स्वार्थों के लिए अपनी आत्मा तक बेच देने वाले कुत्सित नेताओं को मकड़े के रूप में दर्शाया गया है। आधुनिक समाज के प्रति संवेदनशील कवि इनके चरित्र को अपनी कविताओं में उजागर करता है। दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग शतदल की इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है-

मैं मृग हुआ कि मेरे भीतर

एक मरुस्थल

जनम-जनम से;

जिसके कारण मैने फिर यह

जीवन जिया नहीं संयम से।[89]

यहाँ 'मृग' मनुष्य का प्रतीक है जबकि मरुस्थल उसकी तृष्णा का प्रतीक है। ये प्रतीक कवि की अलौकिक संवेदना को व्यक्त करते हैं। सांसारिक माया-मोह में फँसा हुआ मनुष्य सम्पूर्ण जीवन असंयमित रूप से जीता है।

अप्रस्तुत-विधान भावों की सम्प्रेषणीयता में अपना विशेष महत्त्व रखते हैं। आज का कवि जीवन के तुच्छ-से-तुच्छ क्षेत्रों व वस्तुओं से उपमानों का चयन करता है। कवि रसनायक की दार्शनिक पंक्तियों में धार्मिक उपमान योजना देखने योग्य है-

सूकर मुख समान यमूदता। देहिं दण्ड तेहिं नरक अकूता।।[90]

पौराणिक उपमानों के माध्यम से कवि ने अलौकिक संवेदना को दर्शाने का प्रयास किया है। डॉ० कृष्ण गोपाल गौतम ने विश्व के सभी उपमानों को कालिंजर पर्वत पर विराजमान बताया है-

विश्व के अशेष उपमान यहाँ विद्यमान,

पुण्य दान से जो स्वयमेव को हैं साज़ते।

विन्ध्य शृंखला की इस शाश्वत विचित्रता को,

नेत्र इतिहास के हैं अंजन-सा आंजते।।[91]

यहाँ कालिंजर पर्वत के प्रति कवि की ऐतिहासिक भावनात्मकता से परिपूर्ण दृष्टि परिलक्षित होती है। इनके अतिरिक्त अन्य अनेक उपमानों के अभिनव प्रयोगों द्वारा सप्तकोत्तर कवियों ने कविता को अनुप्राणित किया है। इन्होंने भावनात्मकता और संवेदनशीलता को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न मिथकों का प्रयोग भी किया है। ऐसी कहावतें या कहानियाँ जो इतिहाससम्मत नहीं, उनका वर्णन जब किसी के परिप्रेक्ष्य में हो तो वे मिथक कहलाती हैं। मिथक समय-समय पर जीवन मूल्यों को स्थायित्व प्रदान करने हेतु निर्मित किए जाते हैं। उदाहरणार्थ-

यह पुण्यभूमि यह तपोभूमि, रघुकुलमणि ने ली शरण जहाँ,

चित्रित भाषामय चित्रकूट, है सदा मूक व्याकरण जहाँ।[92]

पौराणिक मिथकों के प्रयोग द्वारा उपरोक्त पंक्तियों में कवि की दार्शनिक भावना का प्रस्तुतीकरण हुआ है। चित्रकूट कवि की अलौकिक संवेदना का संवाहक पुण्य स्थल है। युवावस्था में नायिका की शृंगारिक चेष्टाओं का कारण पौराणिक मान्यताओं के अनुसार कामदेव को बताया गया है। केशव सिंह दिखित 'विमल' ने क्षत्राणी दुर्गावती महाकाव्य में दुर्गावती की मनोदशाओं को इस प्रकार से दर्शाया है-

किसने सुमन धनुष सायक ले / मुझको लक्षित कर डाला ?

बैठी सोच रही नृप बाला / छिप बैठा है निष्ठुर कोई,

आकर तन तरूणाई में / लज्जित करवाता मुझको आ,

बार-बार अँगड़ाई में।[93]

काम के प्रभाव से इस प्रकार की मनोदशा का उत्पन्न होना स्वाभाविक ही है। कवि की संवेदना यहाँ पर नायिका की अनियन्त्रित चेष्टाओं को बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करती है।

कल्पना को यथार्थ का पुट देते हुए जब मनोभावों या अनुभवों को चमत्कारिक ढंग से शब्दों में ढाला जाए और एक ऐसा स्वप्नलोक निर्मित कर दिया जाए जो विकृत व विचित्र होते हुए भी आकर्षक प्रतीत होने लगे तो साहित्य की भाषा में इसे फन्तासी या फैन्टेसी कहा जाता है। कभी-कभी यथार्थ की अतिशयता भी अपने उघाड़ेपन के कारण फन्तासी का रूप ले लेती है। उदाहरण के लिए कृष्णमुरारी पहरिया की ये पंक्तियाँ-

तुरहियाँ बजती हैं / नगाड़े गड़कते हैं,

सेना तैयार है युद्ध के लिए / बढ़े चलो।

गोलियां सनसनाती हैं / तलवारें टकराती है,

X X X X X X

मेरे पग तले की मिट्टी सनी है / मेरे साथी को गोली लगी है।[94]

यहाँ कवि की यथार्थपरक संवेदनशीलता युद्ध की भीषण कल्पना का भाव चित्र प्रस्तुत करती है। सामाजिक विकृतियाँ भी यथार्थ और कल्पना की सशक्त भावभूमि पर कवि की रचानाशक्ति को एक नवीन दिशा में जाने को बाध्य करती हैं। केशव तिवारी की कविता फन्तासी का यही रूप लिए हुए है-

कविता की आत्मा से/जौंक की तरह चिपक गये हैं भांड़

हत्यारे राजघाट पर प्रायश्चित कर रहे हैं / सधे हुए मरासियों की

तरह / राजपथ पर / दौड़ते-दौड़ते / इस बूढ़े घोड़े

की घिस चुकी है नाल / इसकी टापों से रिस रहा है खून।[95]

उपरोक्त पंक्तियों में बुद्धिजीवी कवि की कल्पना में भी कविता और समाज का यथार्थ पूरी संवेदना के साथ प्रतिबिम्बित होता है। इस प्रकार फन्तासियों के प्रयोग द्वारा इन कवियों ने अपनी गहन भावानुभूतियों एवं तीव्र संवेदनाओं को सफलतापूर्वक चित्रित किया है।

कविता की संरचना के स्तर पर भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों में साम्य क साथ-साथ वैषम्य भी देखने को मिलता है। कविता की भाषा और उसके शब्दों के द्वारा ही कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता की सही और उपयुक्त जाँच होती है। ये शब्द कहीं पर भावनाओं को तीव्र करते प्रतीत होते हैं तो कहीं पर संवेदनाधिक्य की भी स्थिति पैदा कर देते हैं-

शब्दों के जलते कोयलों की आँच

अभी तो तेज होनी शुरू हुई है

उसकी दमक

आत्मा तक तराश देने वाली

अपनी मुस्कान पर

मुझे देख लेने दो।[96]

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना की इन पंक्तियों में कवि की भाषा लौकिक संवेदना को पूरी तीव्रता के साथ प्रस्तुत करती है जबकि उसकी प्रेमबोधक भावनात्मकता की अनुभूति उसके पीछे कराती है। इस प्रकार कविता की भाषा को सही आकार प्रदान करने में गरिमायुक्त शब्दों के प्रयोग का विशेष महत्त्व है। कहीं-कहीं पर कवियों ने ध्वनिसूचक शब्दों के माध्यम से अपनी अनुभूतियों को प्रकट करने

का प्रयास किया है-

मैं अब

बिना घड़ी की टिक-टिक, टिक-टिक के

सो नहीं पाता हूँ

जब भी बन्द होती है टिक-टिक

मुझे लगता है

कहीं किसी हृदय ने

अभी-अभी धड़कना बंद कर दिया है।[97]

घड़ी की टिक-टिक की आवाज यहाँ कवि की आम दिनचर्या का अंग बन चुकी है। इसलिए जब कभी वह बन्द हो जाती है तो स्वभावतः कवि को किसी हृदय की धड़कनों के रूकने का-सा भ्रम होता है। इस प्रकार से ध्वनिसूचक शब्दों का प्रयोग स्वाभाविक संवेदनशीलता की प्रतीति कराता है। कवि की यह अनुभूति उसकी मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता का विकास करती है। शैली प्रयोग की दृष्टि से भी सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने भावना और संवेदना के अन्तर को स्पष्ट करने की कोशिश की है-

बड़ा तो वह है जो औरों को बड़ा करे,

सबकी आँखों, में कुछ नया-नया रंग भरे!

मन के दर्पण में तुम खुद को निहारो,

औरों को छोड़ो, अपने लिए ही कुछ खोलो!

दूसरों को पीछे, पहले खुद को टटोलो!

बुरा मत बोलो।[98]

उपदेशात्मक शैली में लिखी गयी रमानाथ अवस्थी की उपरोक्त पंक्तियाँ मानवीय यथार्थ को प्रस्तुत करती हैं। सत्य और कर्त्तव्य का पालन करना ही सबसे उत्तम कर्म है। दूसरों के लिए जीना ही वास्तविक जीवन है। कवि ने इसी यथार्थ को अपनी संवेदना के स्वरों में ढालने का प्रयत्न किया है। उपदेशात्मक शैली के प्रयोग से उसने भावों का सैद्धान्तिक निरूपण बड़ी सहजता से किया है। मूर्त्त-अमूर्त्त विचारों को बिम्ब योजना में ढालकर सप्तकोत्तर कविता के कवियों ने उन्हें वैशिष्ट्य प्रदान किया है। जैसे-

पीली और असहाय

अस्त होती हुई

उसी रोशनी में उन्हें चलना था

दूसरे दिन सुबह उठकर

फिर इस अन्तहीन पृथ्वी पर

इस ख़ाक में मिल जाने के लिए

जहाँ से हरे और बड़े-बड़े पत्तों वाला

पेड़ उगता है

सघन और मजबूत।[99]

यहाँ वर्तमान विभीषिकाओं में अगोचर हो चुके मानवीय विवेक और आत्मप्रकाश के अमूर्त्त-सूक्ष्म 'विचार-बिम्ब' को अन्तहीन पृथ्वी, खाक और पेड़ आदि की अन्योक्ति (अप्रस्तुत) द्वारा संवेद्य बनाने का प्रयास हुआ है। विषमतापरक संवेदनशीलता को ग्रहण किए हुए कवि की ये पंक्तियाँ सम्पूर्ण समष्टि के प्रति उसके चिन्तन को उजागर करती हैं। इसी प्रकार प्रतीकों के प्रयोग द्वारा भी कवियों ने भावनात्मकता और संवेदनशीलता के अन्तर को स्पष्ट करने का प्रयास किया है। उदाहरण के लिए वीणा घाणेकर की 'शिकार' कविता से और अंशु मालवीय की 'सुनो सत्या!' कविता से ये पंक्तियाँ-

पोखर बनता जाता है छोटी तलैय्या!

ठिगने नीम की कमर तक पानी आ गया है!

भेड़ों की रेवड़ से बादल............

झाँकते है उसमें

गरजकर दिखा जाते हैं झूठा दम्भ।[100]

और

रात के निकल आये थे नाखून

कोठरी की सीलन ने जज्ब कर ली थी तुम्हारी चीख,

आसमान में टंगे तारों की

मासूम आँखों से टपकी थी रोशनी

लहू की मानिंद..........।[101]

पहली कविता में पोखर, छोटी तलैय्या, ठिगना नीम, भेड़ों की रेवड़-से बादल इत्यादि भारतीय

सभ्यता के सभ्य से असभ्य होते विकसित से विनष्ट होते निर्बल वर्ग के प्रतीक हैं जो कवि की आधुनिक व मानववादी भावना को दर्शाते हैं, जबकि दूसरी कविता में रात, नाखून, आदि पूँजीवादी शोषक तंत्र व क्रूर समाज के प्रतीक हैं जो कवि की समाजपरक संवेदनशीलता को दर्शाते हैं। रामचन्द्र शुक्ल की निम्नलिखित पंक्तियों में परिवेशगत संवेदनशीलता से परिपूर्ण उपमान योजना देखने योग्य है-

रूग्णालय की शैया पर

दुःख कातर नारी-नर

व्यथा वारि में है डूबा

आहत अपना घर

आँख मिंचौनी करता

सुख सपने-सा आता

निद्रा की टूटी बाँह पकड़

कब लौट कहाँ है जाता

नैनों में आँसू भर

कातर नारी नर।[102]

उपरोक्त पंक्तियों में कवि ने अस्पताल में उपस्थित रोगियों एवं उनके दुःखी परिजनों का करूण चित्रण किया है। मानवीय परिवेश के प्रति कवि की यह संवेदना उसके मानवीय और लोक चेतना से संपृक्त हृदय की ठोस पहचान है।

सप्तकोत्तर कविताओं के संरचनामूलक विश्लेषण से हमें निम्नलिखित बिन्दु प्राप्त होते हैं-

संरचनामूलक साम्य के आधार-बिंदु

1. भाषिक वैभिन्य।
2. आंचलिक, ग्रामीण, तद्‌भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग।
3. लोक प्रचलित मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग।
4. संवाद, संलाप, उद्‌बोधनात्मक व व्यंग्य शैलियों का प्रयोग।
5. चाक्षुष, स्पर्श, भावात्मक, सूक्ष्म संवेदनात्मक एवं नवीन बिम्बों का प्रयोग।
6. सामाजिक, राजनैतिक एवं दार्शनिक प्रतीकों का प्रयोग।
7. पौराणिक, धार्मिक एवं व्यावहारिक उपमानों का प्रयोग।

8. पौराणिक मिथकों का प्रयोग।

9. यथार्थ की अतिशयता से उपजी फन्तासी।

संरचनामूलक वैषम्य के आधार-बिंदु

1. भावना और संवेदना को तीव्र करने वाले भाषिक शब्द।

2. ध्वन्यात्मक शब्दों के प्रयोग द्वारा अपनी अनुभूतियों को प्रकट करना।

3. उपदेशात्मक शैली का प्रयोग।

4. सूक्ष्म संवेद्य, विचार- बिम्बों का प्रयोग।

5. ग्रामीण प्राकृतिक एवं आधुनिक प्रतीकों का प्रयोग।

6. दार्शनिक उपमानों का प्रयोग।

उपरोक्त बिन्दुओं के आधार पर भावनात्मकता और संवेदनशीलता में संरचनामूलक साम्य और वैषम्य को निम्नवत सारणीबद्ध किया जा सकता है-

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में संरचनामूलक साम्य

संरचनामूलक बिंदु	भावनात्मकता	संवेदनशीलता
भाषिक वैभिन्य	मानववादी भावनात्मकता	यथार्थपरक संवेदनशीलता
आंचलिक, ग्रामीण तद्भव एवं देशज शब्दों का प्रयोग	बौद्धिक भावनात्मकता	यथार्थपरक तथा परिवेशगत संवेदनशीलता
लोक प्रचलित मुहावरे व लोकोक्तियों का प्रयोग	बौद्धिक भावनात्मकता	परिवेशगत तथा समाजपरक संवेदनशीलता
संवाद शैली	दार्शनिक भावनात्मकता	दृष्टिपरक संवेदनशीलता
संलाप शैली	बौद्धिकतायुक्त भावनात्मकता	सर्जनात्मक संवेदनशीलता
उद्बोधनात्मक शैली	राष्ट्रवादी भावनात्मकता	समाजपरक संवेदनशीलता
व्यंग्य शैली	बौद्धिक भावनात्मकता व आधुनिक भावनात्मकता	व्यंग्यपरक संवेदनशीलता
चाक्षुष बिम्ब	मानववादी भावनात्मकता	दृष्टिपरक संवेदनशीलता
सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्ब	काल्पनिक भावनात्मकता व दार्शनिक भावनात्मकता	लौकिक संवेदनशीलता

सामाजिक व राजनैतिक प्रतीकों का प्रयोग	आधुनिक भावनात्मकता	व्यंग्यपरक संवेदनशीलता
दार्शनिक प्रतीक	दार्शनिक भावनात्मकता	अलौकिक संवेदनशीलता
पौराणिक एवं धार्मिक उपमानों का प्रयोग	दार्शनिक भावनात्मकता	लौकिक व अलौकिक संवेदनशीलता
यथार्थ की अतिशयता से उत्पन्न फन्तासी	काल्पनिक भावनात्मकता	यथार्थपरक संवेदनशीलता

भावनात्मकता और संवेदनशीलता में संरचनामूलक वैषम्य

संरचनामूलक बिंदु	**भावनात्मकता**	**संवेदनशीलता**
भावना और संवेदना को तीव्र करने वाले शब्द	लौकिक संवेदना के प्रभाव से पाठक को प्रेमबोधक भावना का अनुभव होता है।	लौकिक संवेदनशीलता
ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग	मनोवैज्ञानिक भावनात्मकता	यही भावना व्यक्ति में स्वाभाविक संवेदनशीलता का सृजन करती है।
उपदेशात्मक शैली का प्रयोग	मानववादी भावनात्मकता	कवि की मानववादी भावनात्मकता पाठक में यथार्थपरक संवेदना की अनुभूति कराती है।
विचार बिम्ब	कवि की यही संवेदना पाठक में समष्टिगत भावनात्मकता को उत्पन्न करती है।	विषमतापरक संवेदनशीलता
ग्रामीण, प्राकृतिक एवं आधुनिक प्रतीकों का प्रयोग	ये संवेदनाएँ पाठक में आधुनिक एवं मानववादी भावनात्मकता का सृजन करती है।	परिवेशगत एवं समाज परक संवेदनशीलता
दार्शनिक उपमानों का प्रयोग	कवि की ये संवेदनाएँ सहृदय पाठक के अन्दर मानववादी भावनात्मकता तथा दार्शनिक भावनात्मकता को उत्पन्न करती हैं।	परिवेशगत एवं समाजपरक संवेदनशीलता

इस प्रकार से देखा जाए तो सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने जहाँ प्रायः अभिधात्मक भाषा के प्रयोग द्वारा सामाजिक यथार्थ से जुड़ी संवेदना तथा मानववादी भावनात्मकता के साम्य को निरूपित करने का प्रयास किया है तो वहीं ग्रामीण, आँचलिक, देशज एवं तद्भव शब्दों के प्रयोग द्वारा भाषा की परिवेशगत संवेदना तथा यथार्थपरक संवेदना को बौद्धिक भावना के साथ प्रस्तुत किया है। संवाद शैली के प्रयोग में दार्शनिक एवं भावात्मक चिंतन कवि की दृष्टिपरक संवेदनशीलता को दर्शाता है तो संलाप शैली में कवि की सर्जनात्मक संवेदनशीलता तथा उसकी बौद्धिकता का ऐक्य देखने को मिलता है। उद्बोधनात्मक शैली के प्रयोग द्वारा राष्ट्रप्रेम की भावना से परिपूर्ण कविताओं में समाजपरक संवेदनशीलता देखने को मिलती है। चाक्षुष एवं सूक्ष्म संवेदनात्मक बिम्बों के माध्यम से कवि की दृष्टिपरक संवेदना के साथ विषयानुसार पृथक-पृथक भावनात्मकता का पुट दिखायी देता है। सामाजिक तथा राजनैतिक प्रतीकों के माध्यम से आधुनिक समाज की विद्रूपताओं के चित्रण में व्यंग्यपरक संवेदनशीलता तथा आधुनिक भावनात्मकता में साम्य देखने को मिलता है। पौराणिक एवं धार्मिक उपमानों के प्रयोग द्वारा कवियों ने अपनी दार्शनिक भावनात्मकता के साथ लौकिक व अलौकिक संवेदना को समान स्तर पर प्रवहमान दिखाया है।

इसी प्रकार संरचनामूलक वैषम्य पर दृष्टि डालें तो सप्तकोत्तर कविता में कवियों ने कहीं-कहीं ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो कहीं पर भावनात्मक तीव्रता को दर्शाते हैं। लौकिक संवेदना को प्रकट करने वाली कविता पाठक में प्रेमबोधक भावना को उत्पन्न करती है। ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग कवि की मनोवैज्ञानिक भावना के आधार पर कविता में होता है। पाठक में यही भावना स्वाभाविक संवेदनशीलता को उत्पन्न करती है। उपदेशात्मक शैली का प्रयोग प्रायः कवियों ने मानववादी भावना से प्रेरित होकर किया है। पाठक में कवि की यह भावना यथार्थपरक संवेदना की अनुभूति कराती है। विचार-बिम्बों का प्रयोग कविता में सांसारिक विषमताओं के चित्रण हेतु होता है। ये बिम्ब पाठक में समष्टिगत भावना को उत्पन्न करते है। ग्रामीण, प्राकृतिक एवं आधुनिक प्रतीकों को संवेदनशील कवि अपने परिवेश और समाज से ग्रहण करता है। ऐसे प्रतीक पाठक में मानवीय तथा आधुनिकतायुक्त भावनाओं को जागृत करते हैं। दार्शनिक उपमानों को भी कवि परिवेश और समाज की संवेदना से परिपूर्ण होकर कविता में स्थान देता है। पाठक में यह उपमान योजना मानवीय भावना और दार्शनिकता का पोषण करती है। इस प्रकार से संरचना क स्तर पर सप्तकोत्तर कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता में हमें वैषम्य भी देखने को मिलता है।

निष्कर्ष के रूप में कहा जाए तो सप्तकोत्तर कविता में मौजूद समाज, सिद्धान्त, मानवता, चिंतन, कल्पना इत्यादि वैचारिक बिन्दुओं, संघर्ष, लोक व्यवहार, सामाजिकता, राजनीति इत्यादि व्यावहारिक बिन्दुओं और भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, उपमान, फन्तासी इत्यादि संरचनामूलक बिन्दुओं से सम्बन्धित भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों में वैषम्य की अपेक्षा साम्य अधिक देखने को मिलता है।

सन्दर्भ सूची

1. डॉ० नीलम कालड़ा : भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन; काव्य भाषा के सन्दर्भ में शैली वैज्ञानिक तत्त्वों का अध्ययन, पृ०-54-55
2. प्रभाकर श्रोत्रिय : कविता की तीसरी आँख; कविता की तीसरी आँख; बिम्ब, पृ० 26
3. गजानन माधव 'मुक्तिबोध' : एक साहित्यिक की डायरी; तीसरा क्षण, पृ० 18-19
4. नरेश मेहता : देखना एक दिन; 'कवच', पृ० 71
5. नरेश मेहता : देखना एक दिन; 'अपना दर्द', पृ० 46
6. रामेश्वर शुक्ल 'अचंल' : अपराधिता; 'भीष्म' सर्ग, पृ० 25
7. ओंकारनाथ त्रिपाठी : अभिनवा; 'मौत', पृ० 47
8. नईम : लिख सकूँतो; 'शामिल कभी न हो पाया मैं', पृ० 21
9. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'मेरी कविता', पृ० 96
10. नन्द चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मन समय; दुःख जब नजर आता है, पृ० 29
11. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'अकेले और अछूत', पृ० 18
12. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; कालीन कारखानें में बच्चे', पृ० 30
13. नरेश मेहता : देखना एक दिन; 'काली कविता', पृ० 107
14. शतदल : पवन गया नीली घाटी में; तुम क्या पाना चाहोगे' पृ० 64
15. अशोक चन्द्र : धरती ने दिये हैं बीज; 'इस सदी का अन्तिम विमर्श; पृ० 32
16. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम सत्य; 'थोड़े दिनों बाद; पृ० 120
17. देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; 'गधापन', पृ० 44
18. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'नकल', पृ० 13
19. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'और कुछ नहीं तो', पृ० 86
20. अशोक चन्द्र : धरती ने दिये हैं बीज; 'लोग पूछते हैं; पृ० 45
21. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'आँख', पृ० 10
22. नईम : लिख सकूँ तो; 'कल तक रहे कपोत उड़ाते', पृ० 49
23. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'मुक्ति व्यवस्था', पृ० 85
24. कुँवर नारायण : दिनों; 'नींव के पत्थर', पृ० 23
25. कुँवर नारायण : इन दिनोः 'एक जले हुए मकान के सामने', पृ० 26

26. बोधिसत्व : सिर्फ कवि नहीं; 'मेरा देश', पृ० 34-35

27. देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; मुददा', पृष्ठ 27

28. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'अंतर मंथन', पृ० 56

29. त्रिलोचन : मेरा घर; 'शब्दों से मेरा सम्बन्ध छूट जाएगा', पृ० 27

30. माधवीलता शुक्ला : तृष्या; 'प्रकृति और पुरूष', पृ० 15

31. शतदल : पवन गया नीली घाटी में; 'स्वप्न जो भी बँधें', पृ० 53

32. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'दूसरे लोग', पृ० 85-86

33. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'युद्ध के लिए मौसम', पृ० 122

34. रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' : अपराधिता; ' भीष्म सर्ग', पृ० 21

35. धनंजय अवस्थी : शबरी; 'संघर्ष' सर्ग, पृ० 38

36. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; वृत्ति सर्ग, पृ० 29

37. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; वृत्ति सर्ग, पृ० 29

38. डॉ० रामलखन सिंह परिहार 'प्रांजल': पूर्वार्द्ध; वहीं फिर रोशनी होगी, पृ० 165

39. डॉ० रामलखन सिंह परिहार 'प्राजंल' : पूर्वार्द्ध; 'कौन ?', पृ० 225

40. कुमार अंबुज : समकालीन भारतीय साहित्य में (द्वि० प्रतिमा जून 2006) 'यह मेरा हृदय', पृ० 172

41. अलका त्यागी : समकालीन भारतीय साहित्य द्वि पत्रिका, जून सन् 2006); 'बूंद', पृ० 180

42. प्रेमरंजन अभिमेष : समकालीन भारतीय साहित्य द्वि० पत्रिका मई जून 2005), 'चयन', पृ० 155

43. प्रेमरंजन अभिमेष : समकालीन भारतीय साहित्य द्वि० पत्रिका मई जून 2005), 'निर्बाध', पृ० 155

44. देवी प्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं; 'गणतंत्र', पृ० 45

45. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; बेनी माधव', पृ० 38

46. त्रिलोचन : मेरा घर; 'आदमी की गन्ध', पृ० 38

47. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'फोन पर हाल चाल', पृ० 49

48. हेमन्त कुकरेती: चाँद पर नाव; 'रुपये का पेड़; पृ० 51

49. कैलाश बाजपेयी : भविष्य घट रहा है; 'रोटी और रब', पृ० 17

50. केदारनाथ सिंह : आंका सूरजबांका सूरज; 'एक सवाल पैद होता है; पृ० 83

51. अंशु मालवीय : दक्शिन टोला; 'गुजरात : कत्ल और कविता', पृ० 135

52. सावित्री डागाः शताब्दी की सरहद पर; 'जुड़ाव', पृ० 16

53. श्री प्रकाश शुक्ल : जहाँ सब शहर नहीं होता; 'काँवरिये; पृ० 102

54. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी; 'अपने आप', पृ० 13

55. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'दूसरे बच्चे', पृ० 17

56. सावित्री डागा : शताब्दी की सरहद पर; 'जटायु', पृ० 33

57. मंगलेश डबरालः आवाज भी एक जगह है; 'गाता हुआ लड़का', पृ० 61

58. अशोक चन्द्र : धरती ने दिये है बींज; ' क्या कर रही होगी माँ', पृ० 63

59. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'दादी माँ का विश्वास', पृ० 91

60. डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' : अभिशप्त शिला; 'वृत्ति' सर्ग, पृ० 36

61. पवन करण : स्त्री मेरे भीतर; 'यह आवाज मुझे सच्ची नहीं लगती ', पृ० 58

62. हरीश चन्द्र पाण्डेय : एक बुरूँश कहीं खिलता है; 'बिलासपुरी मज़दूर', पृ० 69

63. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना; 'चौथ का चाँद', पृ० 47

64. मंगलेश डबराल : आवाज भी एक जगह है; 'बाजार', पृ० 58-59

65. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय ; 'अजलियत जानते है लोग, पृ० 100

66. नरेश मेहता : देखना का दिन; संज्ञा से सर्वनाम', पृ० 102

67. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'कल्पतठ की छाया', पृ० 43

68. सावित्री डागा : शताब्दी की सरहद पर; 'स्वर्ण मृग', पृ० 29

69. हेमन्त कुकरेती : चाँद पर नाव; 'अँग्रेज मेहमान का प्रश्न', पृ० 81

70. कृष्ण कल्पित : लय (सं० माधव हण्डा); 'रेत पर हम', पृ० 65

71. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : खूँटियों पर टँगे लोग; 'हंजूरी', पृ० 46

72. केशव तिवारी : इस मिट्टी से बना ; 'खोजों उन हाथों को', पृ० 85

73. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला, 'गाँव', पृ० 71

74. नीरज : नीरज दोहावली; दोहा संख्या 123, पृ० 31

75. अंशु मालवीय : दक्खिन टोला; 'लोकतंत्रः एक कोलॉज', पृ० 116

76. विजयदेव नारायण साही : संवाद तुमसे; 'एक मेज-लैम्प के पास', पृ० 52

77. देवीप्रसाद मिश्र : प्रार्थना के शिल्प में नहीं ; 'परम्परा पाठ', पृ0 20

78. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय ; 'कुछ तो होगा ही नागरिकों', पृ0 117

79. सुधीर रंजन सिंह : और कुछ नहीं तो; 'तानाशाह', पृ0 26

80. ओंकार नाथ त्रिपाठी : अभिनवा; 'गुणगान की तंद्रा', पृ0 67

81. वीणा घाणेकर : पता है, नहीं भी: 'कुपोषित', पृ0 25

82. विवेकी राय : यह जो है गायत्री; 'ग्राम चित्र', पृ0 63

83. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'शरद यामिनी', पृ0 47

84. विजेन्द्र : पहले तुम्हारा खिलना; 'कटनी', पृ0 102-103

85. डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' :, अभिशप्त शिला'; 'वृत्ति सर्ग', पृ0 28

86. लीलाधर जगूड़ी : भय भी शक्ति देता है; 'दूसरे शरीर की खोज', पृ0 63

87. हरीशचन्द्र पाण्डेय : एक बुरूँश कहीं खिलता है; 'ये भाबर हैं', पृ0 74

88. कुँवर नारायण : इन दिनों; 'अपठनीय', पृ0 13

89. शतदलः पवन गया नीली घाटी में; 'दृग न बोलते', पृ0 51

90. विजय बहादुर त्रिपाठी 'सनायक' : श्रीराम चरित रामाश्वमेध; '23वाँ अध्याय; पृ0 204।

91. डॉ0 कृष्ण गोपाल गौतम : छन्दशतक; पृ0 12

92. डॉ0 कृष्ण गोपाल गौतम : समाधि-सुमन; 'चतुर्थ' सर्ग, पृ0 55

93. केशव सिंह दिखित 'विमल' : क्षत्राणी दुर्गावती; तृतीय सर्ग, पृ0 55

94. कृष्ण मुरारी पहरिया : सपने झरोखे हैं; 'युद्ध गीत', पृ0 28

95. केशव तिवारी : उन्नयन (अनियतकालीन पत्रिका); 'इन दिनों, पृ0 262

96. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना : खूँटियों पर टंगे लोग; 'एक छोटी सी मुलाकात', पृ0 106

97. हरीशचन्द्र पाण्डेय : एक बुरूँश कहीं खिलता है; 'दीवार घड़ी', पृ0 49

98. रमानाथ अवस्थी : हंस अकेला; 'स्वयं के प्रति', पृ0 67

99. नंद चतुर्वेदी : उत्सव का निर्मम समय; 'कब्र पर रोशनी', पृ0 95

100. वीणा घाणेकर : पता हैं, नहीं भी; 'जीजिविषा', पृ0 83

101. अंशु मालवीय : दक्खिन टोलाः 'सुनो सत्या!' पृ0 130

102. रामचन्द्र शुक्ल : अरूणिमा; 'उपचारगृह से', पृ0 84

सप्तम अध्याय

उपसंहार

7

उपसंहार

साहित्य हितपूर्ण चिंतन का दूसरा नाम है। साहित्य का कार्य है, जीवन की दार्शनिकता का विश्लेषण करना और भविष्य-पथ को उस रूप में आलोकित करना, जिससे मानवीय उपलब्धियाँ प्रकाशित हो सकें तथा मानव-जीवन विकास के उन्नत सोपानों को प्राप्त कर सके। जीवन में जटिलताएँ बढ़ने के साथ ही कविता में विविधता भी उसी अनुपात में बढ़ी है। आज की कविता समूचे परिवेश और समूचे ब्रह्माण्ड को अपने दायरे में समेटे हुए है। कवि की प्रवृत्ति मूलतः खोजी प्रवृत्ति होती है। इसीलिए वह नवीनतम जीवन-मूल्यों की खोज करता रहता है। सप्तकोत्तर कवियों में पहले की कविता की अपेक्षा भावनाओं व संवेदनों के रूपों में पर्याप्त बदलाव हुआ है। यही बदलाव नवीन मूल्यों को नये ढंग से प्रस्तुत करता है।

सप्तकोत्तर कविता में मानव की संवेदनात्मक जटिलता तो है ही, शब्द संस्कार व शब्दार्थ के नूतन साहित्य के अन्वेषण की बेचैनी भी है। प्रबुद्ध कवि अपने युग से आगे बढ़ी हुई बात को तीव्रता व स्पष्टता प्रदान करता है। उसकी भावुकता बहुआयामी व्यक्तित्व की विशिष्ट और यथार्थ भावुकता है। वह यथार्थ की पथरीली जमीन पर खड़े होकर भी अपनी दृष्टि हमेशा जीवन की आस्था पर केन्द्रित किए रहता है। वह विश्व कल्याण की उदात्त भावना लिए है। इसीलिए आज का कवि व्यक्तिगत जटिलताओं में संकुचित नहीं होता है। उसकी कविता व्यक्ति से समाज की ओर उन्मुख होती हुई कविता है।

समय के साथ बदलते मानवीय संस्कार मनुष्य के आदर्शों और मूल्यों को भी बदलते हैं, उसकी जीवन प्रणाली बदलती है और इन सब के बदलाव के साथ युग बदलता है। हिंदी कविता में आदिकाल से लेकर अब तक के काव्य आन्दोलन और कविता के नये-नये रूपों के विकास इसी बदलाव की देन हैं। कवि अपनी भावनाओं और संवेदनाओं को व्यक्त करने का साधन कविता को बनाता है। आरम्भ में कविता कवि के भावनाधिक्य की लाक्षणिक परिणति थी। यह भावनाधिक्य छायावाद तक बना रहा। प्रगतिवाद, प्रयोगवाद और नई कविता तक आते-आते कविता के कथ्य और शिल्प में अधिक व्यापकता आई। इसका कारण था हर वर्ग और हर पेशे से कवियों का काव्यजगत में अपनी सशक्त व महत्त्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराना। अज्ञेय जी द्वारा सम्पादित सप्तक समकालीन प्रवृत्तियों के साथ-साथ नवीन जीवन मूल्यों और नवीन संवेदनाओं को भी बिम्बित करते हैं। वास्तव

में सप्तकोत्तर कविता का सप्तकीय कविता से अभिन्न सम्बन्ध है या कहा जाए कि सप्तकोत्तर कविता सप्तकीय कविता के द्वारा डाली गयी नींव पर खड़ा एक भव्य प्रासाद है।

आज की कविता भावनाशून्य और संवेदनहीन होते जा रहे समाज की भूमि में भावना का बीज बोकर संवेदना का पौधा उगाने की कोशिश करती है। बीच में कविता में उभरकर आई अनास्था, कुंठा, ग्लानि, पलायन जैसी रिक्तताओं का विरोध करते हुए आधुनिक सन्दर्भ में जीवन के विविध आयामों को बदलकर नई चेतना, नई गति और नया रूप प्रदान करके नए जीवन दर्शन की स्थापना का प्रयास सप्तकों के बाद के कवियों ने किया है। केदारनाथ सिंह, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, नरेश मेहता, विजयदेवनारायण साही, नीरज, गिरिजाकुमार माथुर, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, कुँवर नारायण सरीखे प्रौढ़ व अनुभवी कवियों ने जहाँ सप्तकोत्तर कविता का नवीन संस्कार किया वहीं देवी प्रसाद मिश्र, एकान्त श्रीवास्तव, लीलाधर जगूड़ी, विवेकीराय, बोधिसत्व, कुमार अंबुज, ओम भारती, ज्ञानेन्द्रपति, कैलाश बाजपेयी, हेमन्त कुकरेती, नईम, विजेन्द्र, अग्निशेखर, डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', रमानाथ अवस्थी और केशव तिवारी आदि कवियों ने आधुनिक युग और आधुनिक समाज की समस्याओं को परम्परागत पद्धति से हटकर नये व मौलिक ढंग से सुलझाने की कोशिश की है।

ऐसे समय में जब मनुष्य की संवेदनाएँ ठूँठ होती जा रही हैं, मानवीय रिश्तों की गरमाहट लगभग समाप्त होने को है, नए दौर की कविताएँ एक नयी उम्मीद, नयी उमंग, नयी आस्था, नयी जिजीविषा और नए संस्कारों के साथ कविता के पाठकों को उद्वेलित करती हुई सामने आती हैं। आज की कविता भावना और संवेदना से लगभग रिक्त हो चुके मानव हृदय रूपी मरुस्थल को हरा करने की कोशिश करती है। अज्ञेय की प्रसिद्ध उक्ति 'दुःख सबको माँजता है', सप्तकों के बाद की संवेदनशील कविताओं में ही चरितार्थ होती है। पीड़ा और दुःख कवि के अस्तित्व से बड़े हैं, क्योंकि ये उसे पुनर्जीवन प्रदान करते हैं। परिवेश के प्रति सचेतन दृष्टि, बदलते माहौल के पति सम्पृक्ति और समकालीन घटना प्रसंगों व उनसे विकसित उद्भूत स्थितियों के प्रति साझेदारी आज के कवि की संवेदना का एक वृहद् और उल्लेख्य संदर्भ है।

सन् 1943 से लेकर 1979 ई० तक अनेक परिवर्तनों से गुजरकर आज की कविता भौतिकता की मार को झेलती हुई और राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक और सांस्कारिक बदलावों को वहन करती हुई एक नए रूप में दिखाई पड़ती है। आज का सजग कवि अपने भावों को हृदय की संकुचित सीमा से बाहर कविता में उतारने का जोखिम उठाता है और उन्हें जन-जन की संवेदना से जोड़ता है।

सप्तकोत्तर कविता में व्यावहारिक जीवन की विषमताओं और वैचारिक संघर्ष के स्वरों की प्रमुखता है। विज्ञान और तकनीक के तीव्रतर विकास, पूँजी विकेन्द्रीकरण, बाजारवाद, राजनैतिक विद्रूपता और अस्थिरता जैसी नई-नई समस्याओं से संघर्ष करते मध्यम वर्ग और निम्न वर्ग के आदमी को आज की कविता में प्रमुखता से स्थान दिया गया है। आम आदमी की समस्या ही आज की कविता की सबसे बड़ी समस्या है। मनुष्य जैसे-जैसे पुरानी समस्याओं और रूढ़ियों से मुक्त होता जाता है। वैसे-वैसे उसके लिए नई समस्याएँ उत्पन्न होती रहती हैं। इन समस्याओं के उत्पन्न होने में भी कहीं-न-कहीं आम आदमी भी जिम्मेदार है। आज का कवि इस बात को भली-भाँति समझता है और उसे सचेत करने की कोशिश भी करता है। अतः आज की कविता संघर्ष और संवेदना की कविता है।

सप्तकोत्तर कविता की भावनात्मकता और संवेदनशीलता का अध्ययन और सूक्ष्म निरीक्षण करने पर उसमें निम्नलिखित विशेषताएँ देखने को मिलती हैं -

- सामाजिकता, वैयक्तिकता, मध्ययुगीनता, आधुनिकता, स्वाधीनता, राष्ट्रप्रेम, मानवीयता, प्राचीन परम्पराबोध एवं संस्कृति की ओर उन्मुखता इत्यादि प्रवृत्तियाँ आदिकाल से लेकर सप्तकीय कविता में और सप्तकोत्तर कविता में भी यत्र-तत्र देखने को मिलती हैं।

- सप्तकोन्तर कविता में पुरानी लीक को छोड़कर नयी लीक में चलने की विकलता है। इनके सरोकार, संवेदना और मुहावरे में कुछ-न-कुछ ऐसा है जो पहली बार है, अनकिया और अनछुआ है। ये मनुष्य के रंज, असमंजस, असुरक्षा और विकल्पहीनता की बिल्कुल नयी तस्वीर प्रस्तुत करती हैं। इनमें हमारे विषम समय और समाज की अन्तर्विरोधपूर्ण सोच की नई पहचान और समझ है।

- सप्तकोत्तर कविता के स्वरूप के निर्धारण में सप्तकीय कविता का विशेष महत्त्व है। सप्तकीय कविता की परिणति आज की कविता में गहरी राजनीतिक समझ, सही विचारधारा, पारदर्शिता, कवि कर्म का सफल निर्वहन, निजी प्रसंगों का सच्चा चित्रण, तेजी से बदलती दुनिया के अक्स उतारने की कोशिश और दृढ़ आशावादिता जैसी प्रवृत्तियों के रूप में हुई है।

- कविता के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग भावनात्मकता के व्यष्टिगत, समष्टिगत, मनोवैज्ञानिक, सौन्दर्यबोधक, राष्ट्रवादी, मानववादी, सैद्धान्तिक, दार्शनिक, ऐतिहासिक, बौद्धिक, आधुनिक, काल्पनिक व प्रेमबोधक रूप सप्तकोत्तर कविता में प्रचुर मात्रा में मिलते हैं।

- भावनात्मकता के उपरोक्त रूपों की कविता में उपस्थिति उनके मानवीय धरातल से गहरे जुड़ाव को दर्शाती है। व्यष्टि से समष्टि तक फैली मानवीय अनुभूतियों को सप्तकोत्तर कवियों ने आज की कविता में शब्दबद्ध कर दिया है।

- सप्तकोत्तर कविता की प्रमुख पहचान संवेदनशीलता के प्रकृतिजन्य, स्वाभाविक, परिवेशगत, यथार्थपरक, समाजपरक, दृष्टिपरक, विषमतापरक, न्यायपरक, कृत्रिमतायुक्त, व्यंग्यपरक, लौकिक, अलौकिक एवं सर्जनात्मक रुपों का आज की कविता को सर्वग्राह्य एवं मार्मिक बनाना है।

- उपरोक्त सभी प्रकार की संवेदनशीलता कवि हृदय की सूक्ष्म से सूक्ष्म अनुभूतियों को विकसित करके एक विस्तृत फलक में स्थापित करने का प्रयास करती हैं। वह विशुद्ध मनोभावों और उत्कृष्ट बिम्बों की ऐसी कोमल सहजमूर्ति है जो कविता को सौन्दर्ययुक्त और अक्षुण्ण बनाती है।

- उत्तर आधुनिकतावाद, विसंरचनावाद, उदारीकरण, वैश्वीकरण, विश्वग्राम, मीडिया जगत, सूचना प्रौद्योगिकी, बाजारवाद इत्यादि का प्रभाव सप्तकोत्तर कविता में दिखाई पड़ता है।

- तकनीकी विकास के प्रति सजगता, नई शिक्षा नीति, नई औद्योगिक व आर्थिक नीति, परमाणु शक्ति सम्पन्नता सरकारी व गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा समाज सेवा के क्षेत्र में उठाए गए अन्य महत्त्वपूर्ण कदमों तथा राजनैतिक परिवर्तनों को आज की कविता बखूबी वहन करती हुई चल रही है।

- सप्तकोत्तर कविता आगे की दुनिया के बेहतर होने की सम्भावनाओं के प्रति दृढ़ विश्वास की कविता है। प्रेम, सौन्दर्य, प्रकृति, समाज, दर्शन, भक्ति, इतिहास, बुद्धि, मानव, नारी, कुंठा, सत्रांस विद्रोह, संघर्ष, राजनीतिक विद्रूपता, शिल्प, भाषा, अस्थिरता, असुरक्षा, तनाव, क्षणवाद और सूचना प्रौद्योगिकी जैसी आधुनिक प्रवृत्तियों का सरल एवं सुस्पष्ट विश्लेषण सप्तकोत्तर कविता आधुनिक परिप्रेक्ष्य में करती है।

- आज की कविता में मानवीय समाज और परिवेश के प्रति स्पष्ट और खुली चिन्ता देखने को मिलती है। कवि को यह चिन्ता इतना बहिर्मुखी बना देती है कि वह कविता में व्यंग्य और विरोध के स्वरों को तेजी से उभारने का प्रयास करता है।

- आज के मनुष्य में निराश, कुंठा जीवन-जगत के प्रति दुविधा और बेचैनी, जीवन मूल्यों में गिरावट आदि प्रमुख चिन्तनपरक मनोभावों को आज का कवि अपनी रचना में साग्रह स्थान देता है। जीवन में कर्म की व्याख्या बिना रुके विभिन्न स्तरों पर करना आज के कवि को समीचीन लगता है। सप्तकोत्तर कविता में भावना और मनोविज्ञान के सम्बन्ध का जितनी बारीकी और गम्भीरता से चित्रण किया गया है उतना पहले की कविता में नहीं।

- सप्तकोत्तर कविता में जहाँ एक ओर इतिहास, वर्तमान, भविष्य और मानवीय मूल्यों से समन्वित राष्ट्रनिर्माण के स्वर सुनायी देते हैं तो वहीं दूसरी ओर कवियों ने अनेकानेक साहित्यिक सामाजिक एवं दार्शनिक सिद्धान्तों को अपनी भावनात्मकता एवं संवेदना के रस से अनुप्राणित किया

है तथा जीवनोपयोगी बनाया है। सप्तकोत्तर कविता केवल ऐंद्रिय संवेदन ही नहीं देती वह इंद्रियेतर संवेदन की अनुभूति भी कराती है। प्रकृति के विभिन्न मनोहारी रुपों तथा नारी-सौन्दर्य को आज का कवि केवल अपने नेत्रों की थकान मिटाने का माध्यम ही नहीं बनाता अपितु उनके इस सौन्दर्य के पीछे छिपे रहस्य को जानने की बेचैनी को भी अपनी कविता में व्यक्त करता है।

- विश्वबन्धुत्व और विश्वशान्ति का नारा लगाने वाला आज का कवि मानवता और देशप्रेम को बिल्कुल नहीं भूला है। जहाँ गाँधीवादी कवियों ने सत्य और सिद्धान्तों के मार्ग पर चलकर देशोद्धार की बात कही है वहीं बहुतेरे ओजस्वी कवियों ने देश की एकता, अखण्डता और शान्ति का स्वर ऊँचा करने वाली वीर रस से परिपूर्ण कविताएँ भी लिखी हैं।

- महानगरीय सभ्यता में पूर्णरूपेण व्याप्त पाश्चात्य प्रभाव वहाँ के परिवेश और समाज को पुरानी परम्पराओं और संस्कारों से पूरी तरह काटकर उसे भावना और संवेदना से रिक्त बनाता जा रहा है। आज की कविता में महानगरीय संवेदना को बचाए रखने की कोशिश साफ तौर पर दिखाई देती है।

- आलोच्ययुग की कविता युद्ध, घृणा, स्वार्थ, पारिवारिक विघटन, हत्या इत्यादि की बढ़ती विनाशकारी घटनाओं से जनसमूह की कुंठित होती भावनाओं और तार-तार होकर बिखरती संवेदनाओं को पूरे विश्वास और संकल्प के साथ बचाने की कोशिश करती है।

- सप्तकोत्तर कविताएँ आधुनिक भावबोध से जुड़कर अपनी गहरी संवेदनशीलता के साथ मुखौटे-दर-मुखौटे चढ़ाने वाले तथाकथित सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्य के समाज की विषमताओं के विरुद्ध लामबन्द होती दिखाई देती हैं। आश्चर्य की बात यह है कि इन कठिन परिस्थितियों में भी सच्चे कवि का आत्मविश्वास वैचारिक दृढ़ता से युक्त है।

- स्पष्ट रचनात्मक दृष्टि और सकारात्मक साहित्यिक सोच आज के कवियों के चिंतन को गहराई और सार्थकता प्रदान करते हैं। खोखलेपन और निरर्थक भावों से मुक्त आज की कविता में सर्जनात्मक संवेदनशीलता हमें स्पष्ट तौर पर देखने को मिलती है।

- निरीक्षण, प्रेक्षण, अनुभूति में या पढ़ने-सुनने में पहले संवेदना उत्पन्न होगी तत्पश्चात भावना का सृजन होगा या उसकी कोटियाँ निर्धारित होंगी। इस प्रकार से लेखन या विशेषकर कविता सृजन में लेखक या कवि के अन्दर पहले भावनाएँ उत्पन्न होंगी और गुम्फित होकर वेदना के रूप में व्यक्त होंगी जिससे संवेदना की उत्पत्ति होगी। भावना वैयक्तिक है जबकि संवेदना निर्वैयक्तिक है। इसी तरह से भावना स्वाभाविक है, जबकि संवेदना परिवेशगत है। सम्यक विश्लेषण करने पर उपरोक्त दोनों

स्थितियाँ उत्पन्न हो सकती हैं। अर्थात कहीं भावना की निर्मिति पहले होती है तो कहीं संवेदना प्रथम ग्राह्य होती है।

- सप्तकों के बाद की अधिकांश कविताएँ वैचारिक कविताएँ हैं। कवियों की वैचारिक (काल्पनिक) दृष्टि केन्द्रित होकर कभी भावनात्मकता और संवेदनशीलता में साम्य दर्शाने लगती है तो कभी बिखरकर इनके बीच के अन्तराल को पारिभाषित करती है।

- सप्तकों के बाद व्यावहारिक जीवन विशेषकर लोक-जीवन से जुड़ी हुई कविताओं की प्रचुरता है। इनमें आम-आदमी की सामान्य भावनाओं से लेकर उनकी गहन संवेदनाओं तक के प्रभावोत्पादक चित्र देखने को मिलते हैं।

- आज की कविता में भाषागत नवीनता, शैलीगत विविध प्रयोग, नए बिम्ब, आधुनिक युग से लिए गये प्रतीक, नवीन उपमान योजना, मिथकों एवं फन्तासियों के प्रयोगों द्वारा कवियों ने कविता के शिल्प पक्ष को अत्यधिक उन्नत एवं समृद्ध किया है।

- सप्तकोत्तर कविता के परिवेश, चिंतन, कल्पना, सिद्धान्त, मानवीयता, दार्शनिकता इत्यादि वैचारिक बिन्दुओं, लौकिकता, सामाजिकता, राजनीति, संघर्ष, प्रेम इत्यादि व्यावहारिक बिन्दुओं और भाषा, शैली, बिम्ब, प्रतीक, उपमान, मिथक, फन्तासी, गेयता, छन्द-योजना इत्यादि संरचनामूलक बिन्दुओं से सम्बन्धित भावनात्मकता और संवेदनशीलता के विभिन्न रूपों में वैषम्य की अपेक्षाकृत साम्य अधिक दिखाई देता है।

- आज का कवि भावनात्मकता और संवेदनशीलता के परम्परागत रूपों की अपेक्षा उन्हें युग-संदर्भो के बीच रखकर नये रूपों में प्रस्तुत करता है। इसी प्रकार चरित्रगत स्वरूपों में भी क्रान्तिकारी परिवर्तन लक्षित होता है। उसमें जहाँ परम्परागत चरित्रों को छोड़ने का आग्रह है वहीं जन-सामान्य के बीच से शोषित नारी, पुरुष एवं युग के यथार्थ को ग्रहण करने का प्रयास भी है। लेकिन आलोच्य युग का कवि उन्हें भी नए रूप में ग्रहण करता है, परम्परागत रुप में नहीं। वस्तुतः वह अलौकिक चरित्रों के स्थान पर जीवन एवं समाज के बीच के यथार्थपरक चरित्रों तथा उनके क्रिया-कलापों को विशष महत्त्व प्रदान करता है तथा उन्हें मानवीय धरातल पर लोक संवेदना के साथ प्रस्तुत करता है।

इस प्रकार सप्तकोत्तर कविता में आज का सजग कवि समकालीन समाज और वातावरण से अर्जित विचारों और संस्कारों को मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं में ढालकर उन्हें व्यावहारिकता की सुदृढ़ नींव प्रदान करने का कार्य करता है। आज के कवि को केवल अच्छी कविता को बचाए रखने

की चिन्ता नहीं है बल्कि उसकी चिन्ता सम्पूर्ण विश्व, राष्ट्र, राज्य, नगर, गाँव, परिवार, जाति, धर्म, परम्परा और इतिहास को बचाए रखने के प्रति भी उतनी ही तीव्र है। वह कविता को एक चुनौती भरे दायित्व की तरह स्वीकार करता है और कवि के कठिन और पवित्र कर्म को करता है। आज की कविताएँ साधारणजनों के सुख-दुःख और उनके संघर्षों को कलात्मक अभिव्यक्ति प्रदान करने वाली काव्य परम्परा का पालन करती हैं।

सन् 1980 से पहले की कविता में जहाँ पुराने वादों और साहित्यिक भ्रान्तियों को ढोने की परम्परा कुछ हद तक बची रही गई थी वह परम्परा 1980 के बाद की कविताओं में समाप्त होती देखी जा सकती है। इधर की कविता में मौलिकता के प्रति आग्रह बढ़ा है और सांस्कृतिक जड़ता को दूर कर एक संवेदनशील मानवीय विवेक भूमि तैयार करने की ललक भी सप्तकोत्तर कविता में सर्वत्र विद्यमान है। युग की जटिलता की अन्तर्व्याप्ति से विषम और दुरूह होते एवं आधुनिक सभ्यता के विकास से विशृंखल एवं उदासीन होते मानव के एकाकी जीवन को केन्द्र बनाकर लोकमंगल की भावना को विकसित करना सप्तकोत्तर कविता का परम लक्ष्य है।

वस्तुतः आज की कविता में हिंसा और द्वेष को त्यागकर सम्पूर्ण समष्टि में प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न करने, उदासीनता, व्यक्तिगत पीड़ा और एकाकीपन से मुक्त होकर प्राणि-मात्र की निःस्वार्थ सेवा करने, सामाजिक विद्रूपताओं और विकृतियों से संघर्ष करने, उपेक्षाओं और अवमाननाओं के बीच व्यक्ति के आत्म विश्वास को दृढ़ता प्रदान करने और अज्ञान की तमिस्रा से घिरे जन-मानस में वैचारिक एवं व्यावहारिक ज्ञान की प्रखरता को गुंजायमान करने का यथासंभव प्रयास समकालीन कवियों ने किया है। उनकी संवेदना जहाँ व्यष्टि से समष्टि तक की पीड़ा को जन-जन की अनुभूति के रूप में चित्रित करती है वहीं उनकी भावनात्मकता के विशालतम वृत्त में राष्ट्र, मानव, इतिहास, दर्शन, कल्पना, प्रेम और समूचा विश्व एक दूसरे के पूरक बनकर एक अद्वितीय लौकिक आदर्श की स्थापना का प्रयास करते हैं।

निराशा, अविवेक, टूटन, घुटन, विघटन और सांस्कृतिक अवमूल्यन के इस घोर संकटकाल में मनुष्य कितना ही निराश हो जाए, किन्तु, उसका स्वभाव हमेशा आशा की किरण को बचाए रखना रहा है। इस सत्य को कवि सदैव भली-भाँति जानता और समझता रहा है। सप्तकोत्तर कविता विषमताओं से जूझते आज के आम आदमी की आशावादिता को बचाए और बनाए रखने का एक सार्थक और ज्वलंत प्रयास है। जब तक मानवीय चिन्तन के केन्द्र में आशावादी भावना और समग्र सृष्टि के प्रति संवेदना दृष्टि बची रहेगी तब तक लोकमंगल का विधान करने वाली, स्वप्नद्रष्टा कवि की पवित्र वाणी इस वसुंधरा पर अपना अक्षय अमृत कोष बिखेरती रहेगी।

सहायक ग्रन्थ सूची

सहायक ग्रन्थ सूची

(क) आधार ग्रन्थ :

1. तार सप्तक — संपा० स०ही०वा० 'अज्ञेय', भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली-110003, आठवाँ संस्करण 2003 ई०
2. दूसरा सप्तक — संपा०स०ही०वा० 'अज्ञेय', भारतीय ज्ञानपीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली-110003, दूसरा संस्करण 1999 ई०
3. तीसरा सप्तक — संपा० स०ही०वा० 'अज्ञेय', भारतीय ज्ञानपीठ, बी/45-47 कनॉट प्लेस, नई दिल्ली-110003, पाँचवाँ संस्करण 1984 ई०
4. चौथा सप्तक — संपा० स०ही०वा० 'अज्ञेय', सरस्वती विहार, 21, दयानंद मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1979 ई०
5. इत्यलम् — अज्ञेय, प्रतीक प्रकाशन केन्द्र दिल्ली, प्रथम संस्करण 1946 ई०
6. ओ अप्रस्तुत मन — भारतभूषण अग्रवाल, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दिल्ली, प्रथम संस्करण 1958 ई०
7. कुछ और कविताएँ — शमशेर बहादुर सिंह, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०, दिल्ली, पहला संस्करण 1961 ई०
8. चयनिका — महेन्द्र भटनागर, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, प्रथम संस्करण 1966 ई०
9. जिजीविषा — महेन्द्र भटनागर, हिन्दी प्रचारक प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1974 ई०
10. धूप के धान — गिरिजा कुमार माथुर, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, तृतीय संस्करण 1966 ई०
11. फूल नहीं रंग बोलते हैं — केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1965 ई०
12. भारत-भारती — मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, झाँसी, बत्तीसवाँ संस्करण सं० 2029 वि०
13. विश्वास बढ़ता ही गया — शिवमंगल सिंह 'सुमन', आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 1967 ई०
14. सात गीत वर्ष — धर्मवीर भारती, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, तृतीय संस्करण 1976 ई०

15. हम विषपायी जनम के — बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1965 ई0

16. हरी घास पर क्षण भर — स0 ही0 वा0 'अज्ञेय', प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2000 वि0

17. हंसमाला — नरेन्द्र शर्मा, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्रथम संस्करण, सं0 2003 वि0

18. शबरी — धनञ्जय अवस्थी, संगम प्रकाशन, 186, शहराराबाग, इलाहाबाद-3, प्रथम संस्करण 1981 ई0

19. राग विराग — सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला, संपा0 रामविलास शर्मा, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, दसवाँ संस्करण 1985 ई0

20. कामायनी — जयशंकर प्रसाद, अरुण प्रकाशन, ए-47, अमर कॉलोनी, लाजपत नगर, नई दिल्ली-110024, प्रथम संस्करण 1988 ई0

21. साकेत — मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, संस्करण सं0 2018 वि0

22. खूँटियों पर टँगे लोग — सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, राजकमल प्रकाशन, प्रा0लि0-1 बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1982 ई0

23. तृष्या — माधवीलता शुक्ला, वृहस्पति प्रकाशन, 15/91 सिविल लाइन्स, कानपुर, प्रथम संस्करण 1983 ई0

24. अपराधिता — रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भारतीय साहित्य प्रकाशन 286, चाणक्यपुरी, सदर, मेरठ-1, प्रथम संस्करण-1983

25. नवगीत दशक — सं0 शम्भूनाथ सिंह, पराग प्रकाशन, 3/114, कर्ण गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 1983 ई0

26. हर सुबह एक ताजा गुलाब — गुलाब खण्डेलवाल, लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1984 ई0

27. अभिनवा — ओंकार प्रसाद त्रिपाठी, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1984 ई0

28. स्नेहिल बन्धन टूट गए तो — शिवकुमार सिंह कुँवर, विहान प्रकाशन, 119/50 सी(3) कालपी रोड कानपुर, प्रथम संस्करण, 1985 ई0

29. आँका सूरज बाँका सूरज — केदारनाथ सिंह,, उदयाचल प्रकाशन, राष्ट्रकवि दिनकर पथ, राजेन्द्र नगर, पटना-800016, प्रथम संस्करण 1986 ई0

30. अभिशप्त शिला — डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित', राष्ट्रकवि प्रकाशन, चंददास साहित्य शोध संस्थान, सिविल लाइन्स, बाँदा उ0प्र0, प्रथम संस्करण, 1987 ई0

31. पवन गया नीली घाटी में — शतदल, कवि वंशम, पोस्ट-बाक्स 22, कानपुर 208001, प्रथम संस्करण-1987 ई0

32. लाल बहादुर शास्त्री महाकाव्य — लक्ष्मी प्रसाद गुप्त, प्रका0 डॉ0 रामशरण मिश्र, बबेरू, बाँदा, प्रथम संस्करण, 1988 ई0

33. प्रार्थना के शिल्प में नहीं — देवी प्रसाद मिश्र, लोकभारती प्रकाशन, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1989 ई0

34. धुएँ का सच — कुसुम अंसल, अभिव्यंजना 109/48, पंजाबी बाग, नई दिल्ली-110026, प्रथम संस्करण 1984 ई0

35. कितनी अवधि — इन्दु जैन, सरस्वती विहार, जी0टी0 रोड शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 1986

36. शब्द सक्रिय हैं — ओम निश्चल, किताबघर मेन रोड, गाँधी नगर, दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण 1987 ई0

37. युवा कवि नये हस्ताक्षर — संपा0 बलदेव वंशी, किताबघर, शीलतारा हाउस, 24/4866, अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-11002, प्रथम संस्करण 1987 ई0

38. मोरचे में अकेला — बलभीम राज गोरे, संचयन, 124/152 सी0, गोविन्द नगर, कानपुर-208006, प्रथम संस्करण 1987 ई0

39. सूली पर आकाश — डॉ0 यतीन्द्र तिवारी, सरस्वती प्रकाशन, 128/106, जी, किदवई नगर, कानपुर-11, प्रथम संस्करण-1990 ई0

40. संवाद तुमसे — विजयदेव नारायण साही, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण 1990 ई0

41. खामोशी भयानक है — डॉ0 रणजीत, विज्ञान शिक्षा केन्द्र, सिविल लाइन्स, बाँदा-210001, प्रथम संस्करण 1990 ई0

42. देखना एक दिन — नरेश मेहता, लोक भारती प्रकाशन, 15-ए महात्मा गाँधी इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1990 ई0

43. बादर बरस गयो — गोपालदास नीरज, आत्माराम एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण 1991 ई0

44. सिर्फ कवि नहीं — बोधिसत्व, लोकभारती प्रकाशन, 15ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण 1991 ई०
45. यह जो है गायत्री — विवेकी राय, प्रतिभा प्रतिष्ठान, 1985 दखनीराय स्ट्रीट, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-2, प्रथम संस्करण 1991 ई०
46. भय भी शक्ति देता है — लीलाधर जगूड़ी राजकमल प्रकाशन प्रा०लि०-1-बी, नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1991 ई०
47. अरुणिमा — रामचन्द्र शुक्ल, आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण 1992 ई०
48. नंगे पाँव का रास्ता — नरेन्द्र पुण्डरीक, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1992 ई०
49. ध्रवान्तर — रामेश्वर शुक्ल 'अंचल', भारतीय साहित्य प्रकाशन, 286 चाणक्यपुरी, सदर मेरठ, प्रथम संस्करण-1993 ई०
50. अनुभव के आकाश में चाँद — लीलाधर जगूड़ी, राजकमल प्रकाशन, प्रा०लि० 1-बी, नेता जी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1994 ई०
51. शब्द सेतु — रामदरश मिश्र, अविराम प्रकाशन, 29/62, गली नं० 11, विश्वासनगर, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 1994 ई०
52. वंशीवट सूना है — गोपालदास नीरज, आत्माराम एंड संस कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-1994 ई०
53. पृथ्वीकल्प — गिरिजा कुमार माथुर, किताब घर, 24, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1994 ई०
54. अन्न हैं मेरे शब्द — एकान्त श्रीवास्तव, आधार प्रकाशन, हरियाणा, प्रथम संस्करण 1994 ई०
55. मातृभूमि के लिए — रमेश पोखरियाल निशंक, निशंक प्रकाशन, पौड़ी गढ़वाल, उत्तरांचल-246001, प्रथम संस्करण 1992 ई०
56. कातर बेला — सुनीता जैन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1995 ई०
57. वर्णमाला से बाहर — विनोद दास, किताबघर प्रकाशन, गाँधी नगर, दिल्ली-110031, प्रथम संस्करण 1995 ई०
58. जो कुछ भी घट रहा है दुनिया में — नासिर अहमद सिकंदर, म०प्र० साहित्य परिषद भोपाल, प्रथम संस्करण 1994 ई०

59.	गीता भागीरथी	राजेश दीक्षित, वाणी मन्दिर, महाविद्या कॉलोनी, मथुरा-3, प्रथम संस्करण 1995 ई०
60.	गीत उन्मादिनी	राजेश दीक्षित, वाणी मन्दिर, महाविद्या कॉलोनी, मथुरा-3, प्रथम संस्करण 1995 ई०
61.	पतझर में बसंत की छवियाँ	रमेश रंजक, पुस्तकायन, 2/4240 ए, अंसारी रोड, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1996 ई०
62.	और कुछ नहीं तो	सुधीर रंजन सिंह, आधार प्रकाशन, 372/सेक्टर-17, पंचकला (हरियाणा) 134109, प्रथम संस्करण 1996 ई०
63.	बाघ	केदार नाथ सिंह, भारतीय ज्ञान पीठ 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण 1996 ई०
64.	क्रूरता	कुमार अंबुज, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा०लि० 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1996 ई०
65.	बसन्त में प्रसन्न हुई धरती	केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1997 ई०
66.	कुहुड़ी कोयल खड़े पेड़ की देह	केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1997 ई०
67.	हवाएं दे रही हैं संदेश	मत्स्येन्द्र शुक्ल, अश्विनी प्रकाशन, 69,नया बैरहना, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 1997 ई०
68.	लय	संपा० डॉ० माधव हाड़ा, राजस्थान पत्रिका, केशरगढ़, जवाहरलाल नेहरू मार्ग, जयपुर-4 प्रथम संस्करण 1997 ई०
69.	कुछ लम्बी कविताएँ	धर्मवीर भारती, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1998 ई०
70.	यह आकाँक्षा समय नहीं	गगन गिल, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० दिल्ली, पहला संस्करण 1998 ई०
71.	जिन्दा कौमों का दस्तावेज	भगवान स्वरूप कटियार, यूनिक बुक एजेन्सी, अलीगंज, लखनऊ, प्रथम संस्करण-1998 ई०
72.	एक सम्पूर्णता के लिए	पंकज चतुर्वेदी, आधार प्रकाशन, 372 सेक्टर 17, पंचकला (हरियाणा)-134109, प्रथम संस्करण 1998 ई०
73.	हाँ चाँद मेरा है	हरिराम मीणा, जगतराम एंड संस, 24/4855, अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1999 ई०

74. भविष्य घट रहा है — कैलाश बाजपेयी, भारतीय ज्ञानपीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण-1999

75. एक बुरूँश कहीं खिलता है — हरीशचन्द्र पाण्डेय, साहित्य संगम, 100, नया लूकरगंज, इलाहाबाद-211001, प्रथम संस्करण-1999 ई0

76. गंगा तट — ज्ञानेन्द्र पति, राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा0लि0 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1999 ई0

77. शताब्दी की सरहद पर — सावित्री डागा, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, प्रथम संस्करण-1999 ई0

78. जोखिम से कम नहीं — ओम भारती, किताबघर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1999 ई0

79. प्रस्थानत्रयी — नीरजा माधव, केतन प्रकाशन, महाबोधि इण्टर कालेज, सारनाथ, वाराणसी, प्रथम संस्करण - 2000 ई0

80. धूप दिखाए आरसी — डॉ0 रवीन्द्र भ्रमर, सरस्वती प्रकाशन मन्दिर 83/69, नया बैरहना, इलाहाबाद-211003, प्रथम संस्करण-2000 ई0

81. आवाज भी एक जगह है — मंगलेश डबराल, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2000 ई0

82. संवाद भारती — केशव प्रसाद बाजपेयी, स्वत्वाधिकार, प्रथम संस्करण 2000 ई0।

83. धुंध में नीड़ — कु0 शुभाशा मिश्रा, ग्रामवासी प्रकाशन, कृपाली स्वर संस्थान, 3, मीराबाई मार्ग, लखनऊ-226001, प्रथम संस्करण 2000 ई0

84. खोया हुआ-सा कुछ — निदा फाजली, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2000 ई0

85. चरवाहों का चक्रव्यूह — राकेश चक्र, शब्द सृष्टि 1/102295, स्ट्रीट नं0 1, वैस्ट गोरखा पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 2000 ई0 दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 2000 ई0

86. राष्ट्रीय काव्यांजलि — संपा0 डॉ0 किशोरीशरण शर्मा, मनोरथ प्रकाशन, साहित्यांगन, 14 रेवती बिहार (खड़गपुर), इन्दिरा नगर, लखनऊ-226016, प्रथम संस्करण-2000 ई0

87. आँजनेय — डॉ0 रामजी लाल दीक्षित, सिया प्रकाशन, विक्रमपुर रोड, आगरा, प्रथम संस्करण 2000 ई0

88. सातों आकाशों की लाड़ली	नरेन्द्र पुण्डरीक, परिमल प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-2000 ई०
89. सक्षम थीं लालटेनें	रंजना श्रीवास्तव, सुधा बुक मार्ट, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2000 ई०
90. सच कर रहा विलाप	अनन्तराम मिश्र 'अनन्त', दिशा प्रकाशन, 138/16, दिल्ली-110035, प्रथम संस्करण 2001 ई०
91. प्रवासी की पाती भारत माता के नाम	हरिशंकर आदेश, शब्द सृष्टि वी-710/1 गली नं० 10 विजय पार्क, मौजपुर, दिल्ली-110053, प्रथम संस्करण 2001 ई०
92. किसी रंग की छाया	सुन्दरचन्द ठाकुर, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001 ई०
93. इस तरह से ये समय	वीरेन्द्र गोयल, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण-2001 ई०
94. पेड़ अकेला नहीं कटता	दफैरून, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा प्रथम संस्करण, 2001 ई०
95. कागज के प्रदेश में	संजय, कुंदन, किताब घर प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2001 ई०
96. पहला उपदेश	अनिल कुमार सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली-प्रथम संस्करण 2001 ई०
97. एक टिटिहरी की चीख	अनिल गंगल, राज० साहित्य अकादमी/ईशा ज्ञानदीप, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001 ई०
98. मिट्टी के फल	प्रेमरंजन अनिमेष, प्रकाशन संस्थान, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001 ई०
99. जहाँ सब शहर नहीं होता	श्री प्रकाश शुक्ल, लोक भारती, 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग, इलाहाबाद-1, प्रथम संस्करण-2001 ई०
100. उत्सव का निर्मम समय	नंद चतुर्वेदी, भारतीय ज्ञानपीठ 18, इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003
101. नीरज दोहावली	गोपालदास नीरज आत्माराम एंड संस, कश्मीरी गेट, दिल्ली-110006, प्रथम संस्करण-2001 ई०
102. सपना अभी भी	धर्मवीर भारती, सर्वण जयन्ती 1/5971, कबूल नगर, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण 2001 ई०
103. सार्थक कुछ	रमेश कुमार त्रिपाठी, उमेश प्रकाशन, 100, लूकरगंज, इलाहाबाद 01, प्रथम संस्करण 2001

104. इन दिनों — कुँवर नारायण, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० 1-बी नेता जी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002 प्रथम संस्करण 2002 ई०

105. बहार आये तो — कैफी आजमी, संवाद प्रकाशन, आई-499 शास्त्री नगर, मेरठ-250004 (उ०प्र०), प्रथम संस्करण-2002 ई०

106. दक्खिन टोला — अंशु मालवीय, इतिहास बोध प्रकाशन, बी-239, चन्द्रशेखर आजाद नगर, इलाहाबाद-211004, प्रथम संस्करण 2002 ई०

107. प्रेरक झरने — जगत प्रसाद द्विवेदी, कुमार बुक डिपो, बाँदा (उ०प्र०) प्रथम संस्करण-2002 ई०

108. मेरा घर — त्रिलोचन, राजकमल प्रकाशन प्रा०लि० 1-बी, नेताजी सुभाष मार्ग, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण-2002

109. नयनदीप — रामभरोसे लाल, बुनियादी साहित्य प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ, प्रथम संस्करण 2002 ई०

110. मैंने कहाँ गगन माँगा था — राजा जुत्शी, अमर प्रकाशन-9बी, ड्रमण्ड रोड इलाहाबाद-211001, प्रथम संस्करण 2002 ई०

111. एक दिन दिल्ली में समय — सर्वेन्द्र विक्रम, अरुणोदय प्रकाशन, 35-ए, डी०डी०ए० फ्लैट्स, मान सरोवर पार्क, शाहदरा, दिल्ली-110032, प्रथम संस्करण-2002 ई०

112. मुहावरा काव्य भाग-1 — सुरेन्द्र पाण्डेय 'रज्जन', सुरेन्द्र पाण्डेय, सी-78, हर्ष बिहार, अलीगंज, लखनऊ-20 प्रथम संस्करण, 2002 ई०

113. धरती मुस्करायेगी — किशन सिंह अटोरिया, मानस पब्लिकेशन्स, 185, नया बैरहना, इलाहाबाद-211003, प्रथम संस्करण 2002 ई०

114. चाँद पर नाव — हेमन्त कुकरेती, भारतीय ज्ञान पीठ, 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण-2003

115. रुप बाजार — कृष्ण गोपाल गौतम, प्रबोधिनी प्रकाशन, बाँदा, प्रथम संस्करण-2003 ई०

116. लिख सकूँ तो — नईम, भारतीय ज्ञानपीठ, 18, इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण-2003

117. सबसे सुन्दर लड़कियाँ — यादवेन्द्र शर्मा, कवि प्रकाशन, बीकानेर (राजस्थान) प्रथम संस्करण-2000 ई०

118. तमाम गुमी हुई चीजें — ब्रज श्रीवास्तव, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, प्रथम संस्करण 2003 ई०

119. इस सदी में — मालम सिंह, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, प्रथम संस्करण 2003 ई0

120. भावार्थ — पद्‌मनाथ तिवारी, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा, (म0प्र0), प्रथम संस्करण 2003 ई0

121. बीज के फूल तक — एकांत श्रीवास्तव, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2003 ई0

122. कहाँ होगी हमारी जगह — मोहन कुमार डहेरिया, शताक्षी प्रकाशन, रायपुर, प्रथम संस्करण 2002 ई0

123. असम्भव सारांश — आशुतोष दुबे, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-2002 ई0

124. बातचीत की उड़ती धूल में — नरेश चंद्रकर, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 ई0

125. कालवृक्ष की छाया में — अग्निशेखर, सारांश प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 ई0

126. समय का हिसाब — वंदना देवेन्द्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2002 ई0

127. हाजिर है समन्दर — जितेन्द्र सिंह सोड़ी, रामकृष्ण प्रकाशन विदिशा (म0प्र0), प्रथम संस्करण 2002 ई0

128. शहर की छोटी-सी छत पर — स्वरांगी साने, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म0प्र0), प्रथम संस्करण 2002 ई0

129. कस्वे का कवि और अन्य कविताएँ — मणिमोहन मेहता, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म0प्र0), प्रथम संस्करण 2003 ई0

130. वह छठवाँ तत्त्व — ओम भारती, अमर सत्य प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2004 ई0

131. पानी का स्वाद — नीलेश रघुवंशी, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई0

132. चाँदनी के घर — सुरेश शुक्ल 'संदेश', लोकवाणी संस्थान, डी-585/12 गली नं0 2 अशोक नगर, निकट वजीराबाद रोड, शाहदरा दिल्ली-110093, प्रथम संस्करण 2003 ई0

133. सप्तसिंधु — अनन्तराम मिश्र 'अनन्त' लोकवाणी संस्थान, डी0 585/12 गली नं0 2 अशोक नगर, दिल्ली-110093, प्रथम संस्करण 2003 ई0

134. सदी की आखिरी दौर में — संपा0 प्रकाश मनु, इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल 18बी0, साउथ अनार कली, दिल्ली - 110051, प्रथम संस्करण- 2003.

135. दुःस्वप्न भी आते हैं — अष्टभुजा शुक्ल, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004

136. हवाओ लौट आओ — वीरेन्द्र सारंग, प्रकाशन सारांश, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

137. हाल-बेहाल — भारत यायावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

138. तुम्हारे वो शब्द — राजीव पाण्डे, शब्दालोक, दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

139. इस तरह मैं — पवन करण, मेघा बुक्स, दिल्ली, द्वितीय संस्करण 2004 ई०

140. पत्थर पर बसंत — अजित पुष्कल, अनुभव प्रकाशन, गाजियाबाद, प्रथम संस्करण 2004 ई०

141. सतपुड़ा के शिखरों से — प्रेमशंकर रघुवंशी, आर्यभाषा संस्थान, वाराणसी, प्रथम संस्करण 2004 ई०

142. हवा का रुख टेढ़ा है — भगवान स्वरूप कटियार, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

143. उनका बोलना — मोहन कुमार डहेरिया, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

144. काल बाँका तिरछा — लीलाधर मंडलोई, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004 ई०

145. अस्तित्व के स्वर — रमेश कुमार त्रिपाठी, उमेश प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण 2005 ई०

146. बीते हुए दिन — रश्मि रमानी, रामकृष्ण प्रकाशन, विदिशा (म०प्र०), प्रथम संस्करण 2005 ई०

147. हंस अकेला — रमानाथ अवस्थी, भारतीय ज्ञानपीठ इंस्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, दूसरा संस्करण 2004 ई०

148. सदाबहार गजल — गुलाम मुर्तजा 'राही', राही मंजिल, 135-पनी फतेहपुर (उ०प्र०) 212601, प्रथम संस्करण 2003

149. दुःखतंत्र — बोधिसत्व, भारतीय ज्ञानपीठ, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2004

150. पहले तुम्हारा खिलना — विजेन्द्र, भारतीय ज्ञानपीठ 18 इन्स्टीट्यूशनल एरिया, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003, प्रथम संस्करण 2004 ई०

151. धरती ने दिए हैं बीज — अशोक चन्द्र, अनिमेष फाउण्डेशन डी-2/593, सेक्टर एफ, जानकीपुरम् लखनऊ-226021, प्रथम संस्करण 2004 ई०

152. उजाले अपनी यादों के — बशीर बद्र, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली-210002 प्रथम संस्करण 2004 ई०

153. इस मिट्टी से बना — केशव तिवारी, रामकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2005

154. पता है, नहीं भी — वीणा घाणेकर, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रथम संस्करण-2005

155. चाँद का मुँह टेढ़ा है — गजानन माधव मुक्तिबोध , भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, दिल्ली, चतुर्थ संस्करण 1975 ई०

156. रक्त चन्दन — नरेन्द्र शर्मा, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण-सं० 2006 वि०

157. संतरण — महेन्द्र भटनागर, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल, प्रथम संस्करण मई-1963 ई०

158. श्रीरामचरितमानस — गोस्वामी तुलसीदास, गीता प्रेस गोरखपुर, 74वां संस्करण, 1985 ई०

159. विनय पत्रिका — गोस्वामी तुलसीदास, गीताप्रेस गोरखपुर, 28वां संस्करण, 1981 ई०

160. रामचरित रामाश्वमेध — विजय बहादुर त्रिपाठी 'रसनायक', स्वत्वाधिकार, प्रथम संस्करण 2001 ई०

161. जो शिलाएँ तोड़ते हैं — केदारनाथ अग्रवाल, परिमल प्रकाशन, 17, एम० आई० जी० बाघम्बरी आवास योजना, अल्लापुर इलाहाबाद-211006, प्रथम संस्करण 1996 ई०

(ख) संदर्भ ग्रन्थ :

अ. इतिहास

1.	हिंदी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 28वां संस्करण सं० 2051 वि०
2.	हिंदी साहित्य का इतिहास	डॉ० नगेन्द्र, मयूर पेपरबैक्स, ए-15, सेक्टर-5, नोएड़ा-201301, तीसवां संस्करण-2004 ई०
3.	हिंदी साहित्य का वृहत् इतिहास (चतुर्दश भाग)	संपा० हरवंशलाल शर्मा, ना०प्र०स०काशी प्रथम संस्करण सं० 2027 वि०

आ. आलोचना

1.	चिन्तामणि (पहला भाग)	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस प्रा०लि० प्रयाग, प्रथम संस्करण 1939, प्रस्तुत संस्करण 1975 ई०
2.	चिन्तामणि (दूसरा भाग)	आचार्य रामचंद्र शुक्ल, नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, चतुर्थ सभा संस्करण सं० 2053 वि०
3.	नयी कविता के प्रतिमान	लक्ष्मीकान्त वर्मा, भारती प्रेस प्रकाशन 10, दरभंगा रोड, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण सं० 2014 वि०
4.	आधुनिक हिंदी कविता में बिंब विधान	केदारनाथ सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्रा०लि० 2/38, अंसारी मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1971 ई० प्रथम राधाकृष्ण संस्करण 1994 ई०
5.	सिद्धान्त और अध्ययन	बाबू गुलाब राय, आत्माराम एंड संस दिल्ली-110006 छठवाँ संस्करण 1965, प्रस्तुत संस्करण 1990.
6.	कविता की तीसरी आँख	प्रभाकर श्रोत्रिय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, 23, दरियागंज, नई दिल्ली- 110002, द्वितीय संस्करण 1990 ई०
7.	समकालीन साहित्य नया परिदृश्य	सतीश जमाली, नई कहानी प्रकाशन, 170, अलोपी बाग, इलाहाबाद-211006, प्रथम संस्करण 1998 ई०
8.	समकालीन साहित्य समीक्षा	डॉ० चन्द्रभान रावत एवं डॉ० रामकुमार खण्डेलवाल, हिंदी साहित्य भण्डार, 55, चौपटिया रोड, लखनऊ-3, प्रथम संस्करण 1979 ई०
9.	छायावादोत्तर हिंदी काव्य बदलते मानदण्ड एवं स्वरूप	डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय, राजस्थानी ग्रन्थागार, सोजती गेट के बाहर, जोधपुर (राजस्थान), प्रथम संस्करण 1990 ई०
10.	कविता की राह	डॉ० कौशलनाथ उपाध्याय, राजस्थानी साहित्य संस्थान, जोधपुर, प्रथम संस्करण 2002 ई०

11.	भवानी प्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व	डॉ0 राजकुमारी गडकर, अन्नपूर्णा प्रकाशन, 127/100, डब्ल्यू-1, साकेत नगर, कानपुर-208014, प्रथम संस्करण 1992 ई0
12.	समकालीन कविता का बीजगणित	कुमार कृष्ण, वाणी प्रकाशन, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 2004 ई0
13.	सामकालीन कविता के बारे में	नरेन्द्र मोहन, वाणी प्रकाशन, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण 1994 ई0
14.	काव्य शास्त्र एक नव्य परिबोध	जयनारायण वर्मा, अभिनव प्रकाशन, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-11002, प्रथम संस्करण 1977 ई0
15.	साहित्य सिद्धान्त और साहित्य रूप	शेखर शर्मा, शिवालक प्रकाशन, 13/14 पंजाबी बाग, एक्सटेंशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण-1984 ई0
16.	छायावादोत्तर काव्य प्रवृत्तियाँ	डॉ0 टी0एन0 मुरली कृष्णम्मा, वाणी प्रकाशन, 4697/5, 21ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, प्रथम संस्करण, 1986 ई0
17.	तार सप्तक के कवि काव्य शिल्प के मान	कृष्णलाल, साहित्य प्रकाशन, मालीवाड़ा, दिल्ली-110006 प्रथम संस्करण 1979 ई0
18.	आधुनिक साहित्य सृजन और समीक्षा	आचार्य नन्द दुलारे बाजपेई, एस0जी0 वसानी द्वारा दि मैक मिलन कंपनी ऑफ इण्डिया लि0 के लिए प्रकाशित, प्रथम संसकरण 1978 ई0
19.	हिंदी साहित्य विविध परिप्रेक्ष्य	डा0 सुरेशचन्द्र गुप्त, कल्पतरू, 592-बी, नेहरू गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली 32, प्रथम संस्करण, 1988 ई0
20.	नयी कविता और अस्तित्ववाद	रामविलास शर्मा, राजकमल प्रकाशन, प्रा0 लि0, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1978 ई0
21.	सदी के अंत में कविता (उद्भावना कवितांक)	संपा0 अजेय कुमार, उद्भावना ए-21, झिलमिल इंडस्ट्रियल एरिया, जी0टी0 रोड, शाहदरा, दिल्ली-95
22.	एक साहित्यिक की डायरी	गजानन माधव मुक्ति बोध, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, सातवाँ संस्करण 1979 ई0
23.	हिन्दी साहित्य का विकास	डॉ0 बहादुर सिंह, नरेन्द्र कुमार बाहरी, विवेक पब्लिकेशिंग हाउस, धमात्री मार्केट, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003, संस्करण सन् 1990 ई0
24.	रीति विज्ञान	विद्या निवास मिश्र, वाणी प्रकाशन, 21-ए, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, द्वितीय संस्करण 1999

25. भवानी प्रसाद मिश्र की काव्य भाषा का शैली वैज्ञानिक अध्ययन — डॉ० नीलम कालड़ा, अनुराग प्रकाशन, 1/1073-डी, महरौली नई दिल्ली-110030, प्रथम संस्करण 1995.

इ. संस्कृत

1. श्रीमद्भगवद्गीता — महर्षि वेदव्यास

ई. साहित्य कोश

1. मानव मूल्य-परक शब्दावली का विश्वकोष — सं० डॉ० धर्मपाल मैनी, सरूप एंड संस, 4740/23, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002
2. वृहद हिन्दी पर्यायवाची शब्दकोश — सं० गोविन्द चातक, तक्षशिला प्रकाशन
3. संस्कृत-हिन्दी कोश — सं० वामन शिवराम आप्टे
4. दिनमान हिन्दी शब्द कोश — सं० श्री शरण
5. संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर — सं० रामचन्द्र वर्मा
6. मानक हिन्दी कोश — सं० रामचन्द्र वर्मा
7. राजपाल हिन्दी शब्द कोश — सं० डॉ० हरदेव बाहरी
8. लोक भारती प्रामाणिक हिन्दी कोश — सं० रामचन्द्र वर्मा, लोक भारती प्रकाशन

उ. अन्य

1. समाजशास्त्र — डॉ० एस०एम० कपूर एवं बी०एस० ग्रोवर, चित्रा प्रकाशन प्रा०लि०, 312, वैस्टर्न कचहरी, रोड, मेरठ-250001 (उ०प्र०), संस्करण 2006

ऊ. पत्र-पत्रिकाएँ

वसुधा
मधुमती
हिन्दी अनुशीलन
समकालीन भारतीय साहित्य
नया ज्ञानोदय
उत्तर प्रदेश
राष्ट्रधर्म
कथादेश
आजकल
वागर्थ
राष्ट्रभाषा संदेश (पाक्षिक)
कृति ओर
उन्नयन
विकल्प